सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा)
भारतीय समाज (Indian Society)

विषय-सूची

MODULE - I

1. भारतीय समाज : पारिभाषिक शब्दावली
2. भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ
   - परंपरागत भारतीय समाज के आधार
     - धर्म
     - पुरुषार्थ
     - कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत
     - ऋण तथा यज्ञ का सिद्धांत
     - हिन्दू संस्कार
     - आश्रम व्यवस्था
     - वर्ण व्यवस्था
     - जाति-व्यवस्था
     - धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह एवं संयुक्त परिवार
   - भारतीय समाज में परिवर्तन और निरंतरता
   - हिन्दू सामाजिक संगठन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव
   - हिन्दू सामाजिक संगठन पर इस्लाम धर्म का प्रभाव
   - भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएँ
     - संस्कृतिकरण
     - पश्चिमीकरण
     - आधुनिकीकरण
   - आधुनिक भारतीय समाज के लक्षण
   - भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : समकालीन मुद्दे
     - भारत में परंपरा, आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण
     - आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण
     - भारत में आधुनिकीकरण की शुरूआत
     - भारत में आधुनिकीकरा की प्रक्रिया का स्वरूप
     - भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समस्याएँ
   - जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभाव
     - भारतीय संस्कृति पर प्रभाव
     - भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव
     - जनसंचार साधन-जनित परिवर्तन की चुनौतियाँ
3. भारत में जाति व्यवस्था
   - जाति व्यवस्था : अर्थ एवं लक्षण
   - जाति-व्यवस्था के गुण एवं दोष
   - जाति व्यवस्था में परिवर्तन एवं इसके कारक
     - जाति की संरचना में परिवर्तन
     - जातिगत निषेधों में परिवर्तन
     - जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन
     - जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारक
   - जाति व्यवस्था की निरन्तरता एवं इसके कारक
     - सामाजिक क्षेत्र में निरंतरता
     - आर्थिक क्षेत्र में निरन्तरता
     - राजनीतिक क्षेत्र में निरन्तरता
     - जाति व्यवस्था की निरन्तरता के कारक
   - प्रभुजाति की अवधारणा
   - जजमानी प्रणाली
   - भारत में अस्पृश्यता
   - भारत में जातिवाद
     - भारत में जातिवाद के स्वरूप
     - भारत में जातिवाद के कारण
     - जातिवाद के परिणाम
     - जातिवाद को दूर करने के उपाय
   - भारत में जाति एवं राजनीति
     - राजनीति में जाति की भूमिका
     - जाति में राजनीति की भूमिका
   - भारत में समानता एवं जाति आधारित आरक्षण
     - जाति आधारित आरक्षण के पक्ष में तर्क
     - जाति आधारित आरक्षण के विरोध में तर्क
   - जाति आधारित जनगणना
   - भारत में जाति संघर्ष
4. भारत में विवाह
   - भारत में विवाह के प्रकार
   - हिन्दू विवाह : एक धार्मिक संस्कार
   - हिन्दू विवाह सम्बन्धी नियम व निषेध
     - अनुलोम विवाह
     - प्रतिलोम विवाह
   - हिन्दू विवाह में आधुनिक परिवर्तन
   - भारत में अन्तर्जातीय विवाह
     - अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने वाले कारक
     - अन्तर्जातीय विवाह से लाभ
   - भारत में विवाह-विच्छेद की समस्या
   - भारत में समलैंगिकता

5. भारत में परिवार - संयुक्त परिवार

- संयुक्त परिवार : अर्थ एवं लक्षण
- संयुक्त परिवार में होने वाले आधुनिक परिवर्तन एवं इसके कारक
  - संरचना में परिवर्तन
  - अन्त:पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन
  - प्रकार्यों में परिवर्तन
  - अन्य नवीन परिवर्तन
  - संयुक्त परिवार में परिवर्तन के कारक
- सामाजिक विधानों का हिन्दू विवाह एवं परिवार पर प्रभाव

6. भारत में धर्म

- भारत में धार्मिक समुदाय
- अंत:धार्मिक क्रियाएँ और उनकी अभिव्यक्ति
- समकालीन मुद्दे : धार्मिक पुन:प्रर्वतनवाद
- समकालीन मुद्दे : भारत में धार्मिक रूढ़िवाद
- समकालीन मुद्दे : भारत में धर्म-परिवर्तन

7. वैश्वीकरण : एक परिचय

- स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के आर्थिक विकास की दशा
- आर्थिक सुधार के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- भारत में आर्थिक सुधार की पृष्ठभूमि
- आर्थिक सुधार और इसका स्वरूप
- आर्थिक सुधार का आर्थिक प्रभाव

8. वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव

- ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- जनजातीय समुदाय पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय धर्म पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय विवाह एवं परिवार व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय राष्ट्र राज्य पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के कृषि श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के औद्योगिक श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत में बालश्रम पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के किसान वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय वृद्धों पर वैश्वीकरण के प्रभाव

9. भारत में विविधता

- भारतीय समाज में विविधता
  - धार्मिक विविधता
  - भाषायी विविधता
  - सांस्कृतिक विविधता
  - जनजातीय विविधता
  - जातीय विविधता
- भारतीय समाज में विविधताओं में मौलिक एकता
- भारतीय समाज में विविधताजनित चुनौतियाँ

10. जनसंख्या संबंधी मुद्दें

- पारिभाषिक शब्दावली
- भारत में जनांकिकी संक्रमण
- भारत की जनसंख्या-आकार, संगठन एवं वितरण
- भारत में जनसंख्या वृद्धि/विस्फोट
  - जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक कारक
  - जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक परिणाम
- भारत में जन्म दर
  - उच्च जन्म दर के सामाजिक निर्धारक
  - उच्च जन्म दर के सामाजिक परिणाम
- भारत में मृत्यु दर
  - उच्च मृत्यु दर के सामाजिक कारक
- भारत में प्रवास
  - भारत में उच्च प्रवास की प्रवृत्ति के सामाजिक कारक
  - उच्च प्रवास के परिणाम
- भारत में विवाह की आयु
  - कम आयु में विवाह के कारण
  - कम आयु में विवाह के परिणाम
- जनसंख्या नीति और परिवार नियोजन
  - राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000
  - परिवार नियोजन
  - अमर्त्य सेन का केरल मॉडल
  - चीनी मॉडल
- भारत में शिशु मृत्यु दर
  - उच्च शिशु मृत्युदर के परिणाम
  - उच्च शिशु मृत्युदर के सामाजिक कारक
- भारत में लिंगानुपात
  - घटते लिंगानुपात के सामाजिक परिणाम
  - घटते लिंगानुपात के सामाजिक कारक
- भारत में शिशु लिंगानुपात
- भारत में आयु संरचना

MODULE – II

11. भारत में नगरीकरण

- पारिभाषिक शब्दावली
- भारत में नगर की परिभाषा एवं वर्गीकरण
- नगरीय समाज एवं नगरीकरण का अर्थ
- भारत में नगरीकरण
  - औद्योगीकरण तथा नगरीय केन्द्रों का विकास
  - भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव
  - नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता
  - नगरीय पड़ोस का उद्भव
- नगरीकरण पर संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट
- भारत में नगरीकरण की समस्याएँ
  - सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ
  - अतिनगरीकरणजनित समस्याएँ
  - नगरीय समस्याओं के कारण
  - नगरीय समस्याओं के समाधान के प्रयास

12. भारत में मलिन बस्तियाँ

- भारत में गंदी बस्ती की समस्या का स्वरूप
- गन्दी बस्तियों के विकास के कारक
- गन्दी बस्तियों के दुष्परिणाम
- गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु किये गये प्रयास
- गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु सुझाव
- राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम
- मलिन बस्ती मुक्त भारत मिशन
- प्रधानमंत्री आवास योजना

13. नगरीय विकास : एक विस्तृत विवेचन

- शहरी विकास : एक परिचय
- शहरी विकास : प्रमुख योजनाएँ
  - राष्ट्रीय मलिन बस्ती सुधार कार्यक्रम
  - कम लागत व्यक्तिगत शौचालय योजना
- बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना
  - स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम
  - नगरीय मजदूरी रोजगार कार्यक्रम (यू.डब्लू.ई.पी.)
  - नगरीय क्षेत्र में महिला एवं बाल विकास
  - राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन
  - स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना
  - राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन
  - शहरी आवास विकास
  - शहरी परिवहन विकास
  - राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति
  - राष्ट्रीय शहरी स्वच्छता नीति
  - प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण
  - प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी
  - स्मार्ट सिटी मिशन
  - AMRUT मिशन

14. विकास संबंधी मुद्दे

- विकास एवं विषमता
- विकास और वैयक्तिक विषमता
  - वैयक्तिक विषमता के कारण
  - वैयक्तिक विषमता कम करने हेतु सुझाव
- विकास और क्षेत्रीय विषमता
  - क्षेत्रीय विषमता के कारण
  - क्षेत्रीय विषमता को कम करने हेतु सुझाव
- विकास और शहरी-ग्रामीण विषमता
  - शहरी-ग्रामीण विषमता का कारण
  - शहरी-ग्रामीण विषमता को कम करने हेतु सुझाव
- विकास एवं पर्यावरण
  - पर्यावरणीय समस्याओं का स्वरूप
  - पर्यावरणीय जागरुकता का विकास पर प्रभाव
  - भारत में विकास एवं पर्यावरण में संतुलन हेतु सुझाव
- विकास एवं विस्थापन
  - विकासजनित विस्थापन का स्वरूप
    - बांध से विस्थापन
    - शहरी नवीकरण और विकास से उत्पन्न विस्थापन
    - प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से विस्थापन
  - विस्थापन से उत्पन्न समस्याएँ
  - विकासजनित विस्थापन तथा जनजातीय समूह
  - विस्थापन की समस्या के समाधान हेतु किए गए प्रयास
  - जनजातीय विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने हेतु सुझाव
- किसान आत्महत्या
  - किसान आत्महत्या का स्वरूप
  - किसान आत्महत्या के कारण
  - किसान आत्महत्या को दूर करने के लिए किए गए प्रयास
  - किसान आत्महत्या की समस्या को दूर करने हेतु किए गए प्रयासों का मूल्यांकन एवं सुझाव

15. भारत में क्षेत्रवाद

- भारत में क्षेत्रवाद का स्वरूप
- क्षेत्रवाद का महत्त्व

- भारत में क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम
- भारत में क्षेत्रवाद के कारण
- क्षेत्रवाद की समस्या की रोकथाम हेतु सुझाव

16. भारत में धर्मनिरपेक्षता

- धर्मनिरपेक्षता का उद्भव एवं विकास
- भारत में धर्मनिरपेक्षता
- एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत
- भारत में धर्मनिरपेक्षीकरण का सामाजिक प्रभाव
- धर्मनिरपेक्षीकरण की समकालीन चुनौतियाँ

17. भारत में सांप्रदायिकता

- सांप्रदायिकता की अवधारणा
- भारत में सांप्रदायिकता
  - भारत में सांप्रदायिकता के कारण
  - भारत में सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम
  - भारत में सांप्रदायिकता निवारण हेतु किए गए प्रयास

18. भारत में महिलाएँ

- भारत में महिलाओं की स्थिति
- भारत में महिलाओं के सीमान्तीकरण के कारण
- महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रयास
  - संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास
  - नीतिगत एवं योजनागत प्रयास
  - मूल्यांकन एवं सुझाव
- शहरी एवं ग्रामीण समाज में महिलाओं में भूमिका संघर्ष की समस्या
  - भूमिका संघर्ष का महिलाओं पर प्रभाव
  - महिलाओं में भूमिका संघर्ष रोकने के उपाय

19. दहेज प्रथा: महिलाओं की प्रमुख समस्या

- महिलाओं की एक प्रमुख समस्या के रूप में दहेज प्रथा
  - दहेज प्रथा के कारण
  - दहेज प्रथा के दुष्परिणाम
  - दहेज प्रथा के उन्मूलन हेतु किए गए उपाय
  - मूल्यांकन एवं सुझाव

20. भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा

- महिलाओं के प्रति हिंसा : परिचय
- बलात्कार, यौन शोषण और दुर्व्यवहार
- जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट एवं सिफारिशें
- कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न
  - यौन सुरक्षा का औचित्य
  - कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश
  - यौन उत्पीड़न (रोकथाम, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013
- पारिवारिक उत्पीड़न और दहेज हत्या
- घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005
- वेश्यावृत्ति तथा अनैतिक व्यापार
- अश्लील साहित्य
  - महिला अशिष्ट रुपण (प्रतिषेध) अधिनियम
- कन्या भ्रूण हत्या
  - पीसी एण्ड पीएनडीटी एक्ट-1994
- भारत में तेजाब हमला
- संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी (UNHCR) द्वारा शरणार्थी महिलाओं के लिए पहल
- लैंगिक समानता को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय संगठन 'यूएन वीमेन'
- संयुक्त राष्ट्र द्वारा महिला हिंसा विरोध घोषणा-पत्र

21. भारत में वेश्यावृत्ति

- भारत में वेश्यावृत्ति की समस्या
  - भारत में वेश्यावृत्ति का स्वरूप
  - वेश्यावृत्ति का भारतीय समाज पर प्रभाव
  - वेश्यावृत्ति का कारण
  - वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए किए गए उपाय
  - मूल्यांकन एवं सुझाव
- महिलाओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम-1956
- भारत में वेश्यावृत्ति : एक सर्वेक्षण

22. वैश्वीकरण एवं महिला स्थिति में परिवर्तन

- वैश्वीकरण का महिलाओं पर सकारात्मक प्रभाव
- वैश्वीकरण का महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव

23. भारत में महिला संगठन एवं महिला आंदोलन

- भारत में महिला आंदोलन : स्वरूप
  - प्रथम काल (1930 -1932 तक)
  - द्वितीय काल (1947-1970)
  - तृतीय काल (1970-1985 तक)
  - चतुर्थ काल (1985 से आगे)
- भारत में महिला आंदोलन के कारण

24. भारत में कमजोर वर्ग: महिलाएँ

- भारत में अतिसंवेदनशील वर्ग के रूप में महिलाएँ
- विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं का सीमान्तीकरण
  - आर्थिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण
  - राजनीतिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण
  - सामाजिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण

- महिलाओं के सीमान्तीकरण से जुड़ी समस्याएँ
- महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु संवैधानिक, कानूनी, संस्थागत, योजनागत एवं अन्य प्रयास
  - संवैधानिक प्रयास
  - कानूनी प्रयास
  - विभिन्न आयोग एवं समितियाँ
  - महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु नीतियाँ, योजनाओं एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों के द्वारा किए गए प्रयास

25. भारत में शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण

- शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण
  - स्वतंत्रता पूर्व महिला शिक्षा हेतु किये गये प्रयास
  - स्वतंत्र भारत में महिला शिक्षा हेतु किए गए प्रयास
  - मूल्यांकन एवं सुझाव
- महिलाओं के शैक्षिक उत्थान हेतु कार्यक्रम/योजनाएँ

26. भारत में आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण

- आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण
- भारत में आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण : समसामयिक मुद्दे एवं आंकड़े
  - महिला आरक्षण विधेयक
  - संसद में आरक्षण से महिलाओं पर प्रभाव

27. भारत में पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण

- पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण
- भारत में पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण: समसामयिक मुद्दे एवं आंकड़े

28. समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण

- समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण
  - समान नागरिक संहिता की आवश्यकता
  - निजी कानूनों का महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव
  - समान नागरिक संहिता न बन पाने के कारण
  - समान नागरिक संहिता को सुनिश्चित करने के लिए सुझाव
- लिंग संबंधी मुद्दों पर स्वामीनाथन समिति की संस्तुतियाँ

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

1 भारतीय समाज : पारिभाषिक शब्दावली (Indian Society : Terminology)

मनुष्य (Mortal)

एक विवेकशील एवं सृजनशील प्राणी जिसमें दो पैरों पर खड़ा होने और हाथों की विशिष्ट बनावट के कारण संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माण की क्षमता होती है।

समाज (Society)

सामान्यत: समाज को व्यक्तियों का एक ऐसा समूह माना जाता है, जिनकी एक साझा संस्कृति होती है, इस समूह के व्यक्ति एक निश्चित क्षेत्र में रहते हैं और एक अलग संगठित इकाई के रूप में अपने आपको कुछ बंधनों में बँधा हुआ अनुभव करते हैं। कुछ समाजशास्त्री समाज को व्यक्तियों का समूह या कोई संकलन नहीं मानते हैं, वे इसे सामाजिक संबंधों की एक ऐसी अमूर्त व्यवस्था मानते हैं जिसमें हम रहते और जीते हैं।

सामाजिक मूल्य (Social Value)

मूल्य वे सांस्कृतिक अथवा व्यक्तिगत धारणाएँ व आदर्श हैं जिनके द्वारा वस्तुओं और घटनाओं की एक-दूसरे के साथ तुलना की जाती है। ये वे कसौटियाँ और व्यवहार के पैमाने हैं जिनके आधार पर अच्छे-बुरे, वांछित-अवांछित, सही-गलत, करणीय और अकरणीय का निर्णय दिया जाता है, जैसे-न्याय, स्वतंत्रता, देश भक्ति, अहिंसा, ईमानदारी सच्चाई आदि।

सामाजिक मानदंड (Social Standard)

समाज के समाजोनुमोदित तरीकों अथवा नियमाचारों को सामाजिक मानदंड कहते हैं। किसी विशिष्ट सामाजिक स्थिति में व्यक्ति द्वारा किस प्रकार का व्यवहार उपयुक्त होगा यह सामाजिक मानदंडों द्वारा निर्धारित होता है।

संस्कृति (Culture)

संस्कृति उन सभी व्यवहार प्रतिमानों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला एक सामूहिक शब्द है जो सामाजिक रूप से अर्जित तथा सामाजिक रूप से हस्तांतरित किए जाते हैं। संस्कृति संचरण औपचारिक अथवा अनौपचारिक सीखने अथवा प्रशिक्षण दोनों प्रक्रियाओं द्वारा होता है अर्थात् संस्कृति हमारे रहन-सहन तथा सोचने समझने की शैली में हमारे प्रतिदिन की बातचीत में, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद में हमारे स्वभाव की अभिव्यक्ति है।

सभ्यता (Civilization)

संस्कृति का वह पक्ष जो भौतिक वस्तुओं अथवा शिल्प तथ्यों या ऐसी वस्तुओं से बना होता है, जिन्हें अभौतिक संस्कृति कोई अर्थ अथवा महत्त्व प्रदान करती है, सभ्यता कहलाती है। मानव ने अपनी सुख-सुविधा और प्रकृति से अपनी आत्मरक्षा करने के लिए जिन वस्तुओं का सृजन किया है, वे सभी सभ्यता के भाग हैं, जैसे- मकान, अस्त्र-शस्त्र वस्त्र, आभूषण, कल-कारखाने आदि।

परंपरा (Tradition)

परंपरा, परिपाटियों का एक पुंज है, जो कुछ व्यवहार संबंधी मानदंडों और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाए जाने या संपन्न किए जाने पर बल देते हैं कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। बहुधा इन परंपराओं के साथ व्यापक रूप से स्वीकृत कर्मकाण्ड या प्रतीकात्मक व्यवहार के अन्य स्वरूप जुड़े होते हैं। परंपरा में हस्तान्तरण या संचरण की प्रक्रिया निहित होती है, जिसके द्वारा एक समाज अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखता है।

आधुनिकता (Modernity)

बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने समझने और व्यवहार करने के ऐसे तौर-तरीकों को सामान्यत: आधुनिकता कहा जाता है जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढालने का भाव निहित होता है। आधुनिकता की कई विशेषताएँ बताई गई हैं, जैसे- परानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, अमूर्तिकरण, भविष्योन्मुखता, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, धर्मनिरपेक्षता, वैयक्तिकता, मुक्ति, उन्नत एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी आदि आधुनिकता के प्रमुख लक्षण हैं। आधुनिकता बुद्धिवादी बनने, अंधविश्वासों से बाहर निकलने, नैतिकता में उदारता बरतने की एक प्रक्रिया है।

पारंपरिक समाज (Traditional Society)

पारंपरिक समाज अपेक्षाकृत धीमी गति से परिवर्तित होने वाला एक ऐसा समाज होता है जिसमें सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण अधिकांशत: जन्म, नातेदारी, आयु, जाति-प्रजाति के आधार पर होता

है। ऐसे समाज में मूल्यों की एक अधिक समरूप संरचना देखने को मिलती है जिसमें विशेषीकरण कम से कम होता है, सामान्यत: सामाजिक ढाँचा सत्तावादी होता है और अधिकांशत: ऐसे समाज भूमिगत कुलीनतंत्र वाली व्यवस्था लिए होते हैं। पारंपरिक समाज के व्यक्ति पारलौकिक विचार एवं भाग्यवादी मूल्य-व्यवस्था, रूढ़िगत धार्मिक आस्था और विश्वास, जिसमें तार्किकता का अभाव होता है, से निर्देशित होते हैं।

आधुनिकीकरण (Modernisation)

आधुनिकीकरण राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास की एक ऐसी मिली-जुली पारस्परिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथा समकालीन अविकसित समाज अपने आपको विकसित करने में संलग्न रहते हैं। जहाँ कहीं, जब कभी और जिस किसी संदर्भ में इसकी उत्पत्ति हुई, इसकी मूल आत्मा तार्किकता, वैज्ञानिक भावना तथा परिष्कृत तकनीक से जुड़ी रही है। परिवर्तन की एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप में आधुनिकीकरण एक विशिष्ट वांछित प्रकार की तकनीक तथा उससे संबंधित सामाजिक संरचना, मूल्य-व्यवस्था, प्रेरणाओं तथा आदर्श-नियमाचारों का एक पुंज है, जो पारंपरिकता से भिन्न होता है।

पश्चिमीकरण (Westernization)

पाश्चात्य संस्कृति के संघात के द्वारा उत्पन्न परिवर्तन की सामाजिक प्रक्रिया (संपूर्ण जीवन शैली एवं विचार व्यवस्था) को पश्चिमीकरण की संज्ञा दी गई है। भारत में हो रहे सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में एम.एन. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग ब्रिटिश राज्य के 150 वर्षों के शासन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज व संस्कृति में उत्पन्न हुए परिवर्तनों के लिए किया है। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण शब्दों को कई बार पर्यायवाची के रूप में एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग कर लिया जाता है। किंतु तार्किक दृष्टि से यह ठीक नहीं है। आधुनिकीकरण की अवधारणा पश्चिमीकरण से अधिक व्यापक है। इसमें सभी गैर पश्चिमी देशों या पश्चिमी देशों के द्वारा लाए गए परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है।

औद्योगिक समाज (Industrial Society)

अति सरल अर्थ में, औद्योगिक समाज से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है, जिसमें उत्पादन की विधि के रूप में शक्ति संचालित मशीनों का प्रयोग किया जाता है और जिसमें उद्योगवाद की सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। इस प्रकार के समाज की प्रमुख विशेषताएँ यंत्रीकरण श्रम-विभाजन, विशेषीकरण तथा इनके साथ जुड़े हुए कुछ अन्य परिवर्तन हैं जिनमें प्रमुखत: संचार के साधनों तथा परिवहन के उन्नत रूपों का प्रयोग, बढ़ता हुआ शहरीकरण, वृहत बाजार प्रणाली, प्रव्रजन, उपभोग की आदतों में परिवर्द्धन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उद्योगवाद ने इस प्रकार के सामाजिक जीवन को विकसित किया है जिसमें अनजानपन, निर्वैयक्तिकता, प्राथमिक संबंधों तथा प्राथमिक नियंत्रण प्रणाली का ह्रास, द्वितीयक समूहों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई भूमिका आधुनिक औद्योगिक समाज का पर्याय बनते जा रहे हैं।

उत्तर औद्योगिक समाज/उत्तर उद्योगवाद (Past Industrial Society)

उत्तर औद्योगिक समाज या उत्तर उद्योगवाद एक ऐसा विचार है जिसका प्रतिपादन उन व्यक्तियों द्वारा किया गया है जो यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया हमें औद्योगिक समाज के परे एक ऐसे समाज की ओर ले जा रही है जो भौतिक वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा सूचनाओं के उत्पादन पर आधारित है। आज जो परिवर्तन हो रहा है वह एक नए समाज की ओर संक्रमण का संकेत देता है। यह नया समाज अब उद्योगवाद पर आधारित नहीं है। इस नई व्यवस्था के लिए कई शब्दों यथा सूचना समाज, सेवा समाज या ज्ञान समाज का प्रयोग किया गया है। कुछेक विद्वानों का मत है कि हम औद्योगिक विकास के पुराने रूपों से परे बढ़ रहे हैं, अत: इसके लिए 'उत्तरकालीन' (पोस्ट) सर्वाधिक उपयुक्त शब्द है। इसी आधार पर उत्तर औद्योगिक समाज, उत्तर आधुनिक समाज और उत्तर अभावग्रस्त (scarcity) समाज जैसे संबोधनों का प्रयोग हुआ है।

कृषिक/कृषिहर समाज (Forming Society)

ऐसा समाज जिसके व्यक्तियों के जीविकोपार्जन का प्रमुख धंधा कृषि या कृषि पर केन्द्रित अन्य धंधे होते हैं, उसे कृषिहर समाज कहा जाता है। कृषिहर समाज निश्चित तौर पर आखेटक-संग्राहक समाज और बागवानीय समाज से भिन्न होते हैं। जहाँ आखेटक-संग्राहक समाज में किसी प्रकार का उत्पादन नहीं किया जाता, वहाँ बागवानीय समाजों में भोज्य सामग्री का उत्पादन बड़े-बड़े खेतों की अपेक्षा छोटे-छोटे बाग-बगीचों में किया जाता है।

धर्मनिरपेक्ष समाज (Secular Society)

ऐसा समाज जिसमें उपयोगितावादी तथा तर्क संगत मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है तथा जो परिवर्तन तथा नवाचारों को प्रश्रय देता है, लौकिक अथवा धर्मनिरपेक्ष समाज कहलाता है। इस प्रकार के समाज में धर्म के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जाता है। अधि-दैविक मूल्यों तथा परंपरावाद एवं रूढ़िवाद को हेय दृष्टि से देखा जाता है तथा तर्क एवं वैज्ञानिक दृष्टि को महत्त्व प्रदान किया जाता है।

सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification)

किसी सामाजिक व्यवस्था में प्रतिष्ठा, प्रभाव, शक्ति, सम्पत्ति तथा सुविधाओं आदि की भिन्नता के आधार पर प्रस्थितिओं एवं भूमिकाओं की एक अपेक्षाकृत स्थाई श्रेणीबद्धता को सामाजिक स्तरीकरण कहते हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक विभेदीकरण की एक व्यवस्था है, जिसमें सामाजिक पदों की ऊँच-नीच पर आधारित श्रेणीबद्धता होती है। इन सामाजिक पदों के धारक सामजिक महत्त्व की दृष्टि से एक-दूसरे से उच्चता, समानता अथवा निम्नता का व्यवहार करते हैं। इसका प्रमुख तत्व 'श्रेणीबद्ध संस्तरण' है। यह संस्तरण असमानता या विषमता को जन्म देता है। जाति-व्यवस्था, वर्ग-व्यवस्था तथा सम्पत्ति व्यवस्था, दास प्रथा सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख रूप हैं।

जाति (Caste)

जाति समान पारम्परिक (आनुवंशिक) पेशे वाला एक ऐसा अन्तर्विवाही समूह है जिसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है तथा जिसके सदस्य सामाजिक व्यवहार, खान-पान सामाजिक धार्मिक संस्कार आदि के मामलों में कुछ निश्चित प्रतिबंधों का पालन करते हैं। जाति भारतीय हिन्दुओं के संपूर्ण जीवन को नियमित एवं प्रभावित करती है। इसका उद्गम चातुर्वर्ण्य विभाजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) अर्थात् वर्ण-व्यवस्था ही रहा है। स्वतंत्रता के बाद (सन् 1947) भारतीय सरकार ने संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों द्वारा इस संस्था को समाप्त करने का प्रयास किया है, किन्तु प्रजातंत्रात्मक राजनीति ने इस संस्था को नष्ट करने के स्थान पर अधिक मजबूत बना दिया।

वर्ग (Category)

एक वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जिनकी किसी समाज में समान आर्थिक स्थिति होती है। मार्क्सवादी धारणा के अनुसार वर्ग ऐसे लोगों का एक समूह है, जिनकी उत्पादन की प्रणाली के आधार पर समान प्रस्थिति होती है और जो राजनीतिक शक्ति-संरचना के साथ साझे रूप में जुड़े होते हैं। वर्ग-व्यवस्था आधुनिक औद्योगिक समाजों (खुले समाज) की एक विशेषता है, जिसका आधार अर्जित प्रस्थिति है। यह व्यक्तिगत उपलब्धि पर निर्भर करती है। इस व्यवस्था में शीर्ष गतिशीलता संभव है।

सामाजिक गतिशीलता (Social mobility)

किसी समाज की सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में सामान्यत: व्यक्तियों और कभी-कभी किसी संपूर्ण समूह की भिन्न पद प्रस्थितियों के बीच होने वाले संक्रमण/परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता कहते हैं। अत्यंत साधारण अर्थों में आय के बढ़ने या घटने के कारण किसी व्यक्ति का एक वर्ग से दूसरे वर्ग में प्रवेश की स्थिति सामाजिक गतिशीलता को इंगित करती है। सामाजिक गतिशीलता सामाजिक जगत् में पद प्रस्थिति या प्रस्थिति संस्तरण में होने वाले परिवर्तनों का संकेत देती है। यह जरूरी नहीं है कि इस प्रकार के परिवर्तनों से संपूर्ण संस्तरण व्यवस्था में ही कोई संरचनात्मक परिवर्तन होता है।

नातेदारी (Relation)

सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त ऐसे संबंधों को नातेदारी या स्वजनता कहा जाता है, जो रक्त, विवाह अथवा दत्तकता पर आधारित होते हैं। नातेदारी व्यवस्थाएँ माता-पिता और संतानों के बीच, सहोदरों (भाई-बहनों) के बीच तथा वैवाहिक दम्पतियों के बीच जैविकीय संबंधों के प्रतिरूप के अनुसार व्यक्तियों और समूहों के बीच संबंध स्थापित करते हैं।

सभी समाजों में परिवार और नातेदारी समूहों को परिभाषित करने तथा इन संबंधों को किस प्रकार संगठित किया जाएगा, इसके बारे में सामान्य मानदंड होते हैं। कौन व्यक्ति साथ-साथ रह सकते हैं, समूह का मुखिया कौन है, कौन किसके साथ विवाह कर सकता है, जीवन साथी का चुनाव कैसे होता है, परिवार और नातेदारी समूह में कौन से संबंधी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और बालकों का पालन पोषण कैसे और किसके द्वारा किया जाएगा आदि सभी विषयों के बारे में मानदंड होते हैं। इन मानदंडों के बारे में अलग-अलग समाजों में काफी भिन्नता है, फिर भी कुछ ऐसे सामान्य मानदंड होते हैं जो परिवार के सदस्यों की प्रस्थितियों और भूमिकाओं का निर्धारण करते हैं।

परिवार (Family)

परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो विवाह, रक्त अथवा दत्तक बंधनों से बंधा होता है। इसके द्वारा एक गृहस्थी की रचना होती है। इसके सदस्य पति-पत्नी माता-पिता भाई-बहन की सामाजिक भूमिकाओं में एक दूसरे से अंतर्क्रिया तथा अंतर्सम्प्रेषण करते हुए एक सामान्य संस्कृति की रचना करते हैं। विस्तृत अर्थों में परिवार एक ऐसा समूह है जिसमें दत्तक व्यक्तियों सहित कुछ वैवाहिक एवं रक्त संबंधी सम्मिलित होते हैं तथा जिसे एक सामाजिक इकाई के रूप में मान्यता प्राप्त होती है।

विवाह (Marriage)

पारंपरिक रूप से, विवाह दो या दो से अधिक विषमलिंगियों के बीच समाजोनुमोदित, औपचारिक तथा अपेक्षाकृत स्थाई लैंगिक संबंधों की एक व्यवस्था एवं नियमाचारों का एक पुंज है, जो पारिवारिक

जीवन के लिए आवश्यक पारस्परिक दायित्वों एवं अधिकारों द्वारा इन्हें एक सूत्र में बांधता है। जैवकीय दृष्टि से विवाह की संस्था का उद्भव मानव की प्रजनन तथा बालकों के लालन-पालन की मूलभूत आवश्यकताओं को लेकर हुआ प्रतीत होता है। वास्तव में संभोग (सेक्स) तथा पितृत्व दोनों का संयोग मानवीय विवाह का मूलाधार रहा है।

आर्थिक व्यवस्था (Economic System)

भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण की व्यवस्था को आर्थिक व्यवस्था कहा जाता है। आर्थिक व्यवस्था के उद्विकासक्रम को निम्न रूप में देखा जा सकता है:-

1. खाद्य संकलन एवं शिकारी अर्थव्यवस्था
2. पशुपालन अर्थव्यवस्था
3. कृषि अर्थव्यवस्था
4. औद्योगिक अर्थव्यवस्था

शक्ति (Power)

मानव पर प्रभुत्व करने, भयभीत करने तथा नियंत्रित करने, आज्ञा पालन करवाने, उनकी स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप करने तथा उनके व्यहार को एक विशिष्ट दिशा में मोड़ने के लिए बाध्य करने की योग्यता अथवा सत्ता को शक्ति कहते हैं। शक्ति स्तरीकरण (स्ट्रैटिफिकेशन) की एक मूलभूत अवधारणा है, जिसके वर्ग, प्रस्थिति और दल तीन पृथक (कभी कभी संबंधित) आयाम हैं। शक्ति एक व्यक्ति की अपनी इच्छाओं की पूर्ति की क्षमता है, चाहे दूसरे व्यक्ति इसका विरोध करते हों।

सत्ता (Existence/Power)

दूसरे व्यक्यिों के व्यवहारों को व्यवस्थित (नियंत्रित) करने तथा उनके संबंध में निर्णय लेने के प्रस्थापित अधिकार को या शक्ति के वैधतायुक्त प्रयोग को सत्ता कहते हैं। यह शक्ति के प्रयोग के प्रमुख रूपों में से एक है, जिसमें अनेक व्यक्तिगत मानवीय कर्ताओं की क्रियाओं को आदेशात्मक तरीके से निर्देशित किया जाता है ताकि किसी विशिष्ट लक्ष्य अथवा सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। मैक्स वेबर ने सत्ता की विवेचना शक्ति के रूप में की है और उन्होंने सत्ता के तीन रूपों की चर्चा की है- पारस्परिक सत्ता, तार्किक कानूनी सत्ता और करिश्माई सत्ता।

राज्य (State)

समाज का वह पक्ष अभिकरण अथवा संस्था, राज्य के नाम से जानी जाती है जिसे किसी निर्दिष्ट भू-क्षेत्र पर शारीरिक शक्ति के प्रयोग का वैधानिक एकाधिकार प्राप्त होता है। राज्य सरकार तथा देश में अंतर है। देश व्यक्तियों का एक स्वायत्तता प्राप्त राजनीतिक संगठन होता है। सरकार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसे राज्य के प्रयोजनों को पूरा करने का दायित्व सौंपा गया होता है तथा इन दायित्वों को निभाने के लिए उसे सभी अधिकार प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत राज्य के अंतर्गत शक्ति प्रयोग संबंधी सभी संस्थाएँ, परिपाटियाँ, परंपराएँ तथा राजनीतिक साधन जैसे संविधान एवं चार्टर आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

सरकार (Government)

कानून नामक संस्थात्मक क्रिया को संपादित करने वाली समिति को सरकार की संज्ञा दी जाती है। इस समिति की रचना पूरे समाज या इसके किन्हीं प्रतिनिधियों द्वारा होती है जिसका कार्य कानून बनाना, कानून लागू करना तथा न्याय की व्यवस्था करना होता है।

राजतंत्र (Monarchy)

राजनैतिक व्यवस्था का वह रूप जहाँ राज्य की शक्ति किसी व्यक्ति विशेष के पास केन्द्रित होती है। यह शक्ति उसको विरासत में प्राप्त होती है तथा वह अपनी अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है और राजा द्वारा इस शक्ति के उपभोग करने के अधिकार को धर्म के आधार पर वैध ठहराया जाता है।

लोकतंत्र (Democracy)

प्रजातंत्र या लोकतंत्र एक दर्शन, आदर्शों का एक पुंज या एक सामाजिक- राजनीतिक प्रणाली है जो कि समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी के नाते अपने व्यक्तित्व के आधार पर समुदाय की गतिविधियों में भाग लेने तथा समानुपातिक रूप से उन पर नियंत्रण स्थापित करने पर बल देती है। एक शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र में सत्ता का केंद्रीकरण जनता के हाथों में होता है। शाब्दिक दृष्टि से भी प्रजातंत्र का अर्थ जनता की सत्ता है। जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा समाज पर शासन-प्रशासन करती है। लोकतंत्र एक ऐसे शासन का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें अब्राहम लिंकन के अनुसार सरकार जनता की जनता के द्वारा, जनता के लिए होती है।

धर्म (Religion)

टायलर के अनुसार, धर्म देवी-देवताओं तथा अन्य अधि मानवीय प्राणियों जैसे पूर्वज अथवा आत्माओं के प्रति विश्वास तथा उनसे संबंधित कर्मकाण्ड की एक व्यवस्था है। दुर्खीम के अनुसार धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वास तथा कर्मकाण्डों की एक संगठित व्यवस्था है, जो उन व्यक्तियों को एक एकल सामाजिक नैतिक

समुदाय में बाँधता है जो इसका अनुसरण करते हैं। सामान्य रूप में, धर्म मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अज्ञेय पक्षों जैसे जीवन, मृत्यु और उसके अस्तित्व के रहस्यों को जानने तथा उनके साथ व्यवहार करने का एक तरीका है। यही नहीं, धर्म नैतिक निर्णयों को लेने की प्रक्रिया में उत्पन्न कठिन असमंजस की स्थिति में उसकी सहायता भी करता है।

पंथ/संप्रदाय (Sect)

एक संप्रदाय धार्मिक रूप से सक्रिय व्यक्तियों का एक सामाजिक समूह होता है जिनके विश्वास विशिष्ट रूप से रहस्यता, व्यक्तिवादी एवं समन्वयात्मक होते हैं। इसकी सदस्यता ऐच्छिक होती है तथा इसका कोई भी औपचारिक संगठन नहीं होता है।

विज्ञान (Science)

मानवीय ज्ञान संबंधी समस्याओं का एक दृष्टिकोण विज्ञान के नाम से जाना जाता है जिसके द्वारा आनुभविक प्रेक्षण (इंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव) के आधार पर असीमित वर्ग की घटनाओं के संबंध में सामान्य सिद्धांत खोजने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान से तात्पर्य ऐसे व्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ ज्ञान से है जिसका सत्यापन इंद्रियों के माध्यम से किया जाना संभव है। विज्ञान को जब एक पद्धति के रूप में परिभाषित किया जाता है तब विज्ञान का अर्थ ज्ञान प्राप्ति की एक व्यवस्थित पद्धति से होता है।

सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

किसी समाज की सामाजिक संरचना (सामाजिक संबंधों का तानाबाना) अथवा सामाजिक संगठन संस्थानों और सामाजिक भूमिकाओं अथवा समाज के अन्य उपादानों में समय अंतराल के साथ होने वाले बदलाव और परिष्करण की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। यह अवधारणा किसी समाज के किन्हीं लघु समूहों में हुए छुट-पुट बदलाव की अपेक्षा वृहद् सामाजिक प्रणाली या संपूर्ण संबंधों की व्यवस्था में आए व्यापक बदलाव को इंगित करती है।

विकास (Development)

विकास परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक देश के अधिकाधिक नागरिक उच्च भौतिक रहन-सहन के स्तर, स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन प्राप्त करने के साथ-साथ अधिकाधिक मात्रा में शिक्षित होने का प्रयास करते हैं। व्यापक अर्थों में, वांछित लक्ष्यों की ओर बढ़ने का नाम ही विकास है, किंतु इसमें प्रयुक्त साधनों और यंत्रों का भी उतना ही महत्त्व है, जितना लक्ष्य का। सार रूप में किसी समाज की विद्यमान दशा में कुछ सकारात्मक प्रगति का नाम विकास है। विकास किसे कहा जाए, इसकी धारणा एक समाज से दूसरे समाज में बदलती रहती है। मोटे रूप में विकास के तीन प्रमुख प्रतिरूपों का प्रयोग किया गया है- 1. पूँजीवादी या उदारवादी मॉडल, 2. समाजवादी या मार्क्सवादी मॉडल तथा 3. मिश्रित मॉडल।

विचारधारा (Ideology)

विश्व, समाज तथा मानव के प्रति देखने का दृष्टिकोण तथा विचारों की एक संपूर्ण व्यवस्था जिसकी प्रामाणिकता का परीक्षण प्रत्यक्षात्मक विज्ञानों के दायरे से परे होता है विचारधारा कहलाती है। विचारधाराएँ विचारों, अनुमानों और कल्पनाओं का एक समूह होती हैं जो सही हो भी सकती हैं और नहीं भी। ये सामाजिक घटनाओं को सरल बनाने और उन्हें समझने में हमारी सहायता करती हैं। फासीवाद, साम्यवाद और पूँजीवाद बीसवीं सदी की तीन प्रमुख विचारधाराएँ रही हैं।

मानववाद (Humanism)

मानव की गरिमा की पुनर्स्थापना, मानवीय प्रतिष्ठा एवं मानवीय हित के सर्वतोमुखी विकास तथा सामाजिक जीवन हेतु अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की धारणा के आधार पर विकसित विचारधारा को मानववाद का नाम दिया गया है। इस विचारधारा का जन्म मूलतः शोषण एवं सामाजिक बुराई के विरोध स्वरूप हुआ। मानववादी दृष्टिकोण मानव को मानव के नाते समुचित महत्त्व देने पर बल देता है। 'सभी मानव समान हैं', इस विचारधारा का मूलमंत्र है।

उदारवाद (Liberalism)

एक विचारधारा जो व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा कल्याण के महत्त्व में विश्वास करती है तथा जो इस बात पर बल देती है कि सामाजिक प्रगति और जीवन में गुणात्मक सुधार सामाजिक संगठन में परिवर्तन तथा नवाचारों द्वारा ही संभव है। इस विचारधारा ने प्रजातंत्र के विकास सार्वभौमिक मताधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, दास प्रथा की समाप्ति तथा नागरिक अधिकारों में वृद्धि का समर्थन किया। यह विचारधारा सरकार अथवा समृद्ध वर्ग द्वारा व्यक्तियों पर प्रभुत्व या किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप का प्रतिकार करती है।

उपयोगितावाद (Utilitarianism)

एक नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांत जो इस बात पर बल देता है कि समस्त मानवीय आचरण तथा नियमों की उपयुक्तता की जाँच का एक मात्र उद्देश्य अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख होना चाहिए। यह सिद्धांत बेंथम तथा जॉन स्टूअर्ट मिल के नाम के साथ जुड़ा हुआ है, जिनकी दृष्टि में दुःख की अपेक्षा सुख ही जीवन का मूलमंत्र है। उपयोगिता ही अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख

है। उपयोगिता को बढ़ाना ही मानव प्राणी के जीवन का यथोचित लक्ष्य है। मानवीय जीवन का यह दर्शनिक उपागम तार्किक सोच वाले व्यक्ति की महत्ता पर बल देता है। इस उपागम द्वारा यह माना जाता है कि मानव जीवन के अस्तित्व का मूलमंत्र बुद्धिसंगत स्वहित है।

समूहवाद/सामूहिकतावाद (Collectivism)

एक ऐसी विचारधारा जो व्यक्तिगत हित के बजाय समाज या समूह के हितों की पूर्ति पर बल देती है।

व्यक्तिवाद (Individualism)

यह एक ऐसा सिद्धांत है जो साधन अथवा साध्य या स्वार्थपरता अथवा परार्थ के रूप में अकेले व्यक्ति की महत्ता अथवा श्रेष्ठता पर बल देता है। राजनीतिक सिद्धांत के रूप में, व्यक्तिवाद, व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा तथा हितों की हामी एक ऐसा दृष्टिकोण है जो इन्हीं के आधार पर न्याय, राजनीतिक दायित्व तथा जनहितों की तुष्टि की विवेचना करता है।

आदर्शवाद (Idealism)

दार्शनिक विचारधारा का एक दृष्टिकोण जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड की व्याख्या पदार्थ अथवा भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा विचारों के आधार पर की जाती है। आदर्शवाद के अनुसार यह माना जाता है कि यथार्थता मुख्यत: इस बात में निहित है कि व्यक्ति उसके बारे में सोच-विचार करते हैं और यह सब कुछ मानवीय विचारों और सिद्धांतों पर निर्भर करता है। आदर्शवाद को मार्क्स के भौतिकवाद का विरोधी विचार माना जाता है, जिसके अनुसार यह माना गया है कि बाह्य संसार मानव के मस्तिष्क की उपज है।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

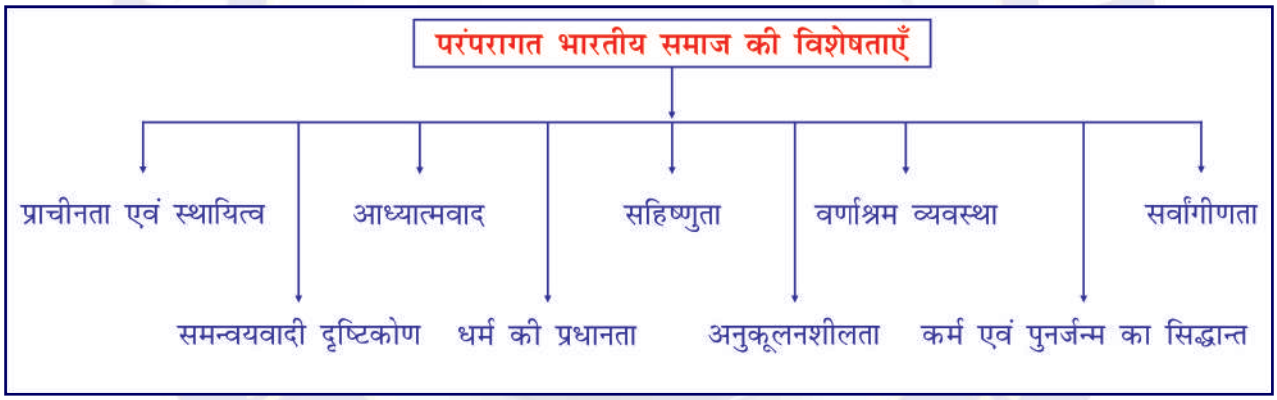
2 भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ (Basic Features of Indian Society)

अति प्राचीन एवं विशाल भारतीय समाज अनेक धर्मों और जातियों से मिलकर बना हुआ है। लोगों की प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, रहन-सहन के तरीकों, भोजन एवं वस्त्र आदि में यहाँ काफी भिन्नता देखने को मिलती है। यहाँ के ग्रामीण और नगरीय जीवन में भी स्पष्ट अन्तर दिखलाई पड़ता है। यहाँ एक ओर शिकारी एवं घुमंतू जीवन व्यतीत करने वाली आदिम जनजातियाँ पाई जाती हैं, तो दूसरी ओर नगरीय समुदायों में ऐसे लोग हैं जो नवीनतम यंत्रों के माध्यम से अपनी आजीविका कमाते हैं। भारतीय समाज में हजारों वर्षों से प्रजातीय और सांस्कृतिक सम्मिश्रण भी होता रहा है जिसके कारण भारतीय समाज में विभिन्न प्रजातीय तत्त्व मिश्रित रूप में पाए जाते हैं जो मिलकर एक बहुलवादी समाज की रचना करते हैं।

- विभिन्न संस्कृतियों (द्रविड़, आर्य, मुस्लिम, पश्चिमी आदि) व उनके सम्मिश्रण का भारतीय समाज एवं संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा है। परन्तु इस विविधता के बावजूद भारतीय समाज में एक मौलिक एकता भी दिखाई पड़ती है जिसका अनुभव न केवल भारतीय बल्कि विदेशी भी करते हैं।

परंपरागत भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ

विभिन्न कालों में भारतीय समाज की विवेचना के उपरांत परंपरागत भारतीय समाज की निम्न विशेषताओं की चर्चा की जा सकती है-



1. ***प्राचीनता एवं स्थायित्व***- भारत की संस्कृति एवं समाज व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों एवं सामाजिक व्यवस्थाओं में से एक है। समय के साथ-साथ मिस्र, सीरिया, यूनान, रोम आदि की प्राचीन संस्कृतियाँ नष्ट हो गईं और उनके अवशेष मात्र ही बचे हैं, किन्तु हजारों वर्ष बीत जाने पर भी भारत की आदि संस्कृति एवं समाज व्यवस्था आज भी जीवित है। आज भी हम भारत में वैदिक धर्म को मानते हैं। पवित्र वैदिक मंत्रों का यज्ञ एवं हवन के समय ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किया जाता है। विवाह वैदिक रीति से होता है। ग्राम-पंचायत, जातिप्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली आज भी विद्यमान है। गीता, बुद्ध और महावीर के उपदेश आज भी इस देश में जीवित और जाग्रत हैं। आध्यात्मवाद, प्रकृति-पूजा, पतिव्रता धर्म, कर्म और पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा और अस्तेय के सिद्धांत की गूँज आज भी इस देश के लोगों को प्रेरित करती है। सदियाँ बीत गई, अनेक परिवर्तन हुए, विदेशी आक्रमण हुए, किंतु भारतीय समाज एवं संस्कृति का दीपक आज भी प्रज्ज्वलित है, उसका अतीत वर्तमान में भी जीवित है।
2. ***समन्वयवादी दृष्टिकोण***- जनजातीय, हिन्दू, शक, हूण, कुषाण, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी संस्कृतियों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति नष्ट नहीं हुई वरन् इससे समन्वय एवं एकता भी स्थापित हुई है। भारतीय समाज एवं संस्कृति में समन्वय की महान शक्ति है, जो निरंतर गतिमान रही है और आज तक विद्यमान है।
3. ***अध्यात्मवाद***- धर्म और आध्यात्मिकता भारतीय समाज एवं संस्कृति की आत्मा है। भारतीय संस्कृति में भौतिक सुख और भोग-लिप्सा को कभी भी जीवन का ध्येय नहीं माना गया। यहाँ आत्मा और ईश्वर के महत्त्व को स्वीकार किया गया है और शारीरिक सुख के स्थान पर मानसिक एवं आध्यात्मिक आनन्द को सर्वोपरि माना गया है। इसमें भोग और त्याग का सुन्दर समन्वय पाया जाता है।

4. ***धर्म की प्रधानता***– भारतीय समाज के जनजीवन पर वेदों, उपनिषदों, पुराण, महाभारत, रामायण, भगवद् गीता, कुरान एवं बाइबिल का अत्यधिक गहरा प्रभाव है। इन महान ग्रन्थों ने यहाँ के लोगों को आशावादिता, आस्तिकता, त्याग, तप, संयम आदि का पाठ पढ़ाया है। भारत के लोग सूर्योदय से सूर्यास्त तक तथा जन्म से मृत्युपर्यन्त अनेक धार्मिक कार्यों की पूर्ति करते हैं।

5. ***सहिष्णुता***– भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक महान् विशेषता इसकी सहिष्णुता है। भारत में सभी धर्मों, जातियों, प्रजातियों एवं संप्रदायों के प्रति उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेमभाव पाया जाता है। हमारे यहाँ समय-समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियों का आगमन हुआ और सभी को फलने-फूलने का अवसर दिया गया। हमारे द्वारा असहिष्णु होकर कभी भी विदेशियों एवं अन्य संस्कृति के लोगों पर बर्बर अत्याचार नहीं किए गए।

6. ***अनुकूलनशीलता***– भारतीय संस्कृति को अमर बनाने में इसकी अनुकूलनशील प्रवृत्ति का महान योगदान है। भारतीय संस्कृति अपने दीर्घ जीवन के लिए समय चक्र और परिस्थितियों के अनुसार सदैव समाज के साथ सामंजस्य करती रही है, जिसके परिणामस्वरूप यह आज तक बनी रही है। भारतीय परिवार, जाति, धर्म एवं संस्थाएँ समय के साथ अपने को परिवर्तित करते रहे हैं।

7. ***वर्णाश्रम व्यवस्था***– प्राचीन भारतीय संस्कृति की उल्लेखनीय विशेषता है-वर्ण एवं आश्रमों की व्यवस्था। समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की रचना की गई। ब्राह्मण समाज, बुद्धि और शिक्षा के प्रतीक हैं तो क्षत्रिय शक्ति के, वैश्य भरण-पोषण एवं अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं तो शूद्र समाज की सेवा करते हैं।

8. ***कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत***– भारतीय संस्कृति में कर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यह माना जाता है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा मिलता है। श्रेष्ठ कर्म करने वाले को ऊँची योनि में जन्म और सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलता है जबकि बुरे कर्म करने वाले को निम्न योनि में जन्म लेना होता है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त द्वारा भारतीयों को सदैव अच्छे कर्म करने की प्रेरणा दी गई है।

9. ***सर्वांगीणता***– भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक विशेषता यह है कि इसका संबंध किसी एक जाति, वर्ण, धर्म, या किसी व्यक्ति विशेष से नहीं होकर समाज के सभी पक्षों से है और इसके निर्माण में राजा, किसान, मजदूर, शिक्षित, शूद्र, ब्राह्मण आदि सभी का योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात सभी सुखी हो।

परंपरागत भारतीय समाज के आधार

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्यों के लक्ष्यों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया जाए और नियमानुसार इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उन्हें उचित प्रेरणा प्रदान की जाए, साथ ही उनके बीच एकीकरण एवं सामंजस्य स्थापित करते हुए सामाजिक व्यवस्था के संतुलन एवं निरंतरता को बनाए रखा जाए।

इस संदर्भ में भारतीय सामाजिक संगठन को भी कई आधारों पर संगठित किया गया है। इन आधारों में धर्म, पुरुषार्थ, कर्म का सिद्धांत, ऋण तथा यज्ञ सर्वाधिक प्रमुख हैं।

धर्म (Religion)

धर्म हिन्दू सामाजिक संगठन का केन्द्रीय आधार है, जिसको परिभाषित करते हुए कहा गया है कि धर्म चारों वर्णों एवं आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार पुरुषार्थों के संबंध में पालन करने योग्य मनुष्य का संपूर्ण कर्तव्य है। अर्थात् हिंदू धर्म को जीवन के कर्तव्य (कर्म) के रूप में देखा गया है तथा वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कुल-धर्म, राज-धर्म, स्व-धर्म आदि के रूप में वर्गीकृत कर व्यक्ति के स्वयं के प्रति और संपूर्ण समाज के प्रति कर्तव्यों को निर्धारित किया गया है और सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को धर्म के साथ सम्बद्ध कर व्यक्ति को समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्देशित किया गया है। इसे निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. भारतीय मान्यता के अनुसार इस विश्व और ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता केवल एक ईश्वर है। मनु के अनुसार इस प्रकार यह संपूर्ण जड़ तथा चेतन जगत् सर्वशक्तिमान परमात्मा की अभिव्यक्ति है और मानव जीवन के लिए धर्म तथा कर्म-क्षेत्र है। इसी संसार में अपने धर्मानुसार आचरण के द्वारा ही जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् 'परम सत्य' की ओर बढ़ा जा सकता है।
2. उत्सव, पर्व और त्यौहार सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं और इन पर भी हमें धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। नवरात्र, दशहरा, नागपंचमी, गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी, तीज, करवाचौथ आदि हिन्दुओं के महत्त्वपूर्ण व्रत हैं और इनमें से प्रत्येक में किसी न किसी देवी-देवता को पूजने का विधान है।
3. भारतीय जीवन के सभी प्रमुख कर्तव्य धर्म आधारित हैं। हिन्दू जीवन दर्शन के अनुसार शास्त्र विहित कर्म ही धर्म हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग आदि सार्वभौम कर्त्तव्य हैं और इन सबका आधार धर्म ही है। जीवन के आधारभूत कर्तव्य-कर्मों में यज्ञ का स्थान महत्त्वपूर्ण है।
4. व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शुद्धि या सुधार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों को ही संस्कार कहते हैं जिसके माध्यम से ही एक व्यक्ति समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सकता है। जीवन पथ के ये सभी संस्कार किसी न किसी रूप में धर्म से संबंधित व धर्म पर आधारित होते हैं।
5. सफल जीवन के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त है और भारत में बच्चे के जीवन में यह विद्यारम्भ भी धार्मिक आधार पर ही

होता है। हिन्दुओं में इस संस्कार के अवसर पर विधिवत पट्टी पूजन किया जाता है। आज भी ग्रामीण समुदायों में कुछ लोग लिखना-पढ़ना इस उद्देश्य से सीखना चाहते हैं कि वे धार्मिक पुस्तकों को पढ़ सकें।

6. भारत में व्यक्ति का पारिवारिक जीवन भी धर्म पर आधारित है। पारिवारिक जीवन में प्रवेश पाने के लिए विवाह अनिवार्य है और हिन्दुओं में तो विवाह स्वयं ही एक धार्मिक संस्कार है। हिन्दुओं में पत्नी को धर्म-पत्नी व पति को पति-देवता कहा जाता है। पत्नी विहीन पुरुष धार्मिक कर्तव्यों को करने का अधिकारी नहीं होता।
7. भारत में आर्थिक जीवन का भी धार्मिक आधार है। हिन्दुओं में लक्ष्मी को धन की देवी माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि धनी या निर्धन होना पूर्णतया इसी देवी माँ की कृपा पर निर्भर करता है। निर्धनता को एक ईश्वरीय अभिशाप माना गया है और धर्म विरुद्ध तरीकों से धन कमाने को पाप माना जाता है।
8. प्राचीन भारत में राजनीतिक जीवन के कर्तव्यों का पालन भी धार्मिक आधार पर होता था। प्रत्येक राजा के दरबार में एक राजपुरोहित या राजगुरु होता था जिसकी आज्ञा का पालन राजा भी करता था। परंपरागत रूप में राजनीतिक जीवन के धार्मिक आधार का एक और प्रमाण 'राजधर्म' की अवधारणा में देखा जा सकता है जो राजा के कर्तव्यों को बताता है। आधुनिक प्रजातंत्रात्मक राज्य तक में जनता के प्रतिनिधि (संसद् तथा विधानसभा के सदस्य) ईश्वर के नाम पर ही अपने पद तथा गोपनीयता की शपथ लेते हैं।
9. भारत में जीवन का अंत हो जाने अर्थात् मृत्यु के बाद भी 'जीवन' (अगर हम उसे जीवन मानें) धर्म पर आधारित है। व्यक्ति के मर जाने पर जो अंतिम संस्कार किया जाता है वह भी धर्म पर ही आधारित होता है। हिन्दुओं में मर रहे व्यक्ति को भगवान का नाम लेने को कहा जाता है, उसकी देह की अस्थियों या जली हुई राख को गंगा अथवा अन्य किसी पवित्र नदी में बहा दिया जाता है, तेरहवीं के दिन हवन आदि किया जाता है।

धर्म : समकालीन संदर्भ

वर्तमान भारतीय समाज में विज्ञान एवं तार्किक विश्व दृष्टि के विकास के कारण निश्चित तौर पर जीवन के अन्य क्षेत्रों (शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि) में धर्म के प्रभाव में कमी आई है। परन्तु, विश्वास और आस्था की एक व्यवस्था के रूप में आज भी इसकी महत्ता बनी हुई है। कावड़ियों, वैष्णो देवी के दर्शनार्थियों एवं कुंभ के मेले में स्नान करने के लिए आने वाले भक्तों की बढ़ती संख्या इस तथ्य को पुष्ट करती है। कर्त्तव्य-कर्म के रूप में भले ही आज धर्म का महत्त्व कम हुआ है परन्तु आज भी अचेतन रूप में नैतिकता के आधार पर भारतीय जनमानस पर इसका प्रभाव कायम है।

पुरुषार्थ

पुरुषार्थ का अर्थ मानव जीवन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से संबंधित है जिसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के रूप में चार पुरुषार्थों को शामिल किया जाता है:-

1. धर्म 2. अर्थ 3. काम 4. मोक्ष इन सभी पुरुषार्थों में धर्म को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके बिना अन्य किसी भी पुरुषार्थ को समुचित रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। एक पुरुषार्थ के रूप में धर्म का तात्पर्य उन सभी कर्तव्यों से है जो लोकहितकारी हैं तथा जिनके द्वारा व्यक्ति को इस जीवन तथा पारलौकिक जीवन में 'अभ्युदय' की प्राप्ति होती है। इस पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए हिन्दू व्यवस्था में सभी व्यक्तियों के अनुकूल कर्तव्य निर्धारित किए गए हैं। वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म एवं विभिन्न स्थितियों में व्यक्ति के भिन्न-भिन्न कर्तव्यों के निर्धारण में भी पुरुषार्थ के रूप में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'अर्थ' दूसरा महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है जिसके बिना वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति नहीं की जा सकती। अर्थ का तात्पर्य उन सभी पदार्थों तथा साधनों से है जिनकी सहायता से व्यक्ति अपने विभिन्न सांसारिक दायित्वों को पूरा करता है। पुरुषार्थ की यह विशेषता है कि इसने व्यक्ति के सामने धर्म और मोक्ष का आदर्श प्रस्तुत करने के बाद भी उसे अन्य व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्यों से पृथक हो जाने की अनुमति नहीं दी। इसी कारण 'अर्थ' को एक पुरुषार्थ का रूप देकर व्यक्ति को उद्यम करने का प्रोत्साहन दिया गया। परन्तु, धन के संचय और आर्थिक समृद्धि की प्रतिस्पर्द्धा से सामाजिक संघर्षों की रक्षा के लिए व्यक्ति को केवल गृहस्थ आश्रम में ही आर्थिक क्रियाएँ करने की अनुमति दी गई। हमारे समाज में 'अर्थ' की प्राप्ति स्वयं में एक लक्ष्य न होकर, लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन मात्र है। इसी आधार पर आर्थिक साधनों को उद्यम से प्राप्त करने का आदेश देकर भी इसे धर्म की धारणा से मिला दिया गया जिससे व्यक्ति ईमानदारी व न्यायोचित ढंग से आर्थिक साधनों को प्राप्त करे तथा सम्पत्ति का उपभोग और उत्पत्ति इस प्रकार हो कि सामान्य कल्याण में वृद्धि हो सके।

पुरुषार्थों के अन्तर्गत 'काम' को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यद्यपि 'काम' को सांसारिक जीवन के आधार के रूप में स्वीकार किया गया लेकिन इसे सबसे निम्न कोटि का पुरुषार्थ माना गया। व्यापक अर्थों में काम का तात्पर्य उन सभी इच्छाओं से ही है जो इन्द्रियों की संतुष्टि से संबंधित हैं और जो मनुष्य को भौतिक सुख की ओर प्रेरित करती है।

काम को एक पुरुषार्थ के रूप में तीन आधारों पर स्वीकार किया गया है। (1) जैविकीय आधार पर विभिन्न इच्छाओं के कारण

व्यक्ति में उत्पन्न तनाव को जैविकीय क्रिया के द्वारा संतुष्ट करना। (2) सामाजिक आधार पर प्रजनन अथवा समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए काम की पूर्ति, (3) धार्मिक आधार पर काम को केवल उसी सीमा तक मान्यता दी गई है जहाँ तक यह व्यक्ति की अति आवश्यक इच्छाओं और इन्द्रियजन्य वासना को शांत करने में सहायक है।

मोक्ष अंतिम और सर्वाधिक प्रमुख पुरुषार्थ है जिसे हिन्दू जीवन का अंतिम उद्देश्य माना जाता है। व्यक्ति जब सात्विक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उस पर पड़ा हुआ माया का आवरण हट जाता है और व्यक्ति स्वयं को माया से भिन्न अनुभव करने लगता है। इस स्थिति में प्रकृति अथवा माया व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर पाती और इस प्रकार व्यक्ति 'कैवल्यता' (बंधनों से पूर्ण छुटकारा) की स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

उपरोक्त चारों पुरुषार्थों में मोक्ष को मानव जीवन के अंतिम एवं सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका संबंध अलौकिक जगत की सत्ता से है अर्थात् जीवन-मरण के चक्र से मुक्त होना, अर्थात् आत्मा का परमात्मा में विलीन होना ही मोक्ष माना गया है। मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग हैं-ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। व्यक्ति जब सभी प्राणियों में समानता का भाव रखता हुआ अपने मन को स्थिर कर लेता है अथवा आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है तब इसे ही मोक्ष का 'ज्ञान मार्ग' कहा जाता है। इसी प्रकार 'भक्ति-मार्ग' वह है जिसमें ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करता हुआ मनुष्य उसके प्रति अपने को पूर्णतया समर्पित कर देता है। कर्म मार्ग के अन्तर्गत मोक्ष प्राप्ति हेतु धर्म के अनुसार अर्थ एवं काम के लक्ष्यों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है।

हिंदू धर्म में मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म-मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया गया है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति बिना अर्थ (धन अर्जन या भौतिक क्रियाकलाप) के संभव नहीं है। हिंदू धर्म में अर्थ के साथ-साथ काम को भी महत्त्व प्रदान करते हुए इसे पुरुषार्थ में शामिल किया गया है ताकि मानव समाज की निरंतरता बनी रहे, परन्तु गलत तरीके से धन अर्जन या काम संबंधी क्रियाओं से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। अर्थ और काम के लक्ष्यों की प्राप्ति धर्म द्वारा बताए गए मार्ग अथवा नियम के अनुसार ही की जानी चाहिए इसलिए हिन्दू समाज ने धर्म, अर्थ और काम के समन्वित रूप को त्रिवर्ग की संज्ञा दी है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

पुरुषार्थ : समकालीन संदर्भ

वर्तमान भारतीय समाज में भौतिक लक्ष्यों के महत्त्व के बढ़ जाने के कारण निश्चित तौर पर इसकी महत्ता कम हो गयी है फिर भी यह अचेतन रूप में आज भी विद्यमान है। आज भी प्रत्येक हिन्दू अपना परलोक सुधारने का प्रयास करता है।अंतिम संस्कार, अस्थियों का गंगा में विसर्जन, पुत्र-प्राप्ति की इच्छा आज भी इसकी निरंतरता को दर्शाते हैं। हिंदू संस्कृति के सारतत्व के रूप में, एक विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में यह आज भी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि नगरों की अपेक्षा गाँवों में इसका प्रभाव अधिक देखने को मिलता है।

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत हिंदू सामाजिक संगठन का प्रमुख आधार है जिसकी मान्यता है कि कर्म केवल भौतिक क्रिया नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत मानसिक, आध्यात्मिक एवं भावनात्मक सभी क्रियाएँ आती हैं (कायिक, वाचिक और मानसिक) और इस कर्म से उत्पन्न शक्ति द्वारा कर्म फल उत्पन्न होता है। कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत इस बात पर भी बल देता है कि अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है, किए गए कर्म का फल नष्ट नहीं होता है और बिना कर्म के फल नहीं मिलता है तथा कर्म का चक्र अनंत है और मनुष्यों को अपने किए गए कर्म का फल भुगतना ही पड़ता है।

इस संदर्भ में तीन प्रकार के कर्मों की चर्चा की गई है:-

1. संचित कर्म (वह कर्म जो इस जीवन में किया जा रहा है)
2. प्रारब्ध कर्म (अतीत का कर्म जिसका फल हम भुगत रहे हैं।)
3. संचयीमान कर्म (वह एकत्रित कर्म जिसका फल हमें भविष्य में भुगतना है।)

इस सिद्धांत की मान्यता है कि आत्मा अमर है तथा पुनर्जन्म होता है और इसका संबंध कर्म-फल से होता है। सद्कर्मों द्वारा व्यक्ति के भाग्य में सुधार संभव है। प्रमुख सद्कर्म-यज्ञ, तप, दान, अध्ययन आदि माने गए हैं।

हिंदू दर्शन में जीवन व्यतीत करने के दो मार्ग बताए गए हैं:-

1. संन्यासी का मार्ग
2. गृहस्थ का मार्ग

इनमें से गृहस्थ के मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है जिसको कर्मयोग के नाम से जाना जाता है।

कर्म और भाग्य

अनेक विद्वानों का विचार है कि कर्म का सिद्धांत ही हिन्दू जीवन में भाग्य का आधार रहा है। महाभारत में धर्म-व्याध ने कहा है कि भाग्य मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है और मनुष्य को बिना किसी प्रतिवाद के भाग्य को स्वीकार करना चाहिए। **मैक्डॉनेल** का कथन है कि ''कर्म और पुनर्जन्म की संयुक्त धारणा के प्रभाव से एक ओर व्यक्ति को इस जन्म को अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल मानकर भाग्य पर सन्तोष करने की प्रेरणा मिली है, जबकि दूसरी ओर इसने व्यक्ति की क्रियाशीलता को शिथिल करके उसे सांसारिक विरक्ति या उदासीनता की ओर उन्मुख किया है।''

इसके विपरीत, **राधाकृष्णन** का कथन है कि, कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति को भाग्य से बाँधता नहीं है बल्कि यह व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में अपने विकास की छूट देता है। कर्म भाग्य पर आधारित नहीं है बल्कि भाग्य कर्म पर आधारित है। इस रूप में भाग्य में स्वयं ही कोई बल नहीं होता बल्कि यह तो व्यक्ति के कर्मों से ही बल प्राप्त करता है और यदि व्यक्ति के कर्म बदल जाए तब भाग्य का प्रभाव अपने आप बदल जाता है।

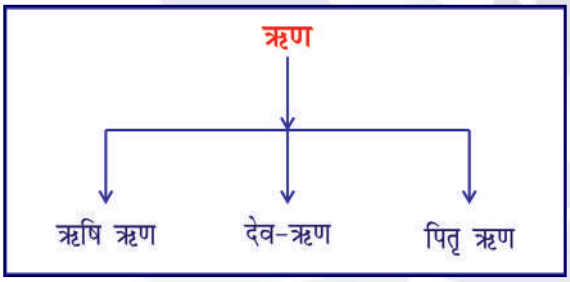
कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत : समकालीन संदर्भ

तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत की वर्तमान में प्रासंगिकता कम हुई है फिर भी यह समाज में अचेतन रूप में कमोबेश आज भी विद्यमान है। आज धार्मिक क्रियाकलापों के कई पक्ष मजबूत हो रहे हैं जिसमें कहीं न कहीं यह अभिप्रेरक के रूप में जरूर विद्यमान है। विशिष्ट भारतीय संस्कृति और व्यक्तित्व के निर्माण में आज भी यह सिद्धांत महत्त्वपूर्ण बना हुआ है और नगरों की तुलना में विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इसकी महत्ता बनी हुई है।

स्पष्ट है कर्म व पुनर्जन्म का सिद्धांत व्यक्ति के स्वधर्म पालन करने, सामाजिक नियंत्रण बनाए रखने एवं सामाजिक संगठन को स्थिरता प्रदान करने के लिए प्रमुख नैतिक आधार प्रदान करता है।

ऋण तथा यज्ञ का सिद्धांत

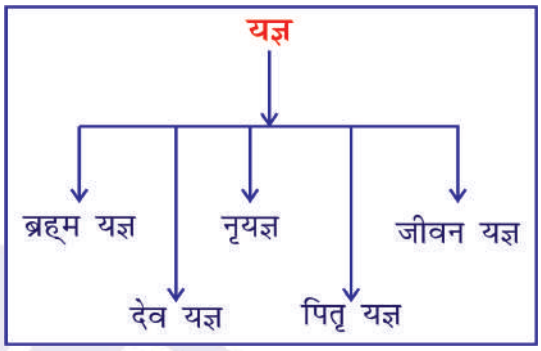
ऋण तथा यज्ञ की अवधारणा को व्यक्ति के धार्मिक कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसकी मान्यता है कि व्यक्ति कुछ ऋणों के साथ मानव शरीर धारण करता है। ये प्रमुख ऋण हैं-



1. ***ऋषि ऋण***- यह अपने परम पूज्य ऋषियों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।
2. ***देव-ऋण***- यह ऋण इस जगत के निर्माता देवताओं के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्देशित करता है।
3. ***पितृ ऋण***- यह ऋण जन्म देने वाले पितरों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।

इसके अलावा अतिथियों एवं अन्य जीवों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्य कर्म के निर्धारण हेतु **अतिथि ऋण** एवं **जीव ऋण** का उल्लेख भी किया गया है।

धार्मिक कर्तव्य पालन या विभिन्न ऋणों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति का प्रयत्न ही यज्ञ कहलाता है जिसका निर्धारण विभिन्न यज्ञों के रूप में किया गया है। जैसे-



1. ***ब्रह्म यज्ञ***- इस यज्ञ की पूर्ति व्यक्ति वेद अध्ययन व अध्यापन द्वारा करता है।
2. ***पितृ यज्ञ***- श्राद्ध कर्म, पितरों का तर्पण और प्रजनन (पुत्र के रूप में) द्वारा पितृ यज्ञ पूरा करने का विधान धर्मशास्त्रों द्वारा बनाया गया है।
3. ***देव यज्ञ***- देवताओं का आह्वान तथा असहाय एवं अपाहिजों को दान देकर सहारा प्रदान करना देव यज्ञ के अन्तर्गत आता है।
4. ***नृयज्ञ***- अतिथियों की सेवा के रूप में मानवता की सेवा के लिए इस यज्ञ का प्रावधान किया गया।
5. ***जीवन यज्ञ***- अन्य जीव जन्तुओं कीरक्षा और उनकी वृद्धि के प्रयासों को इस यज्ञ द्वारा सुनिश्चित किया गया है।

ऋण तथा यज्ञ : समकालीन संदर्भ

आधुनिक भारतीय समाज में व्यावहारिक रूप से इनका महत्त्व कम हुआ है, परन्तु अचेतन रूप से आज भी यह सदस्यों के क्रियाओं के निदेशक के रूप में क्रियाशील हैं। गया में पितरों का तर्पण, श्राद्ध कर्म, अस्थियों का गंगा में प्रवहन, पुत्र-प्राप्ति की असीम चाह की विद्यमानता आदि के रूप में इनके प्रभाव को आज भी देखा जा सकता है। विशिष्ट संस्कृति और विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में आज भी इस सिद्धांत का महत्त्व बना हुआ है, परन्तु शहरों की अपेक्षा गाँवों में आज यह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दू संस्कार

भारतीय हिन्दू समाज में धर्म पर आधारित वे पद्धतियाँ जिनके द्वारा व्यक्ति के जीवन को शुद्ध एवं पवित्र बनाने का प्रयास किया जाता है, जिससे वह जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने की योग्यता धारण कर सके, संस्कार कहलाता है।

वस्तुत: ये वे पवित्र अनुष्ठान हैं जो कि सामजिक, आध्यात्मिक, शारीरिक एवं बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाते हैं। इन अनुष्ठानों

के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन करने की चेष्टा की जाती है। भारतीय समाज में संस्कार की क्रिया व्यक्ति के जन्म लेने से पूर्व ही आरंभ हो जाती है तथा मृत्यु तक चलती है। माना जाता है कि बिना संस्कारों को पूर्ण किए व्यक्ति पूर्णता को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। इन संस्कारों में यज्ञ की क्रिया, मंत्रोच्चारण, देवता एवं पितरों का आमंत्रण, शुभ घड़ी इत्यादि तत्त्व शामिल होते हैं।

वेदों धर्मसूत्रों एवं गृहसूत्रों में संस्कारों की संख्या निर्धारित की गई है। ऋग्वेद में केवल तीन संस्कार गर्भधान, विवाह एवं मृत्यु का ही उल्लेख है परंतु बाद के ग्रंथों में इनकी संख्या अलग-अलग निर्धारित की गई है।

आश्रम व्यवस्था

हिंदू दर्शन में सामाजिक संगठन बनाए रखने एवं व्यक्ति के जीवन को संगठित एवं व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था के रूप में व्यक्ति के पूरे जीवनकाल को इस तरह नियोजित किया गया ताकि व्यक्ति एवं समाज के बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक प्रगति को अधिकतम किया जा सके। इस प्रकार हिंदू दर्शन के अनुसार आश्रम व्यवस्था सामाजिक नियोजन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के जीवन को इस तरह नियोजित किया जाता है कि वह अपने आयु के विभिन्न स्तरों में अलग-अलग सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए मोक्ष के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस व्यवस्था के अंतर्गत जीवन को 100 वर्ष मानकर इसे चार आश्रमों में बाँटा गया है और प्रत्येक आश्रम से संबंधित व्यक्ति के दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। ये निम्न हैं-

1. ***ब्रह्मचर्य आश्रम (1-25 वर्ष)***-इस आश्रम के अंतर्गत अध्ययन कार्य करते हुए, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर बल दिया जाता है। इस आश्रम में व्यक्ति के लिए यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि यह जीवन के आरंभिक वर्षों में गुरु के पास रहकर विद्या एवं धर्म का अध्ययन करते हुए आने वाले जीवन के लिए स्वयं को तैयार करे। इस आश्रम में ज्ञान के विकास एवं व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा दी जाती है।
2. ***गृहस्थ आश्रम (25 से 50 वर्ष)***-विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर विभिन्न यज्ञों का संपादन करना तथा गृहस्थ जीवन से संबंधित दायित्वों का निर्वाह करना। व्यक्ति का कर्तव्य माना गया है। इस आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति के लिए यह विधान किया गया है कि वह समाज के उन उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके जो उसके लिए समाज ने निर्धारित किया है। इसमें प्रजनन द्वारा सामाजिक निरंतरता तथा यज्ञ व ऋण द्वारा प्रकृति और समाज के ऋणों को उतारने की व्यवस्था की गई है।
3. ***वानप्रस्थ आश्रम (50 से 75 वर्ष)***- इसमें व्यक्ति परिवार से अलग रहकर सांसारिक मोह-माया से पृथक होने का प्रयास करता है। इस आश्रम में व्यक्ति के लिए यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह अब समाज से दूर रहते हुए अपने जीवन के अर्थ को जानने का प्रयास करे और आने वाली पीढ़ी को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने हेतु स्वतंत्र करे, साथ ही अपने अनुभवों द्वारा उनका दिशा निर्देशन करे।
4. ***संन्यास आश्रम (75 से 100 वर्ष)***- संन्यास आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति से अपेक्षा की गई है कि वह भ्रमण करते हुए संसार के कल्याण में अपना जीवन लगाए। इस आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति अपने परिवार से एकदम अलग हो जाता है और संपूर्ण संसार को अपना परिवार मानता है। वह भ्रमणकारी जीवन व्यतीत करता है और अपने जीवन के संपूर्ण अनुभवों द्वारा लोकोपकारी कार्यों को करता हुआ लोक कल्याण में रत हो जाता है।

एक हिन्दू के जीवन के उपर्युक्त चारों चरणों को मिलाकर आश्रम व्यवस्था का निर्माण होता है। पहला आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा प्राप्ति का चरण है। परन्तु चौथे वर्ण अर्थात् शूद्र और पहले तीन वर्णों की महिलाओं को इस आश्रम में प्रवेश की अनुमति नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्था जीवन के विभिन्न चरणों को आयु के विभिन्न चरणों से जोड़ने की एक आदर्श व्यवस्था है जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि वर्णाश्रम का हर आश्रम किस आयु से शुरू होता है। वर्णाश्रम का पालन करना अनिवार्य नहीं है लेकिन इसे सामान्यत: काफी मान्यता दी जाती है।

वर्ण व्यवस्था (Varna System)

सभी समाज एक संगठित व्यवस्था के रूप में ही कार्य कर सकते हैं। अत: सामाजिक संगठन या व्यवस्था को सुचारू रूप से क्रियाशील करने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक कार्यों का विभाजन उचित ढंग से किया जाए। वर्ण व्यवस्था सामाजिक कार्यों को विभिन्न स्वभाव, गुण एवम् प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों अथवा समूहों में बाँट देने की एक परंपरागत व्यवस्था है जिसके अंतर्गत सामाजिक कार्यों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है और इन चार वर्गों से संबंधित कार्य करने वाले समूहों को चार वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में विभक्त किया जाता है। कभी-कभी अछूत के रूप में एक पाँचवें वर्ण की भी चर्चा की जाती है।

इन सभी वर्णों के लिए अलग-अलग कार्य सुनिश्चित किए गए हैं। ब्राह्मण धार्मिक और आनुष्ठानिक कार्य, वेदों का अध्ययन और समाज के सभी वर्गों के लिए मानदंड (धर्म) बनाने के कर्तव्य को पूरा करते थे। क्षत्रिय वर्ण का कार्य देश की रक्षा करना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना आदि निर्धारित किया गया था। व्यावसायिक कार्यों का उत्तरदायित्व वैश्यों पर था जबकि शूद्र वर्ण का कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा से संबंधित था। समय बीतने के साथ इन तीनों वर्णों ने अपने कार्यों में दक्षता प्राप्त कर ली और एक सामाजिक सोपान में ढल गए जिसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का स्थान

क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय रहा। चौथा स्थान शूद्रों या दासों का रहा जो ऊपर के तीन वर्णों के लोगों की सेवा करते थे। वर्ण जाति समूहों से भिन्न हैं क्योंकि वर्ण हिन्दू समाज के बृहद् भाग हैं, जबकि जातियाँ विशिष्ट अन्तःवैवाहिक समूह हैं जिनकी संख्या हजारों में है। वर्ण अखिल भारतीय स्तर पर सामान्य घटना हैं जबकि जातियाँ स्थानिक समूह हैं।

अपने उद्भव के आरंभिक समय में वर्णों के व्यवसाय वंशानुगत नहीं थे। उनको न केवल व्यवसायों में परिवर्तन की छूट थी बल्कि यदि किसी व्यक्ति में आवश्यक बुद्धि और गुण थे तो वह अपनी प्रस्थिति को भी ऊपर उठा सकता था। उच्च से निम्न जाति में पदावनति भी होती थी। समय बीतने के साथ जाति और व्यवसाय स्थिर और वंशानुगत बनते गए। सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं का यह विभाजन सामाजिक विधान का एक मानक और भाग बन गया। इस प्रकार जाति और सम्पत्ति रूपी संस्थाओं ने राज्य के उद्भव को आवश्यक बना दिया और वर्ण व्यवस्था को समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक लाभकारी व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया।

वर्ण व्यवस्था में कठोरता उत्तर वैदिक काल में आई जब ऋषियों ने सामाजिक संबंधों और विवाह पर प्रतिबंध लगाने के महत्त्व पर बल दिया। रामायण, महाभारत और जातक कथाओं में लिखा है कि ब्राह्मण न केवल वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ थे बल्कि उनके पास सम्पत्ति और सत्ता भी थी। राजा को अपने विशेषाधिकार से ब्राह्मणों को गाँवों में राजस्व वसूल करने की छूट या कर-मुक्त जमीनें (ब्रह्मदेय) देने का अधिकार था।

क्षत्रियों और वैश्यों पर वर्ण का वंशानुगत आधार लागू नहीं होता था। शासन, कला और सैन्य व्यवसाय एक समूह तक सीमित नहीं थे। भारतीय इतिहास में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के राजवंशों के कई उदाहरण भी मिलते हैं। सातवाहन ब्राह्मण थे, गुप्त वैश्य थे और नंद राजा शूद्र थे। इसके अलावा यवन, शक और कुषाण राजवंश किसी जाति से संबंधित नहीं थे।

वैश्य एक बहुत अधिक विभेदित जाति समूह था क्योंकि उसमें कुछ परिवार धनी थे और अन्य छोटे किसान, कारीगर, फेरीवाले आदि थे। शूद्र लोगों का प्रत्यक्ष रूप में एक वर्ण स्वरूप था। वे तीनों वर्णों की सेवा करते थे और उनकी आर्थिक स्थिति निम्नतम थी। वास्तव में वे उच्च जातियों के नौकर के रूप में समझे जाते थे।

जाति-व्यवस्था (Caste System)

जाति व्यवस्था भारत में सामाजिक स्तरीकरण का विशिष्ट स्वरूप रही है जो भारतीय सामाजिक संगठन के प्रमुख आधार के रूप में देखी जा सकती है। भारतीय समाज ऐसे जातीय और उप-जातीय समूहों में बँटा है जिनकी सदस्यता का आधार जन्म होता है न कि व्यक्ति के गुण एवं स्वभाव। भारतीय समाज के वर्ण व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के कारण स्तरीकरण के आधार के रूप में गुण तथा स्वभाव का स्थान जन्म ने ले लिया, परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में बदल गई। प्रत्येक वर्ण में जातियाँ बढ़ती गई और जाति की सदस्यता पूर्णतः जन्म पर आधारित हो गई। सामाजिक गतिशीलता की दृष्टि से वर्ण परिवर्तन तो फिर भी संभव था परन्तु एक जाति की सदस्यता छोड़कर किसी अन्य जाति में पहुँचना प्रायः असंभव था। धीरे-धीरे एक ही वर्ण की विभिन्न जातियों में ऊँच-नीच की भावना पनपने लगी। उच्च जातियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हो गए, वहीं निम्न जातियों को कुछ निर्योग्यताओं से पीड़ित रहना पड़ा।

जाति-व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति ने अन्तर्विवाह की नीति को अपनाया। प्रत्येक जाति की अपनी जातीय पंचायतें भी रही हैं जो जाति से संबंधित नियमों का पालन नहीं करने वालों को कठोर दंड देती रही है। यह व्यवस्था स्तरीकरण के बन्द प्रणाली के स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं। वर्तमान में जाति व्यवस्था के स्वरूप एवं कार्यों में विभिन्न कारणों से अनेक परिवर्तन आए हैं, परन्तु, आज भी अधिकांश भारतीयों के जीवन को जाति व्यवस्था अनेक रूपों में प्रभावित कर रही है।

धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह एवं संयुक्त परिवार

हिंदू दर्शन में विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में देखा गया है जिसके द्वारा व्यक्ति प्रजनन और यौन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परंतु, उसके उद्देश्यों में धर्म को प्रथम, प्रजनन को द्वितीय एवं रति को तृतीय स्थान प्रदान किया गया है और इस रूप में व्यक्ति के यौन व्यवहारों और प्रजनन कार्यों को धार्मिक आधार पर नियमित किया गया है।

परंपरागत भारतीय समाज में संयुक्त परिवार भी उसका एक सांगठनिक आधार रहा है जो समाज की इकाई के रूप में अपने सदस्यों पर धर्मानुसार आचरण करने अर्थात् सामाजिक जीवन से संबंधित सभी कर्तव्यों का पालन करने का निर्देश देता था और इस प्रकार यह सामाजिक नियंत्रण की एजेंसी के रूप में क्रियाशील रहा है। परिवार की देख-रेख में व्यक्ति विभिन्न यज्ञों का क्रियान्वयन और वर्ण-धर्म का पालन करता रहा है। यद्यपि वर्तमान में औद्योगीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार, धर्म के प्रभाव में कमी आदि के कारण संयुक्त परिवार कमजोर हुआ है और एकाकी परिवार की संख्या में वृद्धि हुई है तथापि अभी भी गाँवों में एक सामाजिक इकाई के रूप में यह महत्त्वपूर्ण है। साथ ही नगरों में भी संयुक्तता की भावना की विद्यमानता के रूप में इसको देखा जा सकता है।

भारतीय समाज के परंपरागत आधार: मूल्यांकन

स्पष्ट है भारतीय समाज के कुछ ऐसे परंपरागत आधार रहे हैं, जिन्होंने समाज में समन्वयकारी प्रवृत्तियों के विकास में योगदान दिया है और

व्यक्ति को समन्वित जीवन व्यतीत करने हेतु प्रोत्साहित किया है फलतः ये सभी समाज की इकाई या अंग के रूप में प्रकार्यात्मक संबंधों के आधार पर एक-दूसरे के साथ संबद्ध होते हुए परंपरागत हिंदू समाज को बनाए रहे और व्यक्ति की उन्नति के साथ-साथ समाज के विकास में भी सहायक रहे हैं।

भारतीय समाज में परिवर्तन और निरंतरता

परंपरागत भारतीय समाज में निम्न तत्त्व प्रमुख रहे हैं-

1. धर्म को समाज में केन्द्रीय स्थान प्राप्त है।
2. वर्ण व्यवस्था को प्रकार्यात्मक विशेषीकरण के एक सिद्धांत के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया है।
3. जाति व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण के विशिष्ट रूप में समाज को श्रेणीबद्ध करती है।
4. कर्म के सिद्धांत द्वारा व्यक्ति के भूत-वर्तमान और भविष्य के कर्म फलों को निश्चित किया गया है।
5. आश्रम व्यवस्था द्वारा विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के कार्यों को निश्चित किया गया है।
6. पुरुषार्थ व्यवस्था द्वारा सामाजिक लक्ष्यों व उनको प्राप्त करने के उचित साधनों की व्यवस्था की गई है।

कालांतर में सामाजिक व्यवस्था के उपरोक्त तत्त्वों पर कई धर्मों एवं संस्कृतियों, जैसे-बौद्ध एवं जैन धर्म, इस्लाम धर्म, पश्चिमी-संस्कृति, आधुनिकीकरण तथा वैश्वीकरण आदि का प्रभाव पड़ा। इन प्रभावों ने परंपरागत भारतीय समाज में परिवर्तन लाकर इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है जहाँ व्यक्तिवादिता, समानता धर्मनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक मूल्य, परिवर्तन के प्रति आस्था केन्द्रीय मूल्य व्यवस्था के रूप में सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रियाशील हैं। परन्तु वर्तमान भारतीय समाज का यह नवीन स्वरूप परंपरागत समाज एवं उनके तत्त्वों को प्रतिस्थापित करके नहीं आया है। अभी भी जाति-व्यवस्था, संयुक्त परिवार, विवाह के प्रथागत पक्ष और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म का प्रभाव देखा जा सकता है। अर्थात् वर्तमान भारतीय समाज निरंतरता के साथ परिवर्तन को दर्शाता है जहाँ परंपरागत समाज अपनी निरंतरता को बनाए रखे हुए है और आधुनिकता के साथ विद्यमान है।

भारतीय समाज में परिवर्तन के कारण

परंपरागत भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है-

1. बौद्ध, जैन एवं इस्लाम धर्म के प्रभाव ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में समानता की भावना के साथ कर्मकांडों को लचीला बनाया है।
2. अंग्रेजी शिक्षा एवं ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से स्वतंत्रता, समानता व धर्मनिरपेक्षता जैसे आधुनिक मूल्यों का प्रसार संभव हुआ है।
3. धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा ने रोजमर्रा के जीवन में धर्म के प्रभाव को कम किया है।
4. ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा बनाए गए कानूनों ने विधि के समक्ष समता के रूप में धर्म संहिताओं के प्रभाव को कम किया है।
5. स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के रूप में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार ने जाति स्तरीकरण की व्यवस्था की कठोरता को कम किया है।
6. औद्योगीकरण और नगरीकरण ने भारतीय जाति व्यवस्था में गतिशीलता के अवसर प्रदान किए हैं।
7. भारतीय संविधान ने समान अवसर की स्थापना कर सभी को विकास के समान अवसर प्रदान करके एक समतामूलक समाज की दिशा में परिवर्तन को संभव बनाया है।
8. यातायात एवं संचार क्रांति द्वारा विभिन्न जातियों के बीच की सामाजिक दूरी कम हुई है और भेदभाव एवं असमानता के तत्त्व कमजोर हुए हैं।

भारतीय समाज में निरंतरता के कारण

परंपरागत भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रकृति अनुकूलनकारी रही है जहाँ परंपरा की निरंतरता के साथ परंपरा में परिवर्तन होता रहा है। भारतीय परंपरा की इस निरंतरता के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न बिन्दुओं के तहत देखे जा सकते है:-

1. भारतीय परंपराओं में निहित परिवर्तन की गुंजाइश तथा निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलेपन ने इनको बदलती परिस्थितियों के साथ अनुकूलन में सहायता प्रदान की है।
2. परंपरागत भारतीय समाज में निहित परसंस्कृतिग्रहण और सात्मीकरण की प्रवृत्ति ने भारतीय समाज में सदैव गतिशीलता को बनाए रखा है।
3. भारतीय परंपराओं में निहित सामंजस्य या अनुकूलन की क्षमता ने भी परिवर्तन को पोषित किया है। फलतः अनुकूलनकारी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर क्रियाशील रही है।
4. भारतीय परंपरा में विद्यमान सहिष्णुता की क्षमता के कारण विभिन्न समूहों में आपसी प्रतिस्पर्द्धा का अभाव पाया जाता रहा है जिसने परंपरा की निरंतरता में सहयोग किया है।

मूल्यांकन

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय समाज निरंतर गतिशील रहा है तथा परंपरा व आधुनिकता के सहअस्तित्व को परिलक्षित करता है। यह अनेक अंतर्जात एवं बहिर्जात स्रोतों

के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के साथ अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। परंतु, वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में परिवर्तन की गति इतनी तीव्र हो गई है कि परंपरा या निरंतरता के समक्ष गंभीर संकट महसूस किया जा रहा है।

हिन्दू सामाजिक संगठन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

परंपरागत भारतीय समाज की तीन मुख्य विशेषताएं थीं:-

1. क्रम-विन्यास या सोपान
2. संपूर्णता की भावना
3. नैरन्तर्य की प्रवृत्ति

परन्तु, कालांतर में इसका स्वरूप विकृत हो गया जिसमें सुधार की कोशिश दो तरीकों से की गई-

1. वैदिक परंपरा में थोड़ी फेर-बदल करके जैसे- शंकराचार्य, रामानुज और भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव आदि।
2. वैदिक परंपरा के मुख्य तत्त्वों से भिन्नता रखते हुए नई परंपरा की स्थापना करके, जैसे-बौद्ध और जैन धर्म का उदय।

बौद्ध धर्म यथार्थवादी दृष्टिकोण (तर्क, बुद्धि एवं अनुभव पर जोर देने वाला) पर आधारित एवं अहिंसा व सदाचार पर बल देने वाला धर्म है। बौद्ध धर्म में देवी-देवताओं भाग्यवाद, पुनर्जन्म और ग्रहों-नक्षत्रों का प्रभाव आदि पर विश्वास नहीं किया जाता है और इस लौकिक जगत की यथार्थता पर बल दिया जाता है। फलतः, इस धर्म की बहुत सारी मान्यताओं ने हिंदू सामाजिक संगठन को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। ये मान्यताएँ निम्नलिखित हैं:-

1. संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है इसीलिए जाति व्यवस्था का आधार जन्म नहीं कर्म होना चाहिए।
2. कोई भी व्यक्ति अपने 'स्व' को विकसित करके सोपानिक व्यवस्था के क्रम में ऊपर आ सकता है और निर्वाण प्राप्त कर सकता है।
3. स्त्रियों को भी पुरुषों के समान दर्जा मिलना चाहिए (संघ में प्रवेश की अनुमति देकर)।
4. दान की प्रथा द्वारा अधिशेष को पुनर्वितरित करने पर बल दिया गया जिससे समाज में समानता आ सके।
5. भाषायी सोपान को अस्वीकार करते हुए धर्म विधियों पर संस्कृत भाषा जानने वाले ब्राह्मण वर्ग के वर्चस्व को समाप्त करने का प्रयास किया गया। इसलिए बौद्ध धर्म द्वारा जन सामान्य की पालि भाषा को अंगीकार किया गया।

यद्यपि बौद्ध धर्म में भी बहुत सी ऐसी सैद्धांतिक मान्यताएँ थीं जो क्रम-विन्यास को परिलक्षित करती थीं। परन्तु, यहाँ उल्लेखनीय है कि बुद्ध का उद्देश्य पूर्ण समानतायुक्त समाज की स्थापना करना नहीं बल्कि सभ्य समाज की स्थापना करना था। बौद्ध धर्म की इन मान्यताओं ने परंपरागत भारतीय समाज को कई रूपों में प्रभावित किया जिसे निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. बौद्ध धर्म की मान्यताओं के प्रभाव स्वरूप वर्ण व्यवस्था कमजोर हुई।
2. हिंदू धर्म में पुनर्जागरण शुरू हुआ तथा ब्राह्मणों की शक्ति एवं महत्त्व में कमी आई।
3. हिंदू धर्म में जन्म से अधिक चरित्र, योग्यता और कर्म पर बल दिया जाने लगा।
4. इसके प्रभाव स्वरूप सामाजिक जीवन में कर्मकांडों के महत्त्व में कमी आई।
5. इसके प्रभाव में हिन्दू समाज में निहित भाग्यवादी धारणा कमजोर हुई और कर्म का महत्त्व बढ़ा।
6. अहिंसा हिंदू समाज का मुख्य मूल्य बन गया। फलतः नर-बलि, पशु-बलि, माँसाहार में कमी आई और शाकाहार तथा जीवों के प्रति दया भाव में वृद्धि हुई।
7. व्यावहारिक कार्य को प्रेरणा देने वाली और लोक कल्याणकारी शिक्षा पर बल दिया जाने लगा।
8. इसने समानता, सामाजिक न्याय तथा लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहित करके भारत में मानवतावादी और लोकोपकारी भावनाओं को प्रचलित किया।
9. इसने देशी भाषाओं को लोकप्रिय बनाकर देश की विभिन्न भाषाओं और बोलियों को समुचित महत्त्व दिया।
10. पंचशील, गुटनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक सहयोग, शांति के लिए प्रयास, गाँधी की अहिंसक नीति आदि के मूल में भी यह अभिप्रेरक के रूप में सहयोगी रहा।

इस तरह बौद्ध धर्म ने परंपरागत हिंदू समाज की सोपानिक व्यवस्था को कमजोर किया और समतामूलक समाज को स्थापित किया जिसके कारण वह प्रसिद्ध हुआ और आज तक व्यावहारिक मानवतावादियों को आकर्षित करता रहा है। यद्यपि इस प्रक्रिया में बौद्ध धर्म भी हिंदू सामाजिक संगठन से प्रभावित हुआ। कर्म का सिद्धांत, पुनर्जन्म का सिद्धांत, मूर्तिपूजा (महायान), मठ संबंधी कुरीतियाँ, सोपानिक व्यवस्था तथा अंतर्विवाही समूह के रूप में विकास आदि तत्त्व आज इस धर्म में भी दिखाई देने लगे हैं।

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म एक वैचारिक आंदोलन के रूप में हिंदू सामाजिक संगठन के विभिन्न तत्त्वों को प्रभावित करते हुए स्वयं भी प्रभावित हुआ है और वर्तमान भारतीय समाज की प्रकृति के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिन्दू सामाजिक संगठन पर इस्लाम धर्म का प्रभाव

भारत में विभिन्न कालों में मुसलमानों के विभिन्न वंशों, जैसे- गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश एवं लोदी वंश आदि का 600 वर्षों तक शासन रहा। मुसलमानों से पूर्व जितने भी आक्रमणकारी यहाँ आए, जैसे-यवन, शक, हूण, कुषाण, सिथियन व मंगोलियन आदि वे सब भारतीय समाज में समाहित हो गए, किन्तु मुसलमानों का पृथक् अस्तित्व बना रहा क्योंकि दोनों के धर्म, संस्कृति, देवी-देवता, खान-पान एवं जीवनदर्शन में काफी अन्तर था। लम्बे समय तक हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के कारण कला, धर्म, साहित्य, परिवार, विवाह, संगीत और संस्कृति के कई क्षेत्रों में दोनों में बहुत आदान-प्रदान हुआ और दोनों ही परंपराओं में संघर्ष, तनाव, व्यवस्थापन और समन्वय की प्रक्रिया काफी लम्बे समय से चल रही है।

इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव मुख्यत: नगरों तक सीमित रहा और ग्रामों में इसका प्रभाव कम रहा। चूँकि मुसलमान बाहर से आए थे और वे संख्या में कम थे किन्तु उन्होंने यहाँ के अनेक हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करवाकर मुसलमान बनाया। फलत: यहाँ के मुसलमानों में कई तत्त्व दोनों ही संस्कृतियों के साथ-साथ दिखाई देते हैं। साथ ही मुसलमान-शासक वर्ग के थे इसलिए भी जनता ने दबाव एवं स्वेच्छा से मुस्लिम संस्कृति को अपनाया। इस्लाम के भारतीय समाज पर प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:-

1. हिन्दुओं में एकेश्वरवाद एवं निर्गुण ब्रह्म की उपासना प्रारम्भ हुई। भक्ति आंदोलन एवं समतावादी आदर्शों का जन्म हुआ। कबीर पंथ, दादू पंथ, अद्वैतवाद, सिख धर्म, रामानुज, वल्लभाचार्य, चैतन्य एवं रैदास के धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ।
2. हिन्दुओं में जातीय कठोरता कम हुई तथा अस्पृश्यता और ऊँच-नीच का भेद-भाव समाप्त होने लगा। जातीय कठोरता के कारण निम्न जातियों ने धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम को ग्रहण किया। भारतीय समाज में दास प्रथा, बेगारी आदि के प्रचलन में वृद्धि हुई।
3. हिन्दुओं में मुस्लिम प्रभाव से पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ। बाल-विवाह बढ़े, विधवा पुनर्विवाह समाप्त हुए और सती प्रथा को महत्त्व दिया गया। बहु-पत्नी प्रथा एवं दहेज प्रथा में भी वृद्धि हुई।
4. भारतीय संस्कृति पर भी इसका प्रभाव व्यापक रहा। मुस्लिम वेशभूषा, जैसे-चूड़ीदार पाजामा, अचकन एवं शेरवानी का प्रचलन शुरू हुआ। भोजन में माँसाहारी प्रवृत्ति बढ़ी। आज कलाकंद, बर्फी, गुलाब जामुन, बालूशाही, हलवा, इमरती एवं जलेबी मुसलमानों की ही देन है। उर्दू एवं खड़ी बोली का प्रादुर्भाव संभव हुआ। स्थापत्य कला के क्षेत्र में हिन्दुओं ने मुसलमानों से गुम्बद, ऊँची मीनारें, मेहराब तथा तहखाने बनाना सीखा। मुसलमानों ने अनेक हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर उनमें हेराफेरी करके उन्हें मस्जिदों के रूप में बदल दिया। चित्रकला के क्षेत्र में मनुष्यों, पशुओं, पुष्पों एवं पक्षियों के सजीव चित्र बनाना तथा विभिन्न रूपहले रंगों को भरना मुस्लिम संस्कृति की देन है। तुर्की व ईरान की प्यूराइड चित्रकारी मुसलमान ही भारत में लाए। मथुरा के द्वारकाधीश मन्दिर में इसी शैली में कृष्णलीला का चित्रण किया गया है। कव्वाली, गजल, ठुमरी तथा तबला व सितारवादन भी इस्लाम की ही देन है। इस युग में रंगाई-छपाई, बर्तन एवं दस्तकारी के उद्योग तथा धातु, शक्कर, ईंट, पच्चीकारी, कताई आदि व्यवसायों का भी काफी विकास हुआ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस्लाम के प्रभाव के कारण भारतीय समाज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में प्रभावित हुआ और यह प्रभाव ब्रिटिश काल तक बना रहा। साथ ही केवल हिन्दुओं ने ही इस्लाम से ग्रहण नहीं किया वरन् मुसलमानों ने भी हिन्दू संस्कृति के अनेक तत्त्वों को ग्रहण किया। मुसलमानों में क्रूरता कम हुई, उनमें भक्ति, श्रद्धा, सहृदयता व दयालुता की प्रवृत्ति पैदा हुई। उन्होंने भी हिन्दुओं के खान-पान, जाति-प्रथा, उत्सवों एवं अन्धविश्वासों को ग्रहण किया। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों के संपर्क से एक नवीन संस्कृति हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का जन्म हुआ।

भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएँ

संस्कृतिकरण (Sanskritisation)

संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रयोग भारतीय सामाजिक-संरचना में सांस्कृतिक गतिशीलता की प्रक्रिया के विश्लेषण हेतु ***एम.एन. श्रीनिवास*** द्वारा किया गया। इनके अनुसार संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा कोई अन्य समूह किसी उच्च और प्राय: द्विज जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाज, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन-पद्धति को बदलता है।'' साधारणत: ऐसे परिवर्तनों के बाद निम्न जाति जातीय सोपान में उच्च स्थिति का दावा करने लगती है।

इस प्रकार संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई निम्न हिंदू जातीय-समूह अथवा कोई जनजातीय समूह अपनी संपूर्ण जीवन-विधि को उच्च जातियों या वर्णों की दिशा में बदल कर अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है और जातीय संस्तरण की प्रणाली में उच्च होने का दावा प्रस्तुत करता है।

संस्कृतिकरण के बारे में उपरोक्त विवेचन के आधार पर इसके निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है-

1. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध निम्न हिंदू जातियों, जनजातियों तथा कुछ अन्य समूहों (हिंदू धर्म व संस्कृति से भिन्न) से है।

2. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत अपने से उच्च जातियों की जीवन, उनकी प्रथाओं, रीति-रिवाजों, खान-पान, विश्वासों एवं मूल्यों का अनुकरण करते हुए उन्हें अपनाने का प्रयास किया जाता है।
3. संस्कृतिकरण के माध्यम से किसी जातीय-समूह की स्थिति आसपास की जातियों से कुछ ऊपर उठ जाती है परंतु स्वयं जाति-व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
4. संस्कृतिकरण केवल सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया नहीं है बल्कि सांस्कृतिक परिवर्तनों की भी एक प्रक्रिया है। इसमें भाषा, साहित्य, संगीत, विज्ञान, दर्शन, औषधि तथा धार्मिक विधान आदि के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन भी शामिल हैं।
5. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध किसी व्यक्ति या परिवार से नहीं होकर समूह से होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा कोई जातीय या जनजातीय समूह अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है।

भारत में संस्कृतिकरण के सामाजिक प्रभाव निम्न रहें हैं:-

1. संस्कृतिकरण से निम्न जातीय समूहों की प्रस्थिति में सुधार तथा जातीय गतिशीलता संभव होती है।
2. इससे निम्न जातीय समूहों की जीवन-शैली में परिवर्तन होता है और उनके द्वारा निकृष्ट समझी जाने वाली क्रियाओं को छोड़ दिया जाता है।
3. इससे महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट आती है या उच्च जातियों की तरह पितृसत्तात्मकता के प्रबल स्वरूप का उद्‌भव होता है जिससे महिलाओं पर पुरुषों का नियंत्रण बढ़ जाता है।
4. इससे जातीय प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष में वृद्धि होती है क्योंकि उच्च जातियाँ संस्कृतिकरण को रोकने का प्रयास करती हैं।

पश्चिमीकरण (Westernization)

पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग मुख्यत: उन परिवर्तनों को व्यक्त करने के लिए किया गया है जो भारत में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी राज्य की अवधि में प्रारंभ हुए। पश्चिमीकरण में भारतीय समाज और संस्कृति में एक सौ पचास वर्षों से अधिक समय के अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप लाए गए परिवर्तन शामिल हैं और इस शब्द में विभिन्न स्तरों, प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, विचारधाराओं तथा मूल्यों में होने वाले परिवर्तन सम्मिलित हैं। मानवतावाद तथा तार्किकता पर जोर पश्चिमीकरण का एक अंग है जिसने भारत में संस्थागत तथा सामाजिक सुधारों की शृंखला आरंभ कर दी। वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक तथा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, देश में नवीन राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व सबके सब पश्चिमीकरण के उप-उत्पाद हैं।

भारत में अंग्रेजी राज्य-स्थापना के पश्चात् अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रौद्योगिक शक्तियाँ कार्य करने लगी। इन शक्तियों ने देश के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित किया। अंग्रेजों के पास राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के साथ एक नवीन प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक ज्ञान तथा महान साहित्य था। इनसे प्रभावित होकर उच्च जातियों के लोगों ने अंग्रेजों का अनुसरण करना प्रारम्भ किया, उनकी प्रथाओं और आदतों को अपनाया। अंग्रेज जातीय संस्तरण की प्रणाली में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गए और ब्राह्मणों का स्थान द्वितीय हो गया। जहाँ निम्न जातियाँ अपनी सामाजिक प्रस्थिति को ऊँचा उठाने की दृष्टि से अपने से उच्च जातियों और ब्राह्मणों के जीवन के तरीके को अपनाने में लगी हुई थीं वहाँ ब्राह्मणों तथा कुछ अन्य उच्च जातियों के लोगों ने अंग्रेजों के जीवन के तरीके को अपनाने में तत्परता दिखाई। इस प्रकार देश में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

पश्चिमीकरण के कारण ब्राह्मणों को अंग्रेजों और यहाँ के शेष लोगों के बीच मध्यस्थ के रूप में भूमिका निभाने का सुअवसर मिला। परिणाम यह हुआ कि एक नवीन और लौकिक जाति व्यवस्था का परंपरागत व्यवस्था पर आधिपत्य हो गया जिसमें नवीन क्षत्रिय शिखर पर थे और ब्राह्मण दूसरे स्थान पर तथा जनसंख्या के शेष लोग जातीय पिरामिड के निम्नतम स्थान पर थे। संस्तरण की इस नवीन प्रणाली में ब्राह्मण अंग्रेजों का अनुकरण कर रहे थे और बाकी सभी लोग ब्राह्मणों और अंग्रेजों दोनों का ही अनुकरण कर रहे थे। संस्तरण की नवीन प्रणाली में ब्राह्मणों की स्थिति निर्णायक थी। उनके माध्यम से पश्चिमीकरण हिन्दू समाज के अन्य लोगों तक पहुँचा।

पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं में प्रमुखत: उन लोगों ने भाग लिया जो नवीन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर व्यवसायों में, ऊँची नौकरियों में, नगरों में व्यापार और उद्योग-धंधों में लग गए थे। यातायात और संचार के साधनों के विकास, औद्योगीकरण, कृषि क्षेत्र में होने वाले विकास तथा अभिजात वर्ग व ग्रामीणों की क्षेत्रीय तथा सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को तीव्र और साथ ही राष्ट्रव्यापी बना दिया। बड़े नगरों और समुद्री किनारों पर रहने वाले लोगों का पश्चिमीकरण सबसे पहले हुआ।

पश्चिमी प्रभाव के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक भारत में ऐसे नेताओं के वर्ग का उदय हो चुका था जो नवीन और आधुनिक भारत के लिए प्रकाश स्तंभ बना। बहुत से नेता (जैसे-टैगोर, विवेकानंद, रानाडे, गोखले, तिलक, पटेल, गाँधी, जवाहरलाल नेहरू तथा राधाकृष्णन आदि) मौजूदा सामाजिक कुरीतियों, जैसे-बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, स्त्रियों को पृथक्करण में रखना, स्त्री-शिक्षा का विरोध, अस्पृश्यता तथा अन्तर्जातीय विवाह निषेध आदि के प्रति जागरुक थे। समाज सुधार की प्रक्रिया में इस अभिजात-वर्ग ने अनुभव किया कि भारत को आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने के कार्य को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पचास वर्षों में काफी राष्ट्रीय जागृति हुई। इस अवधि में रेलों का निर्माण, छापेखाने का

विकास तथा शिक्षा प्रसार आदि ने राष्ट्रीयता के भावों को जागृत करने में काफी सहयोग दिया। इस प्रकार पश्चिमीकरण ने केवल अभिजात-वर्ग के उदय में ही नहीं बल्कि हिन्दू समाज को अनेक कुरीतियों से मुक्त करने, राष्ट्रीयता के भाव जगाने और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु आंदोलन करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमीकरण का भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव संयुक्त परिवार प्रणाली, हिन्दू विवाह तथा जाति-व्यवस्था पर देखने को मिलता है। पश्चिमीकरण ने व्यक्तिवादिता को प्रोत्साहित किया है जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की संरचना में परिवर्तन हो रहा है। अब पश्चिमीकरण के प्रभाव से शिक्षित युवक-युवतियाँ विवाह को जन्म-जन्मांतर का संबंध नहीं मानकर एक समझौता मानने लगे हैं। अब पति-पत्नी के संबंध समानता पर आधारित होने लगे हैं। पश्चिमीकरण के कारण विभिन्न जातियों के सदस्यों को कारखानों तथा अन्य क्षेत्रों में साथ-साथ काम करने का अवसर मिलने लगा है जिससे जातिगत दूरी पहले की तुलना में कम हुई है। पश्चिमीकरण के कारण स्तरीकरण के नवीन आधार के रूप में वर्गों का भी महत्त्व बढ़ने लगा है।

पश्चिमीकरण के कारण गाँवों में व्यक्ति की स्थानीय सामाजिक स्थिति उसकी जाति एवं परिवार की प्रतिष्ठा पर आधारित नहीं होकर उसकी स्वयं की योग्यता पर आधारित होती है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण क्षेत्रों में जाति पंचायतों के विघटन में योगदान दिया है। ग्रामीण समुदायों में भी व्यक्तिवादिता का प्रभाव स्पष्टत: दिखलाई पड़ने लगा है। पश्चिमीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण सामाजिक संगठन में पारिवारिकता का महत्त्व कम हुआ है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं को जन्म दिया है जिनसे भारतीय ग्राम भी अप्रभावित नहीं रहे हैं। ग्रामों में आजकल सामुदायिक भावना शिथिल पड़ रही है तथा स्थानीयता का महत्त्व कम होता जा रहा है। इस प्रक्रिया के कारण भारतीय ग्रामों में समाचार-पत्रों, रेडियो तथा चुनाव आदि का प्रादुर्भाव हुआ है।

आधुनिकीकरण (Modernization)

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ ब्रिटिश शासन की स्थापना एवं उसके संपर्कों का परिणाम है। अंग्रेजों द्वारा भारत पर विजय की प्रक्रिया लगभग एक शताब्दी तक चलती रही। स्वाभाविक रूप से उन्होंने अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाए रखने के लिए भारत में कुछ नई तकनीकी और संरचनाओं की स्थापना की। उत्पादन में नई मशीनी तकनीकी, व्यापार की नई बाजार प्रणाली, यातायात और संचार के साधनों का विकास, कर्मचारी तंत्र पर आधारित सिविल सेवा, औपचारिक और लिखित कानून की स्थापना, आधुनिक सैन्य संगठन, पृथक् न्यायिक व्यवस्था और आधुनिक औपचारिक शिक्षा व्यवस्था वे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन थे जिन्होंने आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की।

पश्चिमी शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं के नए अवसरों ने भारतीय समाज में एक ऐसे प्रबुद्ध वर्ग को जन्म दिया जो अपने समाज की दीन-हीन दशा पर विचार करने के लिए बाध्य हो गया। इसी वर्ग के नेतृत्व में भारत में समाज सुधार आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी प्रबुद्ध वर्ग और उभरते हुए पूँजीवादी वर्ग में राष्ट्रीय चेतना का जागृत होना भी स्वाभाविक था क्योंकि उनके हितों का संरक्षण इस बात में था कि अंग्रेज अपनी नीतियों में इस प्रकार संशोधन करें जिससे नीति-निर्माण में और प्रशासन में अधिक से अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व मिल सके और व्यापारी और उद्योगपति प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त कर सकें। इन वर्ग-हितों ने राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया जो धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में परिवर्तित हो गया।

स्वतंत्र भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया योजनाबद्ध और तीव्र गति से हुई है। भारतीय संविधान बनाकर और उसे व्यवहार में क्रियान्वित कर भारत ने सर्वप्रथम राजनीतिक आधुनिकीकरण किया। भारतीय समाज की बहुलवादी विशेषता को देखते हुए आधुनिकीकरण का अपना एक अलग और विशिष्ट मॉडल अपनाया गया है। इसमें समाजवाद, लौकिकवाद, उद्योगवाद, प्रजातंत्र, समतावाद एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा मौलिक अधिकार आदि मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। इनमें से अधिकांश मूल्य धर्म और जाति पर आधारित परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना के विपरीत हैं इसलिए भारतीय समाज में मूल्य-संघर्ष एक अनिवार्य लक्षण बन गया है।

शिक्षा को आधुनिकीकरण की एक पूर्व शर्त के रूप में स्वीकार किया गया है। स्वतंत्र भारत ने निरक्षरता उन्मूलन और सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य सामने रखे हैं। आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के अनुसंधान, शिक्षण और प्रशिक्षण के विकास के लिए विशेष उपाय अपनाए गए हैं।

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। एक ओर जहाँ लौकिकीकरण व तार्किकता में वृद्धि, गैर-कृषि व्यवसायों में लगे लोगों में बढ़ोत्तरी, नगरीकरण व औद्योगीकरण में वृद्धि, मृत्यु दर में कमी, परिवार नियोजन को मान्यता, आवागमन व संचार साधनों का विकास, शिक्षा का विस्तार, राष्ट्रीय व राजनीतिक चेतना आदि में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर जन साधारण की आशाएँ व माँगें इतनी बढ़ गई हैं कि उनमें वर्तमान सामाजिक- आर्थिक व राजनीतिक परिस्थिति के प्रति असंतोष व्याप्त हो गया है। तीव्र परिवर्तन से ठीक प्रकार से सामंजस्य न कर पाने के कारण विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला है। प्राचीन व नवीन मान्यताओं में संघर्ष के परिणामस्वरूप भारत में समन्वय व नियंत्रण की समस्या उत्पन्न हो गई है। व्यक्तिवादिता की वृद्धि ने व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामुदायिक विघटन की परिस्थिति उत्पन्न कर दी है।

आधुनिक भारतीय समाज के लक्षण

परंपरागत भारतीय समाज के प्रमुख लक्षण तथा भारतीय समाज में क्रियाशील सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाओं पर विचारोपरांत आधुनिक भारतीय समाज के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:–

1. ***विविधताओं से परिपूर्ण विशाल जनसंख्या–*** जनसंख्या के आधार पर भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है, परन्तु यह जनसंख्या विविधताओं से परिपूर्ण है जैसे-मैदानी भागों एवं तटीय प्रदेशों का जन घनत्व अत्यधिक है वहीं पहाड़ी व मरुस्थलीय प्रदेशों का जन घनत्व अति निम्न हैं। यहाँ बहुसंख्य जनसंख्या हिन्दुओं की है (81%) तो यहाँ मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि समुदाय भी निवास करते है। केरल जैसे प्रदेश का लिंगानुपात अति उच्च है तो हरियाणा, पंजाब जैसे प्रदेश भी है जहाँ लिंगानुपात अति निम्न है। कुछ प्रदेशों में जनसंख्या का अधिकत्तर भाग साक्षर हैं (केरल) तो कुछ प्रदेशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभी भी निरक्षर हैं (बिहार)।
2. ***विविधता में एकता–*** भारतीय समाज एक बहुलक समाज है जहाँ कई धर्म, प्रजाति, जाति, संस्कृति, आदि के लोग एक साथ रहते हैं।

   यहाँ कई तरह की भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं और हजारों त्यौहार मनाए जाते हैं। परन्तु इन विविधताओं में एक विशेष प्रकार की एकता परिलक्षित होती है। एक सामान्य शासन प्रणाली, एक सामान्य तीर्थ स्थल, संस्कृति, भारतीय समाज को एकता के सूत्र में जोड़ती है।
3. ***परंपरागत मूल्यों के साथ आधुनिक मूल्यों की विद्यमानता–*** समकालीन भारतीय समाज स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय जैसे आधुनिक मूल्यों से निर्मित समाज है। परन्तु यहाँ आधुनिक समाज परंपरागत समाज को प्रतिस्थापित करके नहीं आया है बल्कि इस परंपरा की निरंतरता आज भी बनी हुई है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को ये परंपरागत मूल्य प्रभावित करते हैं। इसीलिए वर्तमान भारतीय समाज के बारे में कहा जाता है कि भारतीय समाज का आधुनिकीकरण मूलत: परंपरा का आधुनिकीकरण है। यहाँ आधुनिकता के मूल्यों के साथ समायोजन स्थापित करते हुए भारतीय परंपरा ने स्वयं को आधुनिकीकृति कर दिया है।
4. ***धार्मिक मान्यताओं के साथ धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों की विद्यमानता और धर्म के नवीन स्वरूप पर प्रभाव–*** वर्तमान भारतीय समाज एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष समाज की ओर अग्रसर है, साथ ही धार्मिक मान्यताएँ भी हमारे जीवन में अपने महत्त्व को बनाए हुए हैं। आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ धर्म के अतार्किक मान्यताओं एवं रूढ़ियों में कमी आई है और धर्म का धर्मनिरपेक्षीकरण और तार्किकीकरण संभव हुआ है। आज भारत में धर्म कुछ नए रूपों में भी क्रियाशील हुआ है जैसे-धर्म का राजनीतिकीकरण, धर्म का बाजारीकरण धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद, धार्मिक रूढ़िवाद, आदि। आज राजनीतिक दलों द्वारा मतों को लामबंद करने हेतु धर्म का प्रयोग किया जा रहा है तो दूसरी तरफ जनता भी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के एक सांगठनिक आधार के रूप में धर्म का प्रयोग कर रही है।
5. ***जाति व्यवस्था नवीन रूपों में क्रियाशील–*** वर्तमान भारतीय समाज में जाति व्यवस्था अपनी महत्ता बनाए हुए है। यद्यपि इसका कर्मकांडीय पक्ष कमजोर हुआ है तथापि जन्मजात सदस्यता, अंतरविवाही समूह और कुछ नवीन संदर्भों में यह समस्त भारत में क्रियाशील है।

   आज भारत सरकार ने आरक्षण के आधार के रूप में और जनगणना के आधार के रूप में जाति को निरंतरता प्रदान की है। राजनीतिक दलों द्वारा भी मतों को लाभबंद करने और सत्ता को प्राप्त करने के लिए जाति का प्रयोग किया जा रहा है। आज जाति कई राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार के रूप क्रियाशील है।
6. ***वर्ग असमानता एवं वर्ग स्तरीकरण का विकास–*** परंपरागत भारतीय समाज में असमानता और स्तरीकरण का प्रमुख स्वरूप जाति था, परन्तु वर्तमान में धन के महत्त्व में वृद्धि हुई है और वर्ग असमानता और वर्ग स्तरीकरण (आर्थिक आधार पर निर्मित असमानता एवं ऊंच-नीच का भेदभाव) का उद्भव संभव हुआ है। यद्यपि भारत सरकार ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में निर्धारित करके निरंतर इस असमानता को दूर करने का प्रयास करती रही है। फिर भी यह असमानता आज बनी हुई है और आर्थिक सुधार की नवीन प्रक्रिया ने इसकी निरंतरता को और पुष्ट किया है।
7. ***एकाकी परिवार के साथ संयुक्त परिवार की विद्यमानता–*** वर्तमान भारतीय समाज में एकाकी परिवार का तीव्रता से विकास हुआ है विशेषकर नगरों में इस तरह के परिवारों की बहुलता है जिसमें पति, पत्नी एवं उनके अविवाहित बच्चे शामिल होते हैं। परंतु ये एकाकी परिवार पश्चिमी समाजों की तरह अलग-थलग एकाकी परिवार (Isolated Nuclear Family) नहीं है बल्कि यह अपने नातेदारों के साथ जुड़े हुए होते हैं। नगरों में रहने वाले ये एकाकी परिवार गाँव के पृथक परिवार की एक शाखा के रूप में विद्यमान होते हैं और पर्व, त्यौहार, शादी विवाह आदि के अवसर पर एकत्रित होकर और एक दूसरे के समय-समय पर सहयोग देकर अपनी संयुक्तता को अभिव्यक्त करते हैं। इस

तरह वर्तमान भारतीय समाज में भी संयुक्त परिवार की निरंतरता बनी हुई है। परन्तु यह भी सत्य है कि इनके बीच संबंधों की प्रगाड़ता में कमी आई है।

8. ***पितृसत्तात्मकता में कमी और स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार-*** यह सही है कि आज भी भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में लिंग असमानता विद्यमान है परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि यह पितृसत्तात्मकता पहले की अपेक्षा काफी कमजोर हुई है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण ने लिंग समानता की दिशा में सामाजिक बदलाव को संभव बनाया है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों के समान सहभागिता दर्ज करने में लगी हुई हैं।

9. ***धार्मिक स्वरूप के साथ विवाह के आधुनिक रूप का विकास-*** वर्तमान भारतीय समाज में विवाह पूर्णत: एक धार्मिक संस्कार नहीं रह गया है। बावजूद इसके अग्नि के सात फेरे, मंत्रोंच्चारण आदि धार्मिक कृत्यों की प्रधानता बनी हुई है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 द्वारा विवाह विच्छेद को वैधानिक मान्यता दे देने से भारत में हिन्दुओं में विवाह एक समझौता का रूप धारण कर चुका है। परंतु व्यवहार में आज भी हिन्दू पति पत्नी अपने संबंधों को आजन्म निभाने का प्रयास करते हैं। भारत में मुस्लिम समुदायों में भी विवाह के आधुनिक रूपों का विकास हुआ है और बहुपत्नी विवाह और तलाक से मुसलमान परहेज करने लगे हैं। आज भी भारत के जनजातियों में विवाह के कुछ परंपरागत रूप जैसे गोल गधेड़ों, हरण विवाह, सेवा विवाह, अनादर विवाह आदि देखे जा सकते हैं परन्तु इनमें भी अब आधुनिक विवाह की ओर परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है।

आज भारत में मुख्यत: हिन्दुओं में विवाह संबंध निषेध (जाति बर्हिविवाह, गोत्र, अंतरविवाह, सप्रवर विवाह, सपिण्ड विवाह आदि) कमजोर हुए हैं और विवाह संबंधी नियमों में जातीय अंतरविवाह भी अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। परन्तु यहाँ भी अंतरजातीय विवाह की घटनाएँ दिखाई देने लगी हैं। भारत सरकार द्वारा अंतरजातीय विवाह को सामुदायिक एकीकरण हेतु आवश्यक मानते हुए उत्साहित किया जा रहा है और अनुलोम विवाह पर 50,000 रुपये की धनराशि प्रदान की जाती है। गोत्र बर्हिविवाह के नियम यद्यपि महत्त्वहीन होते जा रहे हैं तथापि कुछ जातियों द्वारा आज भी इसको शक्ति से लागू करवाने का प्रयास किया जा रहा है (जाट जाति में खाप पंचायत द्वारा) और इस नियम का उल्लंघन करने वालों को बँधवाकर या हत्या करके दंडित किया जा रहा है। आज भारत में विवाह के कुछ नवीन रूप भी दृष्टिगत होने लगे हैं जैसे विवाह का बाजारीकरण (राहुल महाजन) ख्याति प्राप्ति हेतु विवाह (सलमान रूश्दी-पद्मा लक्ष्मी) आदि।

10. ***शिक्षा व्यवस्था में आधुनिकता-*** वर्तमान भारत में यद्यपि परंपरागत कर्मकांडीय शिक्षा आंशिक तौर पर विद्यमान है तथापि आधुनिक शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ है। इस आधुनिक शिक्षा में उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, माध्यमिक एवं प्राथमिक शिक्षा से लेकर साक्षरता तक को शामिल किया जाता है। हालाँकि अभी भी संपूर्ण भारतीयों को आधुनिक शिक्षा से शिक्षित नहीं किया जा सका है और शैक्षिक असमानता धार्मिक स्तर पर, जाति स्तर पर, लैंगिक स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर विद्यमान है फिर भी हम इस दिशा में निरंतर प्रयासरत हैं।

11. ***लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं लोकतांत्रिक समाज का निर्माण क्रियाशील-*** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिक विकसित समाजवादी भारतीय समाज के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया गया और इसके लिए लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था को स्वीकार किया गया। यह लोकतांत्रिक राज्य भारत में एक प्रक्रिया के रूप में क्रियाशील रहा है जो निरंतर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की ओर अग्रसर है। इसके लिए लोकतांत्रिक राज्य में निरंतर लोकतांत्रिक संस्थाओं के अधिकाधिक विकास द्वारा राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाकर लोकतंत्र को वास्तविक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है ताकि आधुनिक भारतीय समाज के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस दिशा में दबाव समूहों की संख्या में वृद्धि, राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि, सूचना का अधिकार, नवीन पंचायतीराज का उद्भव आदि प्रमुख प्रयास रहे हैं।

12. ***आधुनिक कृषि अर्थव्यवस्था, औद्योगिक अर्थव्यवस्था एवं सेवा अर्थव्यवस्था-*** परंपरागत रूप से भारतीय समाज कृषि प्रधान समाज था, परन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ कृषि व्यवस्था को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया (ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग) वहीं आधुनिक उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र का भी तीव्रता से विस्तार हुआ है।

आज हमारे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में आधे से अधिक भाग में सेवा क्षेत्र ही योगदान करता है। आज BPO, सॉफ्टवेयर, बैंकिंग, बीमा, होटल, पर्यटन जैसे क्षेत्रों ने व्यापक महत्त्व प्राप्त कर लिया है।

13. ***नगरीकरण एवं अतिनगरीकरण-*** आधुनिक उद्योगों के विकास ने भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है। वर्ष 1901 में जहाँ जनसंख्या का 11% ही नगरों में निवास करता था वहीं आज लगभग 32% जनसंख्या नगरों में रहती है। दिल्ली, मुम्बई जैसे महानगर तो आज अति नगरीकरण के शिकार हैं।

14. ***जनजातियों का आधुनिकीकरण-*** जनजातीय समुदाय भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग है जिनकी संख्या लगभग 8.6%

है। इसमें संथाल, भील, मीणा, गारो, खासी, हो, बैगा, गोण्ड आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं। ये जनजातियाँ भारत की सर्वाधिक पिछड़ा समुदाय है। सरकार के प्रयास से इनका तीव्रता से विकास हुआ है और इनके सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का काफी हद तक आधुनिकीकरण संभव हुआ है। आज ये जनजातियाँ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में, प्रशासनिक व्यवस्था में, शिक्षा व्यवस्था में, आर्थिक व्यवस्था में बढ़ चढ़कर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं। परन्तु इनका एक भाग आज भी पिछड़ेपन का शिकार है।

15. वैश्विक संस्कृति का प्रसार और वैश्विक समाज का निर्माण- आर्थिक सुधार के बाद होने वाली संचार क्रांति ने भारत के सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों का फैलाव विश्व के अन्य देशों तक कर दिया है और फलतः विश्व के अन्य देशों की संस्कृति का भारतीय समाज पर प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई देने लगा है रहन-सहन, खानपान, जीवनशैली, वस्त्र, साज-सज्जा आदि सभी क्षेत्रों पर इनका प्रभाव देखा जा सकता है। चाऊमीन, मोमोज से लेकर पिज्जा तक और वेलेंटाइन डे, लिव-इन-रिलेशनशिप, समलैंगिकता जैसे नवीन तरीकों का प्रचलन आज इसी वैश्विक संस्कृति के प्रसार का परिणाम है। इसके कारण आज भारतीय समाज एक वैश्विक समाज का स्वरूप लेता जा रहा है।

भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : समकालीन मुद्दे

भारत में परंपरा, आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण

'परंपरा' संस्कृत शब्द 'ऐतिह' तथा अंग्रेजी शब्द 'Tradition' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ है, विरासत में प्राप्त होना अर्थात् परंपरा शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है जिसका उद्गम स्मृतियों, ऋषि-मुनियों के आप्त वाक्यों अथवा पौराणिक नायकों द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान से हुआ है। दूसरे शब्दों में, हमारे पूर्वजों द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों, विश्वासों व कार्य करने के तरीके जो हमें विरासत में प्राप्त होते हैं, परंपरा कहे जाते हैं। स्पष्ट है, परंपरा किसी समुदाय का वह संचरित मूल्य एवं मान्य व्यवहार है जो दीर्घकाल से चला आ रहा है।

परंपराएं अतीत के द्वारा हस्तांतरित विश्वासों और व्यवहारों की पूँजी होती हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने के कारण इनके बारे में यह विश्वास जम जाता है कि ये मूल्यवान हैं और समाज की एकता एवं सामाजिक सुदृढ़ता के लिए उपयोगी हैं। परंपरा की धारणा जैसा है उसी को अपनाने की प्रवृत्ति पर जोर देती है और नवीनता के प्रति संदेह या भय की धारणा रखती है और इसका विरोध करती हैं।

परंपराएँ पूर्णतः स्थिर नहीं होती हैं तथा स्थान व समय के अनुसार इनमें भी बदलाव आता रहता है। इस बदलाव की प्रक्रिया में कई बार पुरानी व उपयोगिताहीन परंपराएँ समाप्त हो जाती हैं तो कई बार यह अपने बदले हुए रूप के साथ अपनी निरंतरता को बनाए रखती हैं।

परंपरा के उपरोक्त अवधारणात्मक विश्लेषण के आधार पर यदि भारतीय परंपरा पर विचार किया जाए तो इसके निम्न लक्षण परिलक्षित होते हैं-

1. धर्म की प्रधानता परंपरागत भारतीय समाज का केन्द्रीय तत्त्व रहा है और सामाजिक जीवन के सभी पक्ष इसी के इर्द-गिर्द संगठित रहे हैं।
2. परलोकवादिता को भी धर्म के संदर्भ में भारतीय परंपरा के प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि परंपरागत भारतीय समाज के लोगों की क्रियाओं की उन्मुखता इहलोक के बजाय पारलौकिक जगत की ओर होती है। भारतीय परंपरा में निहित जीवनचक्र के संस्कार, मोक्ष का लक्ष्य आदि इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।
3. संस्तरण भी परंपरागत भारतीय समाज का एक प्रमुख लक्षण है जो जाति व्यवस्था, गुण, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ आदि सभी में दृष्टिगत होता है।
4. भारतीय परंपरा का एक अन्य प्रमुख लक्षण इसमें निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलेपन की विद्यमानता है, जिसके चलते इसमें परिवर्तन की गुंजाइश सदैव बनी रहती है। भारत में बौद्ध एवं जैन धर्म का उद्भव परंपरा में इस लक्षण की विद्यमानता की पुष्टि करते हैं।
5. सामंजस्य एवं सात्मीकरण को भी भारतीय परंपरा के प्रमुख लक्षण के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारत में शक, हूण, कुषाण आदि का आगमन और भारतीय परंपरा के साथ उनका संपर्क तथा उनके साथ भारतीय परंपरा का सामंजस्य और स्वयं में उनको आत्मसात करने की प्रवृत्ति ऐतिहासिक रूप से विद्यमान रही है।
6. सहिष्णुता भारतीय परंपरा का एक अन्य प्रमुख गुण रहा है और अन्य संस्कृतियों एवं परंपराओं के प्रति यह कभी भी कठोर नहीं रहा है। एक तरफ इस्लाम धर्म के विरूद्ध बोलने पर **सलमान रुश्दी** पर फतवा जारी कर देना तथा दूसरी तरफ **एम. एफ. हुसैन** द्वारा हिन्दू देवियों का नग्न चित्र बनाने पर उनको कलाकार कहकर सहन कर लेना इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर परिलक्षित करता है।
7. भारतीय परंपरा का एक और प्रमुख गुण इसकी निरंतरता है। भारतीय परंपरा में विद्यमान निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलापन,

सहिष्णुता, सामंजस्य एवं सात्मीकरण के लक्षणों ने इसकी निरंतरता को संपोषित किया है और तमाम परिवर्तनों के बाद भी आज भारतीय परंपरा अपनी निरंतरता को बनाए हुए हैं।

आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण (Modernity and Modernization)

'आधुनिक' शब्द अंग्रेजी शब्द 'Modern' का हिन्दी अनुवाद है जिसका अर्थ है प्रचलन या फैशन, अर्थात् जो भी समकालीन है या जिसका वर्तमान समय में प्रचलन है वही आधुनिक है, चाहे वह अच्छा है या बुरा, हम उसे चाहते हैं अथवा नहीं। आधुनिकता का यह अर्थ वृहद् संदर्भ को प्रस्तुत करता है परंतु अपने वर्तमान और विशिष्ट संदर्भ में बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने समझने और व्यवहार करने के ऐसे तौर तरीके को आधुनिकता कहा जाता है जिसमें प्रगति की आकांक्षा विकास की आशा और परिवर्तन के अनुकूल अपने आप को ढालने का भाव निहित होता है। यह इस बात पर बल देती है कि बौद्धिक एवं तार्किक विश्व-दृष्टि के माध्यम से सामाजिक प्रगति हासिल की जा सकती है। अपने इस विशिष्ट अर्थ में आधुनिकता की शुरूआत यूरोप में प्रबोधनकाल से मानी जाती है किन्तु एक ठोस विचारधारा के रूप में इसका विकास 20वीं सदी के अंतिम वर्षों में ही संभव हुआ है।

अपने समकालीन एवं विशिष्ट संदर्भ में आधुनिकता के कई लक्षण बताए गए हैं जिनमें परानुभूति, वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, धर्मनिरपेक्षता, उन्नत एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी, भविष्योन्मुखता, व्यक्तिवादिता आदि प्रमुख हैं।

आधुनिकता के उपरोक्त लक्षणों के अनुरूप सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि पक्षों में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा परंपरागत या पूर्व औद्योगिक समाज आधुनिक समाज की विशेषताओं को अपनाते हैं। इस तरह आधुनिकीकरण 'आधुनिकता' के उन क्षेत्रों में प्रसार की प्रक्रिया है जो अभी तक परंपरागत हैं या आधुनिक नहीं हैं। इसके द्वारा परंपरागत या पूर्व आधुनिक समाज समूहवाद, भाग्यवाद, रूढ़िवाद व धर्मान्धता से मुक्ति प्राप्त करता है और आधुनिक समाज के रूप में तब्दील हो जाता है।

आधुनिकीकरण किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं होता है बल्कि इस प्रक्रिया को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इन क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को निम्न रूपों में देखा जा सकता है-

1. सामाजिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति के महत्त्व में वृद्धि, पुरानी धारणाओं को त्याग कर नए व्यवहारों को अपनाने की प्रवृत्ति तथा संरचनात्मक विभेदीकरण में वृद्धि के रूप में घटित होती है।
2. राजनीतिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया नागरिकों द्वारा सार्वभौमिक सत्ता की वैधता की प्राप्ति, नागरिकों में वयस्क मताधिकार के आधार पर राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण, समाज के केन्द्रीय कानून, प्रशासनिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का विस्तार एवं प्रसार तथा प्रशासकों द्वारा जनता की भलाई के लिए नीति-निर्माण आदि के रूप में दृष्टिगत होता है।
3. आर्थिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया उत्पादन, वितरण, आवागमन तथा संचार हेतु पशु एवं मानवीय शक्ति के स्थान पर अमानवीय अर्थात् जड़ शक्ति का प्रयोग, मशीनों, तकनीकी एवं औजारों का अधिकाधिक प्रयोग, उच्च तकनीकी के परिणामस्वरूप उद्योग, व्यापार, व्यवसाय आदि में वृद्धि, औद्योगीकरण में तीव्र वृद्धि, आर्थिक कार्यों में उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि आदि के रूप में क्रियाशील होती है।

भारत में औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान आधुनिकीकरण की शुरूआत

भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना 17वीं शताब्दी में हुई और इसके साथ ही भारतीय समाज का संपर्क आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के साथ व्यापक रूप से संभव हुआ। फलतः भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ औपनिवेशिक शासन के प्रमुख प्रभावों में से एक था। अंग्रेजों द्वारा भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाए रखने के लिए कुछ नई तकनीक एवं संरचनाओं को भारतीय समाज पर लागू किया गया और इसी के साथ भारत में आधुनिकीकरण का प्रवेश संभव हुआ।

अंग्रेजों द्वारा अपने लाभ हेतु उत्पादन में नई मशीनी तकनीक का प्रयोग करके औद्योगीकरण की नींव रखी गई तथा व्यक्ति की योग्यता को महत्त्व प्रदान किया गया, व्यापार की नई बाजार प्रणाली को लागू किया गया, अपने व्यापार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु तथा प्रशासन को दुरूस्त करने हेतु यातायात एवं संचार के आधुनिक साधनों का विकास किया गया, नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र किया गया और इस तरह भारत में आर्थिक क्षेत्र के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। फलतः भारतीय समाज में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विभेदीकरण संभव हुआ, वर्ग स्तरीकरण का विकास संभव हुआ, कई नवीन वर्गों तथा संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ, प्रवास के दर में वृद्धि हुई, समाज में अर्जित प्रस्थिति को महत्त्व प्राप्त हुआ, व्यक्तिवादिता का विकास हुआ जिसके कारण परंपरागत संरचनाओं में आधुनिकीकरण की दिशा में परिवर्तन प्रारंभ हो गया।

आधुनिक पश्चिमी सभ्यता समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, व्यक्तिवादिता, विवेकशीलता, मानववाद के दृष्टिकोण पर आधारित थी। औपनिवेशिक शासनकाल में प्रारंभ की गई औपचारिक आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने, जो धर्मनिरपेक्ष, तार्किक एवं वैज्ञानिक थी, न केवल योग्यता एवं प्रदत्त प्रस्थिति को महत्त्व प्रदान किया बल्कि स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता के

मूल्यों को प्रसारित करके हमारे जीवन के सभी पक्षों को इस दिशा में प्रभावित किया और भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अग्रसारित किया फलतः भारतीय समाज में धर्म के प्रभाव में कमी आई सोपानिकता कमजोर हुई निम्न जातीय समूहों एवं स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार प्रारंभ हुआ तथा सामूहिकता की जगह व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति विकसित होने लगी जिसने नातेदारी व्यवस्था, परिवार, विवाह आदि में नवीन परिवर्तनों और प्रस्थिति उन्नयन हेतु विभिन्न व्यक्तियों व समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष का बीजारोपण किया।

औपनिवेशिक शासनकाल में नवीन शिक्षा व्यवस्था की शुरूआत प्रारंभ में मुंबई, कलकत्ता एवं मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना के रूप में भारत के तीन क्षेत्रों में हुई जिसने मुख्यतः दो तरह के परिवर्तनों को संभव बनाया–

1. इन शिक्षण संस्थानों में आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ जो विवेकशीलता के सिद्धांत पर बल देता था और जिसने भारतीय समाज में आधुनिकीकरण को नेतृत्व प्रदान किया।
2. सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलन जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि का प्रारंभ हुआ। इसने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में बदलाव एवं समन्वय की प्रक्रिया को क्रियाशील किया इससे परंपरागत कुरीतियों एवं मान्यताओं के उन्मूलन की दिशा में परिवर्तन संभव हो सका।

अंग्रेजों द्वारा वयस्क मताधिकार, संगठित व प्रशिक्षित पृथक न्याय व्यवस्था, औपचारिक एवं लिखित कानून व्यवस्था, आधुनिक सैन्य संगठन, नौकरशाही व्यवस्था पर आधारित सिविल सेवा का अखिल भारतीय स्वरूप आदि की शुरूआत की गई और इस दिशा में बहुत सारे कानूनों का निर्माण किया गया जिससे राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की शुरूआत हुई। परिणामस्वरूप, शक्ति संरचना में शक्ति की प्राप्ति हेतु प्रतिस्पर्धा तेज हुई, शक्ति संरचना का परंपरागत एवं आनुवांशिक स्वरूप कमजोर हुआ और लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

यहाँ ध्यान देने योग्य प्रमुख बात यह है कि औपनिवेशिक काल में निश्चित रूप से भारत में आधुनिक संरचना और संस्कृति की पृष्ठभूमि तैयार हुई जो पूरे भारत वर्ष में प्रभावशाली रही। फिर भी, इस दौर में स्थानीय या लघु संरचनाएँ, जिनमें परिवार, जाति एवं ग्राम शामिल हैं, विशेष प्रभावित नहीं हुए। क्योंकि, अग्रेंजों की प्रारंभिक नीति इन क्षेत्रों में न्यूनतम हस्तक्षेप की बनी रही। भारतीय परंपरा के आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के विकास की पूर्णतः अभिव्यक्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संभव हो सकी जब बृहद् संरचनाओं, लघु संरचनाओं एवं लघु तथा बृहद् परंपराओं के मध्य आधुनिकीकरण में असंगति को काफी हद तक समाप्त कर दिया गया, जो अंग्रेजी शासनकाल के दौरान विद्यमान थी।

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के स्वरूप

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के प्रति भारतीय समाज में तीन तरह की प्रतिक्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं–

1. परंपरा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विरोध
2. आधुनिकीकरण द्वारा परंपरा का विस्थापन
3. भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण

परंपरा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विरोध

प्रथम प्रकार की प्रतिक्रिया घोर परंपरावादी और कट्टरपंथियों की थी जो भारतीय परंपरा में निहित तत्त्वों एवं आदर्शों को श्रेष्ठ मानते थे और इससे अलग हर विदेशी तत्त्व एवं आदर्श को संदेह की दृष्टि से देखते थे और त्याज्य मानते थे। इनके अनुसार आज के युग की सभी उपलब्धियाँ परंपरागत भारत में (वैदिक काल या रामायण व महाभारत काल में) घटित हो चुकीं थी। इसलिए ये पुनः अपनी परंपरा को स्थापित करना और अपने अतीत के गौरव को वापस लाना चाहते थे। आधुनिकीकरण के प्रति इनकी प्रतिक्रिया विरोध के रूप में प्रकट हुई और इन्होंने हर आधुनिक चीज को विदेशी कहकर उसका विरोध किया और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में परंपरा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया।

आधुनिकीकरण द्वारा परंपरा का विस्थापन

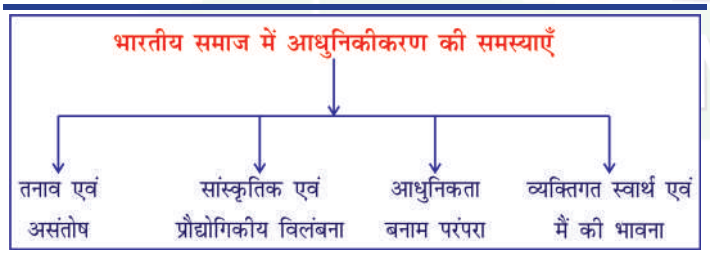
आधुनिकीकरण के प्रति दूसरी प्रतिक्रिया उन लोगों की थी जिन्हें तत्कालीन समय में आधुनिकतावादी कहा जाता था। ये परंपरा में निहित सभी तत्त्वों व आदर्शों को पुरातनपंथी पोंगापंथी व अंधविश्वास कहकर उनका माजक उड़ाते थे व अंग्रेजों के साथ आए प्रत्येक विदेशी चीज को श्रेष्ठ मानते थे। इनके अनुसार भारतीय समाज का कल्याण इसी में है कि यह शीघ्रता से पश्चिमी समाज की भाँति हो जाए। आधुनिकीकरण के प्रति इनकी प्रतिक्रिया परंपरा के सभी तत्त्वों का त्याग और आधुनिकता के सभी तत्त्वों एवं आदर्शों की पूर्ण स्वीकृति के रूप में हुई। इन लोगों ने आधुनिकता के मूल्य प्रतिमान, जीवनशैली तथा विश्वदृष्टि सभी को पूर्ण रूपेण स्वीकार किया व इसका समर्थन किया।

भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण

आधुनिकीकरण के प्रति तीसरी प्रतिक्रिया समन्वयवादियों की थी जो परंपरा और आधुनिकता के मध्य समन्वय के पक्षधर थे। इनका मानना था कि आधुनिकता के संदर्भ में परंपरा पर फिर से विचार करना चाहिए। परंपरा में जो तत्त्व एवं आदर्श रखने योग्य हैं उसे बनाए रखना चाहिए और जो वर्तमान समय में प्रासंगिक या उपयोगी नहीं हैं उनका त्याग करना चाहिए। इसी तरह, आधुनिकता के तत्त्वों एवं आदर्शों में से जो तत्त्व वर्तमान भारतीय समाज एवं संस्कृति के लिए प्रासंगिक, उपयोगी एवं विवेकपूर्ण हैं उसे स्वीकार करना चाहिए और जो नहीं हैं उसे छोड़ देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, परंपरा

एवं आधुनिकता के समन्वय से ही भारतीय समाज का कल्याण एवं विकास संभव है इसलिए इस तीसरी विचारधारा के समर्थकों ने परंपरा के साथ आधुनिकता को संशोधित रूप में स्वीकार किया और भारत में भारतीय समाज व संस्कृति के साथ सामंजस्य बैठाते हुए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को संशोधित रूप में अग्रसारित किया। उपरोक्त तीनों प्रतिक्रियाओं में से तीसरी प्रतिक्रिया सर्वाधिक तर्कसंगत एवं व्यवहारिक रूप से सफल रही है अर्थात् भारत में परंपरा का बिना विखंडन किए आधुनिकीकरण संभव है और दोनों में परस्पर विरोध ना होकर दोनों का सह अस्तित्व संभव दिखाई पड़ रहा है। संतान के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धति का प्रयोग तथा जन्म के शुभ अवसर पर पारंपरिक कर्मकांड (छठी आदि), आधुनिक तकनीक से कृषि कार्य तथा मकर संक्रांति, पोंगल, लोहड़ी, वैशाखी का त्यौहार, परिवार नियोजन की स्वीकृति और संतान को ईश्वरीय इच्छा के रूप में मानना, औद्योगीकरण एवं यंत्रीकरण तथा विश्वकर्मा पूजा के अवसर पर यंत्रों की पूजा, जीवन के अनेक क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा अनेक क्षेत्रों में अंधविश्वास को मान्यता (जैसे-बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, शुभ-अशुभ की मान्यता आदि) ऐसे उदाहरण हैं जो उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हैं। अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण और भारतीय परंपरा में एक अटूट क्रम विद्यमान रहा और कुछेक अंतर्विरोधों के बावजूद दोनों ने एक-दूसरे को संपोषित किया है। इस प्रक्रिया ने निश्चित रूप से भारतीय समाज को आधुनिक समाज की ओर अग्रसारित किया है। परन्तु यह परंपरा को पूर्णत: विस्थापित करके नहीं हुआ है, बल्कि परंपरा का आधुनिकीकरण हुआ है और भविष्य में अनुकूलनकारी परिवर्तन की इस प्रक्रिया की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी, कि आधुनिकीकरण एवं परंपरा के मध्य उत्पन्न तनाव का समाधान कैसे किया जाता है क्योंकि जहाँ समाधान सही नहीं रहा है, वहाँ आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने कई तरह के विखंडन को उत्पन्न दिया है। (जैसे-इंडोनेशिया, वर्मा, आदि देशों में) और जहाँ यह समाधान सही तरीके से हुआ है, वहाँ आधुनिकीकरण सफल रहा है। (जैसे-जापान में)

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समस्याएँ



भारतीय समाज परंपरागत व्यवस्था से आधुनिकीकृत व्यवस्था की ओर बढ़ने से परंपरा एवं आधुनिकता की समांतर धाराएँ एक साथ दिखाई दे रही हैं जो एक दूसरे के विपरीत मूल्यों पर आधारित होने के कारण अनुकूलन की समस्या उत्पन्न कर रही हैं। परंपरा और आधुनिकता के इस संक्रमण काल से तमाम विरोधाभास एवं समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं जिन्हें निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है:-

1. ***तनाव एवं असंतोष:-*** परंपरागत भारतीय समाज में शिक्षा की दर अत्यंत कम थी। विभिन्न सरकारी एवं गैरसरकारी उपायों के उपरांत यहाँ साक्षरता में वृद्धि हुई। धीरे-धीरे उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा में भी भारतीय समाज आगे बढ़ने लगा। किन्तु सभी शिक्षित लोगों को उनकी योग्यतानुसार रोजगार नहीं मिला। जिसके कारण उनमें तनाव, कुंठा एवं असंतोष उत्पन्न हुआ। ये बेरोजगार युवक आगे-चलकर गैर कानूनी गतिविधियों में भी शामिल होने लगे हैं।
2. ***सांस्कृतिक एवं प्रौद्योगिकीय विलंबना:-*** भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में समान रूप में आरंभ नहीं हुई बल्कि समाज के कुछ तत्त्व इससे अछूते ही रहे। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण तथा अर्थव्यवस्था के विकास के साथ भारतीय समाज में वर्ग व्यवस्था के लक्षण आने लगे किन्तु जाति व्यवस्था फिर भी बनी हुई है। भारत में उत्पादन प्रणाली की उत्पादन शक्तियों का आधुनिकीकरण हुआ पर उत्पादन संबंध में बदलाव बहुत कम आया। भारत में शिक्षा में वृद्धि के उपरान्त राष्ट्रवादी भावना में वृद्धि हुई किन्तु साथ ही क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद अभी तक बना हुआ है। महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गई है तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, किन्तु पितृसत्तात्मकता आज भी बनी हुई है।
3. ***आधुनिकता बनाम परंपरा:-*** भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ साथ परंपराए भी अपना स्थान बनाए हुए हैं। शहर और गाँव सभी समाजों में यह स्थिति बनी हुई है। लोग जब आधुनिक मूल्यों से खतरा महसूस करते हैं तो वे परंपरागत मूल्यों की ओर वापस लौटने लगते हैं। विभिन्न धर्मों के पुनरूत्थानवादी आंदोलनों में ऐसा स्पष्ट देखा जा सकता है।
4. ***व्यक्तिगत स्वार्थ एवं मैं की भावना:-*** परंपरागत भारतीय समाज में समूह हित सर्वोपरि था तथा परिवार, समाज या समूह के प्रति हम की भावना होती थी किन्तु आधुनिकता के विकास के साथ व्यक्ति तार्किक होता जा रहा है उसमें भावनात्मक मूल्यों की कमी आ रही है जिसके कारण वह केवल व्यक्तिगत स्वार्थ देख रहा है। उसके अन्दर मैं की भावना आ रही है और हम की भावना गायब होती जा रही हैं जिससे सामाजिक सौहार्द्र में कमी आ रही है। लोगों में द्वितीयक एवं संविदात्मक संबंध बनते जा रहे हैं और प्राथमिक एवं सहयोगात्मक संबंधों में कमी आ रही है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से समाज

में सहयोगात्मक ही नहीं बल्कि असहयोगात्मक तत्त्वों की वृद्धि हो रही है। लोगों में भौतिकवादी मूल्यों के प्रति रूझान होने से तमाम समस्याएँ उत्पन्न हो रहीं हैं। व्यक्ति भौतिक विकास में असफल होने से असंतुष्ट होता जा रहा है और उसमें मानसिक तनाव भी उत्पन्न हो रहें हैं। कभी कभी आपराधिक गतिविधियाँ भी इसके कारण उत्पन्न हो रही हैं। किन्तु यह स्थितियाँ संक्रमण के दौर के कारण आई हैं और आशा है कि भारतीय समाज संक्रमण की स्थिति से निकलकर आधुनिकीकरण से लाभांवित हो सकेगा।

जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभाव

एक विशेष मुद्दे, विचार या सूचना आदि को अन्य लोगों तक संप्रेषित करना संचार कहलाता है। आधुनिक युग सूचना का युग है और इन सूचनाओं को एक साथ जनता के बहुत बड़े भाग तक संप्रेषित करना जनसंचार कहलाता है। जनसंचार के अंतर्गत आधुनिक संचार प्रणाली यथा रेडियो, टीवी, समाचारपत्र, इंटरनेट के माध्यम से किसी सूचना या विचार को द्रुत गति से जनता के पास तक पहुँचाया जाता है।

विकास और परिवर्तन में सूचना एक महत्त्वपूर्ण कारक है और जनसंचार के साधनों द्वारा इन सूचनाओं का प्रसार सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाता है या इसके लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है। मनोवृत्तियों व मूल्यों में बदलाव लाने हेतु यह न केवल नवीन अवसर व ज्ञान प्रदान करता है बल्कि लोगों के ज्ञान के सीमा के विस्तार में भी सहायता प्रदान करता है।

वर्तमान भारत के जनसंचार माध्यमों की विषयवस्तु पर विचारोपरांत यह स्पष्ट होता है कि आज अधिकांश साधन भूमंडलीकरण तथा आधुनिकीकरण के मूल्यों के प्रसार में लगे हैं जिसके दो महत्त्वपूर्ण परिणाम रहे हैं-

1. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिली है।
2. पाश्चात्य सांस्कृतिक तत्त्वों का प्रचार हुआ है।

आधुनिकीकरण के तत्त्वों (जैसे स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता व लोकतांत्रिक मूल्यों) ने जहाँ भारतीय सामाजिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन को सक्रिय बनाया है वहीं पाश्चात्य संस्कृति के भौतिकवादी-उपभोक्तावादी तत्त्वों ने ऐसी प्रवृत्ति (व्यक्तिवादी व महत्त्वाकांक्षी प्रवृत्ति, धन से धन कमाने की प्रवृत्ति, भोगविलास की प्रवृत्ति, प्रतिस्पर्धा एवं असहिष्णुता, सांस्कृतिक विविधता का ह्रास आदि) को प्रसारित किया है जो भारतीय संस्कृति के तत्त्वों (सहिष्णुता, सामूहिकता, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक विविधता आदि) को कमजोर किया है। जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभावों को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-

1. भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, एवं
2. भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव।

भारतीय संस्कृति पर प्रभाव (Effect of Indian Culture)

जनसंचार के साधनों ने भारतीय संस्कृति में आधुनिकता व पश्चिमी संस्कृति के तत्वों का तीव्र प्रसार किया है जिसको निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. पाश्चात्य परिधानशैली का आगमन जहाँ पुरुषों व स्त्रियों के काम व आराम के अनुकूल है वहीं कम कपड़ों के कारण इसने स्त्रियों के प्रति व्यभिचारों को बढ़ाया है। आज व्यक्ति के लिए फैशन व सौंदर्य प्रसाधनों के प्रयोग को संचार साधनों के प्रभाव ने आवश्यक बना दिया है और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में स्थापित किया है।
2. आज जनसंचार माध्यमों ने लोक संस्कृति के लिए विशेष प्रश्न खड़े किए हैं। जनसंचार का इनके लिए संदर्भ बन जाने के कारण इनके मूल स्वरूपों का रूपांतरण संभव हुआ है जिससे स्वयं लोक संस्कृति के रचनाकारों की अपनी मौलिक रचनात्मक क्षमता प्रभावित हुई है। आज लोक रचनाओं के साथ लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी अप्रत्यक्ष भागीदारी में बदल गई है। लेकिन दूसरी ओर इसने लोक संस्कृति को भारतीय स्तर पर प्रसारित करने तथा इसकी विलुप्तता को पुनर्जीवित करने का काम भी किया है।
3. कला के व्यापारीकरण में जनसंचार के साधन बिचौलियों का काम कर रहे हैं साथ ही जनसंचार के साधनों व विशेष रूप से जनकलाकारों के बीच भी व्यापारिक मध्यस्थों की भूमिका बढ़ी है। कला के ऊपर कलाकार का हस्तक्षेप कम हुआ है और बाह्य तत्त्वों, नौकरशाही व व्यापारिक मध्यस्थों का हस्तक्षेप बढ़ा है। पाश्चात्य संगीत की ओर मध्यमवर्ग के झुकाव के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत उपेक्षित हुआ है। परंतु इसकी प्रतिक्रिया में शास्त्रीय संगीत की पुनर्स्थापना भी हो रही है।
4. संचार साधनों के प्रभाव से भारत में एक 'पॉप संस्कृति' का उद्भव हो रहा है जिसने भारतीय मानसिकता का शोषण किया है साथ ही भारतीय संस्कृति के मिश्रण ने एक नई विधा को भी उत्पन्न किया है जिसे जनमानस उपयोगी मानता है।
5. जनसंचार के साधनों द्वारा प्रदर्शित व प्रसारित सांस्कृतिक भूमंडलीकरण की विशेषताओं ने स्थानीय व लघु सांस्कृतिक पहचानों के लिए संकट खड़ा किया है। बाजार के महत्त्व में वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों में रुपांतरित कर दिया है फलस्वरूप एक तरफ जहाँ समाज में आर्थिक संवृद्धि आ रही है वहीं दूसरी तरफ सांस्कृतिक वस्तुएँ अर्थहीन हो रही हैं।
6. जनसंचार के साधन सजातीयता की अपेक्षा रखते हैं और संस्कृति का मूलतत्त्व विलक्षणता है। भारत में सांस्कृतिक बहुलवाद को विविधता कायम रखती है न कि सजातीयता। भूमंडलीकरण ने इस सांस्कृतिक विशिष्टताओं के मिश्रण का प्रयास किया है और बहुलता को नकारा है फलतः जहाँ सांस्कृतिक एकीकरण को

बढ़ावा मिला है वहीं राष्ट्रों की सांस्कृतिक स्वायत्तता सकते में आ गयी है।

स्पष्ट है कि जनसंचार माध्यमों का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव सकारात्मक कम और नकारात्मक ज्यादा है। सिनेमा और विभिन्न चैनलों ने आधुनिकता के सकारात्मक मूल्यों को कम और पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों को अधिक प्रसारित किया है जिसे आज भारतीय संस्कृति के समक्ष सांस्कृतिक क्षरण की स्पष्ट समस्या के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव

भारतीय समाज एक परंपरागत समाज रहा है जहाँ धर्म की प्रधानता एवं जाति आधारित बंद स्तरीकरण की व्यवस्था रही है। इस समाज में परिवर्तन की गति अत्यंत मंद रही है परंतु संचार साधनों के विकास ने भारतीय सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तनों को उत्पन्न किया है जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. जनसंचार माध्यमों से प्रसारित आधुनिकीकरण के मूल्यों ने जाति व्यवस्था पर प्रहार किया है, फलतः जातिगत ऊँच-नीच की भावना या अस्पृश्यता जैसे तत्त्वों का ह्रास हुआ है, इनसे संबंधित सोपान के तत्त्व कमजोर हुए हैं और जजमानी व्यवस्था का विघटन संभव हुआ है। परंतु, दूसरी ओर आरक्षण के क्रियान्वयन व पहचान के संकट ने लोगों में जातीय पहचान की आस्था को पुनर्जीवित किया है दलितों में चेतना का आविर्भाव हुआ है और वे इस आधार पर संगठित हुए हैं तथा उनकी क्षैतिजीय भागीदारी में वृद्धि हुई है और इसमें संचार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।
2. आज जनसंचार साधनों द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में प्रेम विवाह को तरजीह दी जा रही है जो युवाओं में तेजी से प्रचलित हुआ है। हालाँकि इससे दहेज जैसी कुरीतियाँ, विवाह में धार्मिक एवं जातिगत प्रतिबंध ढीले पड़े हैं और स्त्रियों को समानता का दर्जा मिला है, परंतु दूसरी तरफ समाज की पकड़ युवाओं पर ढीली हुई है और अतिस्वच्छंदतावादी मूल्यों को बढ़ावा मिला है।
3. आज पाश्चात्य संस्कृति के रीति-रिवाजों का प्रचलन हमारी विवाह संस्था को चुनौती दे रहे हैं। समलैंगिकता का प्रसार भी विवाह पर कुठाराघात है जिसने भारतीय युवा मानसिकता को न केवल इस ओर उन्मुख किया है बल्कि कोलकाता के एक स्वयंसेवी संगठन ने तो इसको मान्यता देने की माँग भी शुरू कर दी है।
4. सम्पत्ति के लिए संबंधों को हाशिए पर रखना, विवाहेत्तर प्रेमसंबंध, संयुक्त परिवार के समझौता व सहिष्णुता के पक्षों का ह्रास, सास-बहू आदि संबंधों में परंपरागत तत्त्वों का ह्रास आदि वर्तमान जनसंचार साधनों का मुख्य विषय रहा है। इन मुद्दों से संबंधित कार्यक्रम जहाँ स्त्री-पुरुष स्वतंत्रता की प्रवृत्ति तथा सदस्यों के मध्य समानता युक्त संबंधों को प्रचलित कर रहे हैं वहीं परंपरागत संस्थाओं को कमजोर कर तथा तलाक की प्रवृत्ति को बढ़ाकर सामाजिक अव्यवस्था को भी उत्पन्न कर रहे हैं।
5. जनसंचार ने एक तरफ जहाँ स्वतंत्रता व समानता के मूल्यों को प्रसारित करके महिलाओं की प्रस्थिति को ऊँचा उठाया है वहीं दूसरी तरफ उन्हें उपभोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों के प्रति परंपरागत आदरभाव को समाप्त किया है। साथ ही, अश्लील कार्यक्रमों को प्रस्तुत करके समाज के युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ा है जिसकी परिणति बढ़ती यौन विकृति, छेड़छाड़, बलात्कार आदि घटनाओं के रूप में हुई है।

इसके द्वारा जहाँ ग्रामीण समाज में धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को विस्तारित करके ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों से धर्म के प्रभावों को कमजोर किया गया है वहीं आस्था, जागरण आदि धार्मिक चैनलों द्वारा धार्मिक तत्त्वों की व्याख्या कर धर्म के प्रति आस्था को पुर्नजागरित किया जा रहा है। धर्म के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण, धर्म का बाजारीकरण, धार्मिक रूढ़िवाद भी इसके प्रभावों में प्रमुख हैं।

आज जनसंचार के साधन विज्ञान व प्रौद्योगिकीय शिक्षा के प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक जीवन के विभिन्न मुद्दों पर जागरुकता को बढ़ाकर और गाँव के लोगों को समकालीन समाज के सभी मुद्दों से परिचित कराकर ग्रामीण विकास में इसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आज रामदेव जी द्वारा धर्म के तत्त्व योग को फैलाकर मानसिक व शारीरिक क्रांति को उत्पन्न किया जा रहा है जिसमें जनसंचार की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। यू.जी.सीके सभी शैक्षिक पाठ्यक्रमों के संदर्भ में तथा दूरस्थ-शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका महत्त्व उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष है कि जनसंचार के साधनों की भूमिका आधुनिकीकरण की दिशा में उन्मुख किसी भी समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है परंतु इसके द्वारा अपेक्षित परिवर्तन के लक्ष्यों की प्राप्ति जनसंचार माध्यमों पर संतुलित नियंत्रण व इसके सकारात्मक प्रयोग द्वारा ही संभव है।

जनसंचार साधन-जनित परिवर्तन की चुनौतियाँ

भारतीय समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन हेतु जनसंचार एक प्रमुख साधन रहा है जिसके द्वारा हमारे देश में एक पराई संस्कृति का प्रसार हुआ है जिसे तृतीय विश्व पर सांस्कृतिक हमले की संज्ञा दी जाती है। इन साधनों से संस्कृति का प्रसार इस तरह होता है कि लोग अपने सामुदायिक व सामाजिक हितों को अपनी निगाहों में उचित नहीं समझते और यह बौद्धिक व सांस्कृतिक प्रचार हमारे राष्ट्रीय संस्कृति को कई आधारों पर चुनौती दे रहा है।

छद्म आधुनिकीकरण इसकी प्रथम चुनौती है। हमने आधुनिकता के आधार पर तार्किकता, परानुभूति, सामाजिक गतिशीलता और सक्रिय सहभागिता को पूरी तरह नहीं अपनाया है बल्कि हम उसके उपभोगवादी लक्षणों में ही उलझकर रह गए हैं। इससे व्यक्ति केन्द्रीयता बढ़ी है और सामाजिक सरोकारों का ह्रास हुआ है। व्यक्तिगत धरातल पर लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक प्रस्थिति व भूमिकाओं को डगमगा दिया है।

दूसरी चुनौती धर्म के उपयोग की है जहाँ धर्म को अल्पकालिक राजनीतिक लाभ का साधन बनाकर विवेकहीन धर्मांतरण को प्रश्रय दिया जा रहा है। धर्म पर आधारित सिद्धांत विस्मृत हो रहे हैं और तांत्रिक व चमत्कारिक बाबा फल-फूल रहे हैं क्योंकि वे अच्छे दामों पर स्वार्थ सेवा में लगे हैं। हमारी संस्कृति अनुकरणकारी, भोगवादी एवं लिप्सावादी संस्कृति बन गई है।

तीसरी चुनौती अविवेकी और निकट दृष्टि की राजनीति की है जहाँ सामूहिकता का क्षय तथा व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रबलता राजनीति को एक साधन या व्यवसाय के रूप में प्रयुक्त करने को उन्मुख करती है।

चौथी चुनौती स्थानीय या लघु सांस्कृतिक पहचानों के संकट की है। बाजार के महत्त्व में वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों में रूपांतरित किया है। सांस्कृतिक तत्त्वों के बाजारीकरण से लोगों में जहाँ आर्थिक समृद्धि आई है तो वहीं दूसरी तरफ इनकी परंपरागत महत्ता में कमी भी आई है। महत्त्वाकांक्षा में वृद्धि कर इसने भले ही सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाया हो परंतु साथ ही गैर-संस्थागत साधनों द्वारा लोगों को अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने को भी प्रेरित किया है। जनसंचार के साधनों ने नवीन कौशल व तकनीक का प्रयोग कर समाज के आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया है। परंतु इस आर्थिक विकास के व्यूह जाल में व्यक्ति धन प्राप्ति की लिप्सा में इतना उलझ गया है कि उसमें सकारात्मक सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रति अरूचि उत्पन्न हो गई है। विज्ञापनों की भरमार ने अति-यथार्थता को प्रस्तुत कर वास्तविकता के प्रति समाज में भ्रम उत्पन्न किया है। इसने तुच्छ इच्छाओं की संतुष्टि को सामाजिक जीवन के केन्द्रीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत कर जनमानस को गंभीर मुद्दों से विमुख किया है।

जनसंचारजनित सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के संदर्भ में उपरोक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि इसने सम्प्रति भारतीय समाज के समक्ष कई चुनौतियों को प्रस्तुत किया है। वैसे तो परिवर्तन की प्रक्रिया में परिवर्तन की चुनौती या अन्तर्विरोध प्रायः अन्तर्निहित होते हैं परंतु भारतीय संदर्भ में ये चुनौतियाँ राष्ट्रीयता की भी हैं और वैश्वीकरण की प्रक्रिया का अंग भी। इस रूप में आज संचार साधन आधुनिकीकरण के साथ वैश्वीकरण की प्रक्रिया के रूप में क्रियाशील हैं और इसने जहाँ कुछ अन्तर्विरोधों के बावजूद आधुनिकीकरण के मूल्यों को प्रसारित कर आधुनिक समाज की रचना की ओर हमें अग्रसर किया है वहीं एक वैश्विक उपसंस्कृति का निर्माण करके प्रतीकात्मक आंतरीकरण से नई आत्मचेतना एवं समानता के आधारों को मजबूत भी किया है। निश्चित ही संचार साधनों के इस प्रभाव ने भारतीय समाज व संस्कृति पर कुछ नकारात्मक प्रभावों को उत्पन्न किया है पर साथ-साथ इसने भारत तथा पाश्चात्य संस्कृति के बीच गहरे संपर्क को स्थापित करके विश्व संस्कृति या विश्व गाँव की अवधारणा को साकार बनाने का सार्थक प्रयास भी किया है। हालाँकि संभावना है कि आधुनिक समाज की रचना के साथ इससे किसी सांस्कृतिक पुनर्जागरण का जन्म होगा पर संभावना यह भी है कि इससे सांस्कृतिक विनाश का खतरा भी उत्पन्न हो जाएगा।

कक्षा कार्यक्रम

- सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम
- भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : महत्वपूर्ण तथ्य एवं आँकड़े- कक्षा कार्यक्रम
- क्रिप्टोकरेंसी का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम
- कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम
- कोविड-19 महामारी का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम

संभावित प्रश्न

1. समकालीन भारतीय समाज के प्रमुख लक्षणों की चर्चा करें?
2. परंपरागत भारतीय समाज की उन विशेषताओं का उल्लेख करें, जिसने तमाम बाधाओं के बावजूद भारतीय समाज को निरंतरता प्रदान की है।
3. परंपरागत भारतीय समाज के आधारभूत लक्षणों की चर्चा करें तथा उनकी समकालीन प्रासंगिकता का विवेचन करें।
4. भारतीय समाज में निरंतरता एंव परिवर्तन के कारकों को स्पष्ट करें।
5. "भारतीय समाज में परंपरा एंव आधुनिकता का सह- अस्तित्व है", स्पष्ट करें।
6. भारतीय समाज पर जनसंचार साधनों के परस्पर विरोधी प्रभावों की समीक्षा करें।
7. आधुनिकीकरण से आप क्या समझते हैं। भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करें?
8. "समकालीन भारतीय समाज की आधुनिकता छद्म आधुनिकता है।" स्पष्ट कीजिए।
9. "भारतीय समाज में आधुनिकता परंपरा को विस्थापित करके नहीं आया है, बल्कि परंपरा की निरंतरता आज भी बनी हुई है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
10. भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समकालीन चुनौतियों को दर्शाइए और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने हेतु अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिए।

3 भारत में जाति व्यवस्था (Caste System in India)

जाति व्यवस्था : अर्थ एवं लक्षण (Caste System : Meaning and Characteristics)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता है, जो भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) के एक प्रमुख स्वरूप को परिलक्षित करती है। जाति व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय समाज कुछ जातीय समूहों (Ethnic Group) में वर्गीकृत है और ये समूह सोपानिक (Hierarchical) रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसके अंतर्गत एक जाति समूह एक अंतर्विवाही समूह (Endogamous Group) होता है जिसकी सदस्यता जन्मजात होती है, उसका एक निश्चित व्यवसाय होता है और जो कुछ विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं के साथ खान-पान और सामाजिक सहवास संबंधी निषेधों का पालन करता है।

उपरोक्त विश्लेषणों के आधार पर जाति व्यवस्था के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:-

1. जाति व्यवस्था सम्पूर्ण समाज को कुछ खण्डों अथवा टुकड़ों में विभाजित करती है और प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति, भूमिका तथा प्रतिष्ठा जन्म से निश्चित होती है।
2. जाति के विभिन्न खण्डों में ऊंच-नीच का एक निश्चित सोपान होता है। जिसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता है।
3. प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय होता है और उस जाति के सभी सदस्य अपने व्यवसाय को ईश्वर प्रदत्त मानकर उसके द्वारा जीविका उपार्जित करना अपना धर्म समझते हैं।
4. प्रत्येक जाति अपने सदस्यों के खान-पान और सामाजिक सहवास (Social Cohabitation) पर कुछ प्रतिबन्ध लगाती है।
5. प्रत्येक जाति में आवश्यक रूप से अन्तर्विवाह के नियम का पालन किया जाता है, अर्थात् कोई भी सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह सम्बंधों की स्थापना नहीं कर सकता।
6. जाति-व्यवस्था में विभिन्न जातियों की सैद्धान्तिक उच्चता व निम्नता के अनुसार कुछ जातियों को विशेष अधिकार प्रदान किए गये, जबकि कुछ जातियों को सामाजिक, धार्मिक व व्यावसायिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

इस प्रकार हिन्दू जाति व्यवस्था ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति पर आधारित है और इस व्यवस्था पर प्रश्न करना अधर्म समझा जाता रहा है। जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति आर्थिक रूप से चाहे कितना भी आगे क्यों न बढ़ जाए लेकिन उसकी सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी आधार पर हिन्दू जाति-व्यवस्था को एक बन्द व्यवस्था के रूप में देखा जाता रहा है।

जाति-व्यवस्था के गुण एवं दोष (Advantages and disadvantages of Caste System)

जाति-व्यवस्था के गुण (Advantages of Caste System)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के एक अनिवार्य अंग के रूप में जाति व्यवस्था में निम्नांकित गुण पाए जाते हैं-

1. जाति व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को स्थिर सामाजिक पर्यावरण प्रदान करती है। इसी आधार पर कहा जाता है कि ''जाति व्यवस्था सामाजिक सुरक्षा का वह आधार है जहां व्यक्ति को रोजगार, आवास और विवाह से सम्बन्धित सुरक्षा प्राप्त होती है, जो व्यक्ति के परिवर्तनशील स्वभाव के कारण सम्भव नहीं हो पाती।''
2. जाति-व्यवस्था एक ही जाति के सदस्यों में सद्भावना एवं सहयोग की भावना विकसित करती है। निर्धन एवं जरूरत मंदों की सहायता करती है। साथ ही जजमानी प्रथा (Jajmani System) द्वारा सभी जातीय समूहों की परस्पर निर्भरता में वृद्धि करती है।
3. यह व्यक्ति के आर्थिक व्यवसाय का निर्धारण करती है। प्रत्येक जाति का एक विशिष्ट व्यवसाय होता है जिससे बच्चों के प्रशिक्षण के अवसर के साथ ही उनका भविष्य भी निश्चित हो जाता है।
4. अन्तर्जातीय विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाकर इसने उच्च जातियों की प्रजातीय शुद्धता (Species Purity) को सुरक्षित बनाए रखा है। इसने सांस्कृतिक शुद्धता (Cultural Purity) पर बल देकर स्वच्छता की आदतों का विकास किया है।
5. चूँकि जाति व्यवस्था व्यक्ति को भोजन, संस्कार और विवाह सम्बन्धी जातिगत नियमों के पालन का आदेश देती है, अत: राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों पर उसके विचार व बौद्धिक क्षमता उसकी जातीय प्रथाओं द्वारा प्रभावित हो जाते हैं।
6. वर्ग-संघर्ष की वृद्धि किए बिना यह वर्ग चेतना का विकास करती है। विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों के लोगों को एक ही समाज में संगठित करने का यह सर्वोत्तम प्रयास था जिसने देश को संघर्षरत प्रजातीय समूहों (Ethnic Groups) में विभक्त होने से बचाया है।

7. यह सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक विभिन्न कार्यों-शिक्षा, शासन, घरेलू सेवा आदि का प्रबन्ध, धार्मिक विश्वास, 'कर्म सिद्धान्त में विश्वास', की संपुष्टि करता है, जिससे कार्यों के विषम विभाजन को भी संसार का दैवीय विधान समझकर स्वीकार कर लिया जाता है।
8. जाति व्यवस्था में जातीय प्रथाएँ, विश्वास, कौशल, व्यवहार एवं व्यापारिक रहस्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती हैं। इस प्रकार संस्कृति की निरंतरता बनी रहती है।
9. इसने सामाजिक जीवन को राजनीतिक जीवन से पृथक् रखकर अपनी स्वतंत्रता को राजनीतिक प्रभावों से मुक्त रखा है।

जाति-व्यवस्था के दोष
(Disadvantages of Caste System)

एक ओर जहाँ हमारी जाति व्यवस्था में कई गुण पाये जाते हैं वहीं यह कई दोषों से भी युक्त है, जो निम्नवत् हैं-

1. चूँकि व्यक्ति को अपने जातीय व्यवसाय को ही करना पड़ता है, जिसे वह अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा के अनुसार बदल नहीं सकता, अतएव इसने श्रम की गतिशीलता को रोका है।
2. इसने अस्पृश्यता (Untouchability) को जन्म दिया है। इसके अतिरिक्त इसने अन्य दोषों, यथा-बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रणाली और जातिवाद को भी जन्म दिया है।
3. इसने एक जाति को दूसरी जाति से पृथक करके तथा उनके बीच किसी भी सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) को प्रतिबन्धित करके हिन्दू समाज में सद्भावना एवं एकता के विकास को रोका है।
4. जाति व्यवस्था में अनुवांशिक व्यवसाय (Hereditary Occupation) के कारण व्यक्ति अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार कोई अन्य व्यवसाय नहीं अपना सकता। यह लोगों की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग नहीं करती, जिससे यह अधिकतम उत्पादन में बाधक सिद्ध होती है।
5. जाति-व्यवस्था देश में राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधक सिद्ध हुई है। जाति-भक्ति की भावना ने दूसरी जातियों के प्रति घृणा उत्पन्न की जो राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अनुकूल नहीं है।
6. यह राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति में बड़ी बाधक रही है। कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करने के कारण लोग परम्परावादी हो जाते हैं। चूँकि उनकी आर्थिक स्थिति निश्चित होती है, इससे उनमें गतिशीलता के प्रति उदासीनता देखी जाती है।
7. जाति-व्यवस्था अप्रजातंत्रीय (Undemocratic) है क्योंकि इसने सबको जाति, रंग अथवा विश्वास के भेदभाव के आधार पर समानता के अधिकार से वंचित कर दिया है।
8. जाति-व्यवस्था ने जातिवाद को जन्म दिया है। इसमें किसी जाति के सदस्यों में जातिगत भावनाएँ होती हैं और वह न्याय, समता, भ्रातृत्व जैसे स्वस्थ सामाजिक मानको को भूलकर अपनी जाति के प्रति अंधभक्ति प्रदर्शित करते हैं। राजनीतिज्ञ जातिवाद (Politician Casteism) की भावना का, राष्ट्रीय हितों को दांव पर लगाते हुए अपने लाभ-हेतु पक्षपोषण करते हैं।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन एवं इसके कारक
(Change in Caste System and its Causes)

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जाति प्रथा से सम्बन्धित जो परिवर्तन स्पष्ट हो रहे हैं उन्हें प्रमुख रूप से तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है: (क) जाति की संरचना में परिवर्तन, (ख) जातिगत निषेधों में परिवर्तन तथा (ग) जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन।

जाति की संरचना में परिवर्तन
(Change in Caste Structure)

परम्परागत भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की सम्पूर्ण संरचना इस प्रकार थी जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च थी। सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा वर्तमान समय में राज्य के द्वारा बनाये गये कानूनों द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक मूल्यों के विकास के साथ ही धार्मिक विश्वास स्वयं ही लौकिक जीवन (Worldly Life) से दूर हट रहे हैं। व्यक्तियों को संविधान द्वारा समानता का अवसर प्रदान किया गया है। अत: व्यक्ति की प्रस्थिति (Status) का निर्धारण आज जातिगत नियमों से न होकर उसकी योग्यता और कुशलता के द्वारा हो रहा है।

स्तरीकरण की व्यवस्था के रूप में जाति के अन्तर्गत सभी जातियों की स्थिति पूर्णतया निश्चित थी, जिसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन सम्भव नहीं था। वर्तमान समय में इस संस्तरण (Stratification) में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। आज प्रत्येक उप-जाति अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए प्रयत्नशील है। आज एक जाति दूसरी जाति को अपने से उच्च मानकर उसका आधिपत्य मानने को तैयार नहीं है। व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) भी आज जाति की सदस्यता से निर्धारित न होकर उसकी योग्यता, कार्यक्षमता, नेतृत्व अथवा आर्थिक सफलता से निश्चित होती है।

जाति-व्यवस्था की संरचना में जिन व्यक्तियों को अस्पृश्य, दलित अथवा अंव्य मानकर समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया था, उनकी स्थिति में आज सबसे अधिक परिवर्तन हुआ है। महात्मा गांधी और अम्बेडकर के प्रयत्नों से इन व्यक्तियों को समान अधिकार ही नहीं दिये गए हैं बल्कि सभी सरकारी नौकरियों व राजनैतिक संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर दिये गये हैं जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति में सुधार हो सके। दलित जातियों को मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार मिल जाने से जाति-व्यवस्था का वह धार्मिक आधार भी समाप्त हो गया

जिसके द्वारा सवर्णों और अस्पृश्यों के बीच विभेद को धार्मिक वैधता प्राप्त होती थी।

जातिगत निषेधों में परिवर्तन (Change in Caste Taboos)

जाति व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व अनुलोम (Hypergamy) और अन्तर्विवाह (Endogamy) की वह व्यवस्था थी, जिससे एक जाति अपनी स्थिति बनाए रखती थी। समकालीन भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। विधवा विवाह को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बाल विवाह को कानून के द्वारा दण्डनीय अपराध बना दिया गया है जिनके कारण बाल विवाह के स्थान पर विलम्ब विवाह की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। गोत्र (Clan), प्रवर और सपिण्ड जैसी धारणाओं में व्यक्तियों का विश्वास कम होता जा रहा है। कानूनों द्वारा भी ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है।

जाति व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित होता था। जो आनुवांशिक होता था। वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त हो चुका है। नगरों में लगभग सभी व्यावसायिक क्षेत्रों में सभी जातियों के व्यक्ति लगे होते हैं। इस प्रकार आज व्यावसायिक जीवन की गतिशीलता ने सभी जातियों को समान आर्थिक अवसर प्रदान किये हैं।

पारम्परिक जाति व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपने से निम्न जाति के सदस्यों द्वारा स्पर्श किये गये भोजन पर प्रतिबन्ध लगाती थी लेकिन वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त ही हो गया है। औद्योगिक नगरों में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ कारखानों में काम करते हैं और अवकाश के समय में साथ-साथ बैठकर भोजन करते हैं। होटल, जलपान-गृहों, चाय-पार्टियों तथा उत्सवों में सभी जातियों के व्यक्ति उस भोजन को ग्रहण करते हैं जो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा बनाया गया हो, जिनका स्पर्श करना भी जाति-व्यवस्था द्वारा वर्जित था।

जाति व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी जाति के सदस्यों से ही अधिकतम सम्पर्क बढ़ाए, उच्च जातियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखे और निम्न जातियों से दूरी बनाए रखे। आज जाति प्रथा का यह आधार पूर्णतया कमजोर पड़ गया है। आज बहुत सी उच्च जातियां अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए उन सभी व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करती हैं जिनकी छाया भी किसी समय अपवित्रता का कारण बन जाती थी।

जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन (Change in Caste Attitudes)

आधुनिक समाज का शिक्षित विवेकशील व्यक्ति जन्म के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण को रूढ़िगत (Traditional) मानता है। शिक्षा के प्रसार के कारण व्यक्तियों की मनोवृत्ति (Attitude) में तेजी से परिवर्तन हो रहा है और आज किसी भी ऐसे व्यक्ति का सम्मान किया जाता है जो शिक्षित, कुशल और सम्पन्न हो, फिर चाहे उसका जन्म किसी भी जाति में क्यों न हुआ हो।

जाति व्यवस्था आज भी हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही है। लेकिन जाति के इस प्रभाव को केवल राजनीतिक और आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए ही प्रयुक्त किया जा रहा है। आज कोई भी शिक्षित व्यक्ति यह स्वीकार नहीं करता है कि इस व्यवस्था का सम्बन्ध किसी अलौकिक अथवा ईश्वरीय शक्ति से है। इसे एक सामाजिक कुरीति अथवा रूढ़ि के रूप में ही देखा जाता है।

जाति प्रथा को स्थायी बनाए रखने में जाति-पंचायतों तथा जाति-सभाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान था। यह जाति-बहिष्कार, जाति-भोज और तरह-तरह की प्रायश्चितता का भय दिखाकर व्यक्तियों को जाति के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करते रहते थे। आज जातिगत-पंचायतों के पास कोई व्यावहारिक अधिकार नहीं है और अब यह एक निष्क्रिय संस्था मात्र रह गई है, जिसके कारण जाति-प्रथा को सशक्त करने वाला स्थानीय आधार लगभग समाप्त हो गया है।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारक (Factors of Change in Caste System)

जाति व्यवस्था में होने वाले उपर्युक्त परिवर्तन कई कारकों के संयुक्त परिणाम हैं जिसका वर्णन निम्नांकित रूप से किया जा सकता है–

1. ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद से ही व्यक्ति ईसाई धर्म की एकता और समानता से प्रभावित होने लगे थे। यही भावना थी जिसके फलस्वरूप भारत में सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसने जाति प्रथा का विरोध किया।
2. भारत में औद्योगीकरण के फलस्वरूप व्यक्ति की स्थिति आर्थिक आधार पर निर्धारित होने लगी। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की सामाजिक और धार्मिक स्थिति उसकी जाति और वंश से प्रभावित न होकर उसकी आर्थिक सफलता से प्रभावित होने लगी। परिवहन और संचार के साधनों में तीव्र विकास से सभी जातियों के व्यक्तियों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आने को अवसर मिला जिससे जातीय बन्धन शिथिल पड़ने लगे।
3. भारत में आधुनिक शिक्षा के विस्तार के साथ ही एक बड़े वर्ग ने जाति व्यवस्था जैसी सभी व्यवस्थाओं का विरोध करना आरम्भ कर दिया। शिक्षा से तर्क का महत्त्व बढ़ा और जाति के धार्मिक आधारों को तार्किक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा और इन मान्यताओं पर प्रश्न खड़ा किया जाने लगा।
4. स्वतंत्रता आन्दोलन के समय महात्मा गांधी, तिलक, लाला लाजपत राय और बहुत से क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में सभी धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और वर्णों के व्यक्तियों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया जिसके परिणामस्वरूप जातिगत दूरी कम हुई।

5. भारत में प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था स्थापित होने के बाद जाति-व्यवस्था की संरचना अपने आप ही विघटित होने लगी क्योंकि प्रजातंत्र का मूलदर्शन समानता, सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता पर आधारित है, जबकि जाति-व्यवस्था जन्म से ही व्यक्ति को भेदभाव, निम्न जातियों के शोषण और धार्मिक कट्टरता की सीख देती है।
6. भारत में जाति-व्यवस्था इसलिए एक प्रभावपूर्ण संस्था बनी हुई थी क्योंकि इसकी उत्पत्ति और नियमों को धर्म और अलौकिक विश्वासों के साथ जोड़ दिया गया था। सम्प्रति (At present) जाति सम्बन्धी धार्मिक विश्वासों में कमी आयी है।
7. परम्परागत रूप से जाति पंचायतों ने जातिगत नियमों को स्थिर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था जो जाति प्रथा के नियमों का उल्लघंन करने पर व्यक्ति को जाति से बहिष्कार करके, आर्थिक जुर्माने से तथा कभी-कभी शारीरिक क्षति पहुँचाकर दण्डित करती थी। वर्तमान समय में जाति पंचायतों का दण्ड देने का अधिकार पूर्णतया समाप्त हो चुका है।
8. जाति को स्थायी बनाने में संयुक्त परिवारों का योगदान सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है। संयुक्त परिवार बच्चे को आरम्भ से ही परम्परागत जीवन व्यतीत करने, कर्मकाण्डों और रूढ़ियों में विश्वास करने तथा जातिगत भेदभाव को सिखाने का केन्द्र-स्थल रहे हैं। औद्योगीकरण तथा व्यवसायों की विविधता के कारण संयुक्त परिवारों के विघटन ने जाति व्यवस्था को कमजोर किया।
9. आधुनिक शिक्षा के प्रसार और सुधार आन्दोलनों के कारण स्त्रियों की स्थिति में तेजी से सुधार हो रहा है, वे स्वयं उन जातिगत नियमों का विरोध करने लगी हैं जिनके कारण उनका जीवन पशु-तुल्य हो गया था।
10. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जितने भी सामाजिक अधिनियम बने, उनमें से अधिकतर विधान जाति प्रथा की सैद्धान्तिक मान्यताओं के विरुद्ध हैं। 1954 के विशेष विवाह अधिनियम ने अन्तर्विवाह प्रतिबन्धों पर प्रभाव डाला। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 के द्वारा अस्पृश्यता अथवा इससे सम्बन्धित सभी प्रकार के आचरण को अपराध घोषित कर दिया गया। सन् 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा मिताक्षरा और दायभाग के भेद को समाप्त करके स्त्रियों को पुरुषों के समान ही साम्पत्तिक अधिकार दिए गए। इन सभी अधिनियमों के कारण एक ऐसे समतामूलक पर्यावरण का निर्माण हुआ जिसमें जाति प्रथा के स्थायित्व पर कठोर आघात हुआ क्योंकि जाति व्यवस्था अपनी प्रकृति में असमानताओं पर आधारित थी।

मूल्यांकन (Evaluation)

जाति व्यवस्था में निश्चित तौर पर अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं, परन्तु इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति की वंशानुगत सदस्यता (Hereditary Membership), संस्तरण तथा इसके अंतर्विवाह संबंधी पक्ष में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरी ओर, आधुनिकीकरण के प्रभाव ने निम्न जातियों को प्रस्थिति सुधार हेतु अभिप्रेरित किया है। फलतः ये जातियां, जाति को आधार के रूप में इस्तेमाल करते हुए ऊर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता (Upward Social Mobility) हेतु उन्मुख हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय जाति व्यवस्था आधुनिक परिवर्तनों के साथ अभी भी अपनी निरंतरता बनाए हुए है अर्थात् आधुनिक भारत में जाति व्यवस्था एक साथ मजबूत एवं कमजोर दोनों हुई है।

जाति व्यवस्था की निरन्तरता एवं इसके कारक (Continuity of Caste System and its Causes)

यह देखा जाता है कि पारंपरिक सामाजिक संगठन में अनेक परिवर्तन आए हैं, जिसका एक उदाहरण जाति व्यवस्था है। फिर भी इस संगठन की भारतीय समाज में निरन्तरता बनी हुई है तथा यह पुराने व कुछ नये प्रकार्य (Function) निभा रहा है।

सामाजिक क्षेत्र में निरंतरता (Continuity in the Social Sector)

लखनऊ में रिक्शा चालकों के अध्ययन में पाया कि वे भिन्न-भिन्न जातियों के थे। रिक्शाचालक काम के समय जाति सम्बन्धी निषेधों की परवाह किए बिना एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया (Interation) करते थे। तथापि, शाम को जब ये रिक्शाचालक घर जाते थे तो जाति सम्बन्धी सभी धार्मिक रीतियों का पालन करते थे। उनके रिश्तेदार उन्हीं की जाति के थे तथा वे अपनी ही जातियों मे विवाह करते थे। जाति व्यवस्था की खान-पान सम्बन्धी व वैवाहिक नियम संबंधी दो प्रमुख विशेषताओं में से खान-पान सम्बन्धी विशेषता तो लुप्त हो चुकी है, परन्तु सभी परिवर्तनों के बाद भी अपनी ही जाति में विवाह के नियम अभी भी बने हुए हैं।

आर्थिक क्षेत्र में निरन्तरता (Continuity in the Economic Sector)

जाति व्यवस्था में विशिष्ट जाति समूहों के लिए विशिष्ट व्यवसाय नियत किये गए, जिनका सामाजिक सोपान में एक विशिष्ट स्थान था। उच्च जाति के व्यवसाय पवित्र माने जाते थे, जबकि निम्न जातियों के व्यवसाय, अपवित्र माने जाते थे। अंग्रेजों के आगमन से नए आर्थिक अवसर खुले और जन साधारण के लिए उपलब्ध हुए। अर्थव्यवस्था की वृद्धि के कारण आर्थिक सम्बन्ध वंशानुगत सामाजिक स्थितियों के स्थान पर बाजार की दशाओं से निर्धारित होने लगे।

व्यावसायिकतावाद के प्रभाव के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था वृहत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का भाग बन जाती है। अंग्रेजी शासन में परिवर्तित राजनैतिक वातावरण ने गाँव के पारम्परिक जाति पदक्रम

और भूस्वामित्व संरचना को धक्का पहुँचाया। तथापि, सामाजिक स्थितियों में आंतरिक अदल-बदल हुआ परन्तु सम्बन्धित समूहों में जाति व्यवस्था अभी भी राजनैतिक सम्बन्ध निर्धारित करती रही तथा आर्थिक प्रस्थितियों को प्रतिबिंबित करती रही। इस अर्थ में, व्यापक परिवर्तनों के बावजूद जाति की निरंतरता अभी भी बनी हुई है।

आज जाति की निरंतरता, एक अन्य रूप में देखी जा सकती है कि जब सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक व शैक्षणिक परिवर्तनों की नई शक्तियाँ उदित हुई, तो इन परिवर्तनों से सबसे पहले लाभ उठाने वाली उच्च जातियाँ, जैसे कि ब्राह्मण, राजपूत व वैश्य थीं, जो कि पहले से ही शक्तिशाली थी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति सबसे पहले ब्राह्मण वर्ग चैतन्य हुआ और इसलिए उसने राजनैतिक व प्रशासनिक शक्ति का लाभ उठाया। यही स्थिति वाणिज्यिक क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। बिड़ला, डालमिया आदि जैसे बड़े व्यापारी घराने भी पारम्परिक वाणिज्यिक जातियों के हैं। आधुनिक बैकिंग तथा वाणिज्य के क्षेत्र में भी दक्षिण के चेट्टियार जैसी जातियों ने अपने आप को स्थापित कर लिया, जो कि उनके पारम्परिक व्यवसाय के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में निरन्तरता (Continuity in the Political Sector)

ग्रामीण भारत में सत्ता संरचना के निर्धारण में प्रभुत्वशील जाति एक महत्वपूर्ण घटक थी। सभी प्रभुत्वशील जातियाँ अनुष्ठानिक (Ceremonial) रूप से श्रेष्ठ नहीं थी बल्कि प्रभुत्व भूमि स्वामित्व, राजनैतिक शक्ति, संख्यात्मक शक्ति आदि से जुड़ा हुआ था। पश्चिमी एवं उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में यह देखने में आता है कि प्रभुत्वशील कृषक जातियों के पास भूमि स्वामित्व व राजनैतिक शक्ति भी थी।

बाजार की अर्थव्यवस्था के उदय के साथ जाति मुक्त व्यवसायों के प्रारम्भ तथा जाति समूहों के सक्रिय होने आदि कारणों से जातियों की पारंपरिक राजनैतिक भूमिका में ह्रास हुआ है। फिर भी, हम जाति को राजनैतिक रूप से महत्वपूर्ण पाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् अधिकांश स्थानों पर अछूतों की निम्न जातियाँ, स्थानीय प्रभुत्वशील उच्च जाति के ठाकुरों के विरोध में एकजुट हो गईं। ठाकुर (राजपूत) जमींदार पारम्परिक न्यायकर्ता थे तथा निम्न जातियों के भूतपूर्व मालिक थे। अतः जाति, जो कि एक विभाजक थी, इन नई परिस्थितियों में अपने आपको एकता के कारक के रूप में ढाल लिया। ये जातिगत गठबंधन, केवल राजनैतिक लाभ के लिए ही नहीं, अपितु भौतिक कल्याण व सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) के लिए भी स्थापित हुए। अतः भारतीय समाज की गतिशीलता वास्तविक रूप में जातिगत परिवर्तनों के साथ-साथ चली है। परिवर्तन की शक्तियों से अनुकूलन की विशेषता, पहले भी जाति का महत्त्वपूर्ण लक्षण रही है। पहले की तरह आज भी परिवर्तन का यह विन्यास इस व्यवस्था की निरंतरता का एक प्रमुख तत्व है।

जाति व्यवस्था की निरन्तरता के कारक (Factors for the Continuity of the Caste System)

जाति व्यवस्था में निरंतरता के कारणों की चर्चा दो संदर्भों में की जा सकती हैं-

1. अनुकूलन के संदर्भ में, तथा
2. जाति व्यवस्था के समकालीन प्रकार्यों के संदर्भ में।

1. अनुकूलन के संदर्भ में (In terms of adaptation)

पणिक्कर ने कहा है कि-"जाति रबर के बने ऐसे तंबू के रूप में है जो सभी समूहों का समावेश अपने अंदर कर लेता है।"

इस संदर्भ में यदि भारत में जाति व्यवस्था पर विचार करें तो इसमें अनुकूलन की अद्भुत क्षमता दृष्टिगत होती है। अनुकूलन की यह क्षमता जाति व्यवस्था का ऐतिहासिक लक्षण रहा है और इसने बौद्ध, जैन, इस्लाम धर्मों, संस्कृतिकरण और आधुनिकीकरण जैसी तमाम परिवर्तनकारी शक्तियों के साथ अनुकूलन किया है और अपने परिवर्तित स्वरूप के साथ अभी भी विद्यमान है।

2. समकालीन प्रकार्यों के संदर्भ में (In the context of Contemporary Functions)

जाति व्यवस्था के समकालीन प्रकार्य भी इसकी निरंतरता के लिए उत्तरदायी हैं, जैसे-

1. जाति सामाजिक गतिशीलता को संभव एवं व्यावहारिक बनाती है जो दो रूपों में स्पष्ट होता है प्रथम 'संस्कृतिकरण' के रूप में और द्वितीय शक्ति अर्जन के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन के आधार के रूप में। संस्कृतिकरण द्वारा निम्न स्तर की जातियों ने उच्च स्तर की प्रभुजातियों की जीवनशैली का अनुसरण किया और जातीय संस्तरण (Caste Stratification) में अपनी उच्च स्थिति का दावा किया। ऐसे समूहों को जाति संस्तरण में उच्च स्थिति भी प्राप्त हुई। इस प्रकार इन समूहों को संतुष्ट करते हुए जाति ने अपनी निरन्तरता बनाये रखी। समकालीन भारत में जहाँ आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति अधिक महत्वपूर्ण है वहां जातियां संगठित होकर इनको प्राप्त करने का प्रयास कर रही हैं। जहाँ एक ओर अपने आर्थिक-सामाजिक तथा राजनीतिक हितों के साधन के लिये जाति दबाव समूह के रूप में कार्य कर रही है। वहीं, चुनाव में अपने प्रतिनिधियों को जिताने के लिए एक जाति के लोग एकताबद्ध हो रहे हैं।
2. लोकतांत्रिक व्यवस्था में 'जाति' राजनीतिक दलों द्वारा मतदाताओं को लामबंद करने हेतु आधार का काम करती है। आज चुनावी समीकरण में जाति के पक्ष को ध्यान में रखा जाता है। विभिन्न जातियाँ अपने हितों को देखते हुए संगठनों का निर्माण करती हैं और अपने सदस्यों को किसी विशेष पार्टी को मत देने के लिये प्रेरित करती हैं। जातियों की राजनीतिक भागीदारी प्राप्त करने

के इस तरीके ने जातीय चेतना (Caste Consciousness) को मजबूती प्रदान की है और जातियों को संगठित होने का नया आधार प्रदान किया है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में अपनी जाति की भागीदारी सुनिश्चित कराने के प्रयास ने भी जाति को मजबूत बनाकर इसकी निरंतरता को बनाए रखने में सहायता प्रदान की है।

3. जातीय आधार पर निर्मित संगठनों द्वारा अनेक लोक कल्याणकारी कार्य किये जाते रहते हैं। उनके द्वारा किये जाने वाले यह कार्य एक तरफ तो उनकी जाति के लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ उनमें अपनी जाति के प्रति विश्वास की भावना पैदा कर जाति को मजबूत बनाते हैं। जाति के यह कल्याणकारी कार्य, राज्य द्वारा प्रायोजित कल्याणकारी कार्यों के विकल्प के रूप में होते हैं जो केवल अपनी जाति के लिए होते हैं और इस प्रकार ये जातीय समूह में 'हम की भावना' को मजबूत बनाते हैं और जाति की निरंतरता में सहायक होते हैं। अपनी जाति के सदस्यों के लिये छात्रावास, अस्पताल एवं धर्मार्थ संस्थाएं बनाकर संगठन अपनी जाति की निरंतरता बनाये हुए हैं।
4. व्यक्ति द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद की सहायता लेना उसके लिये लाभकारी होता है। राजनीतिक या आर्थिक स्वार्थों की सिद्धि के लिये कुछ व्यक्ति कभी-कभी अपनी जाति को आधार बनाते हैं और अपने समूह के लोगों में जातीय भावना पैदा करते हैं। व्यक्ति जातीयता के आधार पर अपनी जाति को संगठित कर दबाव समूह (Pressure Group) के रूप में उसका प्रयोग करते हैं और अपने व्यक्तिगत हितों को पूरा करते हैं। इस प्रकार के प्रयास जातिवाद की भावना पैदा करते हैं। इसकी प्रतिक्रिया में अन्य जातियां भी संगठित होती हैं और जाति मजबूत होती है और इस प्रकार जाति निरंतरता बनी हुई है।
5. वैश्वीकरण और संचार क्रांति के दौर में जाति व्यक्ति के समक्ष पहचान के संकट (Identity Crisis) का समाधान प्रस्तुत करती है। पहचान के संकट का सामना कर रहा व्यक्ति वैश्विक भीड़ में खो जाने के भय से अपने नृजातीय मूल (Ethnic root) की तलाश करता है। जाति व्यवस्था अपने सदस्यों को एक सुरक्षित पहचान देती है जिसे जीवनपर्यन्त कोई शक्ति नहीं बदल सकती। अपनी पहचान को सुरक्षित रखने की यह मानसिकता भी जाति को मजबूत करते हुए इसको निरंतरता प्रदान कर रही है।

मूल्यांकन (Evoluation)

तमाम परिवर्तनों के बावजूद समकालीन भारत में जाति प्रथा अपने अनुकूलन की अद्भुत क्षमता एवं समकालीन प्रकार्यों (Contemporary Function) के कारण अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। आज भी भारत के ग्रामीण समाजों में व्यक्ति की पहचान में उनकी जाति की भूमिका महत्वपूर्ण बनी हुई है। आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की होड़ में विभिन्न जातियों में सावयवी एकता (Organic Unity) (परंपरागत जजमानी व्यवस्था के रूप में पाई जाने वाली एकता) की जगह प्रतिस्पर्धात्मक एकता (Competitive Unity) का विकास हुआ है। शहरों में भी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद एक प्रमुख क्रियाविधिकी के रूप में क्रियाशील है। मध्य बिहार एवं उत्तर प्रदेश में हाल के वर्षों में हुए जातीय दंगे, नरसंहार तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश में अंतर्विवाह करने वाले जोड़ों की नृशंस हत्याएं जाति की मजबूत होती प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। आज राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने एक साधन के रूप में जाति के महत्व को काफी बढ़ा दिया है।

अतः निष्कर्ष है कि आज तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति अपनी निरंतरता को बनाये हुए है अर्थात् जाति एक साथ कमजोर (कुछ क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन के संबंध में) और मजबूत (कुछ क्षेत्रों में विद्यमान निरंतरता के संबंध में) दोनों हुई है।

प्रभुजाति की अवधारणा (Concept of Dominant Caste)

जाति प्रधान भारतीय समाज में ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण के क्रम में श्रीनिवास ने प्रभुजाति की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार जाति के लक्षणों से अधिक महत्वपूर्ण जातियों के आसपास उभरने वाले संबंधों की संरचना है और इन संबंधों में प्रभुत्व रखने वाली जाति को 'प्रभुजाति' कहा जाता है जिनके पास गांव की शक्ति का केंद्रीकरण होता है और गांव की अन्य जातियां उनके प्रभाव में होती हैं।

श्रीनिवास का मानना है कि परिवर्तनशील भारतीय ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना (Power Structure) में किसी जाति का प्रभुत्व केवल कर्मकांडीय प्रस्थिति (Ritual Status) पर निर्भर नहीं करता है बल्कि सत्ता, संपदा आदि भी इसके प्रमुख निर्धारक तत्व हो गये हैं। इस संदर्भ में उन्होंने प्रभुजाति की प्रभुत्वशीलता को निर्धारित करने वाले प्रमुख तीन कारकों की चर्चा की है-

1. संख्यात्मक बहुलता अर्थात् उसकी संख्या आसपास की अन्य जातीय समूहों से अधिक हो।
2. भू-स्वामित्व अथवा आर्थिक संपन्नता अर्थात् उस जाति के पास अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक भूमि पर अधिकार हो और आय के अन्य स्रोत भी अधिक हों।
3. राजनीतिक शक्ति अर्थात् उस जाति के सदस्यों के पास राजनीतिक पहुँच हो।

भारत के ग्रामीण समुदाय में उपरोक्त तीनों शक्ति रखने वाली जाति प्रभुजाति होती है। **श्रीनिवास** के अनुसार आज किसी भी जाति की कर्मकांडीय प्रस्थिति उसके प्रभुत्वशीलता के निर्धारण हेतु महत्वपूर्ण आधार नहीं रह गयी है। फिर भी अपेक्षाकृत उच्च कर्मकांडीय प्रस्थिति

किसी जाति को प्रभुजाति बनने में सहयोग देती है। श्रीनिवास ने इस तथ्य की पुष्टि हेतु रामपुरा गाँव के अपने अध्ययन का उदाहरण दिया है जहाँ ब्राम्हण, किसान एवं अस्पृश्य सहित अनेक (ओक्कालिंगा-किसान) जातियाँ रहती हैं। ओक्कालिंगा की कर्मकांडीय प्रस्थिति ब्राम्हणों से निम्न है, परंतु गाँव की लगभग 80% भूमि का स्वामित्व ओक्कालिंगा के पास है, ओक्कालिंगा संख्या में भी अधिक हैं और ग्रामीण मामलों में राजनीतिक प्रभाव भी रखते हैं फलस्वरूप निम्न कर्मकांडीय प्रस्थिति के बावजूद ओक्कालिंगा रामपुरा की प्रभुजाति है।

नवीन परिवर्तनों के संदर्भ में श्रीनिवास ने अपने बाद के लेखनों में यह स्वीकार किया है कि भारत में प्रभुजाति के अब कई अन्य निर्धारक कारक भी हो गए हैं (जैसे- पश्चिमी शिक्षा, आरक्षण की व्यवस्था, प्रशासन में निम्न जाति के लोगों की उच्च पदों पर नौकरियाँ और आय के अन्य नगरीय स्रोत आदि)। स्वतंत्रता के बाद से वयस्क मताधिकार तथा पंचायती राज की शुरूआत ने निम्न जातियों विशेषत: हरिजनों में आत्म सम्मान एवं शक्ति की नवीन भावना का संचार किया है। इन जातियों को प्राप्त आरक्षण और इन जातियों के लिए निर्मित संगठन की भूमिका भी इनके प्रभुत्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण हो गई है। साथ ही पुरातन एवं नवीन प्रभुजातियों के मध्य संघर्ष भी आज की महत्वपूर्ण घटना है। यद्यपि इन परिवर्तनों के बावजूद श्रीनिवास ने यह स्वीकार किया है कि अत्यधिक पिछड़े इलाकों में परंपरागत प्रभुजाति के प्रभुत्व को समाप्त करना एक कठिन कार्य है परंतु यह भी सत्य है कि उनके स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है और पुरातन प्रभुजाति की प्रभुता का ह्रास हो रहा है।

इस प्रकार प्रभुजाति की प्रकृति में परिवर्तन और जातीय सोपान (Caste Hierarchy) में मध्य एवं निचले स्तर की जातियों का प्रभुजाति के रूप में उभार वर्तमान ग्रामीण भारत की महत्वपूर्ण घटना है और वैश्वीकरण एवं तकनीकी विकास के बावजूद ग्रामीण शक्ति संरचना में जाति एक महत्वपूर्ण घटक बनी हुई है। अत: वर्तमान ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण में श्रीनिवास का यह विचार एक दृष्टिकोण प्रदान करता है और इस रूप में आज भी महत्वपूर्ण है।

जजमानी प्रणाली (Jajmani System)

जजमानी प्रणाली हिन्दू जातीय प्रणाली का सामाजिक-आर्थिक आधार रहा है और भारत में कृषिक सामाजिक संरचना का अंतर्निहित हिस्सा है। जजमानी प्रणाली नामक पद विलियम वाइजर की देन है।

जजमानी प्रणाली के अंतर्गत गाँव में हरेक जातीय समूह को अन्य जातियों के परिवारों को कुछ मानकीकृत सेवाएँ (Standardised Services) देनी होती हैं। आमतौर पर इस मुहावरे का प्रयोग भू-स्वामी उच्च जातियों और भूमिहीन सेवक जातियों के बीच माल और सेवाओं के लेनदेन के सूचक के रूप में किया जाता है। ये जातियाँ हमेशा ही एक व्यवसायिक परंपरा निभाने के कारण व्यवसायिक रूप से निपुण हो जाती हैं, इसलिए इन्हें कारीगर जातियों के रूप में भी जाना जाता है। लुहार, सुनार, बुनकर, तेली, मोची, नाई, धोबी, गायक जैसी कारीगर जातियाँ और व्यवसायिक निपुणता वाले अन्य कई समूह व खेतिहर मजदूरी करने वाले पारंपरिक भूमिहीन अछूत जातियों के लोग 'सेवक जातियों' में आते हैं। इन्हें कमीन, प्रजन और देश के विभिन्न हिस्सों में कई अन्य नामों से पुकारा जाता है। भू-स्वामी उच्च जातियों को मोटे तौर पर जजमान (संरक्षक) कहा जाता है। पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले ये सेवा आधारित संबंध जजमानी-प्रजन संबंध कहलाते हैं।

जजमानी प्रथा बुनियादी तौर पर उत्पादन माल एवं सेवाओं के वितरण की कृषि आधारित प्रणाली है। जजमानी संबंधों के माध्यम से यह कारीगर जातियाँ भू-स्वामी प्रभुतासंपन्न जातियों के संपर्क में आती हैं। भू-स्वामी जातियाँ अपनी कारीगर अथवा सेवक जातियों के प्रति उच्चता एवं 'पालनहार' का सा रूख अपनाती हैं।

इस प्रणाली के अंतर्गत गाँव में रहने वाले हरेक जाति समूह को अन्य जातियों के परिवारों को एक निश्चित मानदंड के अनुसार सेवाएँ प्रदान करनी होती है। यह प्रणाली वितरणपरक व्यवस्था हैं जिसके अंतर्गत उच्च जातियों के भू-स्वामी परिवार जिन्हें जजमान कहा जाता है, उन्हें विभिन्न निम्न जातियों द्वारा सेवाएँ एवं उत्पाद उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार यह प्रणाली भारतीय कृषि आधारित गाँव में श्रम के कार्यानुसार विभाजन को स्पष्ट करती है जिसमें भूमिका संबंधों और भुगतान की श्रृंखला बनाती है। यह व्यवस्था परंपरा के अनुसार ही चलती रही है और आपसी विश्वास तथा एक-दूसरे पर निर्भरता इसका सातत्य बनाए हुए है। इसलिए इसे भारतीय कृषिक व्यवस्था में जाति पर आधारित कार्यात्मक अंतरनिर्भरता (Functional Inter-dependence) की योजना भी कहा जा सकता है।

जजमानी रिश्ते अटूट होते हैं। जजमानी अधिकार को पिता से पुत्र के हाथ में जायदाद के हस्तांतरण का एक प्रकार भी माना जा सकता है। यह संबंध एक प्रकार से स्थानीय परंपराओं से ही अधिकतर संचालित होते हैं। कुल मिलाकर जजमानी प्रणाली में आधिपत्य, शोषण एवं संघर्ष प्रमुख तौर पर निहित हैं। भू-स्वामी प्रभुतासंपन्न संरक्षकों तथा उनकी सेवा करने वाले गरीब कारीगरों और भूमिहीन मजदूरों के बीच सत्ता के प्रयोग में भारी खाई विद्यमान रही हैं।

जजमानी प्रणाली की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जजमानी संबंधों का संचालन हालांकि ग्रामीण स्तर पर ही होता है फिर भी अक्सर वे किसी एक गाँव तक ही सीमित नहीं रहते क्योंकि सभी गाँवों में सभी कारीगर जातियाँ नहीं होती इसलिए कारीगर जातियों की सेवाएँ अन्य गाँवों से भी अक्सर उधार ली जाती है। इसके अलावा सुनारों, लुहारों और बढ़ई जैसी कारीगर जातियों के लिए एक ही गाँव से पूरे साल रोजगार योग्य काम जुटाना संभव नहीं है। इसलिए ऐसी जातियाँ एक सीमित क्षेत्र में कई गाँवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। उपसंहार के रूप में यह कहा जा सकता है कि जजमानी प्रथा युगों पुरानी सामाजिक संस्था है जो भारतीय गांवों में प्रचलित अंतरजातीय तथा अंतरपारिवारिक सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक और

धार्मिक संबंधों को परिलक्षित करती है। यह भारत में कृषि के सामाजिक संगठन के सबसे महत्वपूर्ण अवयवों में शामिल है।

जजमानी प्रथा का पतन (Decline of Jajmani System)

भारतीय अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे हुए आधुनिकीकरण के समांतर जजमानी प्रथा का भी पतन हो रहा है लेकिन आजादी के बाद ही अवध में इस प्रथा का तेजी से पतन हुआ है। मोटे तौर पर जजमानी प्रथा के पतन को निम्नलिखित शीर्षकों में बताया जा सकता है।

1. सरकार (राज्य) की भूमिका
2. प्रौद्योगिकी अन्वेषणों और औद्योगीकरण की शुरूआत
3. दलितों और पिछड़ी जातियों की राजनैतिक लामबंदी

पारंपरिक रूप में जजमानी प्रथा पर चलने वाले गांवों की अर्थव्यवस्था प्रारंभिक स्तर पर गुजर-बसर की अर्थव्यवस्था थी, जिसका लक्ष्य स्थानीय आबादी की उपभोग संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। स्थानीय आत्मनिर्भरता और श्रम एवं पूंजी में ठहराव के कारण कृषि का व्यवसायीकरण और पूंजीवादी रूपांतरण नहीं हो पाया स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जानबूझकर नियोजित ढंग से यह प्रयास किया गया कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय मंडियों से जोड़ा जाये। इस कार्य को सुचारू बनाने के लिए सरकार ने यातायात एवं संचार श्रृंखलाओं के विस्तार के लिए बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश किया। सरकार की नीतियों से ग्रामीण भारत में अर्थव्यवस्था का तेजी में मौद्रीकरण हुआ। बढ़ती हुई आबादी का पेट भरने के लिए सरकार की कार्यसूची में कृषि में उत्पादकता का सवंर्द्धन प्राथमिकता का विषय था।

स्वतंत्रता के तत्काल बाद अपनाए गए नियोजित विकास की प्रक्रिया द्वारा कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी रूपांतरण (Capitalist Transformation) हुआ। इसके अलावा सरकार ने ऋण सुविधाएँ, प्रौद्योगिक जानकारी, खाद, सिंचाई और अधिक उपजाऊ बीज आदि उपलब्ध कराने की भी पहल की। इसके कारण भू-स्वामी वर्ग की मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन हुआ और बाजार की शक्तियों के आने के कारण उन्हें सदियों पुरानी जजमानी प्रथा को जिन्दा रखने के बजाय उन्हें बिक्री के लिए अधिक उत्पादन करने का प्रोत्साहन मिला। इससे भू-स्वामी वर्गों तथा खेतिहर मजदूरों एवं कारीगरों के बीच ठेके पर आधारित संबंधों को बढ़ावा मिला। पारंपरिक अनौपचारिक संबंधों की जगह औपचारिक ठेकेदारी दायित्वों के अनुरूप औपचारिक संबंधों की शुरूआत होने लगी।

प्रौद्योगिकी अन्वेषणों और औद्योगीकरण से एक स्थिति ऐसी आई कि जिसमें कार्यात्मक अंतरनिर्भरता की कोई संभावना ही नहीं बची। मशीनों से तैयार सामानों के बाजार पर छा जाने और दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच जाने के कारण ग्रामीण कारीगरों को सीधे यंत्रों से स्पर्धा करने पर मजबूर होना पड़ा।

दाढ़ी बनाने के लिए सेफ्टी रेजर की विश्वसनीयता बढ़ने और उसके कारण उसका प्रयोग बढ़ने की वजह से अपने हाथ से दाढ़ी बनाने का रिवाज चल निकला और गांव के नाई का काम घट गया। स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के आविष्कार से गांव के कुम्हार का महत्व घटा और गांव में बरमें यानि हैंडपंप लग जाने के कारण उच्च जातियों की कहारों (पानी खींचकर उसे घरों तक पहुँचाने वाले) पर निर्भरता कम हुई। इस सबके कारण अधिकतर कारीगर जातियाँ बेरोजगार हो गयीं। इनमें से कई जातियों ने बाजार का रूख किया अथवा अपनी सेवाएँ औपचारिक आर्थिक लेनदेन के अंतर्गत नकद भुगतान के बदले देनी शुरू कर दी। इसके साथ ही सेवक जातियों के नए उभरते शहरी केन्द्रों और औद्योगिक बस्तियों में पलायन का सिलसिला शुरू हो गया। गांव में छूट जाने वाले लोगों ने भू-स्वामी अभिजात की जमीनों पर दिहाड़ी मजदूरी अपना ली। इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था अब अधिकांश शहरी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से एकीकृत होने लगी।

आजादी से पहले राष्ट्रवादी आंदोलन ने सामाजिक समानता के बारे में एक सैद्धांतिक और लगभग अर्द्धवैचारिक प्रतिबद्धता दिखाई दी थी। कमजोर वर्गों-दलित, आदिवासियों और पिछड़ी जातियों से समतामूलक (Egalitarian) और अन्याय और शोषण मुक्त नए समाज की स्थापना का वायदा किया गया था। उस दृष्टि से पिछड़ी जातियों के आंदोलनों ने भारत के दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रों में अपना रंग जमा लिया था। संविधान के लागू हो जाने से सरकार उनके कल्याण और सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध हो गयी।

वर्तमान भारतीय समाज में एक अत्यंत स्थायी महत्व का परिवर्तन दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों में अपनी पहचान की नई भावना का प्रस्फुटन है। भारतीय जनसंख्या के पिछड़े वर्गों का लोकतंत्र में अपनी हिस्सेदारी के लिए संघर्ष और देश के विभिन्न हिस्सों में उनकी राजनैतिक लामबंदी शोषणमूलक जजमानी प्रथा के लिए गंभीर चुनौती साबित हुई। जजमानी प्रभाव भू-स्वामी उच्च जातियों की पारंपरिक कृषि पर निर्भर अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के साथ उनके एकाधिकारवादी अधिकार पर आधारित थी। पिछड़े वर्गों द्वारा नए आत्मविश्वास और लोकतंत्र में हिस्सेदारी के लिए उनके संघर्ष में जजमानी प्रथा पतन के गर्त में जा रही है। इसके बावजूद इस तर्क में भी दम दिखाई दे रहा है कि कमजोर वर्गों द्वारा इस प्रकार प्राप्त किए गए अधिकारों का नई आर्थिक नीतियों और वैश्वीकरण से फिर हनन होने के आसार बन रहे हैं।

भारत में जाति व्यवस्था : समकालीन मुद्दे
(Caste System in India : Contemporary Issues)

भारत में अस्पृश्यता (Untouchability in India)

सोपान क्रम में विभाजित भारतीय हिंदू सामाजिक संगठन में सबसे निचले स्तर पर अवस्थित वह जाति जिन पर विभिन्न निर्योग्यताएँ एवं

प्रतिबंध (Disabilities and Restrictions) आरोपित कर सम्पूर्ण समाज से पृथक अमानवीय जीवन यापन हेतु विवश किया जाता रहा है, अस्पृश्य हैं।

इन जातियों को जन्मजात अपवित्र मानते हुए इनपर कई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्रतिबंध लगाए गए। अस्पृश्य जातियों को गाँव के दक्षिण दिशा में निवास करने, मुख्य मार्ग से आवागमन न करने, प्रातः एवं सांयकाल घर से नहीं निकलने, सार्वजनिक कुँओं, तालाबों, जलाशयों आदि का प्रयोग नहीं करने, मंदिरों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश नहीं करने तथा न्यायालय में दूर से अपनी बात कहने आदि के लिए बाध्य किया गया। इसके अतिरिक्त इन्हें पक्के ईंट के मकान में रहने, संस्कृत बोलने या सुनने, इस जाति की महिलाओं के आभूषण पहनने आदि पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस जाति पर सभी निर्योग्यताएँ कठोरता से लागू की जाती थी तथा इसके उल्लंघन पर इन्हें मृत्युदंड तक की सजा दी जाती थी।

अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु किए गए प्रयास (Effort Made to Eradicate Untouchability)

भारत में अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु लंबे समय से ही विभिन्न प्रयास किए जाते रहे हैं। मध्य काल में विभिन्न भक्ति एवं समाज सुधार आंदोलन इस काल के प्रमुख आंदोलन हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृतिकरण, धर्मान्तरण तथा धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के प्रसार द्वारा भी अश्पृश्यता के उन्मूलन हेतु व्यापक प्रयास किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार द्वारा एक समतामूलक आधुनिक समाज के निर्माण का लक्ष्य सामने रखा गया और इस लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अछूतों की प्रस्थिति में सुधार एवं अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु कई महत्वपूर्ण प्रयास किए गए जिसे हम 2 भागों में बांटकर देख सकते हैं-

(i) संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास (Constitutional and legislative efforts) – स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था का लक्ष्य रखा और इसके लिए स्वतंत्रता समानता व न्याय के मूल्यों को वरीयता दी। इन मूल्यों को पाने के लिए आवश्यक था कि भारतीय जाति व्यवस्था में व्याप्त असमानता और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त किया जाए। इसी संदर्भ में न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु किए गये प्रमुख संवैधानिक प्रयास निम्न हैं:-

1. संविधान के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद 341 (2) के तहत् संसद किसी भी जातीय समूह को अनुसूचित जाति की सूची में शामिल कर सकती है ताकि उनके कल्याण हेतु विशेष प्रावधान किये जा सकें।
2. अनुच्छेद 46 राज्य को निर्देश देता है कि वह पिछड़े वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति व जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा करे एवं उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी तरह के शोषण से बचाए।
3. अनुच्छेद 14 सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता का अधिकार प्रदान करता है।
4. अनुच्छेद 15 द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, या जन्म स्थान के आधार पर सामाजिक या शैक्षणिक भेदभाव को प्रतिबंधित किया गया है।
5. अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का अंत करता है और इस पर आधारित किसी भी आचरण को दण्डनीय घोषित करता है। बाद में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 और नागरिक सुरक्षा अधिकार अधिनियम, 1976 के तहत् इस कानून को और भी सख्त बनाया गया है।
6. अनुच्छेद 340 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग की समस्याओं की जांच के लिए आयोग गठित करने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों के हितों के रक्षार्थ अनुसूचित जाति तथा जनजाति राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया है जो इनके हितों के लिए कार्य करता है। अभी हाल में इस राष्ट्रीय आयोग को अनुसूचित जाति आयोग तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के रूप में अलग-अलग कर दिया गया है।
7. अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 330 एवं अनुच्छेद 332 के द्वारा अनुसूचित जातियों को अन्य जातियों के समकक्ष लाने के उद्देश्य से क्रमशः शासकीय नौकरियों में, लोकसभा में एवं विधानसभाओं में उनकी संख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
8. यह आरक्षण केवल भर्ती में ही नहीं बल्कि उच्च पदों पर पदोन्नति, आयु सीमा में छूट, योग्यता स्तर में छूट, अनुभव में छूट आदि के रूपों में भी लागू किया गया है।
9. इनके लिये शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए आरक्षण का प्रावधान एवं छात्रावासों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
10. उपरोक्त के अलावा निम्न जाति के बच्चों के लिए कई अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की गई हैं, जैसे-पुस्तकों का प्रावधान, दोपहर भोजन का प्रावधान, छात्रवृत्ति का प्रावधान, स्कूल यूनिफार्म, कोचिंग आदि का प्रावधान।

(ii) विकास कार्यक्रमों के माध्यम से किए गए प्रयास (Efforts made through development programs) – उपरोक्त संवैधानिक प्रयासों के अलावा इनके प्रस्थिति उन्नयन एवं विकास हेतु कई अन्य कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं

एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम (IRDP), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी, 20 सूत्री कार्यक्रम आदि।

6वीं योजना के तहत इस दिशा में एक विस्तृत रणनीति बनाई गई है जिसके 3 महत्वपूर्ण घटक हैं-

1. ***विशेष संघटक योजना (SCP) -*** केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के द्वारा अनुसूचित जातियों के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण या देख-रेख करना।
2. ***विशेष केंद्रीय सहायता (SCA) -*** विभिन्न राज्यों के अनुसूचित जातियों के लिये विशेष संघटक योजना बनाना।
3. राज्यों में अनुसूचित जाति विकास निगम (SC DC) की स्थापना।

इन तीनों घटकों के संयुक्त प्रावधान में अनुसूचित जाति के विकास हेतु कई कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं।

उपरोक्त के अलावा स्वयंसेवी संगठनों एवं दलित साहित्यों द्वारा किए गए प्रयास भी इस दिशा में महत्वपूर्ण रहें हैं। निश्चित रूप से उपरोक्त प्रयासों ने भारतीय समाज में अस्पृश्यता जैसी हृदयविदारक घटना पर नियंत्रण स्थापित करने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। परंतु आज भी कई ग्रामीण समाजों में व्याप्त रूढ़ियाँ हैं जिनके कारण अस्पृश्यता की भावना निरंतर जारी है। हाल ही में दक्षिण भारतीय राज्यों में निम्न जाति के लोगों को अस्पृश्य करार देने की घटना सामने आई है। यह जरूर है कि वैज्ञानिक मूल्यों, आधुनिक मूल्यों, तर्कवाद, शिक्षा, धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया आदि के प्रसार के फलस्वरूप आज अस्पृश्यता के इक्के-दुक्के मामले ही सामने आते हैं। धन के बढ़ते महत्त्व ने जन्मजात प्रस्थिति (Ascribed Status) के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति (Achieved Status) के महत्त्व को स्थापित किया है। आज शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के मुक्त अवसरों की उपलब्धता के कारण निम्न जाति के लोग भी योग्यता अर्जित कर विभिन्न आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में उच्च स्थानों पर पहुँचने में सफल हो रहे हैं। परिणामतः इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अस्पृश्यता की स्थिति में उपरोक्त सुधारों के बावजूद अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। अस्पृश्यता के पूर्णतः उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि इससे संबंधित कानूनों को कठोरता से लागू किया जाए। साथ ही सरकार द्वारा इन जातियों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु संबंधित कार्यक्रमों का दृढ़ इच्छाशक्ति एवं पारदर्शिता के साथ क्रियान्वयन किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अस्पृश्य जातियों में जागरूकता के प्रसार के साथ-साथ आम लोगों में इन जातियों के प्रति संवेदनशीलता एवं मानवीयता की भावना का प्रसार किया जाना भी आवश्यक है।

अस्पृश्यता-नवीन तथ्य

नवम्बर, 2007 तक, अस्वच्छ व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों को मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति की स्कीम के अंतर्गत 3.09 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई है तथा अनुसूचित जाति के अनुमानतः लगभग 33,86 लाख विद्यार्थियों को मैट्रिक-पश्च छात्रवृत्ति योजना के तहत 458.98 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई है। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को एम.फिल और पी. एच. डी पाठ्यक्रमों में शिक्षा के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय फेलोशिप प्रदान की जाती है। अनुसूचित जातियों के लिए उच्च स्तर की शिक्षा की योजना का लक्ष्य चुने गए सुविख्यात संस्थानों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा पाने के लिए पूरी वित्तीय सहायता मुहैया करा के अनुसूचित जाति से संबंधित विद्यार्थियों के बीच उच्च स्तरीय शिक्षा का बढ़ावा देना है। "नेशनल ओवरसीज स्कॉलरशिप स्कीम" अंतिम रूप से चयन किए गए अभ्यार्थियों को विदेशों में मास्टर स्तर के पाठ्यक्रमों के विनिर्दिष्ट विषयों में और इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और विज्ञान के विषयों में पी-एच.डी की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता मुहैया कराती है। राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए अनुसूचित जाति उप-आयोजना की तैयारी और कार्यान्वयन की गहन मॉनिटरींग की जाती है। ''राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम'' गरीबी रेखा से नीचे रह रहे व्यक्तियों को ऋण सुविधाएं मुहैया कराता है।

छुआछूत की प्रथा को समाप्त करने तथा अनुसूचित जाति के प्रति बड़ी संख्या में अपराधों और नृशंसता की घटनाओं को रोकने के लिए 'नागरिक अधिकारों का संरक्षण अधिनियम, 1995' और 'अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति अधिनियम, 1989' के कारगर कार्यान्वयन के माध्यम से प्रयास किए जाते हैं।

भारत में जातिवाद (Casteism in India)

जाति भारतीय समाज की मुख्य घटक रही है परंपरागत भारतीय समाज में जातियाँ एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करती रही हैं, जिससे उसके सदस्यों में सामूहिक चेतना की प्रवृत्ति का पाया जाना स्वाभाविक है, किन्तु वर्तमान में यह चेतना स्वहित समूह की चेतना एवं अन्य समूहों के प्रति ईष्या, द्वेष के रूप में प्रकट होकर सामाजिक समस्या का रूप धारण कर रही है।

भारत में जातिवाद वह सीमित एवं संकीर्ण भावना है जिसके तहत प्रत्येक कार्य स्वजाति के हित को ध्यान में रख कर किये जाते हैं। वर्तमान में यह जातीय निष्ठा सामुदायिक एवं राजनीतिक शोषण के रूप में परिलक्षित हो रही है। जातिवाद के तहत उच्च पदों पर आसीन सदस्य नियुक्ति एवं प्रोन्नति के मामले में अथवा व्यवहार में अपनी जाति अथवा उपजाति के लोगों को वरीयता देते हैं तथा यह वरीयता अन्य जातियों के हित की कीमतों पर होती है।

भारत में जातिवाद के स्वरूप (Forms of Casteism in India)

भारत मे जातिवाद के स्वरूप को तीन स्तरों में बांट कर देखा जा सकता है।

1. प्रशासन में
2. राजनीति में
3. समाज में

भारत में जातिवाद प्रशासनिक या अधिकारिक स्तर पर व्यापक रूप में मौजूद है। उच्च पदों पर पहुँचनें पर प्रतिष्ठित अधिकारियों की नियुक्ति के संबंधो में, अथवा प्रोन्नति के मामले में स्वजाति को वरीयता देने लगते हैं। कुछ अधिकारी पद ग्रहण करते समय ही तय कर लेते हैं कि वे अपनी जाति के सदस्यों को अधिक महत्व देंगे। यह प्रवृत्ति कार्यालयों अथवा शिक्षण संस्थाओं में भी विराजमान है।

जातिवाद का सर्वाधिक व्यापक एवं विघटनकारी स्वरूप राजनीति में दिखाई देता है। कुछ जातियाँ सामूहिक रूप से संगठित होकर राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित कर रही हैं। राजनीतिक दल भी संख्या बल के आधार पर विभिन्न जाति के सदस्य को विशिष्ट क्षेत्र से चुनाव में उम्मीदवार बनाते हैं तथा वह उम्मीदवार चुनाव जीतने पर विशिष्ट जाति का ख्याल रखता है। इसके अलावा शीर्ष पद पर बैठे राजनीतिक नेता अपने जातियों के सदस्यों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करते हैं और अन्य जातियों के प्रति भेदभाव करते हैं।

समाजिक स्तर पर जातिवाद भारत में बहुत पहले से विराजमान हैं। इसके तहत विभिन्न जाति के सदस्य केवल अपने समूह मे विवाह करते हैं। खान-पान का संबंध रखते हैं, इसके अतिरिक्त स्वजाति के सदस्यों से अपने सुख दु:ख की भागीदारी करते हैं और उनसे मिलकर शांति एवं प्रसन्नता अनुभव करते हैं। साथ ही साथ वे समाज के अन्य जाति या सदस्यों को अपने से निम्न समझते हैं तथा स्वजाति केन्द्रीयता की भावना रखते हैं।

भारत में जातिवाद के कारण (Reasons for Casteism in India)

भारत की जाति व्यवस्था में जातिवादी मानसिकता की प्रवृत्ति ऊँच-नीच की भावना से आरंभ हुई, किन्तु वर्तमान में गतिशीलता के विभिन्न अवसरों नें जातिवाद की भावना को बढ़ा दिया है जिसके कारकों पर निम्न रूप से चर्चा की जा सकती है:-

1. ***जाति के प्रति भावनात्मक लगाव (Emotional attachment to Caste)***- जाति एक बंद व्यवस्था (Closed System) एवं अन्तर्विवाही समूह (Endogamous Group) है। जन्म के बाद व्यक्ति परिवार के सदस्यों के बाद सर्वाधिक अन्त:क्रिया (Interaction) जाति समूह से करता है। जातीय संस्कृति एवं मूल्यों के आत्मसातीकरण (Assimilation) से अन्त: समूहों का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वसमूह चेतना (Self group Consciousness) पैदा हो जाती है। इस स्तर पर व्यक्ति स्व जाति के सदस्यों को अपना तथा अन्य जातियों को पराया समझने लगता है। यदि समाजिक अंत:क्रिया (Social Interaction) के दौरान उसे अन्य जातियों के सदस्यों के प्रति कटुअनुभव हो तो वह अन्य जाति के प्रति कटुता की भावना भी रखने लगता है। ऐसी स्थिति में अवसर मिलने पर वह अपनी जाति के हितों को ध्यान में रखता है तथा अन्य को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।
2. ***ब्रिटिश नीतियाँ एवं सामाजिक सुधार (British Policies and Social Reforms)***- भारत में अंग्रेजों ने अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न जातियों में दूरी बढ़ाने का प्रयास किया। दलितों को हिन्दू समाज से अलग समूह के रूप में पहचान स्थापित करने का प्रयास किया गया। जिससे राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर किया जा सके। साथ ही विभिन्न जातियों को दी गयी सुविधा से जातीय प्रतिस्पर्धा का विकास हुआ। कुछ दलित नेताओं ने भी सुधारवादी कार्यक्रमों में उच्च जातियों के विशेषाधिकारों को चुनौती दी जिससे जातीय द्वेष एवं जातीयता की भावना प्रबल हुयी। इसी संदर्भ में गांधी जी के हरिजन उत्थान कार्यक्रम का भी विरोध किया गया। अम्बेडकर जैसे नेताओं ने दलित जातियों की समानता हेतु हिन्दू धर्म को अस्वीकार किया और बहुत से दलितों ने बौद्ध धर्म अपना लिया। परन्तु जाति के लचीलेपन के कारण वह जातीय सोपान (Caste hierarchy) से ही सम्बद्ध रहे और अन्य जातियों की प्रतिस्पर्धात्मक भावना को उग्र किया। ब्रिटिश नीतियों एवं सुधार कार्यक्रमों के प्रभाव से भी भारत में विभिन्न जातियों में दूरी व प्रतिस्पर्धा की भावना में वृद्धि हुयी और अपनी जाति के प्रति लगाव को मजबूत किया जिससे जातिवाद की भावना में भी वृद्धि हुयी।
3. ***जजमानी प्रथा की समाप्ति (End of Jajmani System)***- जजमानी व्यवस्था समाज में परंपरागत श्रम विभाजन की व्यवस्था थी जिसके तहत विभिन्न जातियों के सामाजिक आर्थिक संबंध होते थे। इस संबंध के कारण आपस में द्वन्द्व या ईर्ष्या भाव उत्पन्न नहीं होता था। इस अन्तर्निभरता के कारण जातिवादी भावना के अवसर कम थे किन्तु जजमानी व्यवस्था के टूटने एवं जातीय व्यवसायों के समाप्त होने से जातियाँ स्वतंत्र एवं वैयक्तिक ढंग से अपना विकास करने लगी । विकास की प्रक्रिया के तहत इन जातियों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हुई तथा स्वजाति हित सर्वोपरि हो गया।
4. ***संरक्षी विभेदीकरण की नीति (Policy of Protective Discrimination)***- भारतीय संविधान में पिछड़ी, दलित जातियों की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने तथा उनकी निम्न स्थिति को सुधारने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, जिसके तहत नौकरियों और संवैधानिक संस्थाओं में उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त इनके लिए विशेष रूप से कुछ योजनाएँ, चलाई गई हैं। जिससे ये जातियां अपने हितों के प्रति चेतन हों गई है तथा अपनी जातियों के प्रति एकता का भाव प्रकट कर रही हैं। इसके अतिरिक्त जो जातियाँ

आरक्षण व्यवस्था के बाहर हैं उनके अन्दर असन्तोष उत्पन्न हो गया है। वे समझने लगी हैं कि उनके हित की कीमत पर आरक्षण की व्यवस्था की गई है। अत: उनके मन में आरक्षी जातियों के प्रति ईर्ष्या की और अपनी जाति के प्रति लगाव की भावना उत्पन्न हो गई है। अपनी जातियों की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने के लिए वे भी प्रयास करने लगे हैं। क्योकि वे उसे प्रभु जाति (Dominant Caste) बनकर अपनी जाति प्रस्थिति (Caste Status) को बरकरार रखना चाहते हैं जो कि जातिवाद के रूप में प्रकट होता है।

5. ***जातीय संगठन (Caste Organization)***– विभिन्न जातीय संगठन भी परोक्ष रूप से जातिवाद को प्रोत्साहित कर रहे हैं। ये संगठन जातिवाद को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। हरित क्रांति के बाद पिछड़ी जातियों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने के कारण उनके अन्दर स्वहित चेतना का विकास हुआ तथा उन्होंने स्वहित की रक्षा के लिए जातीय संगठन बना लिए। धीरे-धीरे अधिकांश जातियों ने भी ऐसा करना शुरू किया। इन संगठनों का उद्देश्य अपनी जाति को एकीकृत करना, समाज में अपनी जाति के प्रभाव को बढ़ाकर दबाव समूह के रूप में विकसित करना है। जातीय संगठन जाति सम्मेलन आयोजित करवाते हैं स्वजाति से संबंधित पत्रिका, लेख का प्रकाशन करतें हैं। इनके कार्य व्यवहार जाति निष्ठा को बढ़ावा देते हैं तथा जातिवाद के लिए आधार तैयार करते हैं।

6. ***यातायात एवं संचार सेवाएँ (Transport and Communication Services)***– आधुनिक संचार सेवाओं और यातायात के साधनों का विस्तार होने के कारण अपनी जाति के सदस्यों से सम्पर्क करने के लिए दूरी कोई समस्या नही रही। अब विभिन्न जातियों के सदस्य आपस में आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं। कुल मिलाकर राष्ट्रीय स्तर पर जाति संगठनों का बनना तथा उनके सदस्यों के बीच तालमेल बनाना यातायात एवं संचार साधनों की उपलब्धता के कारण सहज हो गया है।

7. ***संस्कृतिकरण (Sanskritization)***– संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा निम्न जातियाँ उच्च जातियों के कार्मकाण्ड, रीतिरिवाज, मूल्य, विचारधाराओं को ग्रहण करती हैं। ऐसी स्थिति में उच्च जातियाँ इनसे ईर्ष्या करती हैं। अत: जातीयश्रेष्ठता की भावना के कारण जातिवाद उत्पन्न हो रहा है क्योंकि संस्कृतिकरण करने वाली जातियाँ ऐसी स्थिति में लामबंद हो जाती हैं और जातीय निष्ठा को बनाए रखने की कोशिश करती हैं।

8. ***राजनीतिक कारण (Political Reasons)***– भारतीय राजनीति में जातितत्व एक निर्णायक पहलू के रूप में प्रकट हुआ है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपना चुनावी समीकरण जाति संख्या के आधार पर तय करते है। इसका संबंध वोट बैंक से है। ग्राम पंचायत चुनाव से लेकर लोकसभा के चुनाव तक प्रत्येक राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों का चयन जाति संख्या के आधार पर तय करते हैं। वस्तुत: जातिवाद राजनीति के प्रत्येक स्तर पर है। क्योंकि विशेष जातियों का ध्यान न रखने पर राजनीतिक दलों के वोट वैंक पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसीलिए चुनाव जीतने के बाद नेता जाति के हितों का ध्यान रखता है तथा अपनी सरकार बनने पर विशेष जाति के सदस्यों को प्रमुख पद देते हैं।

जातिवाद के परिणाम (Consequences of Casteism)

भारतीय समाज में जातिवाद कई समस्याओं को जन्म दे रहा है जिसे निम्न रूप में देखा जा सकता है:-

1. ***सामाजिक तनाव (Social Stress)***– भारत में जातिवादी प्रवृत्ति के बढ़ने के कारण विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक दूरी बढ़ गई है। यद्यपि यह दूरी पूर्व की दूरी से भिन्न है जो कि निर्योग्यता के कारण नहीं बल्कि योग्यता के कारण है। विभिन्न जातियाँ अपने हितो के प्रति सचेत होती हैं तो दूसरी जातियों को लगता है कि उनके हित प्रभावित हो रहे हैं। जातीय सम्मेलनों में केवल विशेष जाति के शामिल होने से अन्य जातियों को लगता है कि उनके प्रति जहर घोला जा रहा है। इस कारण जातीय तनाव बढ़ रहे हैं जो कि कभी-कभी संघर्ष का रूप भी ले लेते हैं। यह जातीय संघर्ष चुनावों के दौरान अक्सर दिखाई देता है।

2. ***शोषण (Exploitation)***– जातिवादी मानसिकता के कारण एक जाति अन्य जातियों के बीच अपना प्रभुत्व स्थापित करती है। इसके पश्चात उनका शोषण भी करने लगती है। जिससे अन्य जाति के भीतर असुरक्षा की भावना जन्म लेती है और शोषण के विपरीत प्रतिक्रिया भी करने लगती है।

3. ***राजनीतिक एवं सामाजिक तनाव लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा (Political and Social Tension ugly in the Democratic Process)***– राजनीति में जातिवाद का प्रयोग होने से विशेष जाति को ही राजनीतिक लाभ मिलते हैं। अन्य जातियां उपेक्षित रह जाती हैं। इससे विभिन्न जातियों के बीच तनाव उत्पन्न होता है इसके अलावा राजनीति का जातिकेन्द्रित होना लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है।

4. ***राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता में बाधा (Hindrance to National Integrity)***– जातिवाद के कारण विभिन्न जतियों के बीच तनाव एवं संघर्ष होता है और राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न होती है। चूँकि जातियाँ अब राष्ट्रीय स्तर पर लामबंद हो गई हैं। इसमें संचार साधनों की भूमिका प्रमुख है। अत: जातीय तनाव एक क्षेत्र में होने पर देश के अन्य क्षेत्रों में आसानी से फैल जाता है और क्षेत्रीय समस्या का राष्ट्रीयकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त जातियाँ राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के

लिए कभी-कभी हिंसात्मक आंदोलन पर भी उतर आती हैं और राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं विकास प्रक्रिया बाधित होती है। गुर्जर आन्दोलन इसका उदाहरण है।

भारत में राजनीति में जातियों के प्रवेश से जाति का राजनीतिकरण हो रहा है। अत: राजनीति में जातीय मुदद् ही महत्वपूर्ण हो गए हैं तथा अन्य राष्ट्रीय हित के मुदद् पीछे छूट गए हैं। अत: राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा हित को चोट पहुँच रही है।

5. ***भ्रष्टाचार (Corruption)***- जातिवाद, प्रशासनिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण बन गया है। प्रशासनिक अधिकारी नियुक्तयों के मामले में जातीय हित को ध्यान में रखते हैं जो कि भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण बनता है। राजनीतिक स्तर पर जातीय हित को ध्यान रखने पर भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है तथा यह स्वयं भ्रष्टाचार का एक रूप है।

जातिवाद को दूर करने के उपाय (Ways to Eliminate Casteism)

भारत में जातिवाद की समस्या के समाधान के लिए संवैधानिक, कानूनी एवं विकासात्मक उपाय किए गऐ हैं। संविधान में जाति सूचक शब्दों का प्रयोग बंद कर दिया गया है इसके अलावा कानूनी कार्यवाही और विभिन्न मुकद्मों की सुनवाई के दौरान वादी एवं प्रतिवादी का केवल नाम ही प्रयोग किया जाता है और उनकी जाति का उल्लेख नहीं किया जाता। जातिवाद को समाप्त करने एवं विभिन्न जातीय समूहों के बीच अंत:क्रिया (Interaction) बढ़ाने के क्रम में अंतरजातीय विवाहों (Intercaste Marriage) को प्रोत्साहित किया जा रहा है। हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत विभिन्न जातियों के बीच विवाह को मान्यता दी गई है। संविधान में व्यवसायिक निर्योग्यता को समाप्त कर दिया गया है। अब प्रत्येक जाति अपनी क्षमता एवं रूचि के अनुरूप व्यवसाय का चयन कर सकती है।

भारतीय संविधान सभी प्रकार की असमानता को प्रतिबन्धित करते हुये सभी नागरिकों को चाहे वह किसी भी जाति के हों समानता का अधिकार देता है और अस्पृश्यता जैसे जातीय निर्योग्यताओं को प्रतिबन्धित कर जातीय समरसता को प्रोत्साहित करता है।

निम्न एवं पिछड़ी जातियों के उत्थान एवं उनके प्रति भेद भाव को कम करने के लिए उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास की व्यवस्था के क्रम में उन्हें शिक्षण संस्थान एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया है। इसके अलावा इनके लिए अलग से छात्रवृत्ति दी जाती है और रोजगार कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। राजनीति में इनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिए स्थानीय निकायों तथा संसद एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।

विभिन्न कानूनी उपायों के साथ ही जातिवाद दूर करने के सामाजिक प्रयास भी होते रहे हैं। आरम्भिक समाज सुधारकों ने जातीय समानता पर बल देकर जाति में व्याप्त असमानता को कम करने का प्रयास किया है। आज बहुत सारे गैर सरकारी संगठन एवं स्वयं सेवी संगठन जातिवाद के विरुद्ध व्यापक प्रचार अभियान चला रहे हैं। आज की आर्थिक प्रणाली विभिन्न जातियों को नजदीक लाकर जातिवाद को दूर कर रही है साथ ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग भी जातिवाद के प्रति बहुत कठोर नहीं है और वह जातीय प्रतिबन्धों को मान्यता नहीं देता। प्रेम विवाह भी अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित कर जातिवाद के उन्मूलन में सहायक रहा है।

मूल्यांकन (Evaluation)

उपरोक्त तथ्यों के आधार हम देखते हैं कि जातिवाद समकालीन भारतीय समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या है। इसके निवारण के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं और उन प्रयासों का काफी हद तक सकारात्मक प्रभाव पड़ा है परिणामत: जातिवाद में कमी आई है। संवैधानिक उपायों के तहत व्यवसायिक निर्योग्यता की समाप्ति, अवसर की समता आदि उपायों से विभिन्न जातियों के लोग विभिन्न व्यवसाय बिना किसी भेदभाव के करते देखे जा सकते हैं। उच्च पदों के लिए साक्षात्कार के दौरान जातीय चिन्हों के न प्रयोग होने से जाति पर आधारित भेदभाव की संभावना कम हुई है। हिन्दू विवाह अधिनियम से विभिन्न जातियों के बीच विवाह से जातिवाद की गहनता में कमी आ रही है क्योंकि अर्न्तजातीय विवाह बढ़े हैं। संरक्षी विभेदीकरण (Protective Discrimination) की नीति के तहत निम्न एवं दुर्बल जातियों का सशक्तीकरण हो रहा है तथा भविष्य में जातीय शोषण एवं जातिवाद में कमी की संभावना बढ़ रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज में जातिवाद की समस्या काफी हद तक कमजोर हो रही है किन्तु यह समस्या अभी भी समाज में बनी ही नहीं हुई है बल्कि नए रूप में आ रही है। यद्यपि अश्पृश्यता तथा व्यवसायिक निर्योग्यता की समाप्ति संवैधानिक स्तर पर की गई है पर व्यवहार में अभी भी जातीय शोषण कभी कभी समाज में दिखाई पड़ता है संरक्षी विभेदीकरण की नीति के तहत निम्न जातियाँ सशक्त हुई हैं, किन्तु उनमें एक नए प्रकार की जातीय चेतना उत्पन्न हो रही है तथा वे अपना संगठन बनाने लगी हैं तथा अन्य उच्च जातियों के प्रति ईर्ष्या एवं जातिवाद की भावना से ग्रसित हो रही हैं। इसी क्रम में उच्च जातियाँ भी इनसे ईर्ष्या करने लगी हैं वर्तमान में राजनीति जाति पर आधारित हो गयी है तथा वहाँ जातिवाद बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। विभिन्न जातीय संगठन इसे बढ़ाने में मददगार साबित हो रहे हैं। उपरोक्त कमियों के आलोक में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

1. जातीय संगठन जातिवाद को बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं तथा जातीय निष्ठा का भावात्मक एवं राजनीतिक शोषण करते हुए

राजनीतिक लाभ उठा रहे हैं। जातिवाद की समस्या के समाधान के लिए इन जातीय संगठनों पर रोक लगानी चाहिए अथवा इनके उन व्यवहारों पर नियंत्रण लगाना चाहिए जो जातिवाद को बढ़ावा देते हैं।

2. जातिवाद को समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जिससे विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक अंत:क्रिया में वृद्धि हो और सजातीय हितों के प्रति चेतना में कमी आए। इससे जातिवाद की गहनता में कमी आएगी।
3. पिछड़े जातियों की सामाजिक, आर्थिक दशा में सुधार के उपाय करने चाहिए। विकास की प्रक्रिया में शामिल होने पर उनके भीतर जातीय संकीर्णता जन्म नहीं लेगी और जातिवाद की सघनता में कमी आएगी।
4. जातिवादी प्रवृत्ति अशिक्षित एवं अतार्किक संकीर्ण मानसिकता के कारण उत्पन्न होती है। अत: शिक्षा में ऐसे तत्वों को शामिल करना चाहिए जिससे जातिवादी मूल्यों को ठेस पहुँचे। इसके अतिरिक्त जातिवादी प्रवृत्ति के उन्मूलन के लिए विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा जनमत तैयार करना आवश्यक है।
5. संचार साधनों और गैर सरकारी संगठनों को भी जातिवाद के उन्मूलन हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे जातिवाद के विरूद्ध आधार स्तर पर जागरूकता का विकास कर सकें और राष्ट्रीय समानता व एकता की भावना का प्रचार करते हुए युवा मानसिकता को जातिवाद के विरोध में संगठित कर सकें।

भारत में जाति एवं राजनीति (Caste and Politics in India)

जाति भारत की एक प्रमुख विशेषता है जो सोपान पर आधारित ऊँच एवं नीच के क्रम में विद्यमान रही है। जाति ने भारतीय समाज के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित किया है। इन पक्षों में राजनीति एक प्रमुख पक्ष रहा है।

राजनीति में जाति की भूमिका (Role of Caste in Politics)

जातिवाद भारत की एक प्रमुख प्रचलित विचारधारा है जिसकी मान्यता है कि जाति सामुदायिक संगठन (Community Organization) का एक मात्र आधार है। इसकी मान्यता है कि एक जाति के लोगों के हित एक जैसे होते हैं तथा अन्य जातियों के हितों से उसका कोई मेल नहीं होता। निश्चित रूप से जाति भारतीय सामाजिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और भारतीय सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ इसने राजनीति को भी कई रूपों में प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को निम्न रूपों में देखा जा सकता है:-

1. विभिन्न चुनावी क्षेत्रों में राजनीतिक दलों द्वारा जातीय समीकरण के आधार पर अपना उम्मीदवार तय किया जाता है।
2. सरकार गठन के समय विभिन्न जातीय समूहों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।
3. जातीय राजनीति की शुरूआत ने कई राजनीतिक दलों के प्रति आम जनता में यह भाव उत्पन्न किया है कि अमुक दल किसी जाति विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।
4. कई राजनीतिक दलों द्वारा चुनावों के समय वोटों की लामबंदी हेतु विभिन्न जातियों को उकसाने का प्रयास किया जाता है।

जाति में राजनीति की भूमिका (Role of Politics in Caste)

राजनीति में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पर, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जाति और राजनीति के बीच सिर्फ एक तरफा संबंध होता है। राजनीति भी जातियों को राजनीति के अखाड़े में लाकर जाति व्यवस्था और जातिगत पहचान को प्रभावित करती है। इस तरह, सिर्फ राजनीति ही जातिग्रस्त नहीं होती बल्कि जाति भी राजनीतिग्रस्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में यह अनेक रूप लेती है जैसे:-

1. प्रत्येक जाति खुद को बड़ा बनाना चाहती है। इसलिए पहले वह अपने समूह की जिन उपजातियों को छोटा या नीचा बताकर अपने से बाहर रखना चाहती थी, अब उन्हें एक साथ लाकर संख्या बल प्राप्त करने की कोशिश करती है।
2. चूंकि एक जाति केवल अपनी संख्या बल से सत्ता पर कब्जा नहीं कर सकती, इसलिए वह ज्यादा राजनीतिक ताकत पाने के लिए दूसरी जातियों या समुदायों को साथ लेने की कोशिश करती है और इस तरह उनके बीच संवाद और मोल-तोल होता है।
3. समकालीन राजनीति में नए किस्म की जातिगत गोलबंदी भी हुई है, जैसे 'अगड़ा' और 'पिछड़ा'।
4. सार्वजनिक वयस्क मताधिकार तथा एक व्यक्ति एक वोट की अवधारणा ने सभी मतदाताओं के वोटों को समान महत्त्व प्रदान कर निम्न जातियों में राजनीतिक चेतना के विकास को संभव बनाया है।
5. चुनावी लाभ हेतु जातियों को राजनीतिक दलों द्वारा उकसाये जाने की घटना कभी-कभी जातीय संघर्ष का कारण बन जातिगत समूहों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

इस प्रकार भारत में जाति एवं राजनीति के मध्य दोआयामी संबंध परिलक्षित होते हैं, जहाँ दोनों परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। साथ ही ये प्रभाव कई स्तरों पर सकारात्मक हैं तो कई स्तरों पर नकारात्मक भी हैं। विभिन्न जातियों में एकता एवं सुदृढ़ता का

विकास, निम्न जातियों में राजनीतिक चेतना की वृद्धि तथा जातिगत गतिशीलता की दृष्टि से यह लाभकारी प्रतीत होता है। वहीं जातीय संघर्ष एवं तनाव के रूप में यह नकारात्मक भी है। अत: आवश्यक है कि भारत में जाति एवं राजनीति दोनों को सही दिशा देते हुए जाति के राजनीतिकरण तथा राजनीति के जातिकरण की स्थिति से बाहर निकलकर राष्ट्रीय एवं विकासात्मक मुद्दों के आधार पर राजनीति को प्रोत्साहित किया जाए।

भारत में समानता एवं जाति आधारित आरक्षण
(Equality and Caste based Reservation in India)

एक आधुनिक मूल्य के रूप में समानता का अर्थ मानव मात्र के बीच किसी भी प्रकार के विभेद के अभाव से है। समानता के अंतर्गत सभी व्यक्तियों के लिये अवसरों पर समान अधिकार उपलब्ध कराने का विचार निहित है।

भारत में प्राचीनकाल से ही विभिन्न जातियों की विद्यमानता रही है तथा वर्ण मॉडल के तहत ये जातियाँ विभिन्न स्तरों पर अवस्थित रहीं हैं। जातिगत सोपान पर आधारित इस व्यवस्था में उच्च तथा निम्न जातियों के मध्य असमानता रही है तथा निचले स्तर पर अवस्थित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति निम्न बनी रही है। उच्च जातियों को बहुत से सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त थे जिससे उनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊंची थी और साथ ही समाज के संसाधनों और अवसरों पर उनका नियंत्रण था। निम्न जातियों पर कई निर्योग्यताएं थोपते हुए, उन्हें विकास के सभी अवसरों से वंचित कर दिया गया था। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों का लगातार शोषण होता रहा और उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए जाते रहे हैं। जिससे इनकी स्थिति में लगातार गिरावट होती रही और ब्रिटिश काल में निम्न जातियाँ एक अत्यंत कमजोर और उपेक्षित वर्ग के रूप में देखी जाने लगी।

भारत ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के पश्चात् एक लोकतंत्रात्मक समाजवादी राष्ट्र के निर्माण का लक्ष्य रखा। वर्षों से समाज के निचले पायदान पर अवस्थित तथा शोषित वर्ग को सामाजिक न्याय के माध्यम से समाज में उचित स्थान सुनिश्चित कराना इसका महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। अत: यह आवश्यक था कि सभी लोगों को जीवन के सभी क्षेत्रों में समान अवसर उपलब्ध कराते हुए दुर्बल वर्गों हेतु विशेष व्यवस्था की जाए ताकि हम एक आधुनिक समतामूलक भारत निर्माण का लक्ष्य प्राप्त कर सकें। सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर विभिन्न वर्गों एवं जातियों के उत्थान हेतु विभिन्न रूपों में प्रयास किए गए।

भारतीय संविधान विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से सामाजिक समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपबंध करता है। इन्हें दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। पहला भाग अवसरों की औपचारिक समानता से संबंधित है। इसके अंतर्गत संविधान जाति, लिंग, जन्मस्थान, धर्म आदि के आधार पर सभी को समान अवसर उपलब्ध कराता है। संविधान की उद्देशिका में वर्णित 'प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता' तथा 'सामाजिक न्याय' जैसे शब्दों के माध्यम से सामाजिक असंतुलन दूर कर सभी को समान अवसर की उपलब्धता की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 16 के द्वारा सभी व्यक्तियों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समानता के अवसर उपलब्ध कराए गए हैं। साथ ही अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान किया गया है।

इसका दूसरा भाग संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति से संबंधित है। भारत में लम्बे समय से शोषण एवं असमानता के शिकार समूहों को एक विशेष श्रेणी में श्रेणीबद्ध कर उन्हें विशेष कल्याणकारी सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। इन वर्गों को आरक्षण के माध्यम से सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य वर्गों के समकक्ष लाने का प्रयास किया गया है। इसके तहत इनके लिए विभिन्न शिक्षण संस्थानों, नौकरियों तथा संघीय व राज्य विधान मंडलों में सीटों का आरक्षण किया गया है। अनुच्छेद 330, 332 तथा 335 इसी से संबंधित है। अनुच्छेद 46 के द्वारा राज्य को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह दुर्बल वर्ग के सभी व्यक्तियों के आर्थिक एवं शैक्षणिक हितों का संवर्द्धन करे तथा उन्हें सभी प्रकार के अन्याय एवं शोषण से बचाने का प्रयास करे।

सरकार द्वारा इसके अतिरिक्त विभिन्न योजनागत प्रयासों के माध्यम से सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में समाज के दुर्बल वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है, ताकि इन वर्गों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान सम्भव हो और यह वर्ग समतापूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके।

निश्चित तौर पर उपरोक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप सदियों से निम्न स्तर का जीवन-यापन कर रहे एवं सामाजिक असमानता के शिकार वर्गों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार हुआ है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च प्रस्थितियों को प्राप्त करने के उपरांत इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है। इनकी स्थिति में इस सकारात्मक परिवर्तन के लिए उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त कई अन्य तत्व भी भागीदार रहे हैं जिनमें संचार साधनों का विकास, वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण का विकास, शिक्षा का प्रसार, आधुनिक मूल्यों का प्रसार आदि प्रमुख रहे हैं। परंतु अभी भी हम एक समानतापूर्ण एवं न्याययुक्त समाज के निर्माण के लक्ष्य की प्राप्ति से दूर हैं।

अत: आवश्यक है कि सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपरोक्त प्रयासों को निरंतर जारी रखा जाए। सरकार के अतिरिक्त आम जनता के स्तर पर भी इसके लिए प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही यह भी

आवश्यक है कि समाज के दुर्बल वर्गों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाए।

जाति आधारित आरक्षण के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of Caste based Reservation)

भारत में जाति के आधार पर आरक्षण के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं:–

1. ये संविधान की अनिवार्य आवश्यकता (Mandatory Requirement) की पूर्ति करते हैं जिसमें समाज के उन वर्गों को संतुष्ट करना है जिनमें कई दशकों से अन्दर ही अन्दर असंतोष उत्पन्न रहा था।
2. हमारा यह नैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य है कि यह सुनिश्चित करें कि उत्पीड़ित और दमित (suppressed) व्यक्तियों और धनाढ्य (affluent) व्यक्तियों में समाज में समता हो। शोषित व्यक्तियों में विश्वास की भावना भरी जाने की आवश्यकता है।
3. राष्ट्र की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की 52% जनसंख्या का कुल 4.0% मात्र प्रथम श्रेणी सरकारी और राजकीय क्षेत्र में प्रतिनिधित्व है। यह कमजोर वर्गों के साथ नितांत अन्याय है जिसको ठीक करने की आवश्यकता है।
4. आरक्षण विरोधियों का एक तर्क योग्यता के प्रश्न पर आधारित है। इनका मानना है कि योग्यता उच्च जातियों में ही निवास करती है, परन्तु भारतीयों के विरूद्ध अंग्रेजों के ऐसे ही तर्क को हम पूर्व में ही खारिज कर चुके हैं तथा बिना अवसर प्रदान किए योग्यता पर प्रश्न चिह्न उठाना उचित नहीं है।

जाति आधारित आरक्षण के विरोध में तर्क (Arguments against Caste based Reservation)

भारत में जाति आधारित आरक्षण की कई आधारों पर तीखी आलोचना हुई है। इसके विरूद्ध पांच प्रमुख तर्क दिए गए हैं:-

1. 'पिछड़ेपन की परिभाषा केवल जाति के आधार पर की गयी है। इससे घृणास्पद जाति संबंधी पूर्वाग्रह और पक्षपात जो (जाति) व्यवस्था में प्रचलित है बने रहेंगे। कोई भी विशेष प्रावधान समस्त निर्धन व्यक्तियों के लिए बगैर जाति का ध्यान किए होना चाहिए और केवल आर्थिक मानदंडों पर आधारित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी पिछड़ी जातियों/वर्गों का पता लगाने के लिए केवल 'जाति' के एक मापदण्ड का उपयोग बहुल (multiple) मापदण्डों जैसे धर्म, आय, व्यवसाय और किसी मोहल्ले में मकान (जिन पर कई विद्वानों ने बल दिया है) के महत्व को कम करता है।
2. यद्यपि 'जाति' की परिभाषा करने के लिए बहुत प्रयत्न किए गए, 'वर्ग' की कोई परिभाषा नहीं दी गयी और समाजशास्त्रीय दृष्टि से जाति और वर्ग दो पृथक श्रेणियाँ है। इसलिए मंडल रिपोर्ट ने अधिक से अधिक 'अन्य पिछड़ी जातियों' का और न कि 'अन्य पिछड़े वर्गों' का पता लगया जिसकी आवश्कता थी।
3. अन्य पिछड़ी जातियां/वर्गों की पहचान करने का मापदण्ड अनियमित, ऊटपटांग और राजनीति से प्रेरित है। यह विशुद्ध वैज्ञानिक विधि पर आधारित नहीं है। मंडल कमीशन को जाति/वर्ग के सामाजिक, शैक्षिक, और आर्थिक पिछड़ेपन को ज्ञात करने के लिए जो ग्यारह सूचक अपनाए इनमें अच्छे सूचकों की विशेषताओं का अभाव है। उदाहरणार्थ, सामाजिक सूचक जो अल्प आयु में विवाह के मापदण्ड से संबंधित हैं किसी विशेष जाति या वर्ग में ही नहीं पाया जाता, अपितु यह एक अत्यन्त पुरानी सामाजिक बुराई है जो साधारणतया सभी जातियों और वर्गों में पायी जाती है। इसलिए इसको जातियों और वर्गों में एक दूसरे में भेद प्रदर्शित करने के लिए सूचक के रूप में काम में नहीं लिया जाना चाहिए था। इसी प्रकार श्रम में स्त्रियों की भागीदारी वाले सामाजिक सूचक को एक आर्थिक सूचक माना जाना चाहिए क्योंकि स्त्रियों को अपनी पारिवारिक आय बढ़ाने के लिए काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण महिलाओं में अपने परिवार के खेती के कार्यों में सहायता करने की एक आम प्रवृत्ति होती है और यह किसी विशेष जाति अथवा वर्ग से सम्बन्धित नहीं है।

   इस प्रकार एक व्यक्ति को 'शैक्षिक रूप से पिछड़ा' माना जाता था यदि उसके पिता और दादा ने प्राथमिक स्तर से आगे अध्ययन नहीं किया है। उसको 'सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा' माना जाता था यदि (हिन्दू होने की अवस्था में) वह तीन द्विज वर्णों में नहीं आता था, यानि कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य नहीं था, और/या (गैर-हिन्दू होने की अवस्था में) वह उन हिन्दू जातियों में धर्मान्तरित (convert) था जिन्हें सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ परिभाषित किया हुआ है या उसके पिता की आय निर्धनता रेखा से नीचे थी। क्या ये विस्तृत जांच-पड़तालें वास्तव में की गयी थीं? प्रमाण इसे नहीं दर्शाता है।

   अधिकतम निरुत्साह करने वाला भाग आर्थिक सूचकों का चयन है जहां प्रति व्यक्ति पारिवारिक आय को बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है। परिवारिक सम्पत्ति और उपभोक्ता ऋण उनके व्यय को बतलाते हैं और यह इस पर निर्भर करता है कि उनके परिवार बड़े या छोटे हैं या वे सामाजिक परंपराओं को अधिक निभाते हैं और अक्सर ऋण लेते रहते हैं।

   अन्त में, वह आर्थिक सूचक जिसमें पानी के स्रोत पर विचार किया गया है एक बहिर्जात (exogenous) कारक से सम्बन्धित है, न कि किसी विशेष जाति या वर्ग से। इस प्रकार जबकि जातियों/वर्गों के पिछड़ेपन की पहचान सही सूचकों पर आधिरित नहीं है तो आरक्षण को बढ़ाने के प्रयत्नों को स्वीकृति नहीं मिल सकती।

4. 'पिछड़े' वर्ग की परिभाषा और पहचान करना अवैज्ञानिक है। मंडल आयोग ने 3,742 वर्गों को 'पिछड़ा' माना, जबकि कालेलकर समिति ने लगभग 2000 वर्गों को। इससे प्रकट होता है कि या तो समिति ने सही पहचान नहीं की या लाभ उठाने के उद्देश्य से दूसरी जातियों की एक बड़ी संख्या ने बाद में अपने को पिछड़ी जातियों में वर्गीकृत कराने के लिए संघर्ष किया।
5. जातियों के वर्गीकरण का जनसंख्या प्रक्षेपण (projection) 1931 की जनगणना के आंकड़ों के उपयोग पर आधारित था। 1931 और 1990 के बीच औद्योगीकरण, नगरीकरण, शैक्षिक विकास, प्रवृजन और गतिशीलता में तेज वृद्धि के कारण कई परिवर्तन आये हैं। इसलिए मंडल आयोग द्वारा 1980 में अपनाया गया पुरानी जनगणना का आधार, अपनाये गये मानदण्डों का एक विकृत चित्र प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता के पश्चात् किये गये भूमि सुधारों ने विभिन्न जातियों को सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में बहुत परिवर्तन कर दिया है और वे ग्रामीण अभिजन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गए।
6. दूसरा गलत अनुमान जो मंडल अयोग ने लगाया वह यह था कि गैर-हिन्दुओं में अन्य पिछड़ी जातियों/वर्गों का वही अनुपात था जो हिन्दुओं में था। गैर-हिन्दू अन्य पिछड़ी जाति/वर्गों का अनुपात कुल जनसंख्या का 8.40% माना गया था या उनकी वास्तविक जनसंख्या का 52.0%। 8.40% और 52.0% की दोनों संख्याएं मनमाने ढंग से ली गयी थीं। यह इस रिपोर्ट की पद्धतिशास्त्रीय एवं आधारभूत त्रुटि है।
7. सामाजिक-शैक्षणिक क्षेत्र के सर्वेक्षण के लिए प्रतिचयन प्रणाली अत्यंत त्रुटिपूर्ण थी उसमें प्रत्येक जिले से दो गांवों और एक शहरी ब्लॉक का चयन करना था। ऐसा प्रतिदर्श जो केवल 1.0% जनसंख्या को ही सम्मिलित करता हो, अत्यन्त संदेहास्पद है।
8. पिछड़ेपन के मानदण्डों को निर्धारित करते समय, आर्थिक मानदण्डों को दिया गया महत्व बहुत अपार्याप्त था। जातियों/वर्गों के वर्गीकरण के लिए मंडल आयोग द्वारा निर्धारित किए गये 22 अंकों में से कवेल चार अंक आर्थिक मानदण्डों को दिए गए। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक वर्ग के 'पिछड़ेपन' को निर्धारित करते समय उसकी आर्थिक स्थिति को अधिक महत्व नहीं दिया गया।
9. भारतीय संविधान ने 'पिछड़े वर्ग' की परिभाषा नहीं की है, परन्तु उसमें 'पिछड़े वर्गों की स्थितियों के अन्वेषण के लिए एक आयोग की नियुक्ति का प्रावधान है। वह इसको अनिवार्य नहीं बनाता कि सरकार आयोग से पिछड़े वर्गों की पहचान करने को कहे। मंडल अयोग के अध्यक्ष ने जो स्वयं एक पिछड़ी जाति के सदस्य थे और जो अपने राजनीतिक जीवन में पक्षपातपूर्ण वक्तव्य देने के लिए प्रसिद्ध रहे, पिछड़ी जातियों/वर्गों को पहचानने के लिए जो सूचक काम में लिए और उन्हें अंक प्रदान किये उसमें उनकी भूमिका पक्षपातपूर्ण रही। चूंकि गहन अन्वेषण और सर्वेक्षण नहीं किया गया और सही मानदण्डों का प्रयोग नहीं किया गया इसलिए जातियों/वर्गों के चयन का मंडल आयोग का आदेश नहीं माना जा सकता। स्वयं आयोग ने स्वीकार किया था कि वर्गो को सामाजिक और शैक्षिक रूप में सूचीबद्ध कुछ मनमाने ढंग से किया गया है और उसमें समर्थनीय दृष्टिकोण के गुण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
10. जनसंख्या विकास की स्थिर दर का अनुमान कैसे लगाया गया और प्रतिशतता कैसे अपनायी गयी? एक दम से 27.0% कैसे निर्धारित की गयी? सरकार से आरक्षण की समग्रता पर विचार करने की आशा की जाती है जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, विकलांग व्यक्ति, भूतपूर्व सैनिक, विस्थापित व्यक्ति और दूसरी विशेष श्रेणियाँ सम्मिलित हैं। इन सबको जब मंडल आयोग की सिफारिश किए हुए 27.0% से जोड़ देते हैं तो आरक्षण 59.0% से भी अधिक हो जाता है। बची हुई प्रतिशतता इतनी कम रह जाती है कि इस अनुभाग के विद्यार्थी और युवाओं को प्रतिक्रिया व्यक्त करने और आन्दोलन चलाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता। अतः आरक्षण लाभकर रोजगार प्राप्त करने में रूकावट सिद्ध होता है।
11. मंडल आयोग की रिपोर्ट को दस वर्षों तक कोई महत्व नहीं दिया गया। जब किसी रिपोर्ट पर इतने समय बाद विचार किया जाता है तो उसका अद्यतन बनाना चाहिए और परिवर्तित आवश्यकताओं और उसमें कमियों के बारे में उसका परीक्षण होना चाहिए। फिर यह भी आकलन होना चाहिए कि उसे स्वीकृत करने के क्या परिणाम होंगे। यह एक निश्चित समय में किया जाता है। जिस वी.पी. सिंह सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट की स्वीकृति की घोषणा की, उसने इस प्रक्रिया को पूरा करने की चिन्ता ही नहीं की जिसके फलस्वरूप उसमें कमियों के कारण हिंसा और आंदोलन हुए।
12. संविधान में यह व्यवस्था दी गयी है कि एक वर्ग जो राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधत्व रखता है, को 'पिछड़ा' वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। यह कार्य सरल नहीं है क्योंकि इस पहलू पर सांख्यकीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, केवल भ्रांति उत्पन्न करने वाले आंकड़ों का एक पुंज (सेट) है जिसका आंकलन कुछ राज्यों के पिछड़े वर्गों की सूचियों के आधार पर किया गया है।
13. मंडल आयोग की रिपोर्ट के क्रियान्वयन का एक परिणाम यह हुआ कि चूंकि मंडल आयोग रिपोर्ट ने 27.0% आरक्षण को प्रत्येक पिछड़ी जाति के कोटा के रूप में विभाजित नहीं किया है, इसमें 27.0% के आरक्षण का अधिकांश भाग उन थोड़ी सी जातियों द्वारा हथिया लिया जाएगा जो पिछड़ी जातियों में प्रबल हैं। इन थोड़ी प्रबल जातियों में भी कुछ ही परिवार ऐसे होंगे जो

कि अपने पिछड़े भाईयों की कीमत पर समृद्ध बनेंगे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण नीतियों के पूर्व में हुए क्रियान्वयन से यह अनुभव हो चुका है। मंडल आयोग रिपोर्ट में इसकी कोई सीमा नहीं है कि एक परिवार के कितने सदस्य आरक्षण का लाभ उठा सकते हैं और न ही उसमें कोई आर्थिक मापदण्ड है जो कि सम्बन्धित जाति के सबसे अधिक समृद्ध व्यक्ति को आरक्षण कोटा से लाभ उठाने से वंचित करें।

जाति आधारित जनगणना (Caste based Census)

29 जून, 2011 को बहुप्रतीक्षित जाति आधारित जनगणना की शुरूआत त्रिपुरा के हाजेमारा/हेजामारा के जनजातीय गांव संखोला से हुई। 1931 की आखिरी जनगणना के बाद यह पहली जाति आधारित जनगणना है, दूसरे शब्दों में यह आजादी के बाद पहली जाति आधारित जनगणना है। यहां उल्लेखनीय है कि सरकार का यह तीसरा मौका है जब किसी बड़े कार्यक्रम की शुरूआत किसी आदिवासी क्षेत्र से हुई है। पहले यूनिक आइडेंटिफिकेशन नम्बर की शुरूआत महाराष्ट्र के नंदूरवार जिले के हेभली गांव से तथा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की शुरूआत राजस्थान के बांसवाड़ा (आदिवासी क्षेत्र) से की गई।

जनगणना राज्य सरकारों द्वारा कराई जाएगी एवं ग्राम पंचायतों की मदद ली जाएगी। ग्रामीण बी.पी.एल. जनसंख्या के आंकड़ों को अंतिम रूप देने से पहले ग्राम सभाओं के सामने पेश किया जाएगा, ताकि वे अपना ऐतराज यदि हो तो दर्ज करा सकें। इसका अनुमोदन ग्राम सभा द्वारा किया जाएगा।

सकारात्मक प्रभाव (Positive Impact)

इस जनगणना से जातियों की स्पष्ट संख्या प्राप्त होगी, जिससे केंद्र प्रायोजित कल्याणकारी योजनाओं का उचित कार्यान्वयन हो सकेगा। साथ ही विभिन्न समुदायों की पूर्व संख्या स्पष्ट होने से, उनके विकास हेतु विशेष कल्याणकारी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने में यह सहायक सिद्ध होगी। यह जनगणना आरक्षण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

नकारात्मक प्रभाव (Negative Impact)

इस जनगणना से कई नकारात्मक परिणाम भी उत्पन्न हो सकते हैं। इससे समाजिक विद्वेष की भावना का विकास होगा। पिछड़ा वर्ग का फायदा उठाने के लिए जाति बदलकर दर्ज करवाने की सम्भावना बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त जाति आधारित राजनीति को भी बल मिलेगा।

मूल्यांकन (Evaluation)

आजादी के बाद की पहली चिरप्रतिक्षित, बहुउद्देशीय और विवादस्पद जाति आधारित जनगणना सम्पन्न हो चुकी है। प्रथमतः इस जनगणना का उद्देश्य निर्धनता के नीचे के लोगों (BPL) की ठीक-ठीक पहचान कर उनके कल्याणार्थ विभिन्न योजनाओं व प्रावधानों के तहत उनके हितों की रक्षा करना है। निश्चित रूप से भारत जैसे राष्ट्र, जहां की लगभग एक-चौथाई जनसंख्या गरीबी में गुजर-बसर करती हो, के लिए यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम साबित होगा। तदोपरांत भारत के नियोजन कार्यक्रमों में भी सहुलियत होगी और देश में व्याप्त आर्थिक असमानता की बड़ी खाई को पाटने में कुछ हद तक यह जनगणना मददगार साबित होगी।

लेकिन भारत जैसे जनाधिक्य वाले राष्ट्र और इसके तुरंत पूर्व हुई क्रमिक दसवर्षीय जनगणना, (15वीं जनगणना, 2011), जाति आधारित जनगणना के विभिन्न उद्देश्यों के प्राप्ति की ओर भी इशारा करती है। जातिगत जनगणना प्रारंभ होने से पूर्व भारत की संसद, राजनीतिज्ञों और समाज में जो विवादास्पद बहस और चर्चाएं हुईं, वह जगजाहिर है। तथा दो-दो जनगणना में होने वाले खर्चों के औचित्य-अनौचित्य पर भी प्रश्न चिह्न समाज में बहस का कारण बनी है।

साथ ही इस जनगणना के दौरान सही-सही निर्धन लोगों की पहचान के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखना जैसे-मोटरवाहन, क्रेडिट कार्डधारक, पक्के मकान, रेफ्रीजिरेटर, टेलिफोन आदि की उपलब्धता-अनुपलधता की सही जानकारी मुश्किल प्रतीत होती है।

बावजूद इसके जातिगत जनगणना एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है और लोकतांत्रिक देश में ऐसे कार्यक्रमों की आलोचना करना सही प्रतीत नहीं होता है। जहाँ एक ओर इस कार्यक्रम से सरकारी नियोजन प्रणाली व प्रावधानों के संचालन में गति आएगी तो वही दूसरी ओर उसके दूरगामी सुप्रभाव भी परिलक्षित होंगे।

भारत में जाति संघर्ष (Caste Conflict in India)

जाति द्वन्द या जाति-संघर्ष (Cast Conflict) वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक गम्भीर समस्या या परिघटना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसका तात्पर्य विभिन्न जातियों या जातीय समूहों के बीच संघर्ष के उस प्रारूप से है, जिसमें वे सामाजिक या सामूहिक हितों का त्याग कर अपनी जातिगत हितों की पूर्ति के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्षशील होते हैं। यह संघर्ष वैचारिक अथवा हिंसात्मक दोनों ही रूपों में अभिव्यक्त होता है, किन्तु इसकी हिंसात्मक प्रकृति ही सामाजिक जीवन के लिए ज्यादा खतरनाक होती है, जैसा कि हम झारखण्ड, बिहार तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में उच्च और निम्न जातियों के बीच के संघर्षों में देख सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि जाति व्यवस्था हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विशिष्टता है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज को धर्म, कर्म अथवा व्यवस्था की दृष्टि से जाति व्यवस्थागत सोपानिक रूप में स्तरीकृत (Stratified) किया गया है। इस सोपानिक व्यवस्था (Hierarchical System) में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य द्विज जातियों के रूप में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान

पर अवस्थित हैं तथा पिछड़ी व निम्न जातियों को 'शूद्र' के रूप में निम्नतम सामाजिक पायदान पर रखा गया है। चूंकि हमारी पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में धर्म तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा इस व्यवस्था को वैधता प्रदान की गयी थी, इसलिए यह एक सर्वमान्य व्यवस्था के रूप में चली आ रही थी और औपनिवेशिक काल के पूर्व तक हमारे समाज में जाति-द्वंद या जाति-संघर्ष जैसी कोई चीज दृष्टिगत नहीं हुई।

औपनिवेशिक काल के दरम्यान पश्चिमी सामाजिक व्यवस्था तथा मूल्यों से सम्पर्क, शिक्षा, संचार, औद्योगीकरण, तकनीकीकरण, नगरीकरण आदि के विकास तथा स्वतंत्रता, समानता और मौलिक अधिकारों के प्रति वैश्विक जागरूकता ने हमारी सामाजिक व्यवस्था के निम्न सोपानों पर स्थित जातियों को प्रभावित किया। परिणामत: वे अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति (Political Status) में उर्ध्वमुखी गतिशीलता (Upward Mobility) के प्रति जागरूक हुए और उन्हें समाज की उच्च जातियों द्वारा अपने शोषण का एहसास हुआ जिसकी परिणति क्रमश: जाति संघर्ष के रूप में अभिव्यक्त हुई।

जाति संघर्ष के कारण (Reasons for Caste Conflict)

भारत में जाति द्वंद विभिन्न कारकों का समेकित परिणाम रहा है, जिन्हें निम्नांकित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. ***जाति व्यवस्था में निहित शोषण व कुरीतियाँ (Exploitation and evils inherent in Caste System) –*** हमारी परम्परागत जातिगत सोपानिक सामाजिक व्यवस्था पवित्रता तथा अपिवत्रता जैसी धारणाओं पर आधारित रही है जिसमें धीरे-धीरे अस्पृश्यता, छुआछूत, भेदभाव आदि कुरीतियां प्रवेश करती चली गईं। परिणामत: जहां इन्होंने उच्च वर्गों को अपनी उच्च सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति को बनाए रखने में मदद की, वहीं निम्न तथा पिछड़ी जातियों का उच्च जातियों द्वारा शोषण को सामाजिक वैधता प्रदान की। जैसे ही अन्य कारकों ने पिछड़ी अथवा शोषित जातियों में जागरूकता पैदा की; वे अपने शोषण के विरुद्ध एकजुट होकर खड़े हो गए।
2. ***मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन (Change in Value System) –*** परम्परागत सोपानिक व्यवस्था को परम्परागत धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के द्वारा वैध ठहराया गया था। चूंकि निम्न पायदान पर अवस्थित जातियां उक्त मूल्यों से सहमत थीं। अत: विरोध या शोषण का कोई कारण उन्हें नहीं दिखाई पड़ता था। किन्तु, आधुनिक पश्चिमी मूल्यों के सम्पर्क ने उन्हें प्रभावित किया और फिर उन्हें अपनी सामाजिक व्यवस्था में निहित मूल्यों के शोषणकारी तथा विभेदकारी (Exploitative and Discriminatory) होने का आभास हुआ। फलत: वे अपने परम्परागत मूल्यों को त्यागकर आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करने लगे और परम्परागत व्यवस्था के उच्च पदस्थ जातियों से उनका संघर्ष प्रारम्भ हो गया।
3. ***सामाजिक गतिशीलता की सम्भावना (Potential for Social Mobility) –*** आधुनिक मूल्यों के प्रसार ने लोकतांत्रिक, राजनीतिक व्यवस्था एवं योग्यता आधारित आर्थिक व्यवस्था में सामाजिक-आर्थिक रूप से निम्न पायदान पर अवस्थित जातियों को इस बात का एहसास दिलाया कि वे समाज में अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति में उर्ध्वाधर गतिशीलता लाकर अपनी प्रस्थिति में सुधार ला सकते हैं। चूंकि उच्च जातियां उनके इस उद्देश्य में सबसे बड़ी बाधक थीं फलत: दोनों के बीच संघर्ष स्वाभाविक हो गया।
4. ***संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों की प्रत्याभूति (Fundamental Rights guaranteed by the Constitution) –*** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारा संविधान सभी व्यक्तियों को समानता तथा नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों की समान प्रत्याभूति करता है, साथ ही इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किए हैं। ये संवैधानिक प्रावधान जहाँ एक ओर निम्न जातियों के विकास और उर्ध्वाधर गतिशीलता में सहायक हुए हैं वहीं ये जातियाँ समाज की शोषक जातियों के विरुद्ध लामबंद और संघर्ष के लिए प्रेरित हुई है।
5. ***राजनीतिक दलों द्वारा स्वार्थ सिद्धि का प्रयास (Efforts to achieve self-interest by Political Parties) –*** भारत की बहुदलीय व्यवस्था में वोटों की राजनीति कई तथ्यों पर आधारित है, जिनमें जाति एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में सामने आई है। परिणाम यह है कि भारत में सभी प्रमुख राजनीतिक दल चाहे वह कांग्रेस, सपा, बसपा, राजद या फिर लोजपा हो- सभी मुस्लिम, यादव, कुर्मी, लोध तथा अन्य पिछड़ी जातियों को आधार बनाकर वोटों की जातिगत लामबंदी कर रहे हैं। परिणामत: जहां इन जातियों में राजनीतिक सहभागिता तथा महत्व का एहसास बढ़ा है, वे संदर्भ समूह, दबाव समूह के रूप में लामबंद हुए हैं, उनमें सामाजिक समता प्राप्त करने की प्रेरणा आई है, वहीं उनमें जातिगत विद्वेष भी उत्पन्न हुआ है जो जाति-संघर्ष या द्वंद के रूप में प्रतिफलित होता रहा है।
6. ***जातीय संगठनों की भूमिका (Role of Caste Organization) –*** वर्तमान समय में प्राय: सभी जातियों के राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय संगठन, क्रियाशील हैं, चाहे वह अखिल भारतीय ब्राह्मण महासभा हो या यादवों, कुर्मियों, भूमिहारों, राजपूतों या अन्य जातियों के संगठन। ये संगठन विभिन्न राजनीतिक दलों के साथ जुड़कर अन्य दूसरी जातियों के विरुद्ध न केवल वैचारिक दृष्टि

से वरन् कभी-कभी हिंसात्मक रूपों में संघर्षशील होते रहते हैं। बिहार के सेनारी, बारा, छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा नरसंहार तथा राजस्थान के मीणा-गुर्जर संघर्ष इसके कुछ प्रमुख उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में जाति-संघर्ष विभिन्न कारकों का समेकित परिणाम है, जो अपने जातिगत स्वार्थों की सिद्धि हेतु क्रियाशील हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है कि व्यवस्था में आंतरिक संघर्ष किसी भी समाज के लिए सकारात्मक परिणाम उत्पन्न नहीं करता है, यह सिर्फ और सिर्फ त्रासदी का ही सूचक है। इसके परिणामों को हम सेनारी काण्ड, बाराकाण्ड, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड की नक्सली हिंसा और राजस्थान के मीणा-गुर्जर संघर्ष के रूप में देख सकते हैं। यद्यपि आधुनिक मूल्यों के प्रभाव व प्रसार से निश्चित रूप से निम्न सोपानिक प्रस्थितियों में रहने वाली जातियों का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास हुआ है। जातिगत संगठन आज दबाव समूह के रूप में विकसित होकर सरकार के साथ सामूहिक सौदेबाजी करने में सक्षम हुए हैं। क्षेत्रीय पार्टियों से जुड़ने के कारण उन्हें निश्चित ही पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व का मौका मिला है तथापि जाति-संघर्ष जो जाति उन्नयन का दूसरा व नकारात्मक पक्ष है, वह जातिवाद, नक्सलवाद जैसे विघटनात्मक तत्वों को ही मजबूत कर रहा है, जो अन्ततः राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए समस्या बनते हैं। इस समस्या के आलोक में निम्न सुझाव अपेक्षित हैं–

1. जातीय असंतोष एवं द्वन्द्व की समाप्ति के लिए आवश्यक है की विभिन्न जातियों के बीच दूरी एवं वैमनस्य को समाप्त करने के उपाय किये जाएं इसके लिए अंतरजातीय विवाहों के प्रोत्साहन को सकारात्मक प्रयास माना जा सकता है।
2. जातीय संगठनों के विघटनात्मक कार्यकलापों पर प्रतिबंध लगाया जाय
3. जातिवादी तथा विभिन्न जातियों में वैमनस्य फैलाने वाली राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगाई जाय।

प्रत्येक जाति को यह अधिकार है कि वह अपना सर्वोन्मुखी विकास करे और उसे सभी सम्यक अवसर भी उपलब्ध होने चाहिए, किन्तु वह किसी अन्य जाति को नुकसान पहुँचाकर नहीं, वरन् संवैधानिक तरीके से और सरकार को भी इस दिशा में सकारात्मक कदम उठाने की जरूरत है।

भारत में जाति व्यवस्था : संभावित प्रश्न

1. जाति व्यवस्था की निरंतरता के स्वरूपों पर चर्चा कीजिये।
2. समकालीन समाज में जाति व्यवस्था कहां तक उपयोगी है? विवेचना कीजिये।
3. जाति एवं राजनीति के मध्य सह-सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिये।
4. जाति ने यदि राजनीति हेतु आधार तैयार किया है तो राजनीति ने जाति को नवजीवन प्रदान किया है। स्पष्ट कीजिये।
5. जाति व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र हेतु बाधक है या साधक, स्पष्ट कीजिये।
6. भारत में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु किए गए प्रयासों की समीक्षा कीजिये और इस दिशा में अपने सुझाव दीजिये।
7. भारतीय समाज पर जातिवाद के प्रभावों की समीक्षा कीजिये और इसे दूर करने हेतु उपाय सुझाइए।
8. समकालीन भारत में जाति एक-साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों हुई है। स्पष्ट कीजिए।
9. हाल के वर्षों में हरियाणा, तमिलनाडु एवं पश्चिम बंगाल आदि में जाति पंचायतों द्वारा परम्परा के संरक्षण के नाम पर दिए गए निर्णयों ने भारतीय लोकतंत्र के समक्ष प्रश्न चिह्न खड़ा किया है। चर्चा कीजिए।
10. खाप पंचायत एवं प्रतिष्ठा हत्या की समकालीन प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिये।
11. भारतीय राजनीति में जातिवाद पर टिप्पणी लिखिए।
12. जाति आधारित जनगणना के लाभों की चर्चा कीजिए।
13. 'भूमि जातियाँ पैदा करती है, मशीन वर्ग बनाती है।' स्पष्ट कीजिये।
14. 'राजनीति में जाति' एवं 'जाति में राजनीति' पर टिप्पणी कीजिये।
15. समकालीन भारत में जाति व्यवस्था निरन्तरता एवं परिवर्तन को परिलक्षित करती है। इस निरन्तरता एवं परिवर्तन के कारणों की चर्चा कीजिये।

✪✪✪✪✪

4 भारत में विवाह (Marriage in India)

विवाह को एक सार्वभौमिक संस्था के रूप में देखा जाता है। दुनिया के लगभग सभी समाजों में यौन सम्बन्धों के नियमन हेतु कुछ संस्थागत नियम पाये जाते हैं जो विवाह के रूप में दो विषमलिंगियों के बीच (आधुनिक संदर्भ में समलिंगियों के बीच भी) समाज द्वारा मान्यता प्राप्त सम्बन्धों को स्थापित करते हैं। यह संबंध कानून तथा रीति-रिवाजों द्वारा परिभाषित तथा मान्य है। इस संबंध की परिभाषा में न केवल यौन संबंधी व्यवस्था को निर्देशित किया गया है वरन् उन बातों को भी सम्मिलित किया जाता है जो श्रम-विभाजन (Work Division) के अतिरिक्त कर्त्तव्य और विशेषाधिकार से भी संबंधित हैं। विवाह द्वारा उत्पन्न बच्चे विवाहित जोड़ी के वैध बच्चे माने जाते हैं। उत्तराधिकार और वंशक्रम का निर्धारण इसी वैधता द्वारा होता है। अत: विवाह यौन संतुष्टि के साथ ही परिवार की निरंतरता बनाए रखने की एक निश्चित सांस्कृतिक क्रियाविधि है।

भारत के हिन्दुओं में विवाह को एक सामाजिक तथा धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता है। इसके तीन उद्देश्य धर्म (कर्त्तव्य), प्रजा (प्रजनन) और रति (यौन सुख) माने गए हैं। अत: कहा जा सकता है कि समाज तथा व्यक्ति दोनों ही दृष्टिकोणों से विवाह महत्वपूर्ण है। विवाह की महत्ता इस बात में भी निहित है कि इससे संतान उत्पन्न होती है। हिन्दुओं में पुत्र प्राप्ति को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि वंश का नाम पुत्र से ही चलता है और धार्मिक अनुष्ठानों, विशेषकर श्राद्ध-कर्म जैसे अनुष्ठान जो स्वर्गवासी पूर्वजों की संतुष्टि के लिए किए जाते हैं, में पुत्र की भूमिका अनिवार्य होती है। हिन्दू व्यवस्था में विवाह द्वारा पुरुष गृहस्थ के रूप में आता है। बिना विवाह के पुरुष और महिला दोनों ही अधूरे समझे जाते हैं।

भारत में अन्य समुदायों में भी विवाह को एक अनिवार्य दायित्व माना जाता है। मुस्लिम धर्म में विवाह को ''सुन्नाह'' (दायित्व) माना गया है। जिसे प्रत्येक मुसलमान को पूरा करना आवश्यक है। ईसाई धर्म विवाह को जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानता है तथा पति-पत्नी के परस्पर संबंधों तथा एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्यों पर जोर देता है। विवाह के महत्व का इस बात से भी पता लगता है कि बहुत कम पुरुष और महिलाएँ ही अविवाहित पाए जाते हैं। भारत में महिलाओं की स्थिति पर एक कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में केवल 0.5% महिलाएँ ही अविवाहित हैं।

भारत में विवाह के प्रकार (Types of Marriage in India)

सामान्यत: भारत में विवाह के दो प्रकार अर्थात् एकल विवाह (Monogamy) और बहुविवाह (Polygamy) पाए जाते हैं। बहुविवाह के दो प्रकार हैं, 1. बहुपत्नी (एक पुरुष का एक समय में कई स्त्रियों के साथ विवाह) और 2. बहुपति (एक महिला का एक समय में कई पुरुषों के साथ विवाह)। हिन्दुओं के प्राचीन ग्रंथों में हमें आठ प्रकार के विवाहों का संदर्भ मिलता है:-

1. ***ब्रह्म विवाह–*** हिन्दू विवाह में यह विवाह सबसे उत्तम समझा जाता है। शास्त्रों के अनुसार इस विवाह में वर को बुलाकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार अलंकारों से अलंकृत करके कन्यादान कर दिया जाता है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करने वाला होता है।
2. ***दैव विवाह–*** इस विवाह में अच्छे कार्य में लगे पुरोहित को अलंकृत करके कन्या दी जाती है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार यह विवाह भी श्रेष्ठ कोटि के विवाहों में आता है। इस विवाह का यज्ञ के साथ सरोकार होता है। आज की सामाजिक व्यवस्था में दैव विवाह समाप्त हो गये हैं।
3. ***आर्ष विवाह–*** इस विवाह में कन्या का पिता विवाह के इच्छुक ऋषि से एक जोड़ा बैल और एक गाय लेकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देता है। आज न तो ऋषि हैं और न ही ऐसे कन्या के पिता। लेकिन इस प्रकार का विवाह बताता है कि प्राचीन काल में ऋषि भी अपना जीवनयापन कृषि के माध्यम से करते थे।
4. ***प्रजापत्य विवाह–*** इस विवाह में कन्या का पिता वर को कन्या दान करता है और कहता है, "तुम दोनों एक साथ मिलकर आजीवन धर्म का आचरण करो।" ऐसे विवाह से उत्पन्न संतान अपने वंश की बारह पीढ़ियों को पवित्र कर देती है, यह विवाह भी आज कल प्रचलित नहीं है।
5. ***असुर विवाह–*** विवाह के इस प्रकार में वधू मूल्य स्वीकार किया जाता है। गौतम का कहना है कि जब कन्या के विवाह के बदले में धन लिया जाता है तो यह एक प्रकार से कन्या को बेचना हुआ। इस विवाह की प्रतिष्ठा नहीं है।
6. ***गंधर्व विवाह–*** ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार का विवाह सुन्दर गंधर्वों और कामुक किन्नरियों में होता था। यह विवाह, वस्तुत: प्रेम विवाह था। आजकल यह विवाह अपवाद रूप में नई पीढ़ी में देखने को मिलता है।
7. ***राक्षस विवाह–*** युद्ध में स्त्री का हरण करके जब उससे विवाह किया जाता था तो वह राक्षस विवाह कहलाता था। आजकल

इस तरह के न तो युद्ध होते हैं और न विवाह। विवाह का यह स्वरूप भी ओझल हो गया है।

8. ***पैशाच विवाह–*** यह विवाह घृणित विवाह है। किसी भी सोयी हुई, घबराई हुई, मदिरा पान की हुई या सड़क चलती लड़की के साथ बलपूर्वक कुकृत्य करके, जब उसके साथ विवाह कर लिया जाता है तो यह पैशाच विवाह कहलाता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार यह विवाह निकृष्ट और अधर्म का पोषक है।

विवाह के ये सब स्वरूप एक तरह के विवाह के मानदण्ड हैं। द्विज जातियों में सामान्यतया दैव और प्रजापत्य विवाह प्रचलित हैं। विवाहों के ये स्वरूप जैसा शास्त्रकारों ने कहा है, वैसा आज नहीं है। समय के अनुसार इनमें परिवर्तन आया है। हमारी समझ में ये स्वरूप केवल शास्त्रकारों के मानस को बताते हैं वास्तविक जीवन में विवाह के इन स्वरूपों में परिवर्तन कर लिया जाता है।

हिन्दू विवाह : एक धार्मिक संस्कार
(Hindu Marriage : As a Sacrament)

अन्य नृजातीय समूहों (Racial Groups) की तरह हिन्दू विवाह एक समझौता या धार्मिक कर्तव्य नहीं है, बल्कि इसे धार्मिक संस्कार (Religious Culture) के रूप में स्वीकार किया गया है।

हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में स्थापित करने के लिए इसके निम्न पक्ष महत्वपूर्ण हैं–

1. हिन्दू विवाह का प्रमुख आधार धर्म है, जैसे–
   (a) पत्नी के साथ पंचमहायज्ञ करना आवश्यक माना गया है।
   (b) बिना पत्नी के कोई भी धार्मिक कार्य सम्भव नहीं है।
   (c) मोक्ष प्राप्ति हेतु संतानोत्पत्ति आवश्यक है।
   (d) विवाह अनेक धार्मिक संस्कारों में एक आवश्यक संस्कार है।
2. हिन्दू विवाह ईश्वर इच्छित बंधन एवं जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता है जिसे कभी तोड़ा नहीं जाता।
3. ऋणों से उऋण होने तथा मोक्ष प्राप्ति हेतु विवाह आवश्यक है क्योंकि–
   (a) विवाह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश हेतु आवश्यक शर्त है और गृहस्थ आश्रम में ही विभिन्न यज्ञों के माध्यम से उऋण होना सम्भव है।
   (b) बिना विवाह के वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम के कर्तव्य को पूरा नहीं किया जा सकता।
   (c) धर्मशास्त्रों के अनुसार बिना विवाह के मोक्ष संभव नहीं है।
4. इसके अर्न्तगत धार्मिक नियमों एवं कृत्यों की प्रधानता होती है, जैसे–पाणिग्रहण, मंत्रोच्चारण, पुरोहित आदि।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है। परन्तु आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में हिन्दू विवाह की धार्मिक प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ है। आज विवाह धार्मिक कृत्यों की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता। वरन् मुख्य रूप से मित्रता, आनन्द एवं सहयोग हेतु किया जाता है। तलाक को संवैधानिक एवं सामाजिक मान्यता मिल जाने के कारण हिन्दू विवाह बंधन अब अटूट नहीं रह गया है।

उपरोक्त परिवर्तनों के बावजूद परस्पर विश्वास तथा जीवन साथी के बीच प्रतिबद्धता पहले भी विवाह का मूल तत्व (Basic Element) था और आज भी है। वर्तमान में विभिन्न कारणों से धार्मिक प्रभाव में कमी अवश्य हुई है, परन्तु अभी भी विवाह का एक धार्मिक संस्कार के रूप में महत्व बना हुआ है। आज भी विवाह संस्कार, हिन्दू सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है और अधिकांश विवाह धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार ही सम्पन्न किए जाते हैं। प्रेम विवाह, को-लिविंग या समलैंगिक विवाहों की चर्चाएं विवाह के धार्मिक पक्ष पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं, परन्तु यह सीमित परिघटना है। सामान्य रूप से विवाह का धार्मिक पक्ष आज भी महत्वपूर्ण है और जब तक विवाह केवल यौन सन्तुष्टि के उद्देश्य हेतु ही नहीं किया जायेगा बल्कि साथ रहने तथा संतान प्राप्ति के लिए भी किया जायेगा यह धार्मिक संस्कार के रूप में बना रहेगा, भले ही इसके धार्मिक पक्षों का आधुनिकीकरण हो जाए।

हिन्दू विवाह सम्बन्धी नियम व निषेध
(Rules and Prohibitions Regarding Hindu Marriage)

भारत में हिन्दू विवाह सम्बन्धी निषेधों में अन्तर्विवाह (Endogamy) और बहिर्विवाह (External Marriage) सम्बन्धी निषेध प्रचलित हैं जिन्हें कुछ क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ देखा जा सकता है।

अन्तर्विवाह के अन्तर्गत जाति अन्तर्विवाह का प्रचलन है और जाति से बाहर विवाह को निषिद्ध किया गया है। परम्परागत रूप से प्रजातीय भिन्नता बनाए रखने, जैन व बौद्ध धर्म के प्रभाव एवं मुस्लिमों से रक्षा के लिए तथा जन्म को अधिक महत्व दिये जाने कारण जातीय अन्तर्विवाह (Caste Intermarriage) प्रचलित हुआ है। परन्तु, वर्तमान में जातीय समूहों के प्रति प्रेम, जातीय एकता बनाए रखने की इच्छा, प्रथानुगत दबाव, पहचान को बनाए रखना, जीवनसाथी के चुनाव में माता-पिता की भूमिका और दहेज प्रथा इसका प्रमुख कारण हैं।

बहिर्विवाह सम्बन्धी निषेधों में गोत्र, प्रवर, पिण्ड, टोटम और ग्राम बहिर्विवाह का प्रचलन देखा जाता है। इसके अन्तर्गत हिन्दुओं में समान गोत्र, प्रवर या पिण्ड के सदस्यों के बीच विवाह वर्जित है। हिन्दू गोत्र व्यवस्था में यह माना जाता है कि एक गोत्र के सभी

लोग एक ही ऋषि पूर्वज की संतान होने के कारण आपस में रक्त सम्बन्धी हैं। प्रवर का तात्पर्य यज्ञ कराने वाले ऋषि से सम्बन्धित लोग जो धर्म के आधार पर भ्रातृक बंधन में बंध जाते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार पिता की तरफ से सात पीढ़ियों और माता की तरफ से पांच पीढ़ियों के लोग सपिण्ड माने जाते हैं। इन सभी में भाई-बहन या रक्त सम्बन्ध होने के कारण इनके बीच विवाह को निषेधित किया गया है। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा सगोत्र एवं सप्रवर बहिर्विवाह निषेध को हटाकर केवल सपिण्ड बहिर्विवाह को मान्यता दी गयी है। जनजातियों में समान टोटम समूह के बीच तथा गांव के भीतर विवाह निषिद्ध किया गया है क्योंकि इनके बीच आपसी सम्बन्धों को भाई-बहन का सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है।

अनुलोम विवाह (Hypergamy)

अनुलोम विवाह अंग्रेजी के शब्द 'हाइपरगेमी' का हिन्दी रूपान्तरण है। हाइपर का अर्थ है ऊपर और गेमी का अर्थ है विवाह करना। हाइपरगेमी का पूर्ण अर्थ है-ऊपर विवाह करना। अगर वर वधू से उच्च सामाजिक श्रेणी, वर्ण, जाति, वर्ग अथवा कुल का है तो ऐसा विवाह अनुलोम विवाह या कुलीन विवाह कहलाता है। इस तरह के विवाह प्राचीन भारत में मान्य एवं प्रचलित थे।

मनु तथा **याज्ञवल्क्य** ने ब्राह्मण को चार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र), क्षत्रिय को तीन (क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र), वैश्य को दो (वैश्य और शूद्र) और शूद्र को एक (केवल अपने शूद्र) वर्ण में विवाह करने की अनुमति की बात कही है। शूद्र वर्ण की लड़की से द्विजों के विवाह को निम्न कोटि का माना जाता था। जैसे-जैसे वर्ण विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित होते गए तथा अन्तर्विवाह की प्रथा फैलती गई वैसे-वैसे अनुलोम विवाह की प्रथा भी समाप्त होती गई।

प्रतिलोम विवाह (Hypogamy)

प्रतिलोम विवाह वह विवाह है, जिसमें वधु उच्च श्रेणी, वर्ण, वर्ग, जाति, कुल या वंश की होती है तथा वधू की तुलना में वर निम्न श्रेणी, वर्ण, वर्ग, जाति, कुल या वंश का होता है। इस प्रकार एक निम्न वर्ण के व्यक्ति का उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता है। ब्राह्मण लड़की का विवाह क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र लड़के से, क्षत्रिय लड़की का विवाह वैश्य या शूद्र लड़के से तथा वैश्य लड़की का विवाह शूद्र लड़के से होना प्रतिलोम विवाह कहलाता है। प्राचीन भारत में ऐसे विवाह मान्यता प्राप्त नहीं थे।

विवाह सम्बन्धी उपरोक्त निषेधों में मुख्यत: जाति अन्तर्विवाह ने सामाजिक सम्बन्धों के दायरे को संकीर्ण बनाकर असमानतामूलक समाज को पुष्ट कर तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बाधक के रूप में क्रियाशील होकर सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध किया है।

मूल्यांकन (Evolution)

लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण आदि के कारण आज अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह सम्बन्धी नियम कमजोर हुए हैं। भारत सरकार ने सगोत्र बहिर्विवाह और प्रवर बहिर्विवाह को अमान्य करते हुए केवल पिता की ओर से 5 तथा माता की ओर से 3 पीढ़ियों के बीच सपिण्ड बहिर्विवाह को ही मान्यता प्रदान की है, (हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955)। फलत: सम्पूर्ण भारत में व्यवहार में सपिण्ड बहिर्विवाह और कुछ हद तक गोत्र बहिर्विवाह और ग्राम बहिर्विवाह ही प्रचलित हैं। अन्तर्जातीय विवाह की घटनाएँ सामने आने लगी हैं और इसको सरकार के द्वारा प्रोत्साहित भी किया जा रहा है, परन्तु अभी भी अधिकांश हिन्दू विवाह जातीय अन्तर्विवाह के नियमों के आधार पर ही होता है। अत: निष्कर्ष है कि वर्तमान भारत में हिन्दू विवाह सम्बन्धी निषेध से जुड़े कुछ नियम कमजोर पड़े हैं तो कुछ अभी भी जारी हैं।

हिन्दू विवाह में आधुनिक परिवर्तन (Modern Changes in Hindu Marriage)

आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में हिन्दू विवाह के कमोबेश सभी पक्षों में हो रहे परिवर्तन महत्वपूर्ण व विचारणीय हैं जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अर्न्तगत देखा जा सकता है-

1. विवाह से सम्बन्धित धार्मिक कर्तव्यों के पालन के संदर्भ में कमी आई है।
2. पुत्र प्राप्ति के पारम्परिक दृष्टिकोण के संदर्भ में बदलाव आया है।
3. यौन-तुष्टि से सम्बन्धित विचारों के संदर्भ में परिवर्तन देखा जा रहा है।
4. बच्चों के पालन-पोषण के संदर्भ में भी लोगों के दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहे हैं।

तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार के कारण आज धर्म के प्रभाव में ह्रास हुआ है, फलत: विवाह अब धार्मिक कर्तव्य (Religious duty) के पालन हेतु नहीं वरन् आनंद एवं सहयोग के लिए किया जाता है। आज पुत्र और पुत्री दोनों को समान महत्व देने के कारण पुत्र-प्राप्ति विवाह का प्रमुख उद्देश्य नहीं रह गया है। आज एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हो रहा है जो सन्तानोत्पत्ति को भी आवश्यक नहीं मानता। बहुलता में देखा जाए तो यौन तुष्टि विवाह का मुख्य उद्देश्य अभी भी है। परन्तु कॉल गर्ल, विवाह पूर्व यौन संबंध, को-लिविंग आदि के प्रचलन ने विवाह के इस उद्देश्य की प्रमुखता को भी कमजोर किया है। नर्सरी, किंडर-गार्डेन, किड्स केयर सेंटर, आया आदि की विद्यमानता ने आज बच्चों के पालन-पोषण सम्बन्धी पक्ष को कमजोर किया है।

आज अन्तर्जातीय विवाह और प्रेम विवाह की घटनाएं नगरीय समाज में देखी जाने लगी हैं। शहरों में आया आधुनिक खुलापन और पश्चिमी प्रभावों ने विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों तथा सहजीवन के प्रचलन को संभव बनाया है। स्वीडन, नॉर्वे आदि पश्चिमी देशों की तर्ज पर यहाँ भी समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान करने की मांग उठने लगी है तथा कलकत्ता के एक स्वयं सेवी संगठन द्वारा इस प्रकार के विवाह को वैध बनाने की मांग की गयी है। आधुनिक शिक्षा और जागरुकता के कारण बाल विवाह की ओर झुकाव कम हुआ है तथा विवाह की आयु में वृद्धि, स्वावलंबी होने तक विवाह का विरोध, दम्पति के स्वास्थ्य की रक्षा, स्वस्थ संतान तथा योग्य जीवनसाथी के चयन में सुविधा जैसी बातें विवाह के विलम्ब के लिए उत्तरदायी हैं। आज विधवा पुनर्विवाह की संख्या बढ़ी है हालांकि अभी भी इनकी संख्या कम है। स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास हेतु, अनैतिक व्यभिचार रोकने हेतु, उनके बच्चों को अनाथ होने से बचाने हेतु तथा उनको समानता एवं न्याय दिलाने हेतु आज विधवा विवाह को सामाजिक और नैतिक दोनों दृष्टिकोण से आवश्यक समझा जाने लगा है।

आज विवाह को आजीवन बंधन मानने की प्रवृत्ति कमजोर हुई है। विवाह-विच्छेद को कानून व समाज द्वारा मान्यता मिल जाने से विवाह का स्थायित्व दुष्प्रभावित हुआ है और तलाक दर में वृद्धि हुई है। आज अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह के नियम कमजोर हुए हैं तथा जीवनसाथी के चुनाव में माता-पिता की भूमिका घटी है। आज विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाजों और रस्मों का आधुनिकीकरण हो रहा है। इसमें इंटरनेट, अखबारों व संचार के अन्य साधनों का प्रयोग किया जा रहा है तथा आज शादी के पहले भी लड़कियाँ, लड़कों से मिल रही हैं। पश्चिमी समाज के डेटिंग के तर्ज पर विवाह से पूर्व मिलकर अपने जीवनसाथी की उपयुक्तता जाँचने के प्रवृत्ति बढ़ रही है।

हिन्दू विवाह में परिवर्तन के कारण (Causes for Change in Hindu Marriage)

विवाह रूपी संस्था में हो रहे ये आधुनिक परिवर्तन (Modern Change) कई कारकों के संयुक्त परिणाम हैं। जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है-

1. आधुनिक शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रसार से विवाह सम्बन्धी पारम्परिक मान्यताएं कमजोर हुई हैं, साथ ही विवाह के धार्मिक एवं सांस्कारिक महत्व में कमी आई है।
2. नगरीकरण एवं औद्योगीकरण में वृद्धि के साथ लोगों की स्वायत्तता (Autonomy) व आर्थिक निर्भरता में वृद्धि हुई है।
3. वैधानिक प्रावधानों के कारण विवाह सम्बन्धी निषेधों में कमी आई है और जीवनसाथी के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत हुआ है।
4. आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण व संचार क्रांति ने उपयुक्त जीवन साथी को खोजना सहज बनाया है।
5. महिलावादी आंदोलनों (Feminist Movements) ने महिलाओं को अपनी पहचान एवं स्वतंत्रता हेतु प्रेरित किया है।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है भारत में हिन्दू विवाह के सभी पक्षों में परिवर्तन हुआ है, लेकिन इन परिवर्तनों में समरूपता (Similarity) नहीं है। कोई पक्ष अधिक परिवर्तित हुआ है तो कोई कम। साथ ही इसमें अधिकांश परिवर्तन शहरों में ही परिलक्षित (Reflected) होते हैं और गांवों में कम मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। जातीय या वर्गीय आधार पर भी अंतर देखा जा सकता है। साथ ही इन परिवर्तनों से यह भी स्पष्ट होता है कि जहाँ भारतीय जनमानस में परम्परा से जुड़े रहने की प्रवृत्ति है वहीं वे परम्परा में अनुकूलनकारी परिवर्तन (Adaptive Change) की इच्छा भी रखते हैं। सती प्रथा का उन्मूलन हो जाना अथवा विधवा-विवाह को वैधानिक प्रयासों के बावजूद उसे पूर्ण सामाजिक मान्यता प्राप्त न होना इस तथ्य की पुष्टि करता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत में विवाह को कई कारकों ने प्रभावित किया है। यह एक अनुकूलनकारी प्रक्रिया (Adaptive Process) के रूप में ही क्रियाशील है, साथ ही यह अपने परम्परागत तत्वों की निरंतरता को भी बनाये रखने का प्रयास कर रहा है, जिसको आज विवाह में अनुष्ठानिक रीति-रिवाजों की विद्यमानता तथा जाति अन्तर्विवाह के नियमों के रूप में देखा जा सकता है।

भारत में अन्तर्जातीय विवाह (Inter Caste Marriage in India)

सभी समाजों में विवाह से सम्बन्धित कुछ नियम पाये जाते हैं। अन्तर्विवाह हिन्दू विवाह से सम्बन्धित प्रमुख नियम है, जहाँ प्रत्येक हिन्दू से अपनी ही जाति में विवाह करने की अपेक्षा की जाती है। परन्तु आधुनिकीकरण के इस दौर में अन्तर्विवाही नियमों का उल्लघंन और अन्तर्जातीय विवाह एक नवीन घटना के रूप में दृष्टिगत हुआ है। जिसने हिन्दू समाज में समायोजन की समस्या को उत्पन्न किया है। यद्यपि हिन्दुओं में अनुलोम विवाह के रूप में प्राचीन काल से ही अन्तर्जातीय विवाह देखने को मिलते हैं। तथापि, ब्राह्मण काल से लेकर आधुनिक हिन्दू समाज मुख्यतः अन्तर्विवाही ही रहा है। पहली बार 1872 के अधिनियम द्वारा 'अपना कोई धर्म नहीं' की घोषणा द्वारा अन्तर्जातीय विवाह को संभव बनाने का प्रयास किया गया, जिसे हिन्दू विवाह वैधकरण अधिनियम, 1949 द्वारा पुष्ट कर दिया गया।

अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने वाले कारक (Factors to Encouraging Inter Caste Marriage)

ब्रिटिश शासन की दो शताब्दियों के दौरान अनेक ऐसे कारक भारतीय समाज में क्रियाशील हुए जिनके प्रभाव के फलस्वरूप अन्तर्विवाह के प्रतिबन्ध धीरे-धीरे दुर्बल होने लगे और हमारा झुकाव अन्तर्जातीय

विवाह के प्रति दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके लिये कई कारक संयुक्त रूप से उत्तरदायी माने जाते हैं-

1. पाश्चात्य शिक्षा के कारण सामाजिक मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। साथ ही भारत में एक सांस्कृतिक समानता (Cultural Equality) उत्पन्न हो सकी है। जिससे विभिन्न जातीय समूह एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये और अन्तर्जातीय विवाह के अनुकूल वातावरण का निर्माण हुआ।
2. छापेखाने तथा यातायात और संचार के साधनों में उन्नति से भी विभिन्न समुदाय, धर्म और जाति के लोग एक-दूसरे के निकट आ गए, क्योंकि इसने सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) बढ़ाने में मदद की।
3. प्रिटिंग प्रेस, परिवहन एवं संचार साधनों में उन्नति के साथ विभिन्न देशों में प्रजातन्त्रवाद का ज्ञान और शिक्षा के विस्तार के कारण उत्पन्न समानता की भावना ने जात-पात के आधार पर ऊँच-नीच की भावनाओं को कमजोर बनाया।
4. औद्योगीकरण के साथ नगरों का भी विकास हुआ, जहाँ प्रायः सभी जातियाँ और प्रान्त के लोग साथ-साथ मिलकर रहने और काम करने लगे। ऐसी परिस्थिति में एक-दूसरे के प्रति सहनशीलता तथा धर्म और जाति के प्रति निरपेक्षता बढ़ती गई, इससे अन्तर्जातीय विवाह को काफी प्रोत्साहन मिला।
5. भारतीय स्वतंत्रता हेतु राष्ट्रीय आंदोलन ने भी अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने और एक साथ जेल जाने से विभिन्न जातियों में एक भावना की जागृति हुई। यह अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने में सहायक सिद्ध हुई है।
6. महिलाओं में शिक्षा का विकास और उनको पुरुषों के समान राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त होने के साथ-साथ जात-पात के आधार पर उनके ऊपर लगाए हुए विवाह- सम्बन्धी प्रतिबन्ध धीरे-धीरे निर्बल होते जा रहे हैं।
7. वैज्ञानिक ज्ञान के बढ़ने के साथ ही यह बात स्पष्ट हो गई कि कोई भी जाति या प्रजाति (Caste) आज शुद्ध नहीं है और उनमें ऊँच-नीच का भेदभाव मनुष्य की रचना है। जिसका कि कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है।
8. भारत में अत्यधिक दहेज के कारण लड़कियों और लड़कों के विवाह नहीं हो पा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में युवक और युवतियों को अपने विवाह सम्बन्ध में निर्णय करने का अवसर मिल जाता है और माता-पिता दहेज बचाने के लिये स्वयं अन्तर्जातीय विवाह करने को तैयार हो जाते हैं।
9. स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार मिलना, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक गतिशीलता का बढ़ना, सह-शिक्षा, नारी और पुरुष को एक साथ कारखाने आदि में काम करने की सुविधा आदि के कारण प्रेम-विवाह का प्रचलन भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा है।
10. ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने धार्मिक आधार पर समाज सुधार का जो आन्दोलन चलाया उससे जात-पात और छुआछूत पर ही कुठाराघात नहीं हुआ बल्कि स्त्रियों की दशा सुधारने का उनका प्रयास परोक्ष रूप से अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में सहायक बना।
11. विभिन्न कानूनों द्वारा भी अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा मिला है। 1872 में विशेष विवाह अधिनियम पास हुआ और 1923 में संशोधित हुआ। जिससे अन्तर्जातीय विवाह की वैधानिक अड़चनें दूर हो गईं और सभी हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख और जैनों में अन्तर्जातीय विवाह वैध हो गए। हिन्दू-विवाह वैधकरण अधिनियम, 1949 में पास हुआ। इसके अनुसार, इस अधिनियम के पहले और बाद में विभिन्न धर्मों, जातियों, उपजातियों और सम्प्रदायों के व्यक्तियों में होने वाले विवाहों को मान्यता दे दी गई। यह भारत के समस्त हिन्दुओं पर, जिनमें सिक्ख और जैन भी सम्मिलित हैं, लागू होता है।

उपर्युक्त कारणों से आज हिन्दू-विवाह का परम्परागत स्वरूप (Traditional Form) विघटित हो रहा है और अन्तर्जातीय विवाह के अनुकूल वातावरण की सृष्टि हो रही है।

अन्तर्जातीय विवाह से लाभ
(Benefits of Inter Caste Marriage)

अन्तर्जातीय विवाहों के निम्नलिखित लाभ हैं जैसे-

1. अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा जीवन-साथी के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और योग्य जीवन-साथी के चुनने में काफी सरलता होती है।
2. दहेज प्रथा को रोकने या समाप्त करने के लिये भी अन्तर्जातीय विवाहों की वृद्धि आवश्यक है। इस प्रथा का महत्व मुख्यतः उस समाज में होता है जहाँ जीवन साथी का चुनाव क्षेत्र सीमित या जहाँ उचित वरों की अत्यधिक कमी के कारण, उनको प्राप्त करने के लिये लड़कियों के अभिभावकों में प्रतियोगिता होती रहती है।
3. बहुत ही सीमित समूह के अन्दर ही विवाह करने से वंशानुक्रमण (Inheritance) के गुण दिन-प्रतिदिन घटते जाते हैं और अच्छी संतानों की संख्या कम होती जाती है। अन्तर्जातीय विवाहों के होने से नए और उत्तम वाहकाणुओं का आयात बाहरी परिवारों से सम्भव हो जाता है जिससे उत्तम सन्तान उत्पन्न होने लगती है।
4. अन्तर्जातीय विवाह के प्रचलित होने से जीवन-साथी चुनने का क्षेत्र बढ़ जायेगा और दहेज-प्रथा भी समाप्त हो जायेगी। इसके

फलस्वरूप बाल-विवाह और विधवा-विवाह से सम्बन्धित समस्याएँ स्वत: हल हो जायेंगी।

5. विभिन्न विद्वान जातिवाद की समस्या को हल करने में अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने पर बल देते हैं। अगर विभिन्न जाति के लड़कों और लड़कियों को अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा एक-दूसरे के निकट आने का अवसर दिया जायेगा तो जाति-प्रथा उपेक्षित होगी और जातिवाद के विरोध में आवाज उठने लगेगी।
6. आज भारत असंख्य समूहों में विभाजित है। इन समूहों में कोई एक सामान्य आधार नहीं है जिसके बल पर वे एक-दूसरे के निकट आ सकें। अन्तर्जातीय विवाह इन समूहों को एक साथ लाने का आधार दे सकता है।
7. अन्तर्जातीय विवाह से बाल विवाह बहुत घट जायेंगे और जनसंख्या की समस्या का एक स्वाभाविक हल मिल सकेगा।

भारत में विवाह-विच्छेद की समस्या (Problem of Divorce in India)

विवाह-विच्छेद वैवाहिक सम्बन्धों का वैधानिक अंत है, यद्यपि यह अंत अदालत के हस्तक्षेप के बिना भी संभव होता है। परम्परागत हिन्दू समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तहत हमारे यहाँ विवाह-विच्छेद को कानूनी अधिकार के रूप में मान्यता दी गयी है। इस घटना के भारतीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। एक तरफ इसने विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि कर पारिवारिक विघटन (Family Dissolution) एवं बच्चों के पालन-पोषण की समस्या को उत्पन्न किया है तो वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों को विवाह-विच्छेद की स्वतंत्रता देकर उनकी प्रस्थिति (Status) में सुधार किया है।

भारत में विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि की इस घटना के लिए कई कारणों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है; जैसे-

1. आधुनिक मूल्यों (स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, धर्मनिरपेक्षता) का प्रसार।
2. आधुनिक शिक्षा का प्रसार।
3. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण।
4. वैधानिक व्यवस्था।
5. स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता में कमी।
6. विवाह एवं परिवार के प्रकार्यों (Function) को पूरा करने वाले नवीन वैकल्पिक संस्थाओं का उद्भव।
7. उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार।

भारत में विवाह-विच्छेद की इस बढ़ती प्रवृत्ति ने आज विवाह-विच्छेद के अधिकार के संदर्भ में एक विवाद को उत्पन्न किया है। जिसके पक्ष और विपक्ष में तर्क देकर निम्नलिखित प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है।

विवाह-विच्छेद विरोधियों का मानना है कि विवाह-विच्छेद अनुचित है और इसका अधिकार नहीं मिलना चाहिए। उन्होंने अपने समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये हैं-

1. विवाह-विच्छेद हिन्दू धर्म के विरुद्ध है क्योंकि विवाह-विच्छेद का अधिकार विवाह के संस्कारिक महत्व को समाप्त कर देता है।
2. विवाह-विच्छेद के पश्चात् अलग हुये लोग यौन तुष्टि के लिये अन्य विकल्पों का प्रयोग करते हैं फलत: अनैतिकता (Immorality) को प्रोत्साहन मिलता है।
3. विवाह-विच्छेद से पति-पत्नी अलग हो जाते हैं और बच्चे उनमें से किसी एक के पास रहने लगते हैं। यह स्थिति पारिवारिक विघटन को जन्म देती है।
4. हिन्दू समाज में स्त्रियाँ सामान्यत: पुरुषों पर निर्भर रहती हैं अत: विवाह-विच्छेद स्त्रियों के समक्ष आर्थिक समस्याओं को उत्पन्न करता है।
5. इससे बच्चों के पालन पोषण की समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि विवाह-विच्छेद के बाद उनको पूरा परिवार नहीं मिल पाता है।

दूसरी ओर विवाह-विच्छेद के समर्थकों के अनुसार विवाह-विच्छेद उचित है और इसका अधिकार मिलना चाहिए। इन लोगों ने अपने समर्थन में निम्न तर्क दिए हैं-

1. विवाह-विच्छेद के अधिकार से स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार होता है और उनको पुरुषों की तरह समानता एवं स्वतंत्रता के अधिकार प्राप्त होते हैं।
2. विवाह-विच्छेद द्वारा दु:खी वैवाहिक जीवन का समापन होता है।
3. विवाह-विच्छेद समानता के सिद्धांत पर आधारित है।
4. विवाह-विच्छेद हिन्दू विवाह के नियमों में सन्तुलन उत्पन्न करता है।
5. विवाह-विच्छेद गतिशील समाज (Dynamic Society) की आवश्यकता को पूरा करता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि, विवाह एवं परिवार से सम्बन्धित एक नवीन वैश्विक घटना है, जो कई कारकों का संयुक्त परिणाम रहा है। यद्यपि स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय के संदर्भ में स्त्रियों की परिस्थिति में सुधार हेतु विवाह-विच्छेद का कानूनी प्रावधान किया गया है तथा इसे एक आधुनिक समस्या के रूप में देखा जा रहा है, जिसने कई प्रकार के दुष्परिणामों को उत्पन्न किया है। यह सही है कि कानून द्वारा प्रदान किए गए इस विवाह-विच्छेद के अधिकार को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता है और समतामूलक समाज की स्थापना हेतु

इसे और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, परन्तु यह भी तथ्य है कि विवाह-विच्छेद की बढ़ती दर और इसके दुष्परिणामों के कारण इस दिशा में कुछ सर्तकता बरतने की आवश्यकता है; जैसे-

1. विवाह-विच्छेद की अनुमति अदालत द्वारा गंभीर परिस्थितियों में ही देनी चाहिए।
2. विवाह-विच्छेद की अनुमति देते समय स्त्रियों की आर्थिक समस्या को ध्यान में रखना चाहिए।
3. बच्चों के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. दंपत्ति को आपस में समतामूलक व्यवहार करते हुए तथा पारस्परिक सहयोग बनाए रखते हुए छोटे-छोटे विवादों से बचने का प्रयास करना चाहिए।
5. विवाह-विच्छेद के पक्ष में जनमत तैयार किया जाना चाहिए।

भारत में समलैंगिकता (Homosexuality in India)

हाल के वर्षों में समलैंगिकता का मुद्दा भारत सहित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वाद-विवाद के ज्वलंत मुद्दे के रूप में काफी चर्चित रहा है। समलैंगिकता का आशय समान लिंग के प्रति भावनात्मक व शारीरिक आकर्षण से है। यह समान लिंगियों में पायी जाने वाली लैंगिक आकर्षण प्रवृत्ति का परिचायक है। जो पुरुष-पुरुष या नारी-नारी के मध्य पाया जाता है। किसी पुरुष द्वारा अन्य पुरुष/पुरुषों के प्रति लैंगिक आकर्षण के सन्दर्भ में ऐसे पुरुषों को 'गे' तथा किसी महिला द्वारा अन्य महिला/महिलाओं के प्रति लैंगिक आकर्षण के सन्दर्भ में ऐसी महिला को 'लेस्बियन' कहा जाता है।

यद्यपि लैंगिक आकर्षण प्राणी की एक मूल प्रवृत्ति रही है, परन्तु विपरित लिंगी के प्रति आकर्षण को ही सामान्य स्वीकृति दुनिया के अधिकांश समाजों में ऐतिहासिक रूप से प्रचलित रही है, तथापि प्राचीन काल से ही समलैंगिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों की विद्यमानता कमोवेश प्राय: हर काल में रही है। समलैंगिकता की चर्चा क्लासिकल ग्रीक-रोमन सभ्यता के साथ-साथ भारत के कई प्राचीन ग्रंथों में भी रही है। पुनर्जागरण (Renaissance) के दौरान इटली के कई सम्पन्न नगर जो कि समान लिंगियों के यौन सम्बन्धों के प्रचलित केन्द्र थे, में भी इस तरह के कई दृष्टांत पाये गये हैं। यद्यपि इसे सामाजिक रूप से कभी भी स्वीकृति नहीं मिली। फिर भी छुपे तौर पर कुछ एक उदाहरण प्राय: हर काल में मिले हैं। 13वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के अधिकांश भागों में तो समलैंगिकता के लिए मृत्यु दण्ड का प्रावधान किया गया था।

हाल में अमेरिकी सेना में समलैंगिकों की बहाली के साथ तथा यूरोप के कई राष्ट्रों तथा अमेरिका के कई राज्यों में समलैंगिक विवाह को कानूनी स्वीकृति तथा वैध घोषित किये जाने के पश्चात् यह मुद्दा पूरे विश्व के समक्ष चर्चा का विषय बना है कि- क्या यह जायज है? इसी विमर्श को आगे बढ़ाते हुए इंग्लैंड ने भी समलैंगिक विवाह को स्वीकृति प्रदान कर दी है।

समलैंगिकता का मूल कारण तो प्राकृतिक है, परन्तु इसका सर्वाधिक दुष्परिणाम विवाह नामक संस्था के समक्ष चुनौती के रूप में उपस्थित हुआ है। कई वैज्ञानिक अध्ययनों में समलैंगिक रिश्तों के परिणामस्वरूप यौन सम्बन्धी बीमारियों यथा एड्स, गोनोरिया, सिफलिस तथा अन्य जैविक समस्याओं की पुष्टि की गयी है।

हाल के कुछ वर्षों में समलैंगिकता को लेकर एक आश्चर्जनक उत्साही प्रवृत्ति देखने को मिल रही है। जिसके समर्थन में कई गैर-सरकारी संगठनों सहित तमाम समुदाय व कुछ उदार कहे जाने वाले व्यक्ति खड़े हो रहे हैं। समलैंगिकों के हितों के पक्ष में आवाज बुलंद करने वाली 'नाज फाउंडेशन' नामक संस्था तो बाकायदा समलैंगिकों के अधिकारों और समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर करवाने के लिए कानूनी लड़ाई लड़ रही है।

नाज फाउंडेशन की याचिका पर वर्ष 2010 में दिल्ली उच्च न्यायालय का फैसला आया कि यदि दो वयस्क आपसी सहमति से समलैंगिक रिश्ता बनाते हैं तो यह सेक्शन 377 आईपीसी के अन्तर्गत अपराध नहीं होगा। इस फैसले के बाद समलैंगिकता के समर्थकों ने जिस तरह का उन्माद, जश्न और उत्सव पूरे देश में मनाया, गे-प्राइड परेडें निकाली, वह कई बातों पर सोचने के लिए विवश करता है। समलैंगिकता के विरोधियों की चिंता यह है कि समलैंगिकता को जिस तरह रूमानी अंदाज में पेश किया जा रहा है, उससे कहीं जिसे विकार के रूप में लिया जाना चाहिए, उसे समाज सहज रूप में न ले बैठे, अन्यथा भविष्य में समाज में कई बीमारियाँ और कई समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। उल्लेखनीय है किसी विषय को मुद्दा बनाने से लोगों में उसको जानने-समझने का कौतूहल एवं उत्सुकता बढ़ती है, जो कि उस बात का प्रचार करती है।

समलैंगिकता के विरोधी मानते हैं कि 'समलैंगिक व्यभिचार' (Homosexual Adultery) मूल रूप से उन व्यक्तियों से संबंधित होता है जिन्होंने मनोरंजन और विलास की सारी हदें पार कर ली हों, ऐसे लोगों को किसी भी कीमत पर कुछ नया करने को चाहिए, यही कारण है कि विदेशी संस्कृति में समलैंगिक व्यवहार आम चलन में मौजूद है। समलैंगिकता पश्चिमी रीति-रिवाजों में इस तरह समाहित है कि वहाँ पर इसे सहज रूप से स्वीकार किया जाने लगा है। पश्चिमी देशों के तमाम राष्ट्राध्यक्ष, नौकरशाह, अभिनेता, अभिनेत्रियों सहित व्यापार जगत की बड़ी हस्तियाँ समलैंगिकता नामक उन्मुक्त पाश्विक व्यभिचार में लिप्त पायी जाती हैं। किन्तु भारत के सन्दर्भ में ऐसी स्थिति की कल्पना करना भी भयावह और खतरनाक है।

उपरोक्त चर्चा को देखते हुए समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी में रखने या इसे केवल मानसिक विकृति और बीमारी के रूप में परिभाषित कर सुधारात्मक या दंडात्मक कार्यवाही के औचित्य पर विचार विमर्श आवश्यक है ताकि इस सन्दर्भ में समाज को सही दिशा दी जा सके।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 प्रकृति विरुद्ध काम तृष्णा (समलैंगिकता) को घोर अपराध की श्रेणी में रखती है और इसके लिए कठोर दण्ड का प्रावधान करती है। किन्तु दिल्ली उच्च न्यायालय ने सहमति के आधार पर स्थापित समलैंगिक संबंधों को कानूनी मान्यता देकर तथा सरकार को आई.पी.सी. की धारा 377 में आवश्यक संशोधन का निर्देश देकर समलैंगिकता संबंधी विवाद को हवा दे दी।

वस्तुतः समलैंगिकता संबंधी इस विवाद की जड़ों को कानून एवं नैतिकता के अन्तर्विरोध में आसानी से देखा जा सकता है। इस विवाद के संबंध में England में 1958 में Wool Findal कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया था कि जब तक किसी समस्या के प्रति समाज आक्रोशित नहीं होता, उसके विरुद्ध कानून बनाकर उक्त समस्या को अपराध घोषित करना उचित नहीं है। क्योंकि ऐसे कानून सामाजिक स्वीकृति (Social Acceptance) प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

जहाँ तक समलैंगिकता का भारतीय संदर्भ का प्रश्न है तो प्रारम्भ से ही इसे अनैतिक क्रिया के रूप में देखा जाता रहा है और चूंकि समलैंगिकता के प्रति वैश्विक दृष्टिकोण में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं, प्रभावस्वरूप भारत में भी इसके समर्थकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि आज भी भारत में समलैंगिकता के समर्थकों की संख्या नगण्य है। जहाँ तक सरकार द्वारा धारा 377 में आवश्यक संशोधन के सन्दर्भ में न्यायालय का पक्ष है वह भी महत्वपूर्ण है कि इस धारा का प्रयोग अधिकतर लोगों को अनावश्यक रूप से परेशान करने हेतु किया गया है। अतः यह इस धारा में संशोधन आवश्यक है। हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिकता को भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के दायरे बाहर करके इसको मान्यता दे दी है। परन्तु इस संदर्भ में जरूरी है कि इसके पक्ष में जनमत का भी निर्माण किया जाय।

भारत में विवाह : संभावित प्रश्न
(Marriage in India : Possible Questions)

1. समलैंगिकता क्या है? क्या यह उपयुक्त है? इसके दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए।
2. समलैंगिकता ने विवाह जैसी संस्था पर प्रश्न-चिह्न खड़ा किया है। चर्चा करें।
3. सरोगेसी क्या है? क्या इसे व्यापक स्वीकृति मिलनी चाहिए? अपने विचार प्रस्तुत करें।
4. भारत में विवाह कानून में हुए नवीन परिवर्तनों ने जहां एक तरफ भारतीय महिलाओं को सशक्त किया है तो दूसरी तरफ विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि की सम्भावना को पुष्ट करके महिलाओं के समक्ष नवीन चुनौती भी प्रस्तुत की है। चर्चा कीजिए।
5. भारत में अंतर्जातीय विवाह की नवीन प्रकृति पर चर्चा करें।
6. भारत में 'लिव-इन-रिलेशनशिप' की बढ़ती प्रवृत्ति ने भारतीय संस्कृति में विखंडन को संभव बनाया है। चर्चा करें।

✪✪✪✪✪

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

5 भारत में परिवार (Family in India)

भारत एक बहुलक समाज है जहाँ कई धर्म, जनजाति, जाति एवं सांस्कृतिक समूह (Cultural Group) साथ-साथ रहते हैं और इन सभी समूहों में परिवार की प्रकृति एवं स्वरूप में कुछ न कुछ भिन्नताएँ पायी जाती हैं। बावजूद इसके भारत में सामान्यतः परिवार से तात्पर्य संयुक्त परिवार से है। संयुक्त परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो वैवाहिक, रक्त एवं गोद लिए गए सम्बन्धों से जुड़े होते हैं। इसमें तीन से अधिक पीढ़ी के सदस्य एक साथ और एक छत के नीचे रहते हैं। एक सामान्य रसोई में भोजन करते हैं, सामान्य सम्पत्ति के स्वामी होते हैं, एक ही कुल देवता की पूजा करते हैं और पारस्परिक कर्तव्य तथा भावनात्मक एकता से आबद्ध होते हैं।

संयुक्त परिवार की विशेषताएँ (Characteristics of Joint Family)

संयुक्त परिवार की अवधारणा को समझने के लिए आवश्यक है कि इस अवधारणा की विशेषताओं का अध्ययन किया जाए जो निम्नानुसार हैं-

1. संयुक्त परिवार के लिए सामान्य निवास प्रमुख लक्षण है। जिसके अनुसार संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक मकान में साथ-साथ रहते हैं।
2. सामान्य रसोई अर्थात् संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक चूल्हे पर बना भोजन खाते हैं।
3. सामान्य सम्पत्ति अर्थात् एक पूर्वज की सन्तानें सामान्य रूप से सम्पति विरासत (Heritage) में प्राप्त करती है। संयुक्त परिवार के सदस्यों की आय एक स्थान पर एकत्र की जाती है तथा वहाँ से सबकी आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं।
4. अनेक पर्वों-उत्सवों में परम्परागत संयुक्त परिवार के सभी सदस्य साथ-साथ भाग लेते हैं। परिवार के अनेक सदस्य शिक्षा, नौकरी, व्यापार आदि के कारण मूल निवास से बाहर रहते हैं लेकिन वे परिवार की पूजा व अन्य अवसरों पर सम्मिलित होते हैं।
5. संयुक्त परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसके सदस्य परस्पर विशिष्ट रक्त, विवाह अथवा गोद-सम्बन्धों से सम्बन्धित होते हैं।
6. संयुक्त परिवार बन्धुत्व से सम्बन्धित व्यक्तियों का संकलन है जो एक धर्म को मानने वाले हैं। समाज संयुक्त परिवार के सदस्यों को सामाजिक और धार्मिक कार्यों के सन्दर्भ में एक इकाई मानता है।
7. परिवार के मुखिया की स्थिति संबंधित समाज की प्रथा और परम्परा (Custom and Tradition) निश्चित करती है। परिवार का सबसे बड़ा पुरुष मुखिया, पुरोहित, न्यायाधीश आदि जैसी भूमिकाएँ संयुक्त परिवार के स्तर पर निभाता है।
8. परम्परागत संयुक्त परिवार बड़ा परिवार होता है। जिसमें तीन या तीन से अधिक पीढ़ी के व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं। इसमें एक पीढ़ी में कई विवाहित भाई अपनी पत्नियों के साथ-साथ रहते हैं।
9. एकाकी या नाभिक परिवार की तुलना में संयुक्त परिवार अधिक स्थायी होते हैं। संयुक्त परिवार तीन या इससे अधिक पीढ़ी की संयुक्तता वाला होता है। अनेक सदस्य साथ-साथ रहते हैं। उनमें 'हम' की भावना या सामूहिक दृष्टिकोण (Collective Approach) 'एक के लिए सब और एक सबके लिए' वाली भावना पाई जाती है।

संयुक्त परिवार में होने वाले आधुनिक परिवर्तन (Modern Changes in Joint Family)

संयुक्त परिवार भारतीय समाज की केन्द्रीय संस्था और परिवार का प्रमुख स्वरूप रहा है। जो आधुनिकीकरण और संचार क्रांति के वर्तमान दौर में परिवर्तन की ओर क्रियाशील है। संयुक्त परिवार में होने वाले इन परिवर्तनों को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-

संरचना में परिवर्तन (Change in Structure)

1. औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण एवं मूल्य व्यवस्था के प्रसार आदि के कारण नवस्थानीय आवास में वृद्धि हुई है। जिसके कारण आज संयुक्त परिवार आकार में छोटे होते जा रहे हैं। सहविवाही एवं सहभोजी (Co-marriage and Commensal) इकाई के रूप में उसके अधिकांश सदस्य अपने एकाकी परिवार के साथ अपने रोजगार के क्षेत्रों में रहने लगे हैं।
2. स्वतंत्रता एवं समानता के मूल्यों के प्रसार आदि के कारण परिवार के मुखिया की सत्ता विकेंद्रीकृत हुई है तथा युवाओं एवं कमाने वाले व्यक्तियों की तरफ सत्ता हस्तातंरित हुई है।
3. पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में परिवार के अन्य सदस्यों की सहभागिता (Involvement) में वृद्धि हुई है। यहाँ तक कि बच्चों से भी महत्वपूर्ण विषयों पर राय ली जाती है।

4. स्वतंत्रता एवं समानता के मूल्य, आधुनिक शिक्षा एवं औद्योगीकरण के कारण स्त्रियों में आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ी है और परिवार में उनकी प्रस्थिति में सुधार हुआ है।
5. अवसरों एवं पुरस्कारों का वितरण अब व्यक्ति की परिवार की सदस्यता के आधार पर नहीं बल्कि उसके गुणों से निश्चित होने लगे हैं।
6. संरचना में परिवर्तन के साथ-साथ प्रकार्यात्मक संयुक्तता (Functional Connectivity) का विस्तार क्षेत्र सीमित हो गया है।

अन्त:पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन (Changes in Inter-Family Relations)

1. आज बच्चों पर परम्परागत संयुक्त परिवार के कठोर नियंत्रण लचीले हो गए हैं तथा माता-पिता एवं बच्चों के सम्बन्ध समानतायुक्त एवं मित्रवत हुए हैं। सत्ता सम्बन्ध कुल पिता से बच्चों के पिता की ओर हस्तांतरित हो रहे हैं। आज परिवार के सभी सदस्यों को पारिवारिक समस्याओं पर विचार करने की स्वतंत्रता मिल रही है।
2. आज बच्चों द्वारा माता-पिता के निर्णयों का विरोध प्रारंभ हो गया है।
3. पति-पत्नी के बीच निकटता में वृद्धि हुई है और इनके बीच समानतायुक्त और मित्रवत् सम्बन्ध विकसित हुए हैं, बावजूद इसके आज बहुत से वैसे भी परिवार विकसित हुए हैं जहाँ पत्नी की सत्ता प्रमुख है। किन्तु, अधिकांश परिवारों में निर्णय प्रक्रिया में पुरुषों का वर्चस्व बना हुआ है।
4. आज परिवार में सास-बहू के मध्य सम्बन्ध भी परिवर्तित हुए हैं जहाँ सास की सत्ता में कमी आई है, वहीं बहुओं की स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है।

प्रकार्यों में परिवर्तन (Change in Functions)

1. आज संयुक्त परिवार में पीढ़ी की गहराई कम होने तथा बच्चों द्वारा अधिकांश समय घर से बाहर बिताने आदि के कारण शिक्षा तथा संस्कृति के हस्तांतरण सम्बन्धी संयुक्त परिवार की भूमिका कमजोर हुई है।
2. आज धार्मिक कार्यों में परिवर्तन हुआ है और कठोर धर्म-विधियां अब लचीली हो गयी हैं।
3. उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार एवं बढ़ते व्यक्तिवाद के कारण संयुक्त परिवार के आर्थिक प्रकार्यों (Economic Functions) में भी परिवर्तन देखा जा रहा है। अब परिवार के सदस्य अपनी कमाई मुख्यत: अपने पत्नी एवं बच्चों पर खर्च करते हैं तथा अन्य नातेदारों के प्रति उनकी भूमिका निरन्तर कम होती जा रही है।
4. आज इसके मनोरंजनात्मक प्रकार्यों को भी अन्य आधुनिक संस्थाओं यथा टीवी, सिनेमा आदि द्वारा ले लिया गया है।
5. आज इसके सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्य लोक कल्याणकारी राज्यों द्वारा अपने हाथ में ले लिया गया है।

अन्य नवीन परिवर्तन (Other New Changes)

आज विघटित परिवारों की संख्या बढ़ी है अर्थात् पुत्र अपने माता-पिता से अलग रहना पसंद करते हैं यद्यपि वे उनके प्रति परम्परागत दायित्वों (Traditional Obligation) का निर्वाह करते रहते हैं। आज शहरों में जहाँ पति-पत्नी दोनों कमाने वाले हैं, बच्चों के पालन-पोषण आदि आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निकट सम्बन्धियों को साथ रखते हैं। वहीं कुछ दम्पति ऐसे भी हैं जो निकट सम्बन्धियों के स्थान पर नौकरानी या आया से अपना काम चलाना पसंद करते हैं। अब माता-पिता भी अपने बेटों से एक ही शहर में अलग-अलग रहते पाये जा रहे हैं और अपने भविष्य के लिए पृथक व्यवस्था करना शुरू कर दिया है। अब द्विपक्षीय नातेदारी को भी मान्यता मिल रही है और बेटियाँ भी माता-पिता की देखभाल करने लगी हैं।

स्पष्टत: इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारत में आधुनिकता की प्रवृत्ति ने भारतीय संयुक्त परिवार में व्यापक परिवर्तन को सम्भव बनाया है जिसमें भौतिक पृथक्करण प्रमुख है। तथापि, यह भी सत्य है कि भौतिक पृथक्करण की प्रमुखता, संयुक्तता की भावना की समाप्ति का सूचक नहीं हो सकता। वर्तमान संयुक्त परिवार से पृथक हो जाने के पश्चात् भी इसके सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति सहयोग और कर्तव्य की भावना यथावत बनी हुई है। परंतु, इसका दूसरा पहलू यह भी है कि आज संयुक्त परिवार की संयुक्तता की मात्रा पहले की अपेक्षा कम हुई है। अत: निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संयुक्त परिवार में परिवर्तन अवश्य हुआ है लेकिन संयुक्तता का केन्द्रीय तत्व कुछ कम ही सही किंतु अभी भी बना हुआ है। हमारे समाज में प्रकार्यात्मक (Functional) प्रकार का संयुक्त परिवार तब तक बना रहेगा, जब तक यह सांस्कृतिक आदर्श बना रहेगा कि "एक पुरुष को अपने माता-पिता एवं अल्पायु के भाई-बहन की देखभाल करनी चाहिए।"

संयुक्त परिवार में परिवर्तन के कारक (Causes of Change in Joint Family)

1. परम्परागत कृषक संयुक्त परिवार उत्पादन और उपभोग की इकाई था। औद्योगीकरण के कारण वह परिवर्तित होकर केवल उपभोग की इकाई बन गया। इससे नाभिक परिवारों (Nuclear Family) का प्रतिशत बढ़ने लगा। औद्योगिक केन्द्रों पर उत्पादन के कारण ग्रामों के कुटीर उद्योग समाप्त हो गए। ग्रामीण व्यक्ति शहरों में प्रवासित हुए और परम्परागत व्यवसाय छोड़कर कल-कारखानों में काम करने लगे। वस्तु-विनिमय (Barter) का स्थान नकद

मुद्रा विनिमय ने ले लिया। इससे संयुक्त परिवार की सामान्य सम्पत्ति की विशेषता टूट गई। स्त्रियाँ काम करने लगीं और संयुक्त-परिवार में रहना नापसन्द करने लगीं।

2. नगरीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात के साधन, उपभोग की वस्तुएँ आदि सुविधाओं की उपलब्धता के कारण लोग नगरों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। जब लोग ग्राम से संयुक्त परिवार को छोड़कर नगरों में आते हैं तो उससे संयुक्त परिवार विभाजित होता है। नगरों में आवास की समस्या होने से व्यक्ति या तो अकेला रहता है या अपनी पत्नी और बच्चों के साथ, जो कि नाभिक परिवारों का प्रतिशत बढ़ाता है।
3. ब्रिटिश शासन के समय भारतीय पाश्चात्य-शिक्षा और संस्कृति के सम्पर्क में आए। इससे भारतीयों के सामाजिक मूल्य, दर्शन और जीवन का तरीका पाश्चात्यीकृत होने लगा जो नाभिक परिवार को प्रोत्साहन देता है। व्यक्तियों पर भौतिकवाद और व्यक्तिवाद (Materialism and Individualism) के प्रभाव, स्त्रियों की शिक्षा व समानता की भावना, प्रेम-विवाह, तलाक, अन्तर्जातीय-विवाह और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने संयुक्त परिवार का विभाजन किया और एकाकी परिवार की तरफ आकर्षण बढ़ाया।
4. यातायात के साधनों के विकास ने व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना सुगम कर दिया है। पहले व्यक्ति जीवनपर्यन्त संयुक्त परिवार एवं जन्म-स्थान में ही रहता था। लेकिन अब वह संयुक्त परिवार को छोड़कर दूर स्थानों पर नौकरी, व्यवसाय, शिक्षा आदि के लिए चला जाता है। बढ़ी हुई भौगोलिक गतिशीलता (Geographical Mobility) के कारण भी परम्परागत संयुक्त परिवार विभाजित होकर नाभिक परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं।
5. ब्रिटिश सरकार की फूट डालने की नीतियों व कानूनों ने संयुक्त परिवार को तोड़ने में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से योगदान दिया। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1929 ने व्यक्ति को सम्पत्ति में अधिकार दे दिया चाहे वह संयुक्त परिवार से अलग रहता हो। हिन्दू स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार अधिनियम, 1939 ने उन्हें सम्पत्ति में अधिकार प्रदान कर दिया। सम्पत्ति के बँटवारे के अधिनियम के प्रावधान ने संयुक्त परिवार की आधारभूत विशेषता को बदलकर इसे नाभिक परिवार में बदलने की प्रक्रिया को गति प्रदान कर दी। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के द्वारा परिवार की महिलाओं (पुत्री, पत्नी, माता आदि) को पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार दे दिया गया। इनके कारण संयुक्त परिवार में परिवर्तन हो रहा है।
6. पारम्परिक रूप से सामाजिक-सुरक्षा का कार्य संयुक्त परिवार का ही था। आज सरकार की अनेक योजनाओं द्वारा व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। जैसे-बीमा योजना, भविष्यनिधि कोष, कर्मचारी क्षतिपूर्ति कानून, पेन्शन आदि। इससे नाभिक परिवारों की वृद्धि हो रही है।
7. पहले संयुक्त परिवार अनेक परम्परागत कार्य जैसे– शिक्षा, मनोरंजन, कपड़ा, भोजन, व्यवसाय, खाने-पीने की सामग्री आदि की व्यवस्था करता था। अब यह अन्य समितियों को हस्तांतरित हो गए हैं। आज व्यक्ति संयुक्त परिवार पर निर्भर नहीं रहा।
8. संयुक्त परिवार में अनेक सदस्य साथ-साथ रहते हैं। उनमें परस्पर झगड़े मन-मुटाव व कहासुनी होते रहते हैं। इन झगड़ों से बचने के लिए लोग अलग घर बसाकर रहना पसन्द करते हैं।
9. महिला आन्दोलन ने स्त्रियों में जागृति पैदा की है, जिससे वे स्वयं के अस्तित्व को समझने लगी हैं। वे शिक्षा ग्रहण करने लगी हैं, व्यवसायों में आने लगी हैं, स्वयं के शोषण के प्रति जागरुक हुई हैं, प्रेम-विवाह करने लगी हैं। वे संयुक्त परिवार में नियंत्रण के कारण अब इसमें रहना पसन्द नहीं करती हैं। परिणामतः इससे नाभिक परिवारों की संख्या बढ़ी है।

सामाजिक विधानों का हिन्दू विवाह एवं परिवार पर प्रभाव
(Impact of Social Legislation on Hindu Marriage and Family)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् राज्य के हस्तक्षेप और नियमों के निर्माण द्वारा आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में परम्परागत सामाजिक संरचना (Traditional Social Structure) में बदलाव लाने का प्रयास किया गया है। इन विधानों के प्रभाव या इनसे होने वाले परिवर्तनों को हिन्दू विवाह एवं परिवार संस्था के सन्दर्भ में देखा जा सकता है; जैसे-

1. ***सती प्रथा अधिनियम***- (1829, 1987) के द्वारा भारतीय समाज के अमानवीय प्रथा के रूप में सती प्रथा को रोकने का प्रयास किया गया है। फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार के साथ पितृसत्तात्मकता (Patriarchy) कमजोर हुई है।
2. ***हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम***- (1856) के द्वारा विधवा को पुनर्विवाह न करने की निर्योग्यता से मुक्त कर दिया गया और दूसरे विवाह और संतान को वैध माना गया है, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार सम्भव हुआ परन्तु आज भी इसे पूर्ण सामाजिक मान्यता प्राप्त न होने के कारण पूरी सफलता नहीं मिल पायी है।
3. ***बाल विवाह निरोधक अधिनियम***- (1929) के अन्तर्गत बाल विवाह को रोकने का प्रयास किया गया और इसके लिए विवाह की न्यूनतम उम्र निर्धारित की गयी है। फलतः
   (i) परिवार में बहुओं की स्थिति में सुधार हुआ है।
   (ii) लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला है।
   (iii) लड़कियों द्वारा संयुक्त परिवार में अनुकूलन (Adaptation) की कठिनाइयों की वजह से संयुक्त परिवार में टूटने की समस्या देखी गई है।

(iv) महिलाओं के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

4. ***विशेष विवाह अधिनियम-*** (1954) के द्वारा अन्तर्जातीय विवाह (विभिन्न धर्म एंव जाति के मध्य) की वैधानिक अड़चन दूर की गई है और अन्तर्विवाही नियमों को ऐच्छिक बनाया गया है, फलतः-

(i) स्त्रियों की स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है।

(ii) वैवाहिक निर्णयों में माता-पिता की भूमिका में कमी आई है।

(iii) संयुक्त परिवार का विघटन तथा एकाकी परिवार का उदय हुआ है।

5. ***हिन्दू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम-*** (1955) के द्वारा स्त्री, पुरुष दोनों को विवाह सम्बन्धी कुछ शर्तों को मानना अनिवार्य कर दिया गया तथा स्त्रियों को भी विवाह-विच्छेद के अधिकार दिए गए हैं, फलतः-

(i) पुरुष प्रभुता का ह्रास हुआ है।

(ii) स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हुआ है।

(iii) विवाह का स्थायित्व प्रभावित हुआ है एवं विवाह संस्कार न रहकर एक समझौता बन गया है।

(iv) बच्चों के लालन-पालन की समस्या उत्पन्न हुई है।

6. ***दहेज निरोधक अधिनियम-*** (1961, 86) के द्वारा दहेज (लेन-देन) को दंडनीय अपराध घोषित किया गया है, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हुआ है।

7. ***हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-*** (1956, 2004) के द्वारा लड़कियों को अपने माता-पिता की सम्पत्ति में लड़कों के समकक्ष अधिकार प्रदान किया गया है, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति (Status) में सुधार हुआ है तथा महिला सशक्तिकरण में वृद्धि हुई है। जहाँ लड़कियों द्वारा अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार का दावा किया गया है वहाँ पारिवारिक तनाव जैसी समस्या उत्पन्न हो रही है, परन्तु यह संक्रमणकालीन अवस्थाजनित तनाव व संघर्ष है। अन्ततः यह महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक सकारात्मक कदम साबित होगा तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन में सहायक होगा।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है उपरोक्त वैधानिक प्रयासों ने भारत में विवाह संस्था के विभिन्न आयामों में परिवर्तन को संभव बनाया है, परन्तु अर्थ के बढ़ते महत्व, विधान में निहित कमियाँ, इसके कार्यान्वयन के लिए दृढ़ इच्छा शाक्ति का अभाव, इन विधानों के पक्ष में जागरुकता का अभाव आदि के कारण अभी तक अपेक्षित परिवर्तन सम्भव नहीं हो पाया है। भारत के गांवों में आज भी बाल विवाह प्रथा पायी जाती है। आज भी लगभग सभी विवाह जाति के अन्तर्गत ही सम्पन्न किये जाते हैं। तलाक की वैधानिकता के बाद भी औरतें आज पति के जुल्मों को सहती हैं, आज भी विवाह में दहेज एक सामान्य घटना बनी हुई है और जिसे रोका नहीं जा सका है। ये सभी तथ्य सिद्ध करते हैं कि वैधानिक प्रयासों द्वारा जो परिवर्तन सामने आये हैं, वह सीमित हैं और कुछ पक्षों में ही हैं। अतः इन परिवर्तनों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि इन विधानों के क्रियान्वयन के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति हो और शिक्षा प्रसार द्वारा इन विधानों के पक्ष में जनमत निर्माण हो क्योंकि जब तक इसके पक्ष में सामाजिक अपील नहीं होगी, तब तक विधानों का व्यावहारिक लाभ प्राप्त करना कठिन है।

भारत में परिवार : संभावित प्रश्न

1. हिन्दू विवाह एंव परिवार पर सामाजिक विधानों के प्रभावों का वर्णन करें।
2. भारतीय संयुक्त परिवार के अर्थ एवं लक्षण को स्पष्ट कीजिए तथा संयुक्त परिवार व्यवस्था में होने वाले आधुनिक परिवर्तनों की चर्चा कीजिए।
3. हाल के वर्षों में पारिवारिक विघटन में वृद्धि हुई है। इसके लिए उत्तरदायी कारकों की चर्चा कीजिए।
4. आर्थिक विकास की समकालीन प्रक्रियाओं ने भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया है? स्पष्ट करें।
5. समकालीन भारत में संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तन एवं निरन्तरता के तत्वों को दर्शाइए। इसके लिए कौन-कौन से कारक जिम्मेदार हैं?

6 भारत में धर्म (Religion in India)

भारत में धार्मिक समुदाय (Religious Communities in India)

प्राचीन काल से ही भारत एक बहुधर्मी समाज (Ploytheistic Society) रहा है। 1931 की जनगणना के अनुसार भारत में 10 धार्मिक समूह थे। इनमें हिन्दू, सिक्ख, जैन, बौद्ध, जोरास्ट्रियन, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी और अन्य जनजातीय एवं गैर-जनजातीय धार्मिक समूह सम्मिलित थे। 1961 की जनगणना में केवल सात धार्मिक कोटियों को अंकित किया गया था जो हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन और अन्य धर्म तथा सम्प्रदाय के रूप में कोटिबद्ध किये गये थे।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 80.5 प्रतिशत लोग जिनमें अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ भी सम्मिलित हैं; हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। हिन्दू धर्मावलम्बी सभी राज्यों में फैले हुए हैं लेकिन पाँच राज्यों-जम्मू और कश्मीर, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड और लक्षद्वीप में वे अल्पसंख्यक हैं। हिन्दू धर्म अपने परिवेश में बहुत विशाल है और समस्या यह है कि इसकी परिभाषा में भी कोई स्पष्टता नहीं है। फिर भी सामान्य रूप से हिन्दुओं को तीन सम्प्रदायों में बाँटा जाता है। ये सम्प्रदाय हैं-(1) वैष्णव, (2) शैव और (3) शाक्त।

भारत में वैष्णव सम्प्रदाय के लोग शैव और शाक्त सम्प्रदाय के देवताओं की भी पूजा-अर्चना करते हैं लेकिन उत्तरवैदिक काल में ये सम्प्रदाय एक-दूसरे के घोर विरोधी थे। संस्कृत का एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि एक वैष्णव धर्मावलम्बी को सामने मस्त हाथी आ जाने पर भी उससे बचने के लिए शिव मन्दिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। हाथी के पाँवों के नीचे दबकर मर जाना उसके लिए अच्छा होगा इसकी अपेक्षा कि वह जान बचाने के लिये शिव मन्दिर की शरण ले। देसी रियासतों में प्रत्येक राजा का अपना एक सम्प्रदाय था और अपने सम्प्रदाय के उपास्य देव का वह मन्दिर बनाता था। सभी राजनैतिक व धार्मिक क्रियाकलापों का केन्द्र यह सम्प्रदाय हुआ करता था।

भारत में हिन्दू और इस्लाम धर्म के अतिरिक्त जैन और सिक्ख धर्म भी हैं। सामान्यतया सिक्ख धर्म के अनुयायी बड़ी संख्या में पंजाब में मिलते हैं और इसी तरह जैन धर्म के लोग गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में अधिक पाये जाते हैं। यद्यपि ये दोनों धर्मावलम्बी उत्तर और मध्य क्षेत्रों में मिलते हैं लेकिन सिक्खों के लिये यह सर्वविदित है कि वे दुनिया के हर कोने में पाये जाते हैं। यह एक उद्यमी समुदाय है। इसी प्रकार जैन धर्मावलम्बी भी उद्यमी हैं और वे दक्षिण भारत में भी अपना प्रभाव रखते हैं।

भारतीय अल्पसंख्यकों में ईसाई और पारसी धर्मावलम्बी भी सम्मिलित हैं। ईसाईयों का केन्द्रीकरण उन स्थानों पर ज्यादा है जहाँ ब्रिटिश शासन ने अपना व्यवसाय या प्रशासन केन्द्रित किया था। इस अर्थ में पश्चिमी बंगाल तथा केरल में ईसाई बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। भारत में धार्मिक समुदायों (Religious Community) के संदर्भ में आदिवासी धर्म के अनुयायियों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। आदिवासी धर्म जनगणना में पृथक् रूप से अंकित किया जाता है। प्रायः जनगणना में काम करने वाले हिन्दू गणक आदिवासियों को हिन्दू धर्मावलम्बियों की श्रेणी में रखते हैं फिर भी कुछ राज्यों में जहाँ ईसाई मिशनरियों का प्रभाव है वहां आदिवासियों ने ईसाई धर्म को अपना लिया है। मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, गुजरात, झारखण्ड और राजस्थान में ईसाई आदिवासियों की संख्या अधिक है।

पारसी धर्मावलम्बियों की संख्या बहुत कम है। वे केवल 70,000 के लगभग हैं और इनका मुख्य निवास दक्षिण गुजरात और महाराष्ट्र है। पारसी अग्नि की पूजा करते हैं और मुख्य रूप से यह व्यवसायी समुदाय माने जाते हैं।

बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या मात्र 0.76 (2001) प्रतिशत है। इनमें कोई जाति-प्रथा नहीं हैं और इनका मुख्य केन्द्र बिहार, हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर है।

अंतःधार्मिक क्रियाएँ और उनकी अभिव्यक्ति (Inter Religious Practices and their Expression)

भारतीय समाज में दो प्रकार की धार्मिक परम्पराएँ (Religious Practices) दिखाई देती हैं। प्रथम, वे धर्म जिनका उदय भारत में हुआ जैसे-बौद्ध, जैन और सिख धर्म तथा द्वितीय, वे जिनका जन्म तो अन्य देशों में हुआ लेकिन धीरे-धीरे वे भारतीय समाज में फैल गए जैसे-इस्लाम, ईसाई और जरथुस्त्र धर्म। विविध धर्मों का सह-अस्तित्व भारतीय समाज में धार्मिक विश्वासों और मतों की बहुलता तथा जीवन शैलियों की विविधता को प्रदर्शित करते हैं। इन विविध जीवन शैलियों में सामंजस्य के अभाव के कारण आधुनिक भारत में धार्मिक अंतःक्रियाएँ (Religious Interactions) कुछ नकारात्मक परिणामों को उत्पन्न कर रही हैं।

परम्परागत भारतीय समाज में जहाँ धार्मिक मूल्यों की प्रबलता, आध्यात्मिकता, पारलौकिकता, सोपानिकता तथा सत्ताधारी के प्रति नम्रता आदि गुणों पर अधिक बल दिया जाता था वहीं आधुनिक धर्मनिरपेक्ष भारतीय समाज में विचारों की स्वतंत्रता, भौतिक संस्कृति की प्रधानता, सांसारिकता की भावना तथा सत्ताधारी के सामने नम्रता

के स्थान पर विद्रोह का महत्व बढ़ा है। इस प्रकार आधुनिक भारतीय समाज ने व्यक्ति के विचारों के उन तत्वों को स्वीकार कर लिया है जो ईसाई, इस्लाम व सिक्ख धर्मों की परम्परा माने जाते हैं। समकालीन भारत में एकता की भावना विविधता से ऊपर है। पहले जब अन्य सांस्कृतिक समूह (Cultural Group) स्वदेशी धार्मिक विश्वासों के सम्पर्क में आते थे, वे अपनी पहचान बनाए रखते हुए क्षेत्रीय सांस्कृतिक दशाओं को भी अपना लेते थे। इस प्रकार के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में विविधता में एकता की अवधारणा स्थापित हुई। परंतु, समकालीन भारतीय संदर्भ में प्रतीत होता है कि विविध धर्म एक दूसरे से समायोजन करना नहीं चाहते। प्रारम्भ में कुछ ईसाई धर्म प्रचारकों ने कुछ लोगों, विशेष रूप से जनजातियों और निम्न जातीय हिन्दुओं को ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया था। आज कुछ हिन्दू कट्टरपंथियों ने, विशेष रूप में विश्व हिन्दू परिषद् तथा बजरंग दल के सदस्यों ने, सम्परिवर्तित ईसाइयों और मुसलमानों को पुनः हिन्दू धर्म में लाने का प्रयास किया। हाल में ही ईसाइयों पर हमले, दिसम्बर 1998 में गुजरात व जनवरी 1999 में उड़ीसा में धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म की मुख्य धारा में वापस लाने के प्रयास भी इसके प्रमाण हैं।

अलगाववादी, साम्प्रदायिक शक्तियां व संकीर्ण दृष्टिकोण विघटनकारी परिणाम उत्पन्न करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् धर्मान्धता का पुनर्उदय 1970 के दशक से हुआ है। कुछ हिन्दू व मुसलमान धर्मांध लोग अपने धर्म विरुद्ध कार्यों के लिए धर्म को ही साधन के रूप में प्रयोग करते हैं। भिन्न धर्मों के लोग साम्प्रदायिक दंगों और तनावों के लिए एक दूसरे को दोष देते हैं। भारत पाकिस्तान विभाजन के समय विभिन्न धर्मों के हजारों लोगों की हत्या के लिए हिन्दू व मुसलमान एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। 1960 व 1964 के साम्प्रदायिक दंगों के लिए सदैव हिन्दू और मुसलमानों ने एक दूसरे को उत्तरदायी ठहराया है। 1984 में इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद हुए दंगों में सिक्खों ने दिल्ली, उत्तर प्रदेश व कई अन्य राज्यों में सिक्खों की हत्या के लिए हिन्दुओं पर दोषारोपण किया। 1993 में अयोध्या में एक 'विवादास्पद निर्माण' को गिराने व महाराष्ट्र दंगों में मुसलमानों की हत्या के लिए मुसलमानों ने हिन्दुओं को दोषी ठहराया। 1998-99 में ईसाइयों ने गुजरात व उड़ीसा में ईसाइयों पर हमले के लिए हिन्दुओं को उत्तरदायी ठहराया। ऐसी स्थितियों का राजनीतिक लाभ उठाने के लिए स्वार्थी राजनेताओं द्वारा धर्म एक हथियार के रूप में प्रयोग किया गया। पंजाब में भिण्डरावाला आंदोलन और कश्मीर में कुछ मुसलमानों का पाकिस्तान के पक्ष का रुझान, धार्मिक अल्पसंख्यकों की अतिवादिता को प्रदर्शित करते हैं। भारतीय जनता पार्टी के एक अनुभाग द्वारा 'हिन्दुत्व' के नारे ने मुस्लिमों और ईसाइयों में बहुसंख्यकों का भय और हिन्दू विरोधी भावना को और सशक्त बनाया है।

इन तनावों के बावजूद भारतीय संदर्भ में विविधता में एकता और सहिष्णुता देखी जाती है। अंग्रेजों ने हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों की धार्मिक भावनाओं को भड़का कर उन्हें विभक्त करने का प्रयत्न किया लेकिन स्वतंत्रता संग्राम में वे एक रहे। आज भी अन्तःधार्मिक विवाह (Inter-Religious Marriage) हो रहे हैं तथा त्यौहार मिलकर मनाए जाते हैं। मध्यकालीन भक्तों (कबीर, नामदेव, रविदास, नानक, चैतन्य, आदि जिन्होंने धार्मिक बंधनों से ऊपर उठने का प्रयत्न किया, एक सूत्र में पिरोने वाली बोली प्रचारित की तथा कर्मकाण्डवाद की निन्दा की) के समान ही स्वतंत्रता के बाद गांधी, नेहरू जैसे प्रगतिशील नेताओं ने मानव एकता पर बल दिया। आज भारत का कोई अपना अधिकृत धर्म नहीं है। संविधान सभी धर्मों को स्वतंत्रता प्रदान करता है। भले ही कुछ राज्यों में राजनैतिक सत्ता हथियाने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता है परंतु अधिकांश लोग धर्म आधारित इस राजनीति के नकारात्मक परिणामों को अच्छी तरह समझ गए हैं। कुछ लोग मानते हैं कि हमारे देश में ऐसी स्थिति नहीं है जिसमें भिन्न धर्म एक दूसरे के साथ समंजन करें। उनके अनुसार कुछ ऐसे धर्म हैं जो व्यक्तिवाद को प्राथमिकता प्रदान करते हैं (जैसे, इस्लाम, ईसाई) और दूसरे ऐसे भी धर्म हैं जो दैवी अस्तित्व के अवैयक्तिक स्वरूप (Impersonal form) को मान्यता देते हैं। ऐसे भी धर्म हैं जिनके पास देवत्व का आधारभूत सिद्धांत नहीं है जबकि अन्य ऐसे धर्म हैं जो देवत्व के सिद्धांत पर ही आधारित हैं लेकिन यह केवल विविधता दर्शाता है न कि असहिष्णुता। परंतु, समकालीन भारत में धार्मिक विचार राजनीति से जुड़ने लगे हैं। प्रगतिशील विचारों के कुछ व्यक्ति हैं जो सहिष्णुता व सामंजस्य के आधार पर नई सामाजिक संरचना बनाना चाहते हैं और अन्य लोग भी हैं जो रूढ़िवादी व प्रतिक्रियावादी विचारधारा (Reactionary Idealogy) के हैं, जो वर्तमान सामाजिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं चाहते हैं। इस प्रकार दो द्वन्दात्मक विचारधाराएं साम्प्रदायिक दंगों और संघर्षों को जन्म देती हैं। अतः इन स्थितियों में संघर्षरत धार्मिक विचारधाराओं से समझौता करना सरल नहीं है और धार्मिक वैचारिकी के आधार पर विरोधी समूहों के बीच स्वतंत्र अन्तःक्रिया (Interaction) निकट भविष्य में सहज एवं सामान्य होने की प्रबल सम्भावनाओं को प्रदर्शित नहीं करती।

भारत में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद (Religious Revivalism India)

धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद या पुनरुत्थानवाद एक नवीन सामाजिक परिघटना के तौर पर उभरकर सामने आया एक सामाजिक तथ्य है। यहां पुनरुत्थान या पुनःप्रवर्तन का तात्पर्य अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने से है। उल्लेखनीय है कि औद्योगीकरण, नगरीकरण, विज्ञान एवं तकनीक के विकास तथा आधुनिक मूल्यों के व्यापक प्रचार-प्रसार ने एक सामाजिक संस्था के रूप में धर्म को काफी क्षत किया था। किन्तु, पिछले कुछ दशकों से धर्म पुनः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने की दिशा में तेजी से अग्रसर है और

इसे अवधारणा के रूप में 'धार्मिक पुन:प्रवर्तन या पुनरुत्थानवाद' के नाम से जाना जाता है।

यद्यपि 1970 के बाद विकसित धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद वर्तमान समय में संपूर्ण दुनिया में विचार का विषय बना हुआ है, किन्तु इसका भरतीय संदर्भ स्वयं में विशेष स्थान रखता है। भारत प्रारंभ से ही एक धर्म आधारित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था का पोषक रहा है। किन्तु, सदियों की अधीनता, समाज में व्याप्त तमाम कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा बाह्य आडम्बरों के कारण धर्म की साख लगातार गिरती रही और जबकि भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को आधारभूत विशेषता के रूप में आत्मसात किया; एक संस्था के रूप में धर्म काफी आहत हुआ।

यद्यपि भारत में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद की शुरुआत औपनिवेशिक काल के दौरान ही राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद जैसे सामाजिक-धार्मिक सुधारवादियों के नेतृत्व में हो चुकी थी, किंतु उनका प्रयास सुधारवादी या तमाम कुरीतियों व कुप्रथाओं को दूर कर हिन्दू धर्म का विशुद्धीकरण कर उसके आदर्श स्वरूप को स्थापित करना था। वर्तमान में जिस धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद की बात की जाती है उसकी शुरुआत 1970 के दशक में हुई है।

भारत में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद के कारण (Causes of Religious Revivalism in India)

भारत में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद एक साथ कई कारकों का समेकित परिणाम है। इन कारकों को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत स्पष्ट किया जा सकता है:–

1. ***मूलतत्ववाद का प्रभाव (Effect of Fundamentalism):*** धार्मिक मूलतत्ववादी दृष्टिकोण का मूल तात्पर्य कट्टरता का संकेत करता है। स्वधर्म की श्रेष्ठता व अन्य धर्मों के प्रति हीन व नकारात्मक भावनाओं तथा प्रदर्शनों का प्रचार-प्रसार धार्मिक मूलतत्ववाद के प्रमुख औजार हैं। धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद के विकास में इसका महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि यह पहचान के संकट की विश्वव्यापी समस्या का एक निदान प्रस्तुत करता है और व्यक्ति को इसके लिए अपने धर्म से जुड़े रहने को प्रेरित करता है।
2. ***धार्मिक सुधार संगठनों की सक्रियता (Activism of Religious Reform Organizations):*** औपनिवेशिक काल के दौरान तमाम सामाजिक, धार्मिक सुधारकों ने 'धर्म' संस्था में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया था। इस क्रम में उन्होंने विभिन्न संस्थाओं की भी स्थापना की थी जो आज भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सक्रिय हैं। इन संगठनों अथवा संस्थाओं में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि प्रमुख हैं। जो लोगों को अपने धर्म से जुड़े रहने के लिए अभिप्रेरित कर रहे हैं।
3. ***धार्मिक नेताओं का प्रभाव (Influence of Religious Leaders):*** आज भारत में कई धार्मिक नेता धर्म के पुन:प्रर्वतन के लिए कार्य कर रहे हैं जो प्रवचनों, शिविरों आदि के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति में लगे हैं। इन धार्मिक नेताओं में मुरारी बापू, संत आशाराम बापू, श्री श्री रविशंकर, बाबा रामदेव आदि का नाम प्रमुखत: उल्लेखनीय है।
4. ***धर्म का बाजारीकरण (Marketization of Religion):*** आज धर्म का बाजारीकरण जोरों पर है। आस्था और संस्कार जैसे तमाम टीवी चैनल, धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने में लगे हैं। इसका सीधा परिणाम यह है कि जहां धर्म के आधार पर ऐसे चैनल मालिकों को आर्थिक लाभ हो रहा है, वहीं ये कार्यक्रम जनमानस के मनोभावों को प्रभावित कर उन्हें अपने धर्म से जोड़ रहे हैं। इसी क्रम में 'हनुमान' पर बनी एनीमेशन फिल्म तथा रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथ पर आधारित कार्टून सीरियल्स का भी उल्लेख किया जा सकता है।
5. ***पहचान का संकट (Identity Crisis):*** आज वैश्वीकरण के दौर में जब विश्वग्राम (Global Village) की अवधारण विकसित हो रही है, व्यक्ति अपनी पहचान खोता जा रहा है ऐसी स्थिति में धर्म उस सशक्त माध्यम के रूप में अपने को पुन: स्थापित कर रहा है, जो लोगों को इस पहचान के संकट से निजात दिला सकता है।
6. ***सूचना तथा संचार माध्यमों का प्रभाव (Effect of Information and Communication Medium):*** भारत में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद के विकास के लिए सूचना और संचार माध्यमों ने महती भूमिका निभाई है। परिणामत: व्यक्ति दुनिया के तमाम समुदायों को धर्म के नाम पर गोलबंद होता हुआ देख स्वयं भी अपने धर्म से अभिन्नत: जुड़ने को प्रेरित होता है।

धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद का प्रभाव (Effect of Religious Revivalism)

स्पष्ट है कि भारत में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद कई कारकों का समेकित परिणाम है। जहाँ तक इसके प्रभावों का सवाल है ये दो रूपों (सकारात्मक और नकारात्मक) में दृष्टिगत होता है, जिनकी विवेचना निम्नांकित तरीके से की जा सकती है:–

सकारात्मक प्रभाव (Positive Effect)

सामान्यत: यह माना जाता है कि धर्म सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण साधन है और व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व से संबंधित आचरणों का नियामक भी है। इस रूप में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद जहाँ व्यक्ति के आंतरिक आचरण अथवा नैतिकता (Internal Conduct or Morality) को विशुद्धिकृत करने का प्रयास करता है वहीं सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों के बीच सर्व-धर्म

समभाव की धारणा के तहत सामाजिक समरसता की भावना को मजबूत करता है। वर्तमान में यह एक ओर व्यक्ति को आधुनिक मूल्यों से उत्पन्न पहचान के संकट से निजात दिलाता है तो दूसरी ओर भागम-भाग व तनावपूर्ण जिंदगी से उत्पन्न शारीरिक, मानसिक समस्याओं के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान कर मानसिक शांति प्रदान करता है। यही वजह है कि चाहे वह बाबा रामदेव का योग शिविर हो या फिर तमाम साधु-महात्माओं व संतों का प्रवचन कार्यक्रम, भारी संख्या में लोग उनमें भाग लेकर आत्म संतुष्टि प्राप्त करते हैं। इस प्रभाव को केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं बल्कि इस्लाम, सिक्ख आदि धर्मों के संदर्भ में भी देखा जा सकता है।

नकारात्मक प्रभाव (Negative Effect)

धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद के नकारात्मक परिणामों को वस्तुत: धार्मिक मूलतत्ववाद द्वारा उत्पन्न की नयी अंधकट्टरवादिता के साथ जोड़ा जा सकता है। यह कट्टरवादिता (Fundamentalism) इराक में सद्दाम हुसैन के शासन के रूप में, अलकायदा, तालिबानी तथा तथाकथित इस्लामिक आतंकवादी गतिविधियों के तौर पर सामने आई। भारत में जहां कश्मीर समस्या तथा तमाम धार्मिक स्थलों पर हो रहे आतंकवादी हमले के तौर पर इसके परिणामों को देखा जा सकता है वहीं शिवसेना, बजरंगदल, विश्व हिन्दू परिषद जैसे हिन्दूवादी तथा सिमी जैसे मुस्लिम संगठनों की गतिविधियाँ भी धार्मिक कट्टरवाद के उदाहरण के रूप में व्याख्यायित की जा सकती हैं। अभी हाल में ही 'पब-कल्चर' के विरोध में श्रीराम सेना के कार्यकर्ताओं द्वारा कर्नाटक में किया गया असभ्य व्यवहार भी इसी श्रेणी का एक प्रमाण है। धार्मिक मूलतत्ववाद (Religious Fundamentalism) जनित धार्मिक कट्टरवादी गतिविधियों की त्रासदी यह है कि इससे न केवल विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच अविश्वास, वैमनस्यता (Animosity), विरोध तथा संघर्षात्मक प्रकृति में इजाफा होता है। वरन् ये सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सभी पक्षों में विघनकारी प्रभाव डालकर राष्ट्र की एकता व अखण्डता को भी दुष्प्रभावित करते हैं। इन कार्यों से सामाजिक समरसता, समतामूलक समाज की स्थापना के लक्ष्य तथा शांतिपूर्ण सामाजिक जीवन का सत्यानाश तो होता ही है, साम्प्रदायिक दंगों के कारण धन-जन की जो हानि होती है और निर्दोष व्यक्ति बर्बरता से मारे जाते हैं। इसी धार्मिक कट्टरवादिता के तो परिणाम हैं। यह कट्टरवादिता जहां विभिन्न धर्मों के बीच वैमनस्यता को बढ़ावा देती है वहीं सामान्य नागरिकों में सामाजिक असुरक्षा की भावना को उत्पन्न करती है और अन्तत: इससे देश व समाज का विकास अवरुद्ध होता है।

भारत में धार्मिक रूढ़िवाद (Religious Fundamentalism in India)

मूलतत्ववाद या रूढ़िवाद (Religious Fundamentalism) का अर्थ किन्हीं मूल विश्वासों में आस्था तथा किन्हीं मूल सिद्धांतों का अनुसरण एवं उनके प्रति प्रतिबद्धता है। रूढ़िवाद का स्वरूप धार्मिक एवं गैर-धार्मिक दोनों हो सकता है। इस दृष्टि से फासीवाद अथवा साम्यवाद के रूप में सर्वसत्तावाद (Totalitarianism) को भी रूढ़िवाद का रूप कहा जा सकता है।

धार्मिक रूढ़िवाद किसी धर्म के व्यक्ति द्वारा उस धर्म के मूल सिद्धांतों में विश्वास, उनके मौलिक सिद्धांतों में आस्था या प्रतिबद्धता का वह रूप है जो धर्मांधता की सीमाओं को छूती है। जब किसी धर्म-विशेष के मतावलम्बियों द्वारा सारी दुनिया को अपने ही धर्म के संबंध में देखा जाता है और अपने परम्परागत धर्म को अंतिम सत्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जाता है तो यह धार्मिक रूढ़िवाद कहलाता है। धार्मिक रूढ़िवादी अपने धर्म से इतर सभी जीवनशैलियों को भ्रष्ट जीवनशैली मानते हैं और इसको शुद्ध करने का प्रयास करते हैं, जैसे-मौलाना मौदूदी (भारत में जमायत-ए-इस्लामी के संस्थापक) ने वर्तमान जीवनपद्धति को अज्ञानी की संज्ञा दी और इसे भ्रष्ट बताया, भिंडरावाले ने 'पतित सिक्खों' का उल्लेख किया जो अपनी दाढ़ी बनाते हैं, अपने बाल कटाते हैं और परम्परागत सिक्ख पद्धति का पालन नहीं करते हैं। इसी संदर्भ में हम अफगानिस्तान के तालिबानियों और पाकिस्तान में लाल मस्जिद के मौलवियों के क्रियाकलापों की चर्चा कर सकते हैं। जिन्होंने परम्परागत मुस्लिम जीवनपद्धति को इस्लाम के अनुरूप माना और आधुनिक जीवनपद्धति का विरोध किया।

एक धार्मिक व्यक्ति होना तथा एक रूढ़िवादी होना एक समान नहीं है क्योंकि धर्म रूढ़िवादी नहीं होता। धार्मिक रूढ़िवाद धर्म का विलोम है, धर्म का शोषक है, जो सामान्य हितों को त्याग कर व्यक्तिगत हितों की पूर्ति हेतु धर्म को भ्रष्ट माध्यम के रूप में प्रयोग करता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर धार्मिक रूढ़िवाद के निम्न लक्षणों की चर्चा की जाती है-

1. एक धार्मिक रूढ़िवादी अपने धर्म समुदाय अथवा इनसे जुड़े विश्वास व्यवस्था को अनिवार्य, यथेष्ट तथा पूर्णत: प्रमाणित मानता है।
2. रूढ़िवादी कभी समझौतावादी नहीं होते हैं बल्कि अपने विश्वास में धर्मांध एवं स्वरूप में अक्रामक होते हैं।
3. धार्मिक रूढ़िवाद के सिद्धांत अनुल्लंघनीय, आक्षरिक, निरंकुश तथा बाध्यकारी होते हैं। यह केवल अधिरोपण की जुबान समझता है और अपने मत को सही मानते हुए समस्त समाज को उस मत को मानने पर बल देता है।
4. धार्मिक रूढ़िवाद का स्वयं का मत होता है वह भले धर्म में हो या न हो परन्तु रूढ़िवादी अपने मत को तर्क द्वारा या धर्म की पुनर्व्याख्या द्वारा धर्मसम्मत सिद्ध कर देता है।
5. धार्मिक रूढ़िवादी विज्ञान एवं विवेकवाद दोनों को अस्वीकार करता है।

6. धार्मिक रूढ़िवादी अपने व्यवहार में उग्रता को प्रदर्शित करते हैं।

हाल के वर्षों में वैश्विक परिदृश्य में धार्मिक रूढ़िवाद एक महत्वपूर्ण घटना रही है। जिसे अफगानिस्तान में तालिबानी क्रियाकलापों, पाकिस्तान में लाल मस्जिद से जुड़े कट्टरपंथियों के क्रियाकलापों तथा भारत में बाबरी मस्जिद कांड के रूप में देखा जा सकता है। भारत में हिन्दू रूढ़िवाद ने जिस तरह के परिणामों (बाबरी मस्जिद विध्वंश कांड, इसाईयों को पुनः हिन्दू बनाया जाना, धार्मिक आधार पर तनाव, द्वेष और दंगों की घटनाएं आदि) तथा मुस्लिम रूढ़िवाद ने जिस तरह के परिणामों (कश्मीर में जेहाद, पैगम्बर या कुरान के विरुद्ध लिखने या बोलने वालों की हत्या का फतवा, तथा धर्म आधारित तनाव, द्वेष व संघर्ष में वृद्धि आदि) को उत्पन्न किया है इससे भारत में धर्म निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया बाधित हुई है। आज इसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक तनाव और दंगे बढ़े हैं। राष्ट्र कई समुदायों में विभक्त हो गया है तथा राष्ट्र निर्माण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया बाधित हुई है।

भारत में धार्मिक रूढ़िवाद के लिये निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं-

1. नृजाति केन्द्रीयता की भावना और इसकी प्रतिक्रिया के कारण धर्म के आधार पर संगठित होने की प्रवृत्ति ने परम्परागत धर्म के महत्व में वृद्धि की है।
2. राजनीतिक दलों के द्वारा इसे मत एकत्रित करने (Vote Mobilisation) के आधार के रूप में प्रयोग किये जाने के कारण धर्म के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी है।
3. कट्टरपंथियों द्वारा इस दिशा में किए गये दुष्प्रकार्यात्मक प्रयास के कारण धर्म के रूढ़िवादी तत्व मजबूत हुए हैं।
4. राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति (यथा राजस्थान और पंजाब के सीमावर्ती क्षेत्र के मेयो जाति) ने धार्मिक मान्यताओं के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ाया है।
5. सामाजिक और आर्थिक विषमता, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा के कारण लोग पारंपरिक धर्म से चिपके रहना चाहते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम रूढ़िवाद यद्यपि कई कारणों का संयुक्त परिणाम रहा है, परंतु हाल के वर्षों में वैश्वीकरण जनित 'पहचान का संकट' की प्रतिक्रिया और विभिन्न धार्मिक समुदायों ने इसको और पुष्ट किया है और 'धर्म के बाजारीकरण' ने भी इसे जनाधार प्रदान किया है। अतः कुछ विद्वानों द्वारा इसे सकारात्मक संदर्भों में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

स्पष्ट है धार्मिक रूढ़िवाद वर्तमान भारतीय समाज के समक्ष एक गंभीर चुनौती है और इससे जनित खतरों से बचने के लिए धर्मनिरपेक्षता को सामाजिक आंदोलन के रूप में स्थापित करना होगा (शिक्षण संस्थाओं में, विभिन्न संचार साधनों के प्रसारों द्वारा) तभी धर्मनिरपेक्ष व अखण्ड राष्ट्र की परिकल्पना पूरी हो सकती है।

भारत में धर्म-परिवर्तन
(Religious Conversion in India)

धर्म परिवर्तन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसके अंतर्गत व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति द्वारा या समूह के सदस्य के रूप में किसी व्यक्ति द्वारा अपने धर्म से भिन्न कोई अन्य धर्म ग्रहण करने का व्यक्तिगत निर्णय समाहित होता है।

भारतीय समाज में धर्म परिवर्तन एक ऐतिहासिक घटना रही है, परंतु हाल के वर्षों में सामूहिक रूप में बौद्ध धर्म ग्रहण करने की घटना या कुछ कट्टरवादी संगठनों द्वारा धर्म परिवर्तन की घटना को स्वार्थ सिद्धि हेतु धोखे से कराए गए धर्मान्तरण के रूप में देखा जाना और इनके प्रतिक्रिया स्वरूप विघटनकारी क्रियाकलापों को अंजाम देना तथा उन धर्मान्तरित हिन्दुओं एवं जनजातियों को फिर से हिन्दू बनाए जाने की घटना ने धर्म परिवर्तन को एक अत्यंत भावोत्पादक एवं संवेदनशील सामाजिक मुद्दे के रूप में महत्वपूर्ण बना दिया है जो भारत के धर्मनिरपेक्ष चरित्र के बिल्कुल विपरीत है।

भारत में इस धर्म परिवर्तन पर मुख्यतया दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है-

1. ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू व जनजातियों को ईसाइयत ग्रहण करवाना जो मुख्यतया अंग्रेजों के आगमन के साथ ही प्रारंभ हो गया था।
2. हिन्दू दलितों द्वारा सामूहिक रूप से बौद्ध धर्मग्रहण करने की प्रक्रिया (नव-बौद्ध आंदोलन के रूप में अम्बेडकर और कामराज के नेतृत्व में हिन्दू दलितों द्वारा सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म अपनाया जाना)।

भारत में धर्म परिवर्तन के उपरोक्त दोनों संदर्भों के लिए मुख्य रूप से निम्न कारक उत्तरदायी रहे-

1. असमानतामूलक एवं शोषणकारी (Inequitable and Exploitative) जाति व्यवस्था ने शोषित वर्गों को अपने धर्म के प्रति उदासीन बनाया है।
2. गरीबी एवं आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लोगों ने अन्य धर्मों में विकास की सम्भावनाओं की तलाश की।
3. तुलनात्मक अभाव बोध के कारण भी लोग अन्य धर्मों के प्रति आकर्षित हुए।
4. दुःख, निराशा एवं संघर्ष की स्थिति ने उनमें धर्म से विमुखता उत्पन्न की है।
5. अशिक्षा के कारण, अन्य धर्मों में जहां शैक्षिक अवसरों के आकर्षक विकल्प थे, की ओर लोग उन्मुख हुए।
6. प्रस्थिति उन्नयन (Status Upgrade) की सम्भावना के कारण भी लोगों की रुचि समतावादी धर्मों की तरफ हुई।

7. इस दिशा में अभिप्रेरित करने वाले व्यक्ति या समूहों की भूमिका भी धर्म परिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण रही।

भारत में धर्म परिवर्तन की उपरोक्त प्रवृत्ति, इसके कारण तथा इसकी प्रक्रिया में उदित नवीन घटनाओं के संदर्भ में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत में जहाँ धर्मनिरपेक्षता के साथ-साथ व्यक्ति और धर्म के साथ भावनात्मक संबंधों को भी स्वीकार किया जाता है। वहीं सभी नागरिकों को अपनी इच्छानुसार धर्मग्रहण करने का अधिकार है। जो आदर्श समाज की संरचना में एक महत्वपूर्ण कदम है। परंतु धर्म-परिवर्तन धोखे से कराया जा रहा है तो यह निंदनीय है, गैर-कानूनी है, समाज के लिये दुष्प्रकार्यात्मक (Dysfunctional) है और ऐसे कार्यों को रोका जाना चाहिए परंतु उन्हें भी हतोत्साहित करना चाहिये जो धार्मिक कट्टरवाद से अभिप्रेरित होकर व्यक्ति के स्वैच्छिक धर्म-पालन को बाधित करते हैं।

चूंकि भारत में धर्मान्तरण की सभी घटनाएं कहीं न कहीं ढकेलने वाले कारकों (Push Factor) से अधिक संबद्ध रही हैं, अतः इस समस्या का सकारात्मक समाधान भारतीय समाज का शैक्षणिक एवं आर्थिक समानुपातिक विकास करते हुए हिन्दू सामाजिक संगठन में विद्यमान दबाव कारकों अर्थात् उन कमियों को दूर करना भी होना चाहिए जिसके कारण हाशिये पर खड़े लोगों को अपनी वंचना की पुष्टि हेतु अन्य धर्म को ग्रहण करने की ओर उन्मुख होना पड़ता है। तभी एक आदर्श, आधुनिक बहुलक समाज के लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

भारत में धर्म : संभावित प्रश्न

1. धार्मिक पुनः प्रर्वतनवाद की घटना ने धर्मनिरपेक्ष भारत के निर्माण के लक्ष्य को किस प्रकार प्रभावित किया है? समीक्षा करें।
2. धार्मिक रूढ़ीवाद भारत में आधुनिकीकरण के समक्ष एक प्रमुख बाधा के रूप में उपस्थित हुआ है। समीक्षा करें।
3. क्या भारत में धर्म-परिवर्तन व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है? समीक्षा करें।
4. भारत में धार्मिक पुनःप्रर्वतनवाद की घटना को स्पष्ट कीजिए।
5. भारत में धार्मिक रूढ़िवाद की समस्या पर टिप्पणी कीजिए।
6. धर्म एवं पहचान संकट पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. समकालीन भारत में धर्मान्तरण की समस्या के सामाजिक आयामों को दर्शाइए।
8. धार्मिक रूढ़िवाद एवं धर्मनिरपेक्षता के मध्य परस्पर विरोधी संबंधों की चर्चा कीजिए।
9. समकालीन भारत में धर्म एवं राजनीति के मध्य संबंधों पर टिप्पणी कीजिए।
10. धर्म के बाजारीकरण से आपका क्या तात्पर्य है? इस घटना ने भारतीय समाज को किस प्रकार प्रभावित किया है?

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

7 वैश्वीकरण (Globalization)

सामान्यत: वैश्वीकरण का अर्थ विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं, विभिन्न समाज व संस्कृतियों में परस्पर अन्त:निर्भरता (Interdependency) का बढ़ना, के रूप में लिया जाता है।

परन्तु वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती अन्तर्निभरता एक प्रमुख घटना है। अत: भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझने हेतु इसकी पूर्व-पीठिका के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था को जानना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की परिस्थितियों ने ही भारत में वैश्वीकरण के प्रसार को स्वरूप प्रदान किया है।

सामान्यत: भौतिक वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा इनसे जुड़ी अन्य उपव्यवस्थाओं (Sub-System) को समग्र रूप में अर्थव्यवस्था की संज्ञा दी जाती है।

यदि हम अर्थव्यवस्था के उद्विकासक्रम की बात करें तो इसे हम निम्न रूप में देख सकते है:-

1. ***खाद्य संकलन एवं शिकारी अर्थव्यवस्था (Food Gathering & Hunter-gatherer Economy)***- यह अर्थव्यवस्था का प्राचीनतम स्वरूप है जहाँ लोग जीवन यापन हेतु जंगल से प्राप्त फल व कंद मूल तथा जंगली जानवरों के शिकार पर निर्भर होते थे। यहाँ बाजार व्यवस्था अनुपस्थित होती थी।
2. ***कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था (Agriculture and Animal Husbandry Economy)***- जब कबीले के रूप में भ्रमणशील व्यक्ति एक जगह टिक के रहने लगे तो कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। इस अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन ने विनिमय व्यवस्था को प्रेरित किया फलत: बाजार एवं मुद्रा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।
3. ***औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Industrial Economy)***- यह अर्थव्यवस्था का आधुनिक स्वरूप है। जब मशीनों द्वारा व्यापक पैमाने पर उत्पादन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो औद्योगिक अर्थव्यवस्था का उद्भव हुआ। औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आधुनिक मुद्रा प्रणाली एवं बाजार प्रणाली का विकास हुआ।

   आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामान्यत: 3 मॉडल प्रचलित रहे हैं, जिन्हें हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

   (a) उदारवादी पूंजीवादी मॉडल (Liberal Capitalist Model)- इस मॉडल में उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर निजी व्यक्तियों का नियंत्रण होता है तथा उत्पादन का उद्देश्य निजी लाभ की प्राप्ति होता है। यह मॉडल मुख्यत: उन समाजों में प्रचलित है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अहस्तक्षेप की नीति को वरीयता (Preference) प्रदान करते हैं। यदि वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो विश्व के अधिकांश देश आज इसी मॉडल के अनुगामी हैं।

   (b) समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy)- इस मॉडल में उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर राज्य का नियंत्रण होता है तथा राज्य के द्वारा अपने नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति हेतु उत्पादन किया जाता है। यह मॉडल विश्व की दूसरी दुनिया के देशों में प्रचलित रहा है। परन्तु वर्तमान में उदारवादी पूंजीवादी मॉडल के बढ़ते प्रभाव ने इस मॉडल के प्रचलन को कम कर दिया है।

   (c) मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)- इस मॉडल में उत्पादन की पूरी प्रक्रिया राज्य एवं राज्य के नियंत्रण में निजी व्यक्तियों द्वारा संचालित होती है। यह मॉडल उपरोक्त दोनों मॉडल का मिश्रित स्वरूप है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् इसी मॉडल को अपनाया गया।

स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
Nature of Indian Economy before Independence

1. ***कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था (Agricultural Economy)***- स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि प्रधान थी। हमारे सकल घरेलू उत्पाद का 50% से भी अधिक भाग कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता था। हमारे देश की 70% से भी अधिक जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी।
2. ***कृषि का परम्परागत स्वरूप (Traditional form of Agriculture)***- स्वतंत्रता से पूर्व भारत तकनीकी पिछड़ेपन के दौर से गुजर रहा था। फलत: हमारे कृषि का भी स्वरूप परम्परागत था। अर्थात् हमारी कृषि सिंचाई के लिए पूर्णत: वर्षा पर निर्भर थी, खेतों की जुताई पशुओं के द्वारा होती था, कम उत्पादक परम्परागत बीजों का प्रयोग होता था और ऋण के लिए किसान सेठ, साहूकारों पर निर्भर थे।
3. ***विदेशी निवेशकों के लाभ हेतु औद्योगीकरण (Industrialization for the benefit of Foreign Investors)***- स्वतंत्रता पूर्व काल में अंग्रेजों ने औद्योगीकरण की शुरूआत तो कर दी थी परन्तु इनका उद्देश्य विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक लाभ प्रदान करना था। औद्योगीकरण ने यहाँ के

परम्परागत कुटीर उद्योगों को नष्ट कर यहीं के कच्चे माल का उपयोग कर तथा सस्ते श्रमिकों का प्रयोग कर विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक लाभ प्रदान किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के आर्थिक विकास की दशा
State of Economic Development of India after Independence

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा विकास के लक्ष्य का निर्धारण किया गया। इस विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नियोजित विकास पर बल दिया गया। नियोजित विकास हेतु 1950 में सरकार द्वारा योजना आयोग का गठन किया गया। जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। भारत में आर्थिक विकास हेतु मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपनाया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) का निर्माण हैराल्ड डॉमर मॉडल के तहत किया गया, जिसमें कृषि विकास पर विशेष बल दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में महालनोबिस मॉडल को अपनाया गया जिसमें भारी उद्योगों पर बल दिया गया एवं अन्य क्षेत्र में टपकन के सिद्धांत (Trickle-down theory) को स्वीकार किया गया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी विकास युक्ति बुनियादी रूप से वही थी जो दूसरी पंचवर्षीय योजना में थी। बस दोनों में एक मामूली अंतर था। तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि और औद्योगिक विकास के मध्य संतुलन पर अधिक जोर दिया गया था।

इसी महालनोबिस मॉडल के आधार 1991 तक आर्थिक विकास कि प्रक्रिया क्रियाशील रही।

1960 के दशक में संवृद्धि दर ऊंची होने के बावजूद इस अवधि में आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया की व्यापक स्तर पर आलोचना हुई है। इस संवृद्धि प्रक्रिया की एक मुख्य आलोचना यह है कि इसने देश में समष्टि आर्थिक (Macro Economics) असंतुलन को पैदा किया, इस काल में वित्तीय घाटा (Fiscal Deficit) बहुत बढ़ गया जिससे भुगतान संतुलन पर भारी दबाव पैदा हुआ और देश में मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिला। इसकी दूसरी मुख्य आलोचना यह हुई है कि इसके कारण देश में संसाधनों के उपयोग में कार्य कुशलता का स्तर नीचे आया।

आर्थिक सुधार के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
Nature of Indian Economy before Economic Reform

महालनोबिस मॉडल के आधार पर निर्मित 1956 के औद्योगिक नीति के अनुसार आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। 1956 की औद्योगिक नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल पर आधारित थी। अर्थात् इसमें उद्योगों के क्षेत्र को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया था। पहली सूची (क) में 17 आइटम थे जिन्हें सार्वजनिक क्षेत्र हेतु सुरक्षित रखा गया था। दूसरी सूची (ख) में 12 आइटम को रखा गया था। इस सूची में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ नियंत्रण में रहते हुए निजी क्षेत्र को भी अधिकार प्राप्त था। तीसरी सूची (ग) में शेष सभी आइटम थे इस सूची में सम्मिलित आइटम निजी क्षेत्र द्वारा संचालित होते थे एवं राज्य नियंत्रक की भूमिका में क्रियाशील था।

आर्थिक सुधारों से पूर्व औद्योगिक विकास में लाइसेंसिंग प्रणाली को अपनाया गया अर्थात् औद्योगिक इकाईयों की स्थापना से पूर्व सरकार से लाइसेंस लेना अनिवार्य होता था। इस लाइसेंसिंग प्रणाली ने सरकारी लाल फीताशाही एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावा देकर औद्योगिक इकाईयों की स्थापना की प्रक्रिया को जटिल एवं दुरूह बना दिया था।

औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखने व उसका नियमन करने के दृष्टिकोण से अक्टूबर 1951 में औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम पारित किया गया। यद्यपि इस अधिनियम का लक्ष्य निजी क्षेत्र का विकास व नियमन था तथापि इसमें अधिकतर नियमन पर जोर दिया गया। इस अधिनियम के निम्न उद्देश्य थे:-

1. भौगोलिक क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना।
2. छोटे एवं लघु उद्यमियों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान करना।
3. आर्थिक सकेन्द्रण को रोकना। इसके लिए 1969 में एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP) पारित किया गया, जिसके तहत कोई भी कम्पनी 20 करोड़ से ज्यादा की पूंजी नहीं लगा सकती थी (इसे 1980 में 100 करोड़ कर दिया गया था)।

आर्थिक सुधार से पूर्व काल में हमारी व्यापार एवं निवेश नीति बन्द प्रकार की थी। इसके तहत आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाई जा रही थी अर्थात् आयात की जाने वाली वस्तुओं का देश में ही उत्पादन करके उस वस्तु के आयात को कम करने पर जोर दिया जा रहा था। इस समय विदेशी पूंजी एवं निवेश के प्रति नकारात्मक रूख अपनाया जा रहा था। इसके लिए 1973 में विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम (FERA) पारित किया गया। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के प्रवेश पर रोक थी।

आर्थिक सुधार से पूर्व काल में कठोर राजकोषीय नीति पर बल दिया जा रहा था। जिसके तहत कर ढाँचा जटिल था तथा कर की दर भी ऊँची थी।

इस काल में कठोर श्रम कानूनों के अनुपालन पर बल दिया जा रहा था। इसके लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम वेतन अधिनियम व श्रमिक संघ अधिनियम बनाए गए। जिसके द्वारा श्रमिकों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया।

भारत में आर्थिक सुधार की पृष्ठभूमि
Background of Economic Reforms in India

भारत में जिन आर्थिक समस्याओं ने 1991 में संकट का रूप ले लिया था वे अकस्मात् पैदा नहीं हुई थी। वे काफी वर्षों से अर्थव्यवस्था में मौजूद थी। औद्योगिक विकास के लिए जिस महालनोबिस मॉडल को आधार बनाया गया उसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र घाटे में चला गया। उद्योगों की स्थापना हेतु लागू कठोर लाइसेंसिंग प्रणाली ने निजी क्षेत्र के विकास को बाधित किया। हमने अपनी नीतियों में विदेशी निवेश के प्रति नकारात्मक रूख अपनाया जिसके कारण पूंजी के अभाव से गुजरना पड़ा। परिणामस्वरूप आधारभूत संरचनाओं का पर्याप्त विकास नहीं हो सका व आर्थिक विकास बाधित हुआ। लोककल्याणकारी योजनाओं (Public Welfare Schemes) के क्रियान्वयण तथा पड़ोसी देशों से युद्ध व सुरक्षा खतरों से निपटने हेतु हथियारों की खरीद के लिए आवश्यक पूंजी का अभाव था परिणामस्वरूप इसे विदेशी ऋण द्वारा पूरा किया जा रहा था। 1980 के बाद विदेशी कर्जों में निरंतर वृद्धि हो रही थी। 1989 से 1991 तक दो चुनावों के खर्च के बोझ से भी सरकार की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी थी। 1990-91 के खाड़ी संकट ने भी भारतीय अर्थव्यवस्था को दुष्प्रभावित किया, क्योंकि खाड़ी संकट ने तेल कीमतों में बेतहाशा वृद्धि की, फलतः भारत के तेल आयात के खर्चों में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप व्यापार घाटे में वृद्धि हुई साथ ही साथ NRI के डिपोजिट में कमी आई जिससे विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति भी कमजोर हुई। इसी समय राजीव गांधी की हत्या तथा दो सरकारों के गिर जाने के कारण भारत राजनीतिक अस्थिरता के दौर से भी गुजर रहा था।

उपरोक्त परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट एजेंसियों के द्वारा भारत की क्रेडिट रेटिंग को गिरा दिया गया फलतः भारत की विदेशी सहायता बाधित हुई और NRI द्वारा अपने डिपॉजिट की तेजी से निकासी की गयी (केवल एक अप्रैल 1991 से मई 1991 के मध्य एक अरब डॉलर की निकासी की गयी) परिणामस्वरूप भारत की विदेशी मुद्रा की स्थिति कमजोर हुई तथा भारत के पास 15 दिन के आयात बिल चुकाने हेतु भी पैसे का अभाव हो गया तथा भारत की स्थिति भी अर्जेंटीना, टर्की व मैक्सिको जैसी हो गयी। हालांकि IMF से तात्कालिक वित्तीय सुविधा के रूप में प्राप्त 180 करोड़ डॉलर से थोड़ी राहत हुई एवं तस्करी से जब्त 20 टन सोना को Union Bank of Switzerland को 20 करोड़ डॉलर में तथा RBI का 47 टन सोना Bank of England तथा Bank of Japan को देकर जुलाई 1991 तक 40.5 करोड़ डॉलर बटोरा गया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था की साख को बचाया गया। इसके पश्चात् जापान से द्विपक्षीय सहायता के रूप में 20 करोड़ और जर्मनी से 6 करोड़ डॉलर प्राप्त हुआ जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशील किया गया। इसके बावजूद स्थिति हमारे नियंत्रण से बाहर होती गयी। परिणामस्वरूप भारत IMF के पास पहुँचा जिसकी परिणति आर्थिक सुधार के रूप में हुई।

आर्थिक सुधार और इसका स्वरूप
Economic Reforms and its Nature

IMF की शर्तों/निर्देशों के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में जो व्यापक परिवर्तन किए गए उन्हें आर्थिक सुधार की संज्ञा दी जाती है। जिसमें मुख्यतः दो तत्व शामिल थे- प्रथम आर्थिक स्थिरीकरण तथा द्वितीय ढाँचागत समायोजन (Structural Adjustment) समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण का संबंध मांग प्रबंधन से है जबकि ढाँचागत समायोजन अर्थव्यवस्था की पूर्ति पक्ष की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं।

स्थिरीकरण का सिद्धांत (Theory of Stabilisation)

स्थिरीकरण (Stabilisation) का तात्पर्य अल्पकालिक सुधारों के द्वारा अर्थव्यवस्था की यथास्थिति को बनाए रखना होता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन सुधारों पर बल दिया गया:-

1. मुद्रास्फीति के नियंत्रण पर बल
2. राजकोषीय समायोजन पर बल
3. भुगतान संतुलन की समर्थ स्थिति पर बल

1990-91 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 10% के उपर थी। इसे एक ओर तो मौद्रिक और राजकोषीय अनुशासन के द्वारा और दूसरी ओर उत्पादन और आपूर्ति की स्थितियों में सुधार कर नीचे ला पाना संभव था। जनवरी 1996 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 5% पर आ गयी। ऐसा जिन कारणों से हुआ वे हैं मुद्रा की मात्रा में धीमी गति से विस्तार, उत्पादन में तेजी के साथ वृद्धि, ईंधन की कीमतों में वृद्धि पर रोक और लागत वृद्धि के बावजूद प्रशासित कीमतों का सरकार द्वारा न बढ़ाना।

मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन में घाटे की समस्याओं के समाधान के लिए राजकोषीय समायोजन अति आवश्यक है। सरकार ने इसके लिए आवश्यक कदम उठाते हुए राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम अपनाया। इसके अंतर्गत राजकोषीय व्यय को नियंत्रित किया गया, सब्सिडी में कटौती तथा सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं यथा बिजली, पानी, परिवहन, सिंचाई के साधनों पर कर की दरों को बढ़ाया गया। राजकोषीय समायोजन (Fiscal Adjustment) की प्रक्रिया के तहत ही सरकार द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम (VRS) चालू किया गया।

1991 में भारत में भुगतान संतुलन नाजुक दौर से गुजर रहा था अतः इसका समायोजन आवश्यक हो गया था। इसके लिए सरकार ने विदेशों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया साथ ही जुलाई 1991 में रुपए का 18-19% अवमूल्यन किया गया। इसके बाद 1992-93

के बजट में उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्धन प्रणाली (Liberalised Exchange Rate Management System) अपनाई गयी। इस प्रणाली में दोहरी विनिमय दर प्रणाली अपनायी गयी, जिसके तहत 40 प्रतिशत विदेशी विनिमय को सरकारी कीमत पर देना अनिवार्य था तथा बाकी के 60 प्रतिशत को बाजार दर पर परिवर्तित किया जा सकता था। 1993-94 के बजट में एकीकृत (Unified) विनिमय दर प्रणाली अपनाई गयी। यह बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर प्रणाली है। इस प्रकार अब भारत में रुपये की विनिमय दर का निर्धारण मुख्यतया बाजार की शक्तियों मांग व पूर्ति के द्वारा होता है न कि सरकारी नीतियों द्वारा। परन्तु बाजार में अत्यधिक उतार चढ़ाव न हो पाए इसलिए रिजर्व बैंक बाजार में हस्तक्षेप करता रहता है।

संरचनात्मक समायोजन का सिद्धांत (Theory of Structural Adjustment)

संरचनात्मक समायोजन (Structural Adjustment) अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन सुधार की प्रक्रिया है। जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता प्रदान की जाती है। इसमें विशेष रूप से अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष को ठीक करने के लिए व्यापक ढांचागत सुधार लागू किए गए। भारत में इसके तहत निम्न सुधारों पर बल दिया गया:-

1. ***व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में सुधार (Improving trade and Capital flows)*** - इसके लिए जुलाई 1991 में रुपये का लगभग 18-19 प्रतिशत अवमूल्यन (Devaluation) किया गया। जिससे भारतीय निर्यातों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बना पाना संभव हुआ। इसके बाद विदेशी व्यापार व्यवस्था पर विभिन्न नियंत्रणों को हटा कर उदारीकरण किया गया, न केवल आयात प्रणालियों को सरल बनाया गया बल्कि अनेक वस्तुओं का आयात लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया। विश्व के विभिन्न औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मुद्राओं के साथ रुपये की विनिमय दरों में कमी की गयी। इसके साथ ही रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता पर बल दिया गया। अनेक वस्तुओं के आयात और निर्यात पर सरकारी एकाधिकार की समाप्ति की गयी तथा निर्यात के प्रोत्साहन हेतु अनेक कदम उठाए गए, सीमाशुल्क की दर धीरे-धीरे कम की गयी, आर्थिक सुधारों से पूर्व सीमाशुल्क की उच्चतम दर 300 प्रतिशत के ऊपर थी इसे घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया। सरकार ने विदेशी क्षेत्र में सुधार के अन्तर्गत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) के रूप में पूंजी प्रवाह का उदारीकरण किया। इसके लिए FERA आदि अधिनियमों में संसोधन किया गया। कई सारे क्षेत्रक में स्वत: अनुमोदन मार्ग (Automatic Approval Route) के द्वारा निवेश की अनुमति प्रदान की गयी। अधिकतर क्षेत्रक में निवेश की उच्चतम सीमा को बढ़ा दिया गया। निवेश प्रोत्साहन हेतु (Foreign Investment Promotion Board) की स्थापना की गयी तथा 2005 में एक राष्ट्रीय निवेश कोष की स्थापना की गयी।

2. ***औद्योगिक नियंत्रण को समाप्त करना (Industrial Deregulation)*** – इसके तहत एकाधिकार एवं प्रतिबन्ध व्यापार व्यवहार (MRTP) अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनियों के आकार पर पहले लगाई गयी सीमा को अब समाप्त कर दिया गया। इससे औद्योगिक इकाईयों को अनुकूलतम आकार तक विस्तार में सहायता मिली।

   औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली को हतोत्साहित किया गया क्योंकि यह व्यवस्था कालांतर में औद्योगिक विकास में एक बड़ी बाधा बन गयी थी, केवल पांच उत्पाद वर्गों को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के उत्पादन के लिए लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आरक्षित क्षेत्रों की संख्या 17 से घटाकर तीन कर दिया गया। अब लोहा व इस्पात, बिजली, वायु परिवहन, जलयान निर्माण तथा भारी मशीन उद्योग आदि निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए। औद्योगिक श्रम कानूनों में भी सुधार किए गए व उनकी कठोरता को अपेक्षाकृत कम कर दिया गया (SEZ में श्रम कानून नहीं)।

3. ***सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Public Sector Reforms)*** – सुधार से पूर्व काल में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास यह सोचकर किया जा रहा था कि यह स्वपोषित आर्थिक संवृद्धि के इंजन के रूप में काम करेगा तथा तकनीकी विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र पर्याप्त मात्रा में आंतरिक साधन जनित करने में असमर्थ रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह क्षेत्र आर्थिक संवृद्धि के लिए एक बड़ी बाधा बन गया।

   ढांचागत सुधारों के अन्तर्गत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को ज्यादा प्रबन्धकीय स्वायत्ता देने का निर्णय लिया जिससे इनके लिए कुशलतापूर्वक काम कर पाना संभव हो। सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रबंधन का व्यवसायीकरण किया गया जिससे प्रबंधन के कुशलता में वृद्धि हो सके।

   सार्वजनिक उपक्रमों के कार्य प्रणाली में सुधार हेतु उनको निजी क्षेत्र के साथ खुली प्रतिस्पर्धा का अवसर दिया गया। इसके अलावा कुछ चुने हुए उद्योगों में आंशिक रूप से इक्विटी विनिवेश की नीति को बढ़ावा दिया गया। जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यमों के शेयर वित्तीय संस्थाओं, निजी क्षेत्र तथा आम जनता को बेचे जा रहे हैं।

4. ***बैंकिंग/वित्तीय क्षेत्र में सुधार (Banking/Financial Sector Reforms)*** – बैंकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु नरसिंहम समिति गठित किया गया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर बैंकिंग सेवा का विस्तार किया गया, बैंकों की कार्यकुशलता, उत्पादकता एवं प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि की गयी, निजी बैंकों की स्थापना की अनुमति दी गयी, भारतीय बैंकों में 74% तक विदेशी निवेश की

अनुमति दी गयी साथ ही विदेशी बैंकों को भारत में प्रवेश की भी अनुमति दी गयी।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधार के उपरोक्त सभी तरीकों में तीन केंद्रीय तत्वों पर बल दिया गया है।

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप को कम करना।

(ii) भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाकलापों हेतु निजी उद्यमियों को प्रोत्साहित करना।

(iii) भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ देना।

वस्तुत: इन्हीं सुधारों को उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण (LPG) की संज्ञा दी गयी।

आर्थिक सुधारों का आर्थिक प्रभाव
Economic Impact of Economic Reforms

अगर हम आर्थिक सुधारों के अर्थिक प्रभाव की समीक्षा करें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि जहाँ इसके कई सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित हुए हैं वहीं कुछ नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित हुए हैं। यहाँ सर्वप्रथम हम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं।

आर्थिक सुधारों का तत्काल प्रभाव मुद्रास्फीति (Inflation) की भयंकर होती स्थिति पर नियंत्रण के रूप में देखा जा सकता है। 1991 में मुद्रास्फीति की दर जहाँ 14 प्रतिशत के आस-पास हो गयी थी वहीं आर्थिक सुधारों के उपरांत इसकी वार्षिक दर 5-6 प्रतिशत के आस-पास आ गयी।

सुधारों के उपरांत राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) की चिंतनीय स्थिति पर भी काबू पाया जा सका। 1991 में राजकोषीय घाटा जहाँ बढ़कर 8.5-9 प्रतिशत तक चला गया था वहीं सुधारों के पश्चात् घटकर औसतन लगभग 4 प्रतिशत तक आ गया। सरकारी व्यय पर रोक तथा FRBM जैसे अधिनियमों ने राजकोषीय घाटे को सुधारने में मदद की।

आर्थिक सुधारों के उपरांत भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार हुआ। मार्च 1991 में भारत के पास विदेशी विनिमय कोष की राशि मात्र 2.2 अरब डॉलर थी जबकि मार्च 2008 के अन्त में यह 309 अरब डॉलर तक पहुँच गयी। भुगतान संतुलन की समस्या से निपटने के लिए निर्यात संवृद्धि पर जोर दिया गया और औसतन 20-25 प्रतिशत संवृद्धि दर को बनाए रखने का प्रयास किया गया।

सुधारों के पश्चात् व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में भी सुधार आया। वैश्विक व्यापार में भारत की भागेदारी में वृद्धि की गयी और यह औसतन 1.2-1.4 प्रतिशत के करीब रहा। विदेशी निवेश के अर्न्तप्रवाह में भी तेजी से वृद्धि हुई। इसके लिए FDI की प्रक्रिया को सरल बनाया गया (Automatic Route) तथा विभिन्न नए क्षेत्रक में FDI को मंजूरी दी गयी तथा कई क्षेत्रों में इसकी उच्चतम सीमा में वृद्धि की गयी।

आर्थिक सुधारों के पश्चात् सेवा क्षेत्र को सर्वाधिक फायदा हुआ। IT एवं ITES क्षेत्र ने इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, तथा सेवा क्षेत्र के निर्यात में तेजी से वृद्धि हुई एवं सेवा क्षेत्र हमारे GDP का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग बन गया।

आर्थिक सुधारों ने औद्योगिक विकास को भी तीव्रता प्रदान की। विदेशी निवेश में वृद्धि व तकनीकी हस्तांतरण के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में तीव्रता से वृद्धि हुई फलत: वस्तु की उपलब्धता में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि पर जनसंख्या के दबाव में कमी आई साथ ही श्रम का नगरों की ओर तेजी से पलायन हुआ।

सुधारों ने कृषि क्षेत्र में भी आधुनीकरण को बल प्रदान किया। तीव्र औद्योगिक विकास ने कृषि सम्बन्धित आधुनिक मशीनों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया, साथ ही कीटनाशक, उर्वरक आदि का भी भारतीय कृषि में व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा। आधुनिक मशीनों के प्रयोग ने कृषि हेतु मानवीय श्रम पर निर्भरता को कम किया तथा वाणिज्यिक एवं द्वि-फसली खेती के प्रचलन में वृद्धि हुई। सामान्य भूमि में भी पहले से अधिक उत्पादन होने लगा तथा बंजर भूमि आदि का भी कृषि भूमि के रूप में विस्तार हुआ। कृषि क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि एवं श्रम शक्ति में सुधार के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि हुई।

उपरोक्त सभी आर्थिक प्रभावों के सम्मिलित प्रभाव से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ एवं समग्र आर्थिक विकास में वृद्धि हुई। 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर जहाँ 3.5 प्रतिशत थी वहीं इसके बाद की अवधि में यह बढ़कर औसतन 8.0% हो गयी। भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरी। भारतीय अर्थव्यवस्था में उभार के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई जिससे गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी आई (40% से घटकर 26%) तथा लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ। साक्षरता दर में वृद्धि एवं स्वास्थ्य स्तर में सुधार के फलस्वरूप मानव विकास सूचकांक भी बेहतर हुआ। मध्यम वर्ग का विकास हुआ व लोगों की जीवन शैली में भी आधुनिकता का प्रभाव परिलक्षित होने लगा।

परन्तु उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् यह समझना अतार्किक होगा कि आर्थिक सुधार के परिणामस्वरूप सब कुछ सकारात्मक ही हुआ। इसके कई **नकारात्मक** परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए जिसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

आर्थिक सुधारों के पश्चात् FDI में तो अवश्य ही वृद्धि हुई परन्तु इसका पूरा फायदा नहीं उठाया जा सका क्योंकि यह प्रत्यक्ष निवेश निर्यात उन्मुखी नहीं है।

औद्योगिक विकास तो हुआ परन्तु लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास उपेक्षित रहा है। सेवा क्षेत्र का तो आशानुरूप विकास हुआ परन्तु कृषि क्षेत्र की उपेक्षा हुई। कृषि में 4 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य था जो अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका।

सुधारों के उपरान्त विकास तो हुआ, परन्तु इस विकास ने क्षेत्रीय विषमता (Regional Disparity) को भी उत्पन्न किया। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, हरियाणा आदि राज्य विकास के लाभ लेने में आगे रहे, परन्तु बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में तो वृद्धि हुई परन्तु इसका लगभग 80% हिस्सा मात्र 5 विकसित राज्यों (गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, दिल्ली) में ही रहा।

आर्थिक सुधार का अधिकतर लाभ नगरों को प्राप्त हुआ, फलत: नगरीय एवं ग्रामीण विषमता में वृद्धि हुई और उदारीकरण के लाभ से गांव के किसान प्राय: वंचित रहे।

सुधार के उपरान्त रोजगार के अवसरों में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी और रोजगार वृद्धि दर में तथा रोजगार के कुल अवसरों में भी गिरावट आयी।

आर्थिक सुधारों ने आर्थिक विषमता में भी वृद्धि की क्योंकि इसने पूंजी संकेन्द्रण को बढ़ावा दिया। अमीर अधिक अमीर होते गए तथा गरीबों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया।

औद्योगिक विस्तार तथा श्रम का शहरों की ओर पालायन के परिणामस्वरूप अति नगरीकरण एवं नगरीय क्षेत्र का फैलाव हुआ, जिसने कई समस्याओं को जन्म दिया तथा इससे कृषि भूमि में भी कमी आयी।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

8 वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव (Impact of Globalization on Indian Society)

आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में भारत ने वैश्वीकरण के जिस रास्ते को चुना उसका भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को हम निम्न रूप से समझ सकते हैं:-

ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Rural Society)

भारत में धर्म प्रधान, कृषि अर्थव्यवस्था प्रधान, जाति प्रधान एवं नातेदारी संबंधों (Kinship Relationship) की प्रधानता वाले समाज को ग्रामीण समाज की संज्ञा दी जाती है। यहाँ प्रदत्त प्रस्थिति (Ascribed Status) को महत्व प्राप्त होता रहा है तथा प्रथा एवं परम्परा द्वारा लोगों की गतिविधियों को नियंत्रित किया जाता रहा है।

वैश्वीकरण का भारतीय ग्रामीण समाज पर प्रभावों के विश्लेषण हेतु वैश्वीकरण से पूर्व भारतीय ग्रामीण समाज की स्थिति की चर्चा आवश्यक हो जाती है। अंग्रेजी शासन काल के पूर्व भारत का ग्रामीण समाज अपने परंपरागत रूप में विद्यमान था। अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजों की अहस्तक्षेप की नीति के कारण ग्रामीण समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हुई और राज्य के द्वारा आधुनिक विकसित लोकतांत्रिक समाज के निर्माण का लक्ष्य रखा गया और इस दिशा में संविधान कानून एवं विकास योजनाओं के माध्यम से प्रयास प्रारम्भ किए गए। 1991 से पूर्व तक सरकार के प्रयासों द्वारा ग्रामीण समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई परन्तु अभी तक यह आधुनिक ग्रामीण समाज के निर्माण के लक्ष्य से काफी दूर है।

वैश्वीकरण ने भारतीय ग्रामीण समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसके सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूप में चर्चा कर सकते हैं:-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप खुली वैश्विक अर्थव्यवस्था (Open Global Economy) का विकास हुआ इससे उन्नत बीज, खाद, कृषि उपकरण आदि का आयात सुविधाजनक हो गया फलत: कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई एवं ग्रामीण समाज का आर्थिक विकास हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अन्त:प्रवाह (Under Flow) में वृद्धि हुई, जिसका उपयोग कर कृषि संबंधी आधारभूत संरचनाओं के विकास में तीव्रता आयी, जिससे कृषि का आधुनिकीकरण हुआ एवं उत्पादकता में वृद्धि हुई फलत: ग्रामीण समाज में समृद्धि आई।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप गाँवों में अवस्थित लघु एवं कुटीर उद्योगों के उत्पादों को वैश्विक बाजार उपलब्ध हुआ। फलत: इस उद्योग से सम्बन्धित लोगों की आय में वृद्धि हुई तथा इस क्रम में ग्रामीण समाज में समृद्धि आयी। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का विस्तार हुआ तथा रोजगार के नए अवसरों में वृद्धि हुई। इन अवसरों को ग्रामीण युवा वर्ग ने भी लाभ उठाया। फलत: ग्रामीण गरीबी एवं बेरोजगारी में कमी आयी।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप FDI के अन्त:प्रवाह में तेजी आयी तथा ढेर सारे Single and Multibrand Retail Stores की स्थापना की दिशा में प्रयास हुआ। सरकार द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि इन Store में एक निश्चित सीमा तक (30%) लघु-कुटीर उद्योगों से उत्पादों की खरीद अनिवार्य होगी। फलत: लघु व कुटीर उद्योगों की संवृद्धि एवं सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त हुआ जिससे ग्रामीण समाज को भी लाभ प्राप्त हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक मूल्यों (Modern Values) एवं आधुनिक शिक्षा का ग्रामीण समाज तक प्रसार हुआ। फलत: ग्रामीण समाज में तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा अंधविश्वास व सामाजिक रूढ़ियाँ कमजोर हुई। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ फलत: गाँव वालों की परम्परागत मानसिकता में बदलाव आया तथा उनका आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ फलत: धर्म के प्रभाव में कमी आयी एवं रोजगार के नवीन अवसरों का विकास हुआ। परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था के धार्मिक एवं परंपरागत पक्ष कमजोर हुए तथा जजमानी व्यवस्था भी कमजोर हुई।

वैश्वीकरण ने ग्रामीण समाज में पश्चिमी मूल्यों एवं जीवन शैली का प्रसार किया जिससे विवाह सम्बन्धी नियम एवं निषेध कमजोर हुए तथा बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियाँ भी कमजोर हुई। पश्चिमी लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार होने से परिवार की शक्ति संरचना का भी लोकतांत्रिकरण हुआ है तथा मुखिया की सत्ता विकेन्द्रित हुई है एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप बाजार अर्थव्यवस्था (Market Economy) एवं संचार क्रांति का प्रसार हुआ है। इसके प्रभाव में गाँव के स्थानीय संस्कृति का सार्वभौमिकरण (Universalization) हुआ है एवं उन्हें नवीन पहचान प्राप्त हुई है।

वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ ग्रामीण समाज पर इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित हुए हैं, इसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:–

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक कंपनियों का प्रसार हुआ है। वैश्विक कंपनियों द्वारा Hybrid बीज, नए कीटनाशकों एवं आधुनिक मशीनों का प्रसार किया गया तथा किसानों द्वारा इनका वृहद स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है। इनके वृहद् स्तर पर प्रयोग से ग्रामीण बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है तथा सर्वहाराकरण (Proletarianization) की प्रक्रिया तीव्र हुई है तथा कृषि भूमि एवं पर्यावरण पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की समस्या तीव्र हुई है। परिणामस्वरूप अम्लवर्षा, मानसून की अनिश्चितता, बाढ़ व सूखा जैसी समस्याओं में वृद्धि हुई है जिसका फसलों पर विपरीत प्रभाव पड़ा फलत: ग्रामीण अर्थव्यवस्था दुष्प्रभावित हुई है।

वैश्वीकरण ने आधुनिक कृषि का प्रसार कर कृषि लागत में वृद्धि की है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी तक ऋण सुविधाओं का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। फलत: किसानों द्वारा महाजन आदि से उच्च ब्याज दर पर ऋण लेकर निवेश किया जा रहा परन्तु मानसून की अनिश्चिता व उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग आदि से कृषि उत्पादकता अनिश्चित हुई है फलत: विपरीत परिस्थितियों के कारण किसान आत्म हत्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है तथा लघु व कुटीर उद्योग एवं कृषि हेतु सब्सिडी में कटौती हुई है जबकि लघु कुटीर उद्योग व कृषि को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है ऐसे में लघु कुटीर उद्योग व कृषि हतोत्साहित हुए है तथा ग्रामीण गरीबी में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप FDI के अन्त:प्रवाह में वृद्धि हुई है तथा उद्योग व सेवा क्षेत्र का विकास हुआ है परन्तु यह मुख्यत: शहरी क्षेत्रों तक सीमित है और इसमें मुख्यत: कुशल श्रमिकों की माँग में वृद्धि हुई है। फलत: ग्रामीण क्षेत्र आर्थिक रूप से उपेक्षित हुए हैं तथा गाँवों के अकुशल श्रमिकों का सीमांतीकरण (Marginalization) हुआ है एवं ग्रामीण गरीबी में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभाव से पश्चिमी मूल्यों का प्रसार हुआ है तथा व्यक्तिवादिता (Individualism) में वृद्धि हुई है फलत: सामूहिकता की भावना का ह्रास हुआ है तथा धन के महत्व में वृद्धि हुई है। इससे ग्रामीण समाज में संघर्ष व तनाव में वृद्धि हुई है। इससे ग्रामीण समाज की परंपरागत समरसता कमजोर हुई है।

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावादी एवं व्यक्तिवादी मूल्यों (Consumerist and Individualistic Values) का प्रसार किया है फलत: परिवार में संयुक्तता की भावना कमजोर हुई, परिवार के विघटन एवं बंटवारे में वृद्धि हुई है तथा गाँवों में भी विवाह -विच्छेद (Divorce) प्रारम्भ हो गया है। व्यक्तिवाद ने महत्वाकांक्षा में भी वृद्धि की है फलत: जातिगत प्रतिस्पर्धा तीव्र हुई है तथा जातीय तनाव व हिंसा में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने पहचान के संकट को उत्पन्न किया है परिणामस्वरूप जातीय संरचना पुन: मजबूत हुई है तथा प्रतिष्ठा हत्या जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है एवं राजनीति में जाति की भूमिका में वृद्धि हुई है तथा जातीय तनाव व संघर्ष में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण ने लोक कल्याणकारी राज्य को कमजोर किया है तथा शिक्षा का निजीकरण व बाजारीकरण को बढ़ावा दिया है फलत: ग्रामीण समाज में शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई है तथा परंपरागत शिक्षा का ह्रास हुआ है।

वैश्वीकरण ने ग्रामीण समाज में भी आधुनिक एवं पश्चिमी जीवन शैली का प्रसार किया है। परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज की परंपरागत संस्कृति संकट में पड़ गयी है तथा ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक विविधता भी नष्ट हो रही है।

जनजातीय समुदाय पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Tribal Community)

भारत में जनजातीय समुदाय भारतीय समाज का वह पिछड़ा समुदाय है जो सामान्यत: जंगलों एवं पहाड़ों में निवास करता है, जिनका एक विशेष नाम होता है, एक विशिष्ट संस्कृति होती है, जो अंतर्विवाही (Endogamous) होते हैं तथा आर्थिक रूप से मुख्यत: जंगलों पर निर्भर होते हैं।

अंग्रेजी शासन काल में और मुख्य रूप से स्वतंत्रता के बाद उनका मुख्य समाज के साथ सम्पर्क हुआ और उनकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभ्यता कई रूपों में प्रभावित हुई परन्तु इन पर सर्वाधिक प्रभाव वैश्वीकरण का पड़ा है। वैश्वीकरण ने भारतीय जनजातीय समाज को कई रूपों में प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभाव पड़ा है। इसके सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं–

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में नवीन उद्योग-धन्धों का विकास हुआ, कई नवीन परियोजनाएँ प्रारम्भ हुई जिससे रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ। इससे जनजातियों की बेरोजगारी में कमी आयी तथा जनजातियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में भी संचार क्रांति का प्रसार हुआ एवं उपभोक्तावादी संस्कृति (Culture of Consumerism) का विकास हुआ जिससे जनजातियों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई तथा उनके द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने हेतु प्रयास तीव्र हुआ जिससे उनकी स्थिति में सुधार हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दबाव में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप सरकार, NGO, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों आदि के द्वारा जनजातीय विकास हेतु कई रूपों में प्रयास तीव्र हुआ है।

इससे भारतीय जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप पहचान के संकट में वृद्धि हुई है जिसके समाधान के क्रम में नृजातीय पहचान के तत्वों के महत्व में वृद्धि हुई तथा नृजातीय तत्वों के आधार पर जनजातियों में संगठनों का विकास हुआ और जनजातीय आन्दोलनों में वृद्धि हुई फलतः राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण हुआ और जनजातियों का राजनीतिक सशक्तिकरण (Political Empowerment) हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति एवं आधुनिक संस्कृति का प्रसार हुआ। फलतः जनजातियों में भी आधुनिक जीवनशैली के प्रचलन में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जनजातियों में भी प्रसार हुआ फलतः इनके अंधविश्वासों एवं कुरितियों (Superstition and Eve-practices) में कमी आयी है। चिकित्सा के आधुनिक साधनों के प्रसार से इनके स्वास्थ्य स्तर में भी सुधार हुआ है। वैश्वीकरण ने जनजातीय समाज को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। इसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:–

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है और निजीकरण में वृद्धि हुई है। इससे जनजातीय हितों की उपेक्षा हुई है तथा उनमें सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई है एवं जनजातीय समूहों का सीमान्तीकरण हुआ है फलतः उनका नगर की ओर प्रवास में वृद्धि हुई है, विभिन्न आन्दोलनों का उद्भव हुआ है एवं इनका नक्सलीकरण हुआ।

वैश्वीकरण ने निजीकरण को बढ़ावा दिया है तथा FDI के अन्तःप्रवाह में वृद्धि की है। इससे जनजातीय क्षेत्रों में औद्योगिकरण एवं विकास परियोजनाओं का निर्माण तीव्र हुआ। फलतः जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की गति तीव्र हुई। इससे जनजातियों को विस्थापित (Displaced) होना पड़ा है। जनजातीय विस्थापन के परिणामस्वरूप उनका सांस्कृतिक क्षरण हुआ तथा उनका समाज छिन्न-भिन्न हो गया। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने अनेक पर्यावरणीय समस्याओं को भी जन्म दिया है।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में भी योग्यता एवं धन के महत्व में वृद्धि हुई फलतः समतामूलक जनजातीय समाजों में वर्ग-स्तरीकरण (Class Stratification) का विकास हुआ एवं असमानता में वृद्धि हुई।

वैश्वीकरण ने जनजातीय समाजों में भी उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार कर भौतिक सुख सुविधा की होड़ पैदा की है जिससे इनमें महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है। उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण इनके तुलनात्मक अभावबोध में वृद्धि हुई है। फलतः जनजातीय समाज में असंतोष, तनाव व कुंठा इत्यादि में वृद्धि हुई है एवं इनका अलगावादी व नक्सली गतिविधियों में संलिप्तता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने पहचान के संकट को उत्पन्न कर नृजातीय तत्वों के महत्व में वृद्धि की है फलतः विभिन्न नृजातीय आंदोलनों (Ethnic Movement) का उद्भव हुआ तथा इससे क्षेत्रवादी व अलगाववादी भावनाओं का प्रसार हुआ और सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रियाएँ बाधित हुई।

वैश्वीकरण ने जनजातीय समाजों में पश्चिमी जीवनशैली का प्रसार किया है इससे जनजातीय समाज का सांस्कृतिक विघटन हुआ है तथा उनमें सामाजिक सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्या उत्पन्न हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में पर्यटन स्थलों का विकास हुआ है और उनकी परंपराओं का बाजारीकरण हुआ है। बाजार की शक्तियों के द्वारा उनकी परंपराओं का विकृतिकरण (Distortion) हो रहा है तथा पर्यटकों के मनोरंजन के रूप में प्रयुक्त करते हुए जनजातीय संस्कृति का शोषण हुआ है। पर्यटकों के द्वारा उनकी निजता का हनन भी हो रहा है। उदाहरणस्वरूप हाल ही में अंडमान एवं निकोबार में जारवा जनजातियों के महिलाओं के अर्द्धनग्न तस्वीर लेकर पर्यटकों द्वारा इसके प्रसार की घटना को देखा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Culture)

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की समृद्ध एवं गौरवशाली परम्परा की वैश्विक स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान रही है। समय के साथ भारतीय संस्कृति के तत्वों में भी परिवर्तन आता रहा है परन्तु इसकी लोचशीलता के कारण इसकी निरन्तरता कायम है।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप भारतीय संस्कृति में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। वैश्वीकरण ने जहाँ कई क्षेत्रों में इसे सकारात्मक रूप में प्रभावित किया है वहीं कई क्षेत्रों में इसे नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं–

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति का प्रसार किया है। इससे भारतीय संस्कृति एवं लोक कलाओं का सार्वभौमिकरण हुआ है एवं इनको वैश्विक स्तर पर नवीन पहचान प्राप्त हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक स्तर पर रोजगार के नए अवसरों का विकास हुआ है तथा भारतीयों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवास में वृद्धि हुई है। भारतीय लोग अपने साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी ले गए। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का वैश्विक प्रसार हुआ है।

वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट के समाधान के क्रम में परंपरागत संस्कृति को पुनः महत्व प्राप्त हुआ तथा लोक कलाओं के महत्व एवं प्रचलन में भी वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय मध्यम वर्ग का प्रसार हुआ तथा उनमें आर्थिक संवृद्धि आयी। इससे लोक कलाओं से सम्बन्धित वस्तुओं के विक्रय में वृद्धि हुई एवं इनका प्रसार हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक बाजार में खुलापन आया। भारतीय लोक कला अपनी विशिष्टताओं के कारण वैश्विक बाजार में अपनी पैठ बनाने में सफल रही फलतः इनका वैश्विक स्तर पर प्रसार हुआ। भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए। जिसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप संचार क्रांति का विकास हुआ तथा पश्चिमी जीवन शैली का प्रसार हुआ। फलतः परंपरागत भारतीय संस्कृति संकट में पड़ गयी।

वैश्वीकरण ने बाजार अर्थव्यवस्था का विकास किया तथा उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया फलतः मॉल संस्कृति का विकास हुआ एवं इनका तीव्र अंधानुकरण (Blind Fallow) प्रारम्भ हुआ जिससे परंपरागत संस्कृति विकृत हुई एवं अलगावित मानव का विकास हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पश्चिमी संस्कृति का तीव्र प्रसार हुआ जिससे सांस्कृतिक समरूपता (Cultural Homogeneity) में वृद्धि हुई फलतः भारतीय सांस्कृतिक विविधता खतरे में पड़ गयी।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार साधनों का तीव्र विकास हुआ तथा मनोरंजन के नवीन साधनों का विकास हुआ (TV, Internet, FM)। फलतः मनोरंजन के स्थानीय एवं देशी साधनों के महत्व में कमी आयी। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप बाजार अर्थव्यवस्था के प्रभाव में वृद्धि हुई जिससे भारतीय संस्कृति का बाजारीकरण हुआ और उसका मूलस्वरूप नष्ट होने लगा।

भारतीय धर्म पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Religion)

वैश्वीकरण का भारतीय धर्म पर प्रभाव के तार्किक विवेचन हेतु इसकी पूर्व स्थिति की चर्चा आवश्यक हो जाती है। परम्परागत रूप से भारत एक बहुधार्मिक (Multi Religious) समाज रहा है। यह विश्व के कई महान धर्मों की जन्म स्थली रहा है। यहाँ लगभग सभी धार्मिक समूहों में अलौकिक शक्ति के महत्व को प्रमुखता दी जाती रही है तथा भारत की परम्परागत मान्यताओं एवं रूढ़ियों (Traditional beliefs and Mores) को धर्म द्वारा समर्थन प्राप्त था।

परन्तु अंग्रेजों के आगमन व विशेषरूप से स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में आधुनिकता के मूल्यों का प्रवेश हुआ जिससे यहाँ तार्किक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ फलतः यहाँ धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया क्रियाशील हुई परिणामस्वरूप समाज के सभी क्षेत्रों से धर्म के अतार्किक एवं अवैज्ञानिक प्रभाव के उन्मूलन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी।

लेकिन वैश्वीकरण उपरोक्त परिवर्तन की प्रक्रिया में एक नया पड़ाव साबित हुआ तथा इसने भारतीय धर्मों में बहुआयामी परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ की है। इसमें से कुछ परिवर्तनों को जहाँ सकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है, वहीं कुछ परिवर्तनों को नकारात्मक प्रभाव की कोटि में रखा जा सकता है। हम सर्वप्रथम यहाँ वैश्वीकरण का भारतीय धर्म पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों से चर्चा प्रारम्भ करना चाहेंगे।

वैश्वीकरण ने विश्व के विभिन्न समाजों के मध्य अंतःक्रिया को तीव्र किया है फलतः विभिन्न धर्मों में भी अन्तःक्रिया बढ़ी है और विभिन्न धार्मिक समूहों को एक दूसरे को जानने का मौका मिला है परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों के मध्य खाई कम हुई है और ये आपस में संगठित होकर मानव कल्याण की दिशा में कार्य कर रहे हैं। इसके उदाहरण स्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों का पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं को लेकर एकजूट होने के रूप में देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है जिससे धर्म के प्रचार-प्रसार में भी तीव्रता आई है फलतः धार्मिक मान्यताओं को जन-जन तक पहुँचना भी सरल हो गया है। आज स्थानीय धार्मिक परंपराओं को वैश्विक स्वरूप प्राप्त हो रहा और उनकों एक नई पहचान प्राप्त हो रही है। उदाहरणस्वरूप करवाचौथ व छठ पूजा जैसे त्योहारों के प्रसार को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण ने प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की है जिससे व्यक्तिवाद में वृद्धि हुई है जिससे पारिवारिक विघटन व एकाकीपन में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप व्यक्ति के तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई है जिसको दूर करने के साधन के रूप में कल्ट व सेक्ट की संख्या में वृद्धि हुई है और धर्म की विविधता बढ़ी है। वैश्वीकरण ने तर्कवाद एवं विज्ञानवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिससे धर्म का धर्मनिरपेक्षीकरण संभव हुआ है फलतः धर्म के अन्तर्गत असमानता व शोषण पर आधारित परंपरागत नियम व मान्यताएँ कमजोर हुई है और धर्म का स्वरूप समानता पर आधारित होता जा रहा है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में धर्म आधारित व्यावसायिक समूहों जैसे-पंडित, ज्योतिष, मौलवी आदि के महत्व में कमी आई थी परन्तु वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने प्रतिस्पर्धा एवं तनाव को बढ़ाकर तथा धर्म को इन तनावों को दूर करने के साधन के रूप में प्रयुक्त करके धर्म के महत्व को बढ़ाया है। फलतः इन पंड़ित, ज्योतिष व मौलवी आदि का महत्व पुनः स्थापित हुआ है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने बाजार अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण बना दिया है फलतः बाजार की शक्तियों ने धर्म को भी बाजार की वस्तु के रूप में प्रयुक्त कर धर्म का बाजारीकरण किया है, जिससे सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्र में धर्म के प्रचलन में वृद्धि हुई है। बाजार की शक्तियाँ, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं विज्ञान के विकास ने धर्म एवं धार्मिक मान्यताओं की कठोरता को कम किया है और इसको अधिकाधिक रोचक व लोकप्रिय बनाने का प्रयास

किया है फलतः लोगों द्वारा धार्मिक मान्यताओं का अनुसरण करना आसान हो गया है, जिससे धर्म के प्रचलन में पुनः वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावाद व व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया है जिससे प्रतिस्पर्धा, तनाव एवं कुंठा में वृद्धि हुई है। ऐसे में कुंठा एवं तनाव को दूर करने वाली संस्था के रूप में धर्म अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है फलतः धर्म के महत्व में पुनः वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के दौर में राज्य की लोक कल्याणकारी एवं नियंत्रणकारी भूमिका में कमी आयी है। जबकि धार्मिक पुनः प्रर्वतनवाद (Religious Revivalism) की प्रक्रिया के माध्यम से धर्म ने पुनः महत्व प्राप्त कर लिया है। आज धर्म आधारित नैतिकता के स्तर में वृद्धि हुई है साथ ही धर्म ने लोगों में जनकल्याण के कार्यों को करने की प्रेरणा भी जागृत की है फलतः सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में एवं लोक कल्याणकारी राजा के विकल्प के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने गतिशीलता (Mobility) को तीव्र कर व्यक्ति को अपने जमीन व परंपराओं से काटकर उनमें पहचान के संकट को उत्पन्न किया है और धर्म इस समस्या का एक महत्वपूर्ण समाधान बनकर उभरा है फलतः पहचान के संकट का समाधान करने के साधन के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने स्थानीय गतिशीलता को तीव्र किया है और लोगों को भिन्न-भिन्न समाजों में पहुँचा दिया है, जहाँ लोग सांस्कृतिक आधार पर दूसरों से अलग-थलग महसूस करते है, परन्तु यहाँ धर्म उनके एकाकीपन दूर करने के साधन के रूप में क्रियाशील होकर एक धार्मिक समूह के रूप में उन्हें एकीकृत किया है और उनमें अलगाव की भावना को दूर किया है। उदाहरणस्वरूप कनाडा में पंजाबी समूहों में एकीकरण के साधन के रूप में धर्म के महत्व को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने धर्म के बाजारीकरण को प्रोत्साहित किया है और बाजार की शक्तियों ने धर्म के सकारात्मक पक्षों को उजागर करके इससे लाभ कमाने का प्रयास किया है जैसे-रामदेव द्वारा आयुर्वेद का प्रचार या रविशंकर द्वारा Art of Living का प्रचार फलतः मानव की भलाई करने वाली संस्था के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है।

उपरोक्त विवेचन वैश्वीकरण के धर्म पर सकारात्मक प्रभाव को स्पष्ट करते हैं परन्तु वैश्वीकरण ने धर्म पर नकारात्मक प्रभाव भी डाले हैं जिनकी चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं-

यह तो स्पष्ट है कि वैश्वीकरण ने धर्म का बाजारीकरण कर इसे बाजार की वस्तु बना दिया है तथा बाजार की शक्तियों ने धर्म के परंपरागत स्वरूप को रूपांतरित (Transformed) कर दिया है इसके परिणामस्वरूप धर्म के मौलिक पक्ष कमजोर हुए है तथा इसके बाह्य आडंबर में वृद्धि हुई है।

आज बाजार की शक्तियाँ अपने फैलाव व लाभ हेतु धर्म को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग कर रही है जिससे धर्म का महत्व बढ़ा है एवं इसके प्रचलन में वृद्धि हुई है परन्तु इसने धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित किया है। वैश्वीकरण ने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म के महत्व को बढ़ा दिया है, जिससे लोगों को धार्मिक आधार पर संगठित होने के प्रचलन में वृद्धि हुई है फलतः धार्मिक आधार पर होने वाले तनाव, संघर्ष आदि में वृद्धि हुई है और भारतीय समाज की समरसता कम हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विचारधारा के महत्व में कमी एवं पहचान संकट को उत्पन्न कर नृजातीय पहचान (Ethnic Identity) के तत्वों के महत्व में वृद्धि कर दी है फलतः राजनीतिक दलों के द्वारा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने हेतु लोगों को लामबंद करने के आधार के रूप में धर्म के प्रयोग में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप धर्म का राजनीतिकरण, धार्मिक रूढ़िवाद व सम्प्रदायवाद आदि में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट ने धर्म को पहचान कायम करने के साधन के रूप में महत्वपूर्ण बना दिया है और पहचान कायम करने के प्रयास में विभिन्न धार्मिक समूहों द्वारा धर्म के रूढ़िगत मान्यताओं को फिर से लागू करने का प्रयास किया जा रहा है, फलतः धर्म के अन्तर्गत परम्परागत मान्यताओं का प्रचलन फिर से बढ़ा है जो समाज के आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा साबित हो रहा है।

वैश्वीकरण ने धर्म के बाजारीकरण को संभव बनाकर धार्मिक आडंबर को बढ़ावा दिया है फलतः आज धर्म के आड़ में ढेर सारे बाबाओं एवं ज्योतिषियों का उद्भव हो रहा जो धर्म के नाम पर शोषण को बढ़ावा दे रहे हैं। उदाहरणस्वरूप अभी हाल ही में चर्चे में आए आसाराम बापू के प्रकरण को देख सकते हैं।

वैश्वीकरण के इस दौर में धर्म आज बाजार की शक्तियों से चालित हो रहा है तथा बाजार की शक्तियों ने धर्म में धन एवं चढ़ावा के महत्व को बढ़ा दिया है फलतः धर्म भी उच्च वर्ग की वस्तु बनकर रह गयी है और गरीब वर्ग धार्मिक स्तर पर भी हाशिए पर चला गया है।

वैश्वीकरण ने आर्थिक विषमता एवं वंचना में वृद्धि की है तथा वंचित समूह धार्मिक आधार पर स्वयं को संगठित करके अपने आर्थिक हितों को सिद्ध करने और वंचना को दूर करने की ओर प्रेरित हुए हैं, जिससे सम्प्रदायवाद व धार्मिक आतंकवाद की घटना में वृद्धि हुई है और भारतीय समाज की समरसता कमजोर हुई है।

भारतीय विवाह एवं परिवार व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Indian Marriage and Family System)

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के प्रत्येक संस्थाओं को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। विवाह एवं परिवार रूपी परंपरागत संस्था पर भी वैश्वीकरण का मिला-जुला प्रभाव रहा है। विवाह एवं परिवार पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

वैश्वीकरण ने रोजगार के अवसर में वृद्धि की है फलतः व्यक्ति की आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है एवं परिवार में मुखिया की सत्ता कमजोर हुई है। इससे जीवन साथी के चुनाव में लड़के लड़कियों के महत्व में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ। इससे परंपरागत मान्यताएँ एवं विवाह संबंधी निषेध कमजोर हुए साथ ही व्यक्ति की आत्मनिर्भरता एवं स्वतंत्रता में भी वृद्धि हुई। फलतः अंतरजातीय, सगोत्रीय एवं प्रेम विवाह के प्रचलन में वृद्धि हुई है तथा विवाह के क्षेत्रीय विस्तार में भी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही बाल विवाह, दहेज प्रथा इत्यादि कुरीतियों में भी कमी आयी है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों एवं विज्ञान व प्रौद्योगिकी का तीव्र विकास किया जिससे विवाह में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग प्रारम्भ हुआ (shadi.com etc.)। इससे उपयुक्त वर-वधु की तलाश में आसानी हुई। वैश्वीकरण ने विवाह एवं परिवार पर उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ इसे नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। इसे हम निम्न रूप में देख सकते है-

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप लोगों की महत्वकांक्षा और व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप परिवार की संयुक्तता की भावना कमजोर हुई, पारिवारिक विघटन (Family Disintegration) तीव्र हुआ तथा एकाकी परिवार की संख्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप स्त्रियों की आत्मनिर्भरता, स्वतंत्रता व स्वच्छंदता में वृद्धि हुई है। इसके प्रतिक्रियास्वरूप पुरुषों के पितृसत्तात्मकता में भी वृद्धि हुई है। इससे स्त्री-पुरुषों के बीच टकराव में वृद्धि हुई है, फलतः विवाह विच्छेद की दर में वृद्धि हुई तथा क्रमिक एक विवाह, Serial Monogamy आदि का प्रचलन बढ़ा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता में वृद्धि के साथ-साथ पश्चिमी संस्कृति का प्रसार हुआ इससे विवाह के नवीन स्वरूपों का प्रचलन हुआ, जैसे-समलैंगिक विवाह, लिव-इन-रिलेशनशिप, Single parent family आदि तथा यौन सम्बन्धों में खुलापन आया। वैश्वीकरण ने व्यक्ति की महत्वाकांक्षा व प्रतिस्पर्धा में वृद्धि कर उसकी व्यस्तता में वृद्धि कर दी है, फलतः बच्चों के पालन पोषण व सामाजीकरण तथा वृद्धों के देखभाल में परिवार की भूमिका में कमी आयी है।

भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Indian Women)

भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभावों के तार्किक विवेचन हेतु वैश्वीकरण से पूर्व के काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति एवं उनकी समस्याओं की चर्चा महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत हमेशा से पितृसत्तात्मक (Patrialchal) सामाजिक व्यवस्था वाला समाज रहा है जहाँ महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) निम्न रही है। महिलाओं में शिक्षा का स्तर भी निम्न रहा है तथा इनमें राजनीतिक जागरूकता के अभाव के कारण इनकी राजनीतिक सहभागिता भी निम्न रही है। आर्थिक रूप से भी महिलाएँ अधिकत्तर पुरुषों पर निर्भर रही है तथा इनमें जागरूकता एवं स्वतंत्रता का भी अभाव रहा है।

अपनी निम्न सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रस्थिति के कारण महिलाएँ विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त रही है। इसमें पर्दा प्रथा, कम आयु में विवाह की समस्या, दहेज की समस्या, घरेलू हिंसा की समस्या व स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याएँ प्रमुख हैं।

वैश्वीकरण ने समाज के हर वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया है व इस क्रम में भारतीय महिलाओं पर भी इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूप में दिखाई देता है। सर्वप्रथम हम भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं एवं इस क्रम में देखते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप भारत में FDI के अंर्तप्रवाह में वृद्धि हुई जिससे विभिन्न प्रकार के उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र के विकास में तीव्रता आई। फलतः योग्यता के आधार पर महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर में वृद्धि हुई तथा महिलाओं के रोजगार भागीदारी में वृद्धि हुई। जिससे भारतीय महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप संचार साधनों का तीव्र विकास हुआ एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ। फलतः महिलाओं की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई एवं इनके द्वारा प्रस्थिति (Status) में सुधार हेतु प्रयास तीव्र हुए। परिणामस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा एवं संचार साधनों का विकास तीव्र हुआ जिसके माध्यम से आधुनिक विचारधाराओं का प्रसार हुआ। इससे तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हुआ। फलतः महिलाओं द्वारा सामाजिक रूढ़ियों पर आधारित शोषण के विरोध में तीव्रता आई एवं नवीन महिला आन्दोलनों का उद्भव हुआ। परिणामस्वरूप महिलाओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं (पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा, भ्रूण हत्या आदि) में कमी आयी और महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार आया।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संचार माध्यम के विकास के साथ-साथ वैश्विक संस्कृति मुख्यतः पश्चिमी संस्कृति का प्रसार हुआ। भारतीय महिलाओं ने पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण किया, परिणामस्वरूप इनकी जीवनशैली में बदलाव आया जैसे-पश्चिमी वेश-भूषा, प्रेम विवाह, अंतरजातीय विवाह, लिव-इन-रिलेशनशिप, वेलेंटाइन-डे, डिस्को जाना आदि।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप एक तरफ जहाँ गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा का प्रसार हुआ तो दूसरी तरफ महिलाओं में जागरूकता आयी जिससे महिलाओं का शैक्षिक उत्थान हुआ एवं इन्हें उच्च

प्रतिष्ठित रोजगार की प्राप्ति हुई जिससे इनका आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति एवं शिक्षा आदि के प्रसार के द्वारा महिलाओं की जागरूकता में वृद्धि हुई। फलतः इनकी राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने भारतीय महिलाओं को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का भारतीय महिलाओं पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की चर्चा हम निम्न रूप में कर सकते हैं-

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया तथा रोजगार के नए अवसरों में वृद्धि भी की है जिसने महिलाओं की महत्वाकांक्षा में वृद्धि की है, फलतः पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव, पारिवारिक कलह एवं तलाक की दर में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने भौतिक जीवन शैली की ओर उन्मुखता में वृद्धि की है। बेहतर भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति हेतु पति-पत्नी दोनों में नौकरी करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ है जिससे महिलाओं का परिवार, पति एवं बच्चों से भावनात्मक एवं मानसिक दूरी बढ़ी है, फलतः पारिवारिक सामंजस्य की समस्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों का विकास किया है एवं उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति का प्रसार किया है। जिसको अपनाकर महिलाओं की स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता में वृद्धि हुई है, फलतः महिलाओं की नैतिक एवं परम्परागत मानदण्डों (Traditional Standards) से विचलन में वृद्धि हुई है एवं अधिक उम्र में विवाह, प्रेम विवाह, लिव-इन-रिलेशनशिप, अविवाहित रहना, यौन संबंधों में खुलापन आदि प्रवृत्तियों का प्रसार हुआ है तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नवीन समस्याओं, जैसे-AIDS आदि का उद्भव हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भौतिकवादी संस्कृति (Materialistic Culture) का प्रसार हुआ है, परिणामस्वरूप महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है जिससे समय का अभाव हुआ है तथा महिलाएँ जीवन के मौलिक पक्षों से यहाँ तक कि अपने आप से भी अलगाव (Isolation) की समस्या का सामना कर रही है। वैश्वीकरण ने संचार साधनों का तीव्र विकास किया है, फलतः सिनेमा एवं धारावाहिकों के प्रति महिलाओं की उन्मुखता बढ़ी है। इसका महिलाओं के मनोवृत्ति पर दूषित प्रभाव पड़ा है तथा व्यक्तिवादी, स्वार्थी व कूटनीतिज्ञ, षडयंत्रकारी महिला व्यक्तित्व का विकास हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है तथा महिलाओं के लिए विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए है; परन्तु इसने महिलाओं के लिए रात्रि कार्य की संख्या में भी वृद्धि की है, फलतः कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार एवं यौन शोषण, महिलाओं की सुरक्षा की समस्या तथा उनमें अनिद्रा, तनाव आदि स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का उद्भव हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप बाजार अर्थव्यवस्था का विकास हुआ है। बाजार की शक्तियों द्वारा अपने उत्पादों को बेचने की होड़ में वृद्धि हुई है। बाजार की शक्तियों के द्वारा अपने उत्पादों को बेचने के लिए महिलाओं का उपभोग की वस्तु के रूप में प्रयोग हो रहा है फलतः महिलाओं की गरिमा एवं प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मुख्यतः नगरों में FDI के अंतःप्रवाह में वृद्धि हुई है। इससे नगरों में रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ है। रोजगार की प्राप्ति हेतु ग्रामीण एवं जनजातीय महिलाओं की नगरों की ओर प्रवास में वृद्धि हुई है। फलतः इन महिलाओं का अपने रिश्तेदारों एवं परिवार से अलगाव हुआ है एवं इनके सामाजिक संबंधों में बिखराव हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप विज्ञान एवं तकनीकी का तीव्र प्रसार हुआ है, जिससे लिंग परीक्षण के उपकरणों का विकास हुआ है एवं इनकी सुलभ उपलब्धता हुई है, परिणामस्वरूप बालिका भ्रूण हत्या की दर में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उद्योग एवं संचार साधनों का तीव्र विकास हुआ जिससे पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी नवीन समस्याओं का उद्भव हुआ है जिसका महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तथा महिलाओं में ब्रेस्ट कैंसर व गर्भाशय कैंसर जैसी बीमारियों में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने वैश्विक गतिशीलता में वृद्धि की है। विदेशों में रोजगार एवं शैक्षणिक अवसरों की उपलब्धता के कारण भारतीय महिलाओं का विदेश में प्रवास और विदेशी संस्कृति के अनुकरण में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप महिलाओं में पहचान संकट और उससे जुड़ी नवीन समस्याओं का उद्भव हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप पर्यटन उद्योग का तेजी से विकास हुआ है जिससे Sex tourism जैसी समस्याओं का उद्भव हुआ है एवं महिलाओं के शोषण में वृद्धि हुई है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Indian Education System)

संस्कृति का ज्ञान ही शिक्षा है। शिक्षा का तात्पर्य सामान्यतः मनुष्य को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी पक्षों के बारे में ज्ञान प्रदान करके उसका सर्वांगीण विकास करना है, जिससे वह समाज का प्रकार्यात्मक (Functional) सदस्य बन सके।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विश्लेषण हेतु वैश्वीकरण से पूर्व भारतीय शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को जानना आवश्यक हो जाता है। अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत में धर्म आधारित शिक्षा का प्रचलन था और शिक्षा के क्षेत्र में लिंग, जाति, वर्ग आदि के आधार पर असमानता व्याप्त थी। अंग्रेजी शासन काल में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ होता है, परन्तु इस काल में भी शैक्षिक असमानता यथावत बनी रहती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिक भारत के विकास के लक्ष्य को निर्धारित किया जाता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया जाता है।

इस क्रम में सरकार द्वारा प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षा की मांग कम थी, फलत: इनका प्रसार भी कम हुआ तथा यह मुख्यत: सरकारी क्षेत्र तक सीमित था। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरियों एवं निजी क्षेत्र की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी, परन्तु इनकी संख्या सीमित थी। अभी भी शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक आधार पर, जातीय आधार पर, जनजातीय आधार पर व ग्रामीण-नगरीय आधार पर असमानता व्याप्त थी।

वैश्वीकरण ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसके प्रभावों के बेहतर विवेचन हेतु भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न भागों पर इसके विशिष्ट प्रभावों की चर्चा आवश्यक हो जाती है। इस क्रम में हम सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभावों की चर्चा करते हैं।

वैश्वीकरण ने प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभावित किया है। यदि इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करे तो हम देखते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप FDI के अर्न्तप्रवाह में वृद्धि हुई है तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निजी शिक्षण संस्थाओं का तेजी से प्रसार हुआ है, इस प्रकार गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति के दबाव में वृद्धि हुई है तथा प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य पर बल दिया जाने लगा है। फलत: सरकार, स्वयंसेवी संगठनों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रयासों में तेजी आयी है तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करवाने का प्रयास तीव्र हो जाता है। फलत: प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार होता है एवं आम व्यक्ति को गुणवत्तापरक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति होती है।

प्राथमिक शिक्षा पर वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ इसके कुछ नकारात्मक प्रभावों की भी चर्चा आवश्यक हो जाती है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण में तेजी आती है। फलत: शिक्षा व्यवस्था महंगी हो जाती है एवं सीमांत और गरीब बच्चे गुणवत्ता परक प्राथमिक शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। इस प्रकार शैक्षिक असमानता में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण व बाजारीकरण की होड़ देखी जाती है। प्राथमिक शिक्षा में दिखावे पर ज्यादा जोर दिया जाने लगता है (वातानुकूलित क्लास रूम, वातानुकूलित परिवहन व्यवस्था) एवं शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों से दूर हो जाती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत में पश्चिमी संस्कृति (Western Culture) एवं मूल्यों का प्रसार हुआ है, जिसका प्रभाव प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है एवं प्राथमिक शिक्षा पश्चिमी मूल्यों का वाहक बन जाती है, जिससे बच्चों में परम्परागत भारतीय मूल्यों (Traditional Indian Values) के प्रति लगाव कम हो जाता है। वैश्वीकरण का प्राथमिक शिक्षा पर प्रभावों के विवेचन के पश्चात् हम उच्च शिक्षा पर इसके प्रभावों को देख सकते हैं।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यदि वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा की जाए तो यह देखा जा सकता है कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी शिक्षण संस्थानों का प्रसार तीव्र होता है। इससे प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है फलत: उच्च शिक्षा के स्तर एवं इसके विकल्पों में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक शिक्षा प्रणाली का प्रसार होता है। इससे सरकारी क्षेत्र के उच्च शिक्षण संस्थानों में वैश्विक स्तर के सुधारों का प्रयास तेज हो जाता है, यथा- विश्वविद्यालयों में प्रवेश हेतु परीक्षा का आयोजन, सेमेस्टर प्रणाली लागू किया जाना आदि। इस प्रकार उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य (Public Welfare State) कमजोर होता है एवं सरकार द्वारा महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के अनुदानों में कटौती की जाती है। फलत: सरकारी विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों द्वारा अपने खर्चे के प्रबंधन हेतु Paid course के रूप में कई व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की शुरूआत की जाती है और इस प्रकार सरकारी शिक्षण संस्थान भी प्रतिस्पर्धा में शामिल हो जाते हैं। इससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होता है।

उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण के उपरोक्त साकरात्मक प्रभावों के साथ इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगत होते हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उच्च शिक्षा का निजीकरण एवं बाजारीकरण हुआ, फलत: शिक्षा शुल्क में बढ़ोत्तरी हुई एवं उच्च शिक्षा मंहगी हो गयी। इससे निम्न वर्ग एवं निम्न मध्यम वर्ग उच्च शिक्षा से वंचित हुआ एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई।

शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण के फलस्वरूप ढेर सारे शिक्षण संस्थानों का विकास हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक लाभ अर्जित करना है। अधिकतर संस्थानों द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता पर कम ध्यान दिया जा रहा है तथा प्रचार, दिखावा आदि पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जिससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत का विश्व के अन्य देशों के साथ अंतरसंबंधों में वृद्धि हुई। इससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विश्व के अन्य शिक्षा व्यवस्थाओं के साथ सम्पर्क तेज हुआ है और USA तथा यूरोप के शिक्षण संस्थाओं का भारत में प्रवेश की दिशा में प्रयास तीव्र हुए हैं। इससे शैक्षिक असमानता में वृद्धि की संभावना भी बढ़ी है।

उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विवेचन के पश्चात् तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा जो आज शिक्षा व्यवस्था का एक

महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है, पर वैश्वीकरण के प्रभावों की विवेचना आवश्यक हो जाती है।

यदि हम तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की बात करे तो हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक स्तर पर उद्योग धन्धों का तीव्र विकास होता है, जिससे विश्व स्तरीय तकनीकी विशेषज्ञों की मांग में वृद्धि होती है एवं सरकार तथा निजी क्षेत्र के द्वारा तकनीकी संस्थानों के विकास में तेजी आती है। फलत: तकनीकी शिक्षा का व्यापक प्रसार होता है, तकनीकी शिक्षा के अवसरों में वृद्धि होती है एवं तकनीकी विशेषज्ञों की संख्या में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा है और भारत के समक्ष अपने तकनीकी शिक्षा के स्तर को विश्वस्तरीय बनाने हेतु दबाव में वृद्धि हुई है। फलत: तकनीकी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप तकनीकी संस्थानों में वैश्विक मानकों को अपनाया जाने लगा है, जैसे-प्रवेश हेतु एकल प्रवेश परीक्षा आयोजित करने का निर्णय। इससे अधिकाधिक योग्य छात्रों को मौका मिला है।

उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ वैश्वीकरण के कुछ नकारात्मक प्रभावों की चर्चा भी आवश्यक हो जाती है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप तकनीकी शिक्षा क्षेत्र का व्यावसायीकरण तेज हुआ है। जिससे तकनीकी शिक्षा महंगी हो गयी है। फलत: निम्न वर्ग तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने से वंचित हो गये है एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत को विश्वस्तरीय तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराने के दबाव में वृद्धि हुई है, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों के पास संसाधनों का अभाव है। फलत: वैश्विक प्रतिस्पर्धा में तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भारत का स्तर अन्य देशों की तुलना में कमजोर प्रदर्शित हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक तकनीकी शिक्षा का विकास हुआ है। इसके तहत आधुनिक उद्योगों एवं वस्तुओं के निर्माण को ध्यान में रखकर व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं प्रसार पर जोर दिया गया है। फलत: परंपरागत व्यवसायों (लघु एवं कुटीर उद्योगों) से सम्बन्धित शिक्षा प्रणाली का ह्रास हुआ है।

शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत महिला शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। वैश्वीकरण ने इसे भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। महिला शिक्षा पर यदि हम इसके सकारात्मक प्रभावों की विवेचना करे तो हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रयासों में तेजी आती है, जिससे सरकार द्वारा शिक्षा कार्यक्रमों में बालिका शिक्षा पर विशेष बल दिया जाने लगा और बालिका केन्द्रित कई शिक्षा कार्यक्रमों की शुरूआत की जाती है। (जैसे- कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालय, साक्षर बालिका परियोजना, लड़कियों हेतु विद्यालयों में शौचालय की व्यवस्था) फलत: महिला साक्षरता दर में वृद्धि होती है और लिंग आधारित शैक्षिक असमानता (Gender Based Educational Inequality) में कमी आती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक मूल्यों (Modern Value) का तीव्र प्रसार हुआ है और योग्यता आधारित रोजगार के नवीन अवसरों का सृजन हुआ है तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना कमजोर हुई है और महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि हुई है एवं इनकी महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है। इससे शिक्षा के प्रति महिलाओं की उन्मुखता में वृद्धि हुई है। फलत: महिला शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरणजनित नवीन अर्थव्यवस्था ने ढेर सारे रोजगारों का सृजन किया है। इससे महिला केन्द्रित रोजगारों (रिसेप्शनिष्ट, सेल्स गर्ल, कॉल सेंटर) की संख्या में वृद्धि हुई है तथा इन रोजगारों की प्राप्ति हेतु महिलाओं की उन्मुखता और इसके लिए शिक्षा की ओर उनकी सहभागिता में वृद्धि हुई है। फलत: महिलाओं के शैक्षिक स्तर में सुधार हुआ है।

उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ महिला शिक्षा को वैश्वीकरण ने नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण में तीव्रता आयी है। फलत: शिक्षा व्यवस्था महंगी हुई है, जबकि अभी भी पितृसत्तात्मक मूल्यों (Patriarchal Values) के निरंतरता के कारण लड़कियों की शिक्षा पर कम खर्च करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। परिणामस्वरूप वर्तमान महंगी शिक्षा व्यवस्था में लड़कियाँ उच्च तकनीकी, व्यावसायिक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लाभ से वंचित हो रही हैं।

वैश्वीकरण का यदि हम जनजातीय शिक्षा पर प्रभावों की चर्चा करें तो वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार साधनों का विकास हुआ है और निजी तथा व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों का प्रसार हुआ है। फलत: जनजातियों में भी शिक्षा के प्रति जागरूकता एवं प्रोत्साहन में वृद्धि हुई है, जिससे जनजातियों में शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रचलन तीव्र हुआ है, इससे जनजातियों द्वारा आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा को अपनाया जा रहा है। फलत: पारंपरिक जनजातीय शिक्षा का ह्रास हो रहा है। वैश्वीकरण का यदि ग्रामीण शिक्षा पर प्रभावों की चर्चा की जाए तो हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी निजी शिक्षण संस्थाओं का प्रसार होता है। जिससे ग्रामीणों को भी बेहतर शिक्षा प्राप्ति के अवसर उपलब्ध हुए हैं एवं ग्रामीण शिक्षा की दर में भी वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप सरकार पर वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दबाव में वृद्धि हुई है। फलत: सरकार द्वारा विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमों (सर्वशिक्षा अभियान, साक्षर भारत) के क्रियान्वयन में तेजी लायी जाती है। फलत: ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर में सुधार आता है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आंतरिक अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता आती

है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी व्यावसायिक व तकनीकि शिक्षण संस्थानों की स्थापना होने लगती है। फलतः ग्रामीण क्षेत्र में भी वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार होता है।

वैश्वीकरण ने ग्रामीण शिक्षा को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप ग्रामीण गरीबी में वृद्धि देखी जा रही है, जबकि शिक्षा के बाजारीकरण के कारण तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा महंगी हो रही है। फलतः ग्रामीण छात्र गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित हो रहे हैं एवं ग्रामीण नगरीय शैक्षिक असमानता में वृद्धि हो रही है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के महत्व में वृद्धि हुई है, जबकि ग्रामीण क्षेत्र में अभी भी देशी भाषा में शिक्षा का प्रचलन है। फलतः ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा के महत्व में ह्रास हुआ है तथा इसे अनुपयोगी समझा जा रहा है। वैश्वीकरण का भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर उपरोक्त क्षेत्रवार प्रभावों के अतिरिक्त कई अन्य प्रभावों को भी हम निम्न रूपों में चर्चा कर सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक संस्थाओं (विश्व बैंक, यूनेस्को, यूनिसेफ आदि) द्वारा शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अनुदान और विभिन्न प्रयासों में तेजी आती है। इसके प्रभावस्वरूप राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर सरकार द्वारा विभिन्न शिक्षण कार्यक्रमों का निर्माण तथा स्वयंसेवी संस्थाओं (Voluntary Organization) द्वारा भी इस दिशा में सहयोग प्राप्त होता है। फलतः शिक्षा के स्तर में सुधार और शैक्षिक असमानता में कमी आती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप सूचना एवं संचार साधनों का तीव्र प्रसार हुआ तथा शिक्षा व्यवस्था द्वारा सूचना एवं संचार के साधनों का भरपूर प्रयोग किया जा रहा है (Internet, CD, DVD, TV)। फलतः शिक्षा की सर्वसुलभता हुई और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ। परन्तु इसके नकारात्मक प्रभाव भी हुए तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों, जिनकी सूचना एवं संचार साधनों तक पहुँच कम है। शहरी बच्चों से प्रतियोगिता में पिछड़ रहे हैं।

शिक्षा का निजीकरण एवं बाजारीकरण के परिणामस्वरूप अब बाजार की आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण हो रहा है, फलतः भारतीय संस्कृति को संपोषित करने वाली मूल्यपरक शिक्षा पाठ्यक्रम से बाहर हो रही है।

भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Democracy)

लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के मूल्यों पर आधारित एक राजनीतिक व्यवस्था है, जहाँ जनता का लिए, जनता के द्वारा शासन किया जाता है। भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के प्रभावों को स्पष्ट करने हेतु वैश्वीकरण से पूर्व की भारतीय लोकतंत्र की स्थिति को जानना आवश्यक हो जाता है।

परम्परागत रूप से भारतीय राजनीति में उच्च जातियों का वर्चस्व रहा है तथा जातिवाद राजनीति में हावी रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था (Patriarchal System) के कारण महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता कम रही है। गरीबी एवं आर्थिक विषमता के कारण गरीब एवं वंचित वर्गों की भी राजनीतिक सहभागिता कम रही है। अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण राजनीतिक शक्तियों का कुछ लोगों के हित में प्रयोग होता रहा है तथा राजनीति में वंशवाद व भाई-भतीजावाद हावी रहा है। धार्मिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वास के प्रचलन के कारण धर्म के नाम पर मतों का ध्रुवीकरण हो रहा था तथा राजनीति में अपराधियों की सक्रियता बढ़ रही थी।

भारतीय लोकतंत्र के उपरोक्त चरित्र को वैश्वीकरण ने व्यापक रूप से प्रभावित किया है। भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण का मिला जुला प्रभाव रहा है।

सर्वप्रथम हम वैश्वीकरण के भारतीय लोकतंत्र पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव में आर्थिक सुधार तीव्र हुए, जिससे औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र का विकास हुआ एवं रोजगार के नए अवसर सृजित हुए। फलतः निर्धनता में कमी आयी एवं निम्न मध्यम वर्ग की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई, जिससे लोकतंत्र मजबूत हुआ। वैश्वीकरण ने संचार क्रांति का विकास किया है। आज अधिकतर लोग मोबाइल, फेसबुक, ट्विटर आदि से परिचित हो गए हैं। शिक्षा का भी तीव्र प्रसार हुआ है। फलतः राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा सीमांत समूहों की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई है, जिससे लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने जिस पहचान के संकट को उत्पन्न किया है, इससे नृजातीय तत्वों (Ethnic Element) के महत्व में वृद्धि हुई है। फलतः विभिन्न नृजातीय तत्वों के प्रतिनिधि के रूप में विभिन्न क्षेत्रीय दलों का उद्भव एवं विकास हुआ है। इस प्रक्रिया में शक्ति का विभिन्न नृजातीय समूहों एवं क्षेत्रीय समूहों में विकेंद्रीकरण हुआ है, जिससे लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं को रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए तथा लिंग समानता के मूल्यों का प्रसार तीव्र हुआ है। फलतः महिला आन्दोलनों का प्रसार हुआ है एवं महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है, जिससे महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता बढ़ी है एवं लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति एवं शिक्षा में प्रसार के द्वारा राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि की है, जिससे राजनीति में भ्रष्टाचार, जातिवाद एवं परिवारवाद की धारणा कमजोर हुई है तथा सामान्य जन की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई है। उदाहरण के रूप में दिल्ली विधानसभा चुनावों में आम आदमी पार्टी के उभार को देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मजबूत किया है।

वैश्वीकरण ने शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान का प्रसार किया है जिससे अंधविश्वास एवं रूढ़िवाद कमजोर हुआ है। फलतः धार्मिक

आधार पर मतों के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया कमजोर हुई और तार्किक आधार पर मतदान की प्रक्रिया का विकास हुआ है। परिणामस्वरूप लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों का तीव्र विकास कर राजनीतिक जागरूकता का प्रसार किया है, जिससे क्षेत्रीय समस्याओं की राष्ट्रीय स्तर पर पहचान संभव हुई है। इन क्षेत्रीय हितों के राष्ट्रीयकरण से लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति एवं शिक्षा आदि का प्रसार किया है, जिसके द्वारा तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आधुनिकता के मूल्यों का प्रसार हुआ है। इस प्रक्रिया में दबाव समूहों एवं सिविल सोसायटी का उद्भव एवं विकास भी तीव्र हुआ है, जिनके माध्यम से क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय जन चेतना (Public Consciousness) का विकास हुआ है तथा शक्ति का विकेंद्रीकरण एवं राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हो रही है। इसने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की।

वैश्वीकरण ने लोगों की गतिशीलता को तीव्र किया है, जिससे अप्रवासी भारतीयों की संख्या में वृद्धि हुई है। अब अप्रवासी भारतीयों को भी मतदान का अधिकार एवं विभिन्न सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा रही हैं, जिससे अप्रवासी भारतीयों की राजनीतिक सहभागिता संभव हुई है। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की है।

वैश्वीकरण ने व्यक्तिवाद की भावना का विकास किया है तथा स्थानीय गतिशीलता में भी वृद्धि की है। इस प्रक्रिया में संयुक्त परिवार प्रणाली कमजोर हुई है तथा एकल परिवार प्रणाली मजबूत हुई है। फलतः वोटों का विध्रुवीकरण हुआ है एवं एकल राजनीतिक दलों का प्रभुत्व कमजोर हुआ है। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों का विकास कर इंटरनेट वोटिंग प्रणाली जैसी व्यवस्था का विकास किया है। (गुजरात निकाय चुनाव का उदाहरण) इससे वोटिंग के नवीन विकल्प उपलब्ध हुए हैं, जिससे वोटिंग प्रतिशत में वृद्धि हुई है एवं इससे राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि संभव हुई है। इससे लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण का भारतीय लोकतंत्र पर उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों की चर्चा के पश्चात् अब हम इसके नकारात्मक प्रभावों की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है। इससे सीमांत व्यक्ति (Marginal Man) की स्थिति और कमजोर हुई है, फलतः इनकी राजनीतिक सहभागिता में भी कमी आयी है, जिससे लोकतंत्र कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया है। इसके तहत बड़े औद्योगिक घरानों के अनुकूल नीतियों का निर्माण किया जा रहा है एवं निम्न वर्गीय समूहों के हितों की उपेक्षा की जा रही है। फलतः आर्थिक विषमता में वृद्धि हुई है एवं निम्न आर्थिक वर्ग की स्थिति और कमजोर हुई है। इससे इस वर्ग की राजनीतिक सहभागिता में कमी आयी है व लोकतंत्र कमजोर हुआ है। वैश्वीकरण ने वैश्विक अर्थव्यवस्था का विकास किया है। इससे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवाह में तेजी आयी है। परन्तु यह अंर्तप्रवाह मुख्यतः विकसित क्षेत्रों में हुआ है जिससे क्षेत्रीय विषमता में वृद्धि हुई है एवं लोकतंत्र कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंर्तप्रवाह में तो तेजी आयी है पर यह मुख्यतः औद्योगिक व सेवा क्षेत्रों में हुआ है जो नगरों में अवस्थित है। फलतः ग्रामीण-नगरीय विषमता में वृद्धि हुई है। सरकार पर औद्योगिक घरानों एवं नगरीय अभिजनों के दबाव में वृद्धि हुई है फलतः सरकार की नीतियों में किसानों, कृषि श्रमिकों व ग्रामीण हितों की उपेक्षा की जा रही है। इस प्रक्रिया में समानता व सामाजिक न्याय का वाहक लोकतंत्र कमजोर हो रहा है।

वैश्वीकरण ने कुशल श्रमिकों के महत्व में वृद्धि की है इससे कुशल श्रमिकों की स्थिति बेहतर हुई है व अकुशल श्रमिकों की स्थिति खराब हुई है तथा उनका सीमान्तीकरण हुआ है साथ ही राज्य के कल्याणकारी योजनाओं में कटौती हो रही है जिससे इन सीमांत श्रमिकों की स्थिति और बदतर हुई है, फलतः इनका राजनीति से अलगाव और नक्सलीकरण व अपराधीकरण हो रहा है जो लोकतंत्र को कमजोर कर रहा है।

वैश्वीकरण के इस युग में राजनीतिक निर्णयों पर विकसित राष्ट्रों के प्रभाव में वृद्धि हुई है जिससे एक राष्ट्र के रूप में भारत की संप्रभुता कमजोर हुई है तथा सरकारी नीतियों में लोकहितों की उपेक्षा भी की जा रही जो लोकतंत्र को कमजोर कर रहें है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत पर वैश्विक संगठनों के दबाव में वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप राष्ट्रीय नीतियों का निर्माण वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भ हुआ है जिससे राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा हो रही है व लोकतंत्र कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट के सामाधान की प्रक्रिया में नृजातीय तत्व के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है। इस प्रक्रिया में धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद (Religious Revivalism) एवं धार्मिक रूढ़िवाद (Religious Fundamentalism) का विकास हुआ जिससे राजनीति में धर्म के आधार पर वोटों के ध्रुवीकरण का प्रयास तीव्र हुआ व धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कमजोर हुई, फलतः लोकतंत्र भी कमजोर हुआ।

वैश्वीकरण ने नगरों में रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न किए जिससे ग्रामीण इलाकों से नगरों की ओर प्रवास तीव्र हुआ। परन्तु अधिकतर प्रवासी ग्रामीण नगरों में मतदाता सूची में सूचीबद्ध होने से वंचित रह जाते है तथा अपने मूल निवास में भी अनुपस्थिति के कारण मतदान नहीं कर पाते, फलतः राजनीतिक सहभागिता कमजोर हुई है जिससे लोकतंत्र भी कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति का प्रसार किया है, शिक्षा का प्रसार किया है तथा तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास

किया है जिससे जातीय, धार्मिक व परिवार आदि के आधार पर वोटों का ध्रुवीकरण कमजोर हुआ है तथा मतों का विभाजन हुआ है परिणामस्वरूप सरकार बनाने हेतु स्पष्ट बहुमत का अभाव हुआ है तथा गठबंधन सरकारों का प्रचलन बढ़ा है जिससे सरकारों का स्थायित्व दुष्प्रभावित हुआ है एवं भ्रष्टाचार का प्रसार हुआ है। फलतः सरकार में जनता का विश्वास कमजोर हुआ है। इसने लोकतंत्र को भी कमजोर किया है।

भारतीय राष्ट्र राज्य पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Indian Nation State)

किसी राज्य के लोगों में राज्य के आधार पर विद्यमान मनोवैज्ञानिक जुड़ाव या 'हम' की भावना को 'राष्ट्र' की संज्ञा दी जाती है और राष्ट्र की भावना से युक्त राज्य को राष्ट्र राज्य कहा जाता है।

वैश्वीकरण का भारतीय राष्ट्र राज्य पर प्रभाव का विवेचन हेतु वैश्वीकरण से पूर्व राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की स्थिति की चर्चा करना आवश्यक हो जाता है।

अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत कई छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। राज्य व जनता के मध्य हम की भावना से युक्त मनोवैज्ञानिक लगाव का अभाव था फलतः भारत में राष्ट्र राज्य का विकास नहीं हो पाया था। अंग्रेजी शासन काल में भारत में संचार एवं यातायात के साधनों का विकास हुआ अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत में आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था को लागू करके भारत को एक राज्य के रूप में संगठित किया। अंग्रेजों के विरूद्ध उत्पन्न स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रक्रिया में तथा आधुनिक शिक्षा आदि से उत्पन्न राजनीतिक जागरूकता के परिणामस्वरूप भारत के लोगों में राष्ट्र की भावना का विकास हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक संघ के रूप में भारतीय राज्य की स्थापना हुई। एक संविधान, एक कानून, एक सरकार, एकल नागरिकता, लोकतांत्रिक समाजवादी समाज का लक्ष्य और इस दिशा में किए गए प्रयासों के फलस्वरूप एक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की निरंतरता कायम हुई।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय राष्ट्र राज्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। वैश्वीकरण का यह प्रभाव जहाँ कई रूपों में सकारात्मक था वहीं कई क्षेत्रों में इसने भारतीय राष्ट्र राज्य को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। सर्वप्रथम हम यहाँ वैश्वीकरण का भारतीय राष्ट्र राज्य पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में वृद्धि हुई जिसने आर्थिक विकास के साथ-साथ औद्योगिक विकास को भी तीव्र किया तथा नगरीकरण में भी वृद्धि की। इस प्रक्रिया में क्षेत्रीय विविधताओं (Regional Diversity) एवं संस्कृतियों का एकीकरण हुआ, परिणामस्वरूप राष्ट्र-राज्य मजबूत हुआ।

वैश्वीकरण ने भारतीय राष्ट्र राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया है। भारत की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति ने राष्ट्रीय सुरक्षा एवं स्थायित्व को मजबूती प्रदान की है और इस प्रकार एक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत को मजबूत किया है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप जो आर्थिक विकास हुआ है उससे कमजोर समूह के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। फलतः उनकी राजनीतिक जागरूकता एवं उनकी जनसहभागिता में वृद्धि हुई है जिससे लोकतंत्र एवं राष्ट्र राज्य मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने शिक्षा का प्रसार किया है तथा विचारों के अंतर्प्रवाह में वृद्धि की है जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार हुआ है। फलतः जनचेतना का विकास हुआ है तथा लोगों में राजनीतिक जागरूकता का विकास हुआ है एवं उनकी राजनीतिक सहभागिता बढ़ी है जिसने भारतीय राष्ट्र राज्य को मजबूती प्रदान की है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पहचान के संकट को उत्पन्न कर उसके सामाधान के रूप में नृजातीय पहचान (Ethnic Identity) के तत्वों के महत्व में वृद्धि की है। नृजातीय तत्वों के आधार पर विभिन्न प्रकार के दबाव समूहों एवं क्षेत्रीय दलों के महत्व में वृद्धि हुई है। फलतः केन्द्र की शक्ति का विकेन्द्रीकरण हुआ है एवं नीति निर्माण में विभिन्न दबाव समूहों एवं क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है, जिससे क्षेत्रीय व सामुदायिक विषमता में कमी आयी है और इस आधार पर उभरने वाले असंतोषों में भी कमी हुई है, परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद की भावना सुदृढ़ हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार व यातायात के साधनों का विकास हुआ है तथा रोजगार के नए अवसरों में वृद्धि हुई है। फलतः लोगों की गतिशीलता तीव्र हुई है तथा भारत के अन्दर विभिन्न संस्कृतियों एवं रीजि-रिवाज के अदान-प्रदान से सांस्कृतिक एकीकरण (Cultural Integration) की प्रक्रिया तीव्र हुई है जिसने लोगों में 'हम' की भावना का विकास कर राष्ट्र राज्य को मजबूती प्रदान की है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार साधनों के विकास के साथ-साथ लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार हुआ है। फलतः सिविल सोसायटी मजबूत हुआ है और विभिन्न जन आन्दोलनों का उद्भव एवं विकास हुआ है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु राष्ट्रीय एकजुटता में वृद्धि हुई है और इस प्रकार राष्ट्र राज्य मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है फलतः मानवाधिकार, शोषण एवं सामाजिक अन्याय सम्बन्धी मुद्दों का वैश्विक मंच पर उठाया जाना संभव हुआ तथा इन समस्याओं के विरूद्ध राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ है। वैश्वीकरण का भारतीय राष्ट्र राज्य पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा के पश्चात् इसके नाकरात्मक प्रभावों की चर्चा भी आवश्यक हो जाती है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि कुछ खास क्षेत्रों तक सीमित रही है (जैसे- गुजरात, महाराष्ट्र आदि)। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का कुछ सीमित क्षेत्रों में केन्द्रीकरण ने क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि की है और क्षेत्रवादी प्रवृत्ति का विकास किया है परिणामस्वरूप राष्ट्र राज्य कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि हुई जिससे जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न परियोजनाओं का निर्माण तेज हुआ। इस प्रक्रिया में इस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र दोहन प्रारम्भ हुआ एवं जनजातीय संस्कृति भी दुष्प्रभावित हुई। फलत: जनजातीय असंतोष में वृद्धि हुई परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रीय आन्दोलनों का उद्भव हुआ एवं नक्सलवाद जैसी समस्याओं का प्रसार हुआ फलत: लोकतांत्रिक विकास कमजोर हुआ एवं राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ।

वैश्वीकरण ने वैश्विक स्तर पर आर्थिक एवं राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है फलत: UNO, EU, ASEAN, SARC आदि संगठनों के महत्व में वृद्धि हुई है फलत: राष्ट्रवाद की जगह अंतर्राष्ट्रीयवाद (Internationalism) अधिक महत्वपूर्ण हो रहा है तथा इस प्रकार राष्ट्र राज्य कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण ने विश्व के राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक अन्त:निर्भरता को बढ़ाया है तथा UNO, IMF, WB, WTO आदि के महत्व में वृद्धि की है। फलत: इन वैश्विक संस्थाओं के हस्तक्षेप में भी वृद्धि हुई है तथा भारत की नीतिगत स्वतंत्रता में कमी हुई है तथा राष्ट्र की संप्रभुता कमजोर हुई है। इस प्रक्रिया में राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ है। वैश्वीकरण जनित पहचान के संकट के समाधान में नृजातीय पहचान के तत्वों के महत्व में वृद्धि हुई है फलत: क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि प्रवृत्तियों का विकास हुआ है और विभिन्न अलगाववादी आंदोलनों (नागा, मिजो आदि) का उद्भव हुआ है जिससे राष्ट्र राज्य कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार हुआ जिसने परंपरागत धार्मिक क्रिया कलापों पर नकारात्मक प्रभाव डाला है इसके प्रतिक्रिया स्वरूप धार्मिक रूढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता एवं सम्प्रदायवाद का विकास हुआ जिसने राष्ट्र राज्य को कमजोर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वैश्वीकरण के इस दौर में वैश्विक गाँव की अवधारणा का विकास हुआ है तथा पश्चिमी संस्कृति के तीव्र प्रसार से वैश्विक सांस्कृतिक विविधता कमजोर हुई है। फलत: राष्ट्रीय पहचान भी कमजोर हुई है एवं इस तरह राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति के साथ साइबर वर्ल्ड का विकास हुआ है और लोगों की वास्तविक दुनिया से असामाजिक दुनिया की ओर उन्मुखता बढ़ी है। फलत: सामूहिकता (Collectiveness) कमजोर हुई है एवं व्यक्तिवाद की भावना के प्रसार ने 'हम' की भावना पर आधारित राष्ट्र राज्य को कमजोर किया है।

वैश्वीकरण के साथ विभिन्न प्रकार के उत्पाद एवं विभिन्न प्रकार की सेवाओं के क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों का आगमन हुआ है। भारत के लोगों में भारतीय उद्योगपतियों द्वारा उत्पादित समान और भारत सरकार द्वारा दी जा रही सेवाओं के प्रति लगाव में कमी हुई है अर्थात् स्वदेशी उत्पादों के प्रति लगाव में कमी हुई है, फलत: इन आधार पर निर्मित परम्परागत राष्ट्रवाद (Traditional Nationalism) की भावना कमजोर हुई है और इस प्रकार राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ है।

भारत के श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Working Class of India)

वैश्वीकरण का भारतीय श्रमिक वर्ग पर प्रभाव जानने से पूर्व भारतीय श्रमिक वर्ग की संरचना को जानना आवश्यक हो जाता है। भारतीय श्रमिक वर्ग को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जा सकता है:-

1. संगठित / औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक
2. असंगठित / अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिक

संगठित या औपचारिक क्षेत्र से आशय ऐसे व्यावसायिक संस्था से है जहाँ सदस्यों के कार्यक्षेत्र और स्थिति को निश्चित करके उनके कार्यों, दायित्वों, अधिकारों तथा आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट कर दिया जाता है।

इसके अंतर्गत उद्योग धंधे तथा गैर औद्योगिक क्षेत्र के नियमित श्रमिक आते हैं। असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र वे हैं जिनका निर्माण बिना किसी पूर्व योजना के होता है तथा जहाँ श्रमिकों के वेतन, रोजगार की दशाएं, सुरक्षा उत्तरदायित्वों आदि का स्पष्ट प्रावधान नहीं होता है। इस क्षेत्र के श्रमिक किसी श्रम संघ से भी संबंधित नहीं होते हैं।

अनौपचारिक क्षेत्र के अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र में ठेका श्रमिक, अनियमित तथा लघु उद्योग के श्रमिक आते हैं। कृषि श्रमिक तथा दिहाड़ी मजदूर भी इसी के अन्तर्गत रखें जाते हैं। भारत में श्रमिक वर्ग की प्रकृति को जानने के पश्चात् भारत में आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण के लक्षणें से परिचित होना आवश्यक हो जाता है।

इसके लक्षणों के रूप में हम देख सकते हैं कि भारत में आर्थिक गतिविधियों के नियंत्रण कर्त्ता के रूप में राज्य के महत्व में कमी आ जाती है। निजीकरण अर्थात निजी उद्यमियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। व्यापार के क्षेत्र में आयात नीति को प्रोत्साहन दिया जाता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आर्थिक गतिविधियों में व्यापक रूप से महत्व प्राप्त होता है। एक लोक कल्याणकारी राज्य के कार्य क्षेत्र में कमी होती है तथा सार्वजनिक कंपनियों में सरकार द्वारा निजी क्षेत्र के निवेश को मौका दिया जाता है।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण का भारतीय श्रमिक वर्ग पर प्रभाव का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के हर वर्ग को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। भारत का श्रमिक वर्ग जो अपवर्जन का शिकार होकर

कई समस्याओं से जूझ रहा था उस पर वैश्वीकरण का मिला-जुला प्रभाव रहा। इस नवीन प्रक्रिया ने जहां इस वर्ग को कई रूपों में फायदा पहुँचाया वहीं कई क्षेत्रों में इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नुकसान भी उठाना पड़ा है।

सर्वप्रथम हम वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत आर्थिक क्षेत्र में निजी कंपनियों का प्रवेश तीव्रता से हुआ फलतः रोजगार के नवीन अवसरों का विकास हुआ रोजगार के नवीन अवसर सर्वाधिक सेवा क्षेत्र में उपलब्ध हुए परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई। इस प्रक्रिया ने श्रम के नवीन क्षेत्रों का प्रसार किया तथा फैशनेबल श्रम में वृद्धि हुई जिससे अभिजन श्रमिकों (Elite Worker) का विकास हुआ तथा श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक दशाओं में सुधार हुआ। रोजगार के नवीन अवसरों के विकास से गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार आया।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उत्पादन में आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रचलन में वृद्धि की तथा इस प्रौद्योगिकी के प्रयोग हेतु कुशल श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई। कुशल श्रमिक के रूप में श्रमिकों में मध्यम वर्ग का विकास हुआ। इनके बढ़े हुए वेतन से इनके जीवन स्तर में सुधार हुआ तथा इनके द्वारा उपयोगितावादी संस्कृति (Utilitarian Culture) का भी प्रसार हुआ।

श्रम के विविधीकरण (Diversification of Labor) के फलस्वरूप स्त्री श्रमिकों के अनुपात में भी वृद्धि हुई, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हुआ एवं इनकी आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने श्रम के अंतर्राष्ट्रीयकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, फलतः भारतीय श्रमिकों विशेषकर सेवा क्षेत्र के श्रमिकों ने विश्व के विकसित देशों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कर भारतीय प्रतिभा का लोहा मनवाया।

जहाँ श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए वहीं इसके कई नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए जिन्हें हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप में कमी आई। श्रम कानूनों में ढील दी गयी। रोजगार के नवीन अवसरों का विकास तो हुआ परन्तु यह विकास मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में हुआ और संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में कमी आयी। आज असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक कुल श्रमिकों का 93% है जबकि संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर 1983-94 के मध्य जो 1.2% यह 1994-2004 में घटकर 0.53% हो गयी। संगठित क्षेत्र में भी मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कमी विशेष रूप से देखी गयी। 1983-94 में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर जहाँ 1.52% थी वहीं 1994-2004 में यह घटकर 0.03% हो गयी है।

जहाँ रोजगार वृद्धि मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में हुई वहीं राज्य के हस्तक्षेप में कमी और श्रम कानूनों में ढील के कारण असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को रोजगार सुरक्षा का अभाव, न्यूनतम वेतन सामाजिक सुरक्षा का अभाव एवं कई रूपों में शोषण का सामना करना पड़ा, फलतः इनके जीवन स्तर में गिरावट संभव हुई।

संगठित क्षेत्र के श्रमिकों पर भी वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव दृष्टव्य हुए। निजी एवं विदेशी कंपनियों को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य हस्तक्षेप में कमी हुई। श्रम मानकों में ढील दी गयी तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करने हेतु श्रमिकों की कल्याणकारी सुविधाओं में कटौती की गयी, वेतन में न्यूनतम वृद्धि हुई, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के प्रोग्राम के तहत श्रमिकों के छँटनी एवं इनका ठेका श्रमिक एवं अनियमित श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ।

वैश्वीकरण ने आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रचलन में वृद्धि कर अकुशल श्रमिकों के महत्व में कमी ला दी। इनका अनियमित एवं ठेका श्रमिक के रूप में रूपांतरण हो गया। इनके रोजगार के अवसर छिन गए, फलतः इनका सीमांतीकरण हो गया एवं इनके जीवन स्तर में गिरावट देखी गयी।

श्रमिक जनसंख्या में कृषि श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि हुई 1991 में जहाँ इनकी जनसंख्या 7.3 करोड़ थी वहीं 2001 में बढ़कर 10.74 करोड़ तथा 2010 में लगभग 24 करोड़ हो गयी। कृषि क्षेत्र में विकास दर निम्न रहने के कारण मुद्रा स्फीति के सापेक्ष इनकी मजदूरी में कमी आयी। फलतः उनका बाहर की ओर पलायन हुआ जिससे अतिनगरीकरण (Overurbanization) जैसी समस्याओं में वृद्धि हुई तथा जो श्रमिक प्रवास नहीं कर पाए उनका रूझान असामाजिक गतिविधियों की ओर हुआ फलतः नक्सलीकरण जैसी प्रक्रिया में वृद्धि देखी गयी।

वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा क्षेत्र का तेजी से निजीकरण हुआ तथा यह पहले की तुलना में काफी महंगी हो गयी। फलतः निम्न श्रमिक वर्ग के बच्चे व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा से वंचित हो गए और इनका अकुशल श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ फलतः इनके जीवन स्तर में सुधार नहीं हो पाया तथा बेरोजगारी में भी वृद्धि हुई।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रसार हुआ जिसका प्रभाव श्रमिक वर्ग पर भी पड़ा। श्रमिकों के महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई एवं इनके तुलनात्मक अभावबोध में भी वृद्धि हुई। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु इन्हें तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा तथा इनके कार्य बोझ में वृद्धि हुई फलतः श्रमिक वर्ग के तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई, इनमें शराबखोरी में वृद्धि हुई तथा इनमें मानसिक रोग एवं आत्महत्या की दर में भी वृद्धि हुई।

उपरोक्त विवेचन वैश्वीकरण का भारतीय श्रमिक वर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। परन्तु भारतीय श्रमिक वर्ग की संरचना विविधीकृत है जिससे इनकी प्रकृति व कार्य दशाएँ व स्थितियाँ भी

भिन्न प्रकार की है। अत: वैश्वीकरण का श्रमिक वर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव का बेहतर विश्लेषण हेतु श्रमिकों के विभिन्न वर्ग पर पड़ने वाले इसके विशिष्ट प्रभावों की चर्चा आवश्यक हो जाती है।

भारत के कृषि श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Agricultural Workers in India)

कृषक श्रमिकों पर भी वैश्वीकरण का मिला जुला असर रहा, सबसे पहले हम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप सभी क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी व तकनीकी का उन्नयन हुआ। कृषि क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा फलत: कृषि का भी आधुनिकीकरण हुआ जिससे कृषि क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि हुई जिसका लाभ कृषि श्रमिकों को भी हुआ तथा उनकी मजदूरी दर में वृद्धि हुई जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ।

वैश्वीकरण ने बाजार अर्थव्यवस्था को प्रभावी बनाया फलत: कृषि का भी वाणिज्यीकरण हुआ एवं नकदी फसलों के उत्पादन के प्रचलन में वृद्धि हुई जिससे किसानों की आय में वृद्धि हुई जिसका लाभ कृषि श्रमिकों को भी हुआ जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ। वैश्वीकरण ने संचार क्रांति को भी संभव बनाया जिसका असर गाँवों में भी हुआ। गाँवों में आधुनिक संचार साधनों के प्रचलन में वृद्धि से कृषि मजदूरों की सोच, जीवन शैली एवं उपभोग की प्रकृति का भी आधुनिकीकरण हुआ इस प्रक्रिया में कृषि श्रमिकों में जागरूकता का विकास हुआ फलत: ग्रामीण शक्ति संरचना एवं राजनीतिक व्यवस्था में कृषि श्रमिकों की भागीदारी में वृद्धि हुई और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ।

कृषि में आधुनिकीकरण ने कृषि मजदूरों हेतु रोजगार के नवीन अवसरों को भी उत्पन्न किया। जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई। परन्तु वैश्वीकरण का कृषि श्रमिकों पर उपरोक्त प्रभाव समरूप प्रकृति के नहीं थे बल्कि यह सकारात्मक प्रभाव भी क्षेत्रीय असंतुलन से परिपूर्ण था अर्थात् यह प्रभाव पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और अन्य विकसित राज्यों में अधिक दृष्टिगोचर हुए। कृषि श्रमिकों को वैश्वीकरण ने नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया। यंत्रीकरण में वृद्धि ने कृषि श्रमिकों में बेरोजगारी की वृद्धि कर उनको प्रवास हेतु मजबूर किया तथा उन्हें शहरों में अमानवीय दशाओं का सामना करना पड़ा।

वैश्वीकरण ने जिस उपभोक्तावादी संस्कृति का गाँवों तक प्रसार किया उससे कृषि श्रमिक भी प्रभावित हुए तथा उनके उपभोग स्तर में वृद्धि हुई परन्तु मुद्रास्फीति की तुलना में उनके आय स्तर में वृद्धि नहीं हुई फलत: उनके ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई, आत्महत्या के दर में वृद्धि हुई तथा नक्सली विचारधारा के बहकावे में आकर इनका नक्सलीकरण भी हुआ।

जनजातीय क्षेत्रों में नवीन उद्योगों की स्थापना व खनन प्रोजेक्टों तथा आधारित विकास परियोजनाओं के कारण जनजातियों का विस्थापन हुआ तथा इनकी भूमि का भी हस्तांतरण हुआ परिणामस्वरूप इनका कृषि श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ। आधुनिक उद्योगों में छँटनी, लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपेक्षा, पूंजीवादी खेती का प्रचलन आदि कारणों से कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है। कृषि श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण का उपरोक्त नकारात्मक प्रभाव भी क्षेत्रीय असंतुलन लिए हुए हैं। बिहार, उड़ीसा, झारखंड, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों में यह असर ज्यादा दिखाई पड़ता है।

भारत के औद्योगिक श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Industrial Worker in India)

वैश्वीकरण ने भारतीय उद्योग धंधों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है परिणामस्वरूप औद्योगिक श्रमिक भी इससे व्यापक रूप से प्रभावित हुए हैं। औद्योगिक श्रमिकों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटकर देखा जाता है। पहले के अन्तर्गत अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र के श्रमिक आते हैं जबकि दूसरे भाग के अंतर्गत संगठित या औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक आते हैं।

अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा की जाय तो इस क्षेत्र में निजी उद्यमियों के प्रवेश तथा विकेन्द्रित उत्पादन को बढावा मिला फलत: लघु स्तरीय उद्योगों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों का उदय हुआ जिससे असंगठित/अनौपचारिक क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई। इस क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने से इस क्षेत्र में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में विस्तार ने श्रमिक वर्ग के आय स्तर को बढ़ाकर उनके जीवन स्तर में सुधार किया है।

अनौपचारिक क्षेत्र के विस्तार ने महिलाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही यह क्षेत्र उन संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को भी रोजगार के साधन उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण साबित हुआ है जो वैश्वीकरण जनित तीव्र प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप छँटनी ग्रस्त हो जाते हैं। वैश्वीकरण ने अनौपचारिक क्षेत्र को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया, वैश्वीकरण के प्रभाव में लोक कल्याणकारी राज्य के कार्यक्षेत्र में कमी हुई है तथा श्रम एवं सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों में ढिलाई हुई है परिणामस्वरूप अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों के शोषण में वृद्धि हुई है एवं इनका सीमांतीकरण हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप अनौपचिरिक क्षेत्र के श्रमिकों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है, जबकि आय स्तर में तुलनात्मक रूप से वृद्धि नहीं हो पायी फलत: इनके तुलनात्मक अभावबोध (Relative Diprivation) में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप इनमें कुंठा, शराबखोरी, मानसिक रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है। अनौपचारिक क्षेत्रक ने महिला एवं बाल श्रमिकों को रोजगार के अवसर तो उपलब्ध कराए परन्तु उन्हें न्यूनतम वेतन व सुविधाएँ दी गयी व उनके श्रम का शोषण किया जा रहा है।

वैश्वीकरण ने औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को भी सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभावित किया है। जहाँ तक इस क्षेत्र के श्रमिकों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की बात है तो वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप औपचारिक क्षेत्र का विकास हुआ है। श्रमिकों की कार्य संस्कृति (Work Culture) में सुधार हुआ है तथा उनकी कुशलता में वृद्धि हुई है। फलतः इस क्षेत्र के श्रमिकों की आय में वृद्धि हुई है एवं उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ है। औपचारिक क्षेत्र में भी महिला श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई है फलतः इनकी आत्मनिर्भरता में वृद्धि हो रही है एवं इनकी प्रस्थिति में सुधार हो रहा है।

परन्तु वैश्वीकरण ने औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा में बने रहने व उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार के दबाव के कारण तीव्र मशीनीकरण एवं श्रमिकों की छँटनी हुई फलतः श्रमिकों की बेरोजगारी में वृद्धि हुई एवं इनका ठेका श्रमिक व अनियमित श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ तथा औपचारिक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के अनुपात में कमी हुई।

वैश्वीकरण के दबाव में कल्याणकारी राज्य के महत्त्व में कमी हुई। फलतः श्रमिक संगठन कमजोर हुए तथा श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा दुष्प्रभावित हुई व उनकी स्थिति में गिरावट हुई। वैश्वीकरण के दौर में विश्व बाजार में अपने उत्पाद को प्रतिस्पर्धी बनाए रखने हेतु उत्पादकों को उत्पादन लागत में कमी लाने का दबाव है फलतः इस क्षेत्र के उत्पादकों ने श्रमिकों के कल्याणकारी सुविधाओं में कटौती करना शुरू कर दिया। जिसका दुष्प्रभाव इस क्षेत्र के श्रमिकों को झेलना पड़ रहा है तथा उनकी स्थिति में गिरावट हो रही है व उनके असंतोष में वृद्धि हो रही है।

वैश्वीकरण ने सभी क्षेत्रों के उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया है। औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक भी इससे अछूते नहीं हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार ने इस क्षेत्र के श्रमिकों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि की है, जिसकी प्राप्ति हेतु इनके कार्य बोझ में बढ़ोत्तरी हुई तथा नहीं प्राप्त होने की स्थिति में तुलनात्मक अभावबोध से ग्रस्त हो रहे हैं, फलतः इनके कुंठा व हताशा में वृद्धि हो रही है तथा इससे इनमें मानसिक रोगों तथा आत्महत्या की दर में वृद्धि हो रही है।

भारत की महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Women Workers in India)

श्रमिक वर्ग में महिला श्रमिकों की अपनी विशिष्ट स्थिति है। चूंकि महिलाओं को भिन्न सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है अतः एक श्रमिक वर्ग के रूप में महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव को स्वतंत्र रूप में जानना आवश्यक हो जाता है। अन्य क्षेत्रों की तरह महिला श्रमिकों पर भी वैश्वीकरण का मिला जुला प्रभाव दिखाई देता है। वैश्वीकरण ने महिला श्रमिक वर्ग को कई मामलों में जहाँ सकारात्मक रूप से प्रभावित कर उनकी स्थितियों में सुधार का वाहक बन गया है वहीं कई मामलों में वैश्वीकरण का महिला श्रमिकों पर नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई दे रहा है।

महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभावों की विवेचना के क्रम में हम सर्वप्रथम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं। निजी एवं विदेशी कंपनियों के आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश के परिणामस्वरूप रोजगार के नए क्षेत्रों का विकास हुआ, जिनमें स्त्रियों के लिए विशेष अवसर उपलब्ध हुआ। फलतः श्रमिक वर्ग में स्त्री श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई जिससे महिला श्रमिकों की आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है और इनकी प्रस्थिति में सुधार हुआ है। स्त्रियों के आर्थिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उनकी महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है फलतः उनमें राजनीतिक जागरूकता का विकास हो रहा जिससे उनकी राजनीतिक सहभागिता (Political Participation) में भी वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप उनका राजनीतिक सशक्तिकरण हो रहा है एवं उनकी प्रस्थिति में सुधार हो रहा है।

महिला श्रमिकों के आर्थिक आत्मनिर्भरता (Economic Independency) में वृद्धि एवं राजनीतिक सशक्तिकरण के अन्तर्गत उनकी परम्परागत प्रस्थिति में भी सुधार हो रहा है। उनके भूमिका परिवर्तन की प्रक्रिया से उनकी भूमिका संघर्ष में कमी आ रही है और परम्परागत पितृसतात्मकता कमजोर हो रही है। उपरोक्त कारकों के परिमाणमस्वरूप भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ तथा सामुदायिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में उनकी सहभागिता में वृद्धि हुई और सम्पूर्ण भारतीय समाज में इनकी प्रस्थिति का उन्नयन (Status upgrade) हुआ।

उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ वैश्वीकरण में महिला श्रमिकों को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है, जिसकी विवेचना हम निम्न रूपों में कर सकते हैं।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप जहाँ संचार साधनों का तीव्रता से विकास हुआ तथा स्त्रियों की आत्मनिर्भरता में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक, शैक्षिक व राजनीतिक जीवन में इनकी सहभागिता में वृद्धि हुई जिसके कई नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए जैसे-इनकी भूमिका संघर्ष में वृद्धि हुई अर्थात् घरेलू भूमिकाओं एवं कार्यक्षेत्र की भूमिकाओं में प्राथमिकता को लेकर संघर्ष में वृद्धि हुई। बाहरी कार्यक्षेत्र में इनकी सहभागिता में वृद्धि ने पुरुषों के साथ इनके टकराव में वृद्धि की है। उपरोक्त परिस्थितियों में महिला श्रमिकों में तलाक की दर में वृद्धि हुई है, पारिवारिक विघटन में तेजी आयी है, सिंगल पैरेंट फैमली का विकास आदि समस्याओं का उद्भव हुआ है।

वैश्वीकरण ने महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर में वृद्धि की है लेकिन यह वृद्धि मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में हुई है जैसे- सिले हुए वस्त्र, जूता, खिलौना आदि उद्योग, रिसेप्शनिष्ट, सेल्स गर्ल्स, कॉल

सेंटर, सड़क निर्माण, भवन निर्माण, ईंट भट्टा, आदि में हुआ है इन क्षेत्रों में इन्हें न्यूनतम वेतन पर श्रम करना होता है तथा रोजगार व श्रम सुरक्षा के अभाव के कारण इनका शोषण होता है।

वैश्वीकरण ने तीव्र यंत्रीकरण को बढ़ावा देकर कुशल श्रमिकों के रोजगार अवसरों में तो वृद्धि की है परन्तु लघु व कुटीर उद्योगों में तथा अकुशल श्रमिकों के रोजगार अवसरों में कमी की है फलतः अनुसूचित जाति/जनजाति व निम्न वर्ग समूह के अकुशल महिला श्रमिकों की बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप इन महिला श्रमिकों की गरीबी में वृद्धि हुई है तथा जीवन स्तर में गिरावट हुई है फलतः इनका नक्सलीकरण हुआ है एवं देह व्यापार में भी इनकी संलग्नता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप राज्य ने श्रम कानूनों में ढिलाई की तथा श्रमिकों की कल्याणकारी सुविधाओं में कटौती हुई परिणामस्वरूप संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों को छँटनी का सामना करना पड़ रहा है जिससे इनका असंगठित क्षेत्र के श्रमिक के रूप में रूपांतरण (Converson) हो रहा है तथा इनके जीवन स्तर में गिरावट आयी है।

वैश्वीकरण ने पर्यटन उद्योग, मनोरंजन उद्योग, सौन्दर्य उद्योग व सेवा क्षेत्र का विकास किया है तथा उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया है फलतः इन क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के देह, सौन्दर्य व कामुकता का दोहन होने लगा व स्त्री का एक बिकाऊ वस्तु के रूप में रूपांतरण हो रहा है।

कॉल सेंटर, सेल्स गर्ल, रिसेप्शनिष्ट आदि के रूप में कार्यरत स्त्री श्रमिकों को थकाऊ दशाएँ (अधिक समय तक कार्य, देर रात में कार्य, असुरक्षित वातावरण में कार्य) में न्यूनतम वेतन में कार्य करना पड़ता है जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति का इनमें तेजी से प्रसार हुआ है जिसने इनकी महत्वाकांक्षाओं में तीव्र वृद्धि कर दी है फलतः इनके तनाव एवं कुंठा में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप महिला मानसिक रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा कार्यस्थल पर इनके यौन शोषण में वृद्धि व देह व्यापार के क्षेत्र के रूप में इनका प्रवेश जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप वैश्विक बाजार का विकास हुआ व पर्यटन उद्योग का तेजी से विकास हो रहा है। पर्यटन उद्योग के विकास ने Sex tourism जैसी विकृतियों में भी तेजी ला दी है, जहाँ महिला देह को व्यापार की वस्तु के रूप में देखा जाता है। वैश्वीकरण के उपरोक्त सभी प्रभावों ने महिला श्रमिकों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है तथा उनमें अकेले रहने की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है, लिव-इन-रिलेशनशिप, समलैंगिकता जैसी नवीन प्रवृत्तियों का विकास और परंपरागत भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में स्त्री से सम्बन्धित नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है।

भारत में बालश्रम पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Child Labor in India)

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। जहाँ तक बाल श्रम का सवाल है, वैश्वीकरण का इस पर मिला-जुला प्रभाव रहा है। जहाँ एक तरफ इसके कई नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए है वहीं इसके कई सकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए है जिसकी चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने आधुनिक शिक्षा का प्रचार प्रसार किया है साथ ही संचार साधनों के विकास में सहायक होकर इसे जन-जन तक पहुँचाने का भी कार्य किया है, इसके माध्यम से विभिन्न संगठनों द्वारा चलाए जाने वाले बाल श्रम विरोधी अभियानों के फलस्वरूप लोगों की जागरूकता में वृद्धि हुई है फलतः बाल श्रम में कमी आयी है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मानवाधिकार के रक्षा हेतु सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के दबाव में भी वृद्धि हुई है। विकसित देशों की जनता, जो बाल श्रम जैसे मुद्दों पर अधिक जागरूक हो चुकी है, अपने देश में यह दबाव बनाने में सफल हुई है कि विकासशील देशों से व्यापार के क्रम में उन वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध लगाया जाए जिसमें बाल श्रम का उपयोग हुआ है। परिणामस्वरूप भारत जैसे विकासशील देशों में उत्पादन प्रक्रिया (Production Process) में बाल श्रम से बचने का प्रयास किया जा रहा है।

वैश्वीकरण ने सिविल सोसायटी के उद्भव को भी गति प्रदान की है तथा इनके द्वारा बच्चों के अमानवीय दशाओं (Inhuman Condition) के विरोध में सरकार पर दबाव दिया जा रहा है। फलतः सरकार द्वारा विभिन्न कानूनों एवं अधिकारों को लागू करने में तत्परता दिखाई जा रही। इसी का परिणाम है कि आज शिक्षा का अधिकार, मध्याह्न भोजन कार्यक्रम, निजी विद्यालयों में गरीब बच्चों को आरक्षण, खाद्य सुरक्षा अधिनियम लागू किए जा रहे हैं फलतः बच्चों में स्कूल जाने की प्रेरणा बढ़ी है और बाल श्रम में कमी आयी है।

वैश्वीकरण के प्रभाव में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका में भी वृद्धि हुई है और इन संगठनों द्वारा बाल श्रम उन्मूलन (Elimination of Child Labor) की दिशा में चलाए जा रहे अभियानों का भी सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर हो रहा है तथा बाल श्रम के विरोध में जागरूकता बढ़ रही है व बाल श्रम में कमी आयी है।

आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने योग्यता आधारित रोजगार के नए अवसरों को उत्पन्न किया है, जिससे उर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है इससे निम्न वर्गीय लोगों के जीवन में सुधार हुआ है जिसका असर बाल श्रम पर भी हुआ है व बाल श्रम में कमी आयी है। संचार क्रांति ने उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार से लोगों की महत्वाकांक्षाओं में तो वृद्धि की ही है वहीं

अभिभावकों की जागरूकता में भी वृद्धि हुई है, फलतः अभिभावकों में बच्चों को शिक्षा हेतु भेजने के लिए प्रेरणा मिली है फलतः बाल श्रम में कमी आई है।

परन्तु उपरोक्त विवेचन बाल श्रम पर वैश्वीकरण के पड़ने वाले प्रभावों के एक ही पहलू को दर्शाते है। वैश्वीकरण के बाल श्रम पर कई नकारात्मक प्रभाव भी देखे जा सकते हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा ने घरेलू उत्पादकों पर लागत कम करने के दबाव को बढ़ाया है उत्पादन लगात कम करने हेतु सस्ते श्रम की माँग बढ़ी है जिसकी आपूर्ति बालश्रम के द्वारा की जा रही फलतः बालश्रम में वृद्धि हुई है।

आज भारत में विदेशी निवेश को आकर्षित करने की होड़ मची है। FDI के आगमन से मजदूरी में सुधार हुआ है। यह बढ़ी हुई मजदूरी अभिभावकों को अपने बच्चों को बालश्रम के रूप में भेजने हेतु प्रेरक बल का कार्य कर रहा है तथा उत्पादकों पर सस्ते श्रम हासिल करने का दबाव है फलतः बालश्रम में वृद्धि देखी जा रही है। आर्थिक सुधार व वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप कुशल श्रम के माँग में वृद्धि हुई है फलतः अकुशल श्रमिकों के महत्व में कमी आई है परिणामस्वरूप अकुशल श्रमिकों का सीमांतीकरण हुआ है तथा उनमें गरीबी, ऋणग्रस्तता आदि समस्याओं में वृद्धि हुई है जिसके दबाव में अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को बालश्रमिक के रूप में शामिल करने की प्रक्रिया में तीव्रता आयी है।

आर्थिक सुधार व वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक विषमता में वृद्धि की है साथ ही राज्य द्वारा सब्सिडी में भी भारी कटौती की जा रही है जिससे दैनिक वस्तुओं की कीमत में वृद्धि हुई है फलतः गरीबों द्वारा अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बालश्रम की ओर उन्मुखता बढ़ी है। वैश्वीकरण ने उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार कर लोगों में भौतिक सुख साधनों की प्राप्ति की महत्वाकांक्षा में वृद्धि की है। लोग किसी भी प्रकार से अपनी भौतिक सुविधाओं को प्राप्त कर लेना चाहते हैं जिसकी परिणति बालश्रम में वृद्धि के रूप में हुई है।

वैश्वीकरण ने श्रम की विविधता को बढ़ाया है और ढेर सारे ऐसे कार्यों को उत्पन्न किया है जिसके लिए बाल श्रमिकों की मांग बढ़ी है फलतः इस मांग को पूरा करने के लिए बाल श्रम की आपूर्ति बढ़ी है और बालश्रम के आकार में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है तथा श्रम सुरक्षा मानक ढीले हुए हैं फलतः बालश्रम उन्मूलन के प्रयास कमजोर हुए हैं और बालश्रम में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ फलतः शिक्षा का निजीकरण हुआ एवं शिक्षा व्यवस्था मंहगी हुई साथ ही सरकारी शिक्षा व्यवस्था के स्तर में गिरावट हुई परिणामस्वरूप वैश्वीकरण ने व्यक्तिवादिता को बढ़ावा देकर परम्परागत पारिवारिक मूल्यों को कमजोर किया है, जिससे बच्चों पर उनके नातेदारों व परिवार का नियंत्रण एवं समर्थन दोनों में कमी आयी है। जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति ने बच्चों की जरूरतों को बढाया है (मोबाइल फोन आदि) । फलतः बालश्रम की निरंतरता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सिविल सोसायटी, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के महत्व में वृद्धि की है। इन संगठनों के दबाव में बाल श्रम उन्मूलन कानून को कठोरता से क्रियान्वयन का प्रयास हो रहा है परन्तु तद्नुरूप पुनर्वास (Rehabilitation) की समुचित व्यवस्था नहीं हो पायी है फलस्वरूप बाल श्रमिकों की स्थिति में गिरावट देखी जा रही है। वैश्वीकरण ने मंहगाई के स्तर को बढ़ाया है जबकि मुद्रा स्फीति की तुलना में मजदूरी दर में अपेक्षाकृत वृद्धि नहीं हुई है। फलतः बाल श्रमिकों के पोषण व स्वास्थ्य स्तर में गिरावट आई है व बाल श्रमिकों की स्थिति दयनीय हुई है।

भारत के किसान वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Peasant Class of India)

वैश्वीकरण के ऐजेंडों को वैश्विक स्तर पर प्रसार करने में जिन संस्थाओं ने अहम भूमिका निभाई है उसमें विश्व व्यापार संगठन (WTO) सर्वप्रमुख रहा है। विश्व व्यापार संगठन ने वैश्विक स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के मध्य व्यापार सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया है। विश्व व्यापार संगठन (WTO) के उरूग्वे दौर की वार्ता के बाद आर्थिक सुधार के तहत तीन मुद्दों को शामिल किया गया था।

सर्वप्रथम इसके तहत घरेलू बाजार में विदेशी कंपनियों के प्रवेश को आसान बनाने की बात शामिल की गयी। द्वितीय इसके तहत कृषि को दिए जा रहे घरेलू समर्थन को समाप्त करने की बात की गयी तथा तृतीय मुद्दा कृषि निर्यात सहायता को कम करने से सम्बन्धित था। उपरोक्त समझौते के तहत भारत के कृषि नीति में निम्न मुद्दों पर बल दिया गया-

राज्य द्वारा कृषि क्षेत्र को दी जा रही सब्सिडी में कटौती की गयी तथा कृषि क्षेत्र में राज्य के निवेश में कमी करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र में निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। साथ ही कृषि उत्पाद और इससे संबंधित वस्तुओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। कृषि का अधिकाधिक आधुनिकीकरण किया जाने लगा, इसमें कृषि का यंत्रीकरण, कृषि का विविधिकरण, उन्नत बीज, उर्वरक एवं कीटनाशक का प्रयोग, कृषि से संबंधित नवीन खोज एवं अनुसंधान कार्यों का संपादन, पौधे संरक्षण, मृदा संरक्षण आदि पर जोर दिया गया, किसान कॉल सेंटर, ई-चौपाल जैसी कई अन्य सुविधाओं की स्थापना की गयी।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत किए गए उपरोक्त प्रयासों ने किसान वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूपों में दिखाई दिए। यदि हम वैश्वीकरण का भारतीय किसान वर्ग पर सकारात्मक प्रभाव की चर्चा करे तो यह कहना होगा कि वैश्वीकरण ने कृषि के आधुनिकीकरण एवं कृषि क्षेत्रों में नवीन प्रयोगों को बढ़ावा दिया फलतः प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि हुई। 1991 में चावल की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 1740 किग्रा व गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 2251 किग्रा थी वहीं 2010 में चावल की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढ़कर 2208 किग्रा व गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढ़कर 2940 किग्रा हो गयी तथा कृषि भूमि के क्षेत्रफल में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

कृषि उत्पादकता में वृद्धि एवं कृषि भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि हुई और उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ। किसान वर्ग के शिक्षा का स्तर, उपभोग के स्तर, आयु प्रत्याशा, आवास के स्तर, स्वास्थ्य के स्तर आदि में भी सुधार हुआ। वैश्वीकरण ने कृषि उत्पादों के व्यापारीकरण को बढ़ावा दिया फलतः कृषि क्षेत्र में नगदी खेती, बागानी खेती, ठेके पर खेती जैसी नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ जिससे कृषि कार्य लाभकारी हो गया। इससे जेन्टलमैन किसानों के वर्ग का विकास हुआ। ग्रामीण समाज में मध्यम वर्ग के आकार में वृद्धि हुई जो परम्परागत रूप से उच्च जातियों से सम्बन्धित न होकर मुख्यतः मध्य स्तर की जातियों से सम्बन्धित है।

कृषि के आधुनिकीकरण से किसानों के जीवन स्तर में सुधार हुआ साथ ही वैश्वीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में भी संचार क्रांति का प्रसार हुआ। इन सबके प्रभाव स्वरूप गांव के किसानों में भी तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा इनके जीवन में धर्म के प्रभाव में कमी आई व परम्परागत रूढ़िगत मान्यताएँ (Traditional Orthodox Beliefs) कमजोर हुई। फलतः परम्परागत जातीय असमानताओं (Traditional Caste Inequality) में कमी आयी, महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार हुआ तथा ग्रामीण समाज का आधुनिकीकरण संभव हुआ।

कृषि क्षेत्र की तुलना में गैर कृषि क्षेत्र का विकास तीव्रता से हुआ फलतः इन क्षेत्रों में रोजगार के नवीन अवसर तेजी से विकसित हुए। इन अवसरों का लाभ लेने हेतु किसान वर्ग की देश के अन्य क्षेत्र में प्रवास की दर बढ़ी तथा इससे उनके लिए आय के नवीन स्रोतों का विकास संभव हुआ फलतः उनके जीवन स्तर में सुधार संभव हुआ। परन्तु वैश्वीकरण ने किसान वर्ग को सिर्फ सकारात्मक रूप से ही प्रभावित नहीं किया अपितु इसके कई नकारात्मक प्रभावों का भी किसान वर्ग को सामना करना पड़ रहा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों के अनुरूप राज्य द्वारा कृषि को दिए जा रहे समर्थन में कमी की जा रही है तथा कृषि के क्षेत्र में राज्य के निवेश में भी कमी की जा रही है। 1991 में कृषि क्षेत्र में राज्य का निवेश 1.92% था जो 2002 में घटकर मात्र 1.28% रह गया, जिससे कृषि से संबंधित संरचनात्मक सुविधाओं का विकास उपेक्षित हो गया। फलतः 1991 के बाद से कृषि क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर में गिरावट देखी गयी है जिससे बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में उपलब्धियाँ घटी है और भारतीय किसानों के जीवन स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है।

वैश्वीकरण के दौर में कृषि उत्पादों के निर्यात में भी कमी आयी है और कृषि उत्पादों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी असंतुलित रहा है। 1990-91 में कुल निर्यात में कृषि निर्यात का हिस्सा 19.1% था जो 2006-07 में घटकर 10.3% हो गया। परिणामस्वरूप कृषि के व्यापारीकरण का अधिकांश भाग विकसित देशों के किसानों को प्राप्त हुआ और भारतीय किसानों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा जैसे-कृषि उत्पादों को मिलने वाला मूल्य लागत खर्च की अपेक्षा कम होने के कारण कई बार किसानों द्वारा फसल को खेतों में छोड़ देना, कपास के मूल्यों को लेकर कपास उत्पादकों द्वारा की गयी आत्महत्याएँ व विभिन्न किसान आंदोलनों का उद्भव तथा उत्तर प्रदेश के गन्ना किसानों की समस्याएँ आदि के रूप में देखा जा सकता है।

कृषि का आधुनिकीकरण तो अवश्य हुआ पर यह असंतुलित रहा और इसका लाभ केवल कुछ क्षेत्रों के किसानों को प्राप्त हुआ फलस्वरूप क्षेत्रिय विषमता में वृद्धि हुई है और नक्सलीकरण जैसी समस्याएँ प्रोत्साहित हुई। वैश्वीकरण के प्रसार के प्रभाव में राज्य द्वारा कृषि सब्सिडी में कटौती की गयी। इससे उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक तथा कृषि यंत्र मंहगे हो गए जबकि सस्ते दर पर ऋण उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं का अभाव रहा फलतः ग्रामीण गरीबी व बेरोजगारी आदि में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के प्रभाव से कृषि को लाभ तो प्राप्त हुआ परन्तु यह लाभ केवल बड़े किसानों तक सीमित रहा जिससे ग्रामीण समाज में आंतरिक विषमता में वृद्धि हुई व कई राज्यों में जाति संघर्ष की समस्या को उत्पन्न किया।

वैश्वीकरण ने कृषि का आधुनिकीकरण तो किया परन्तु आधुनिक कृषि कार्य मंहगा हो गया। संस्थागत साधनों (सिंचाई साधन, ऋण व्यवस्था, कृषि बीमा, भंडारण व विपणन आदि) के अभाव तथा शिक्षा व जागरूकता का अभाव ग्रामीण गरीबी आदि के परिणामस्वरूप छोटे किसानों में ऋणग्रस्तता की समस्या बढ़ी है तथा उनका सर्वहाराकरण (Proletarianization) हुआ है जिससे उनके प्रवास में वृद्धि हुई तथा आत्महत्या की दर बढ़ी तथा नक्सलीकरण में भी तेजी हुई।

वैश्वीकरण ने विदेशी निवेश में तेजी लाकर विकास की विभिन्न योजनाओं को तीव्रता प्रदान किया है। इन विभिन्न योजनाओं के लिए कृषि भूमि का गैर कृषि कार्य हेतु अधिग्रहण किया जा रहा है परिणामस्वरूप जहाँ एक तरफ कृषि भूमि की कीमतों में तेजी से इजाफा हो रहा जिससे किसान लाभान्वित हो रहे हैं तो दूसरी तरफ विस्थापन के विरोध में नवीन किसान आन्दोलनों का उद्भव हो

रहा है तथा अशांति व हिंसा की घटनाएँ बढ़ रही (भट्टा पारसौल, नंदीग्राम आदि) है।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) के प्रावधानों के तहत बौद्धिक संपदा अधिकार तथा पेटेंट और कॉपीराइट से सम्बन्धित प्रावधान लागू किए गए परिणामस्वरूप वैश्वीकरण के लाभों से केवल विकसित देश के किसान लाभान्वित हुए और भारत के किसान इसका लाभ प्राप्त करने से वंचित रह गए है। फलतः कृषि विकास असंतुलित रहा है।

वैश्वीकरण का एक प्रभाव यह भी देखा गया की संचार क्रांति की पहुँच ग्रामीण किसान वर्ग तक भी हो गयी। परिणामस्वरूप जहाँ एक तरफ किसानों में उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ जिससे ग्रामीण किसानों की जीवनशैली पश्चिमीकृत हुई व परम्परागत संस्कृति का अपघटन हुआ तो दूसरी तरफ इसके प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय किसानों की अपनी परम्परागत सांस्कृतिक मान्यताओं, रीति-रीवाज, धर्म आदि के प्रति रूझान में पुनः वृद्धि हुई है, जिसने न केवल सकारात्मक प्रभावों को उत्पन्न किया है बल्कि कई नकारात्मक प्रभावों को भी फलित किया है। जैसे-आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बाधित हुई है, खाप पंचायत जैसे परम्परागत रूढ़ियों में वृद्धि हुई है धार्मिक रूढ़िवाद व धार्मिक पुनःप्रर्वतनवाद जैसी घटनाओं का प्रसार हुआ व धर्मनिरपेक्षीकरण कमजोर हुआ है।

भारतीय मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on the Indian Middle Class)

मध्यम वर्ग सफेदपोश, नौकरी पेशा करने वाला वर्ग है, जो वर्ग संरचना में न तो उपर होता है न ही नीचे जैसे-डॉक्टर, इंजीनियर, मैनेजर, वकील, शिक्षक व छोटे व्यापारी इत्यादि। मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विवेचन हेतु वैश्वीकरण से पूर्व की मध्यम वर्ग की स्थिति को जानना आवश्यक हो जाता है। वैश्वीकरण से पूर्व भारत में मध्यम वर्ग का आकार छोटा था यह मुख्यतः सरकारी एवं औद्योगिक क्षेत्र से सम्बन्धित था। मध्यम वर्ग में मुख्यतः ऊँची जातियाँ एवं मध्य वर्गीय जातियाँ ही सम्मिलित थी।

वैश्वीकरण ने भारतीय मध्यम वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। यहाँ सर्वप्रथम हम भारतीय मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा कर रहे हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अर्न्तप्रवाह में वृद्धि हुई है जिससे उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है। परिणामस्वरूप कुशल श्रम पर आधारित रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ है फलतः सफेदपोश नौकरी करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। इस प्रकार मध्यम वर्ग के आकार में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभाव में उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है जिससे योग्यता आधारित रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ है। इससे जनजातियों, निम्न जातियों एवं महिलाओं की उर्ध्वगामी गतिशीलता (Upward Mobility) में वृद्धि हुई है अर्थात् इन वर्ग के लोग भी मध्यम वर्ग में शामिल हुए एवं मध्यम वर्ग की संरचना की विविधता में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने उद्योग व सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास कर कुशल श्रमिकों की मांग में वृद्धि की है। परिणामस्वरूप कुशल श्रमिकों के पारिश्रमिक में भी वृद्धि हुई तथा कुशल श्रमिक के रूप में मध्यम वर्ग की आर्थिक स्थिति सुदृढ हुई है मध्यम वर्ग के आय में वृद्धि से उनकी बचत में वृद्धि हुई है तथा देश के पूंजी निर्माण कि प्रक्रिया में मध्यम वर्ग के योगदान में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप खुली अर्थव्यवस्था का विकास हुआ तथा वैश्विक अंतर्संबंधों में वृद्धि हुई। फलतः विदेशों में कुशल श्रमिकों के रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई एवं श्रम की सहज गतिशीलता के कारण मध्यम वर्ग के उत्प्रवास (Emigration) में वृद्धि हुई परिणामस्वरूप भारत के मध्यम वर्ग में एनआरआई की संख्या में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने संचार साधनों का विकास कर पाश्चात्य जीवन शैली का प्रसार किया फलतः मध्यम वर्ग के रहन-सहन एवं जीवन शैली का पाश्चात्यकरण एवं अभिजातिकरण (Aristocracy) हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव में उपभोक्तावाद का प्रसार हुआ है। उपभोक्तावादी संस्कृति को अपनाकर मध्यम वर्ग की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है। फलतः इस वर्ग में प्रतिस्पर्धा की भावना तीव्र हुई है जिससे इस वर्ग की आर्थिक समृद्धि में वृद्धि हुई है। मध्यम वर्ग की आर्थिक संवृद्धि में वृद्धि के परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग के सामाजिक महत्व में वृद्धि हुई है। फलतः मध्यम वर्ग की भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप में वृद्धि हुई है एवं मध्यम वर्ग का राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों को प्राप्त करने का दबाव तेज हुआ है फलतः सफेदपोश अधिकारी वर्ग के उत्तरदायित्व में वृद्धि हुई है एवं इनकी प्रशासनिक शक्तियों में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में मध्यम वर्ग की भूमिका सुदृढ हुई है।

वैश्वीकरण के फलस्वरूप धन के महत्व में वृद्धि हुई है। सामाजिक व्यवस्था में जाति स्तरीकरण की जगह वर्ग स्तरीकरण का प्रादुर्भाव हुआ है तथा आर्थिक आधार पर निम्न जातियों का मध्यम वर्ग में सम्मिलन हुआ है। इससे निम्न जातियों के अधिकारों एवं सामाजिक महत्व में वृद्धि हुई है। फलतः इनमें जातिगत मान्यताएँ कमजोर हुई है। इस क्रम में मध्यम वर्ग की जातिगत संरचना कमजोर हुई है।

वैश्वीकरण ने भारतीय मध्यम वर्ग पर केवल सकारात्मक प्रभाव ही नहीं डाले अपितु इसने भारतीय मध्यम वर्ग को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। इसे हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति एवं पश्चिमी जीवन शैली का तीव्र प्रसार किया है। भारतीय मध्यम वर्ग द्वारा इस पश्चिमी जीवन शैली को अपनाने के कारण इनका परंपरागत भारतीय संस्कृति से अलगाव (Isolation) एवं विचलन (Deviation) में वृद्धि हुई है। आज मध्यम वर्ग उपभोक्तावादी संस्कृति को अपनाकर तीव्र व्यक्तिवादिता की ओर उन्मुख हुआ है। फलतः मध्यम वर्ग में सामूहिकता का ह्रास हुआ है तथा अपने रिश्तेदारों, परिवार, मित्र आदि से अलगाव हुआ

है तथा फेसबुक, ट्विटर आदि की काल्पनिक साइबर संसार की ओर उन्मुखता बढ़ी है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का अंतर्प्रवाह तीव्र हुआ। परन्तु मुख्यत: यह शहरों में सीमित रहा। फलत: शहरों में रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ एवं मध्यम वर्ग की रोजगार की तलाश एवं शहरी चमक दमक के आकर्षण में शहरों की ओर पलायन हुआ। परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग का परिवार एवं ग्रामीण परिवेश से अलगाव एवं उनमें एकल परिवार व्यवस्था का विकास हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति, आर्थिक विकास एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ। फलत: मध्यम वर्ग की प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई और भाग दौड़ वाली जीवन प्रणाली का विकास हुआ। परिणामस्वरूप इनके जीवन में तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई तथा अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक बीमारियों के प्रकोप में वृद्धि हुई इससे मध्यम वर्ग की शारीरिक क्षमता का ह्रास हुआ एवं जीवन शैली आधारित बीमारियों (ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, हृदय रोग आदि) के प्रचलन में वृद्धि हुई।

मध्यम वर्ग में उपभोक्तावादी पश्चिमी मूल्यों के प्रसार के परिणामस्वरूप इनका परंपरागत मान्यताओं एवं मूल्यों से अलगाव हुआ तथा मध्यम वर्ग के नैतिक स्तर में गिरावट हुई एवं इनमें नैतिक दुर्बलता का विकास हुआ।

वैश्वीकरण ने भौतिक संस्कृति एवं उपभोक्तावादी मूल्यों का प्रसार किया। मध्यम वर्ग इन उपभोक्तावादी मूल्यों को आत्मसात कर भौतिक सुख सुविधाओं के अंधी दौड़ में शामिल हो गया। फलत: इनके जीवन में तीव्र प्रतिस्पर्धा, अत्यधिक कार्य बोझ एवं समय का अभाव हो गया। परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग जीवन के मूलभूत पक्षों से अलगावित हो रहा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पश्चिमी संस्कृति का प्रसार हुआ है एवं मध्यम वर्ग के समक्ष पहचान का संकट उत्पन्न हुआ है। जिसके समाधान हेतु मध्यम वर्ग की नृजातीय पहचान के तत्वों की ओर उन्मुखता बढ़ी है। फलत: आधुनिक जीवन शैली अपनाने वाला मध्यम वर्ग आज धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद एवं धार्मिक रूढ़िवाद का वाहक बनकर धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया में बाधक बन गया है।

वैश्वीकरण ने जिस पश्चिमी मूल्यों का प्रसार किया है उसे मध्यम वर्ग ने आगे बढ़कर अपनाया है तथा आर्थिक संवृद्धि को ही अपना प्राथमिक लक्ष्य बना लिया है जिससे मध्यम वर्ग का नैतिक स्तर का ह्रास हुआ है फलत: मध्यम वर्ग में सफेदपोश अपराध एवं भ्रष्टाचार आदि का प्रचलन बढ़ा है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप जिस उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ है उसे अपनाकर मध्यम वर्ग में दिखावा हेतु उपभोग का विकास हुआ है तथा मध्यम वर्ग द्वारा राष्ट्रीय आय का अनुत्पादक कार्यों में व्यय किया जा रहा है, जिससे राष्ट्रीय विकास में बाधा हो रही है।

भारतीय वृद्धों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Elders)

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के हर वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया। भारतीय वृद्धों पर भी वैश्वीकरण के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूपों में दृष्टिगत हुआ है। वैश्वीकरण का भारतीय वृद्धों पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा हम निम्न रूप में कर सकते है-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय समाज में आर्थिक समृद्धि आयी है तथा सभी व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार आया है जिसका प्रभाव वृद्धों पर भी पड़ा है एवं उनके जीवन स्तर में भी सुधार देखा जा सकता है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप विज्ञान एवं तकनीक का प्रसार हुआ है तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का प्रसार हुआ है फलत: वृद्धों को स्वास्थ्य सम्बन्धी नवीन सुविधाएँ उपलब्ध हो पायी है तथा उनके स्वास्थ्य स्तर में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप स्वयं सेवी संस्थाओं का प्रसार हुआ है। कई स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा वृद्धों के कल्याण हेतु बेहतर प्रयास किए गए है। फलत: वृद्धों के समस्याओं के प्रति लोगों की जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा इस प्रकार वृद्धों का कल्याण संभव हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मनोरंजन के नए साधनों का विकास हुआ है, जैसे-टीवी, इंटरनेट आदि। वृद्ध जो परिवार में अकेलेपन की जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं, उनके लिए मनोरंजन के ये नवीन साधन अकेलेपन से बचने में कारगर साबित हो रहे हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप धर्म का बाजारीकरण हुआ है इससे विभिन्न धार्मिक चैनलों का प्रसार हुआ है। परिणामस्वरूप वृद्धों को घर बैठे धार्मिक ज्ञान की प्राप्ति संभव हो सकी है।

वैश्वीकरण ने भारतीय वृद्धों पर जहाँ उपरोक्त सकारात्मक प्रभाव पैदा किए वहीं इसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी दृष्टिगत हुए हैं जिसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उपभोक्तावादी मूल्यों का प्रसार हुआ है। लोगों की महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है फलत: लोगों के पास समय का अभाव हो गया है एवं अकेलेपन की जिन्दगी जीने को मजबूर हो गए हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप श्रम की गतिशीलता में वृद्धि हुई है तथा रोजगार के तलाश में लोगों का नए स्थानों पर पालायन हुआ है। परिणाम स्वरूप परिवार में वृद्ध अकेला व उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर हुए हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप संचार क्रांति का प्रसार हुआ है तथा आधुनिक विचारधारा का प्रसार हुआ है। जिसका प्रचलन मुख्यत: युवा वर्ग में हुआ है जबकि वृद्ध अभी भी परंपरागत विचारधारा के पोषक हैं। फलत: पीढ़ी अंतराल की समस्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पश्चिमी जीवन शैली का प्रसार हुआ है। वृद्ध लोग अभी भी परंपरागत जीवन शैली के पोषक हैं तथा इन्हें इस नवीन जीवन शैली के साथ सामंजस्य की समस्या पैदा हुई

है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई है एवं संयुक्त परिवार व्यवस्था कमजोर हुई है तथा एकल परिवार व्यवस्था का प्रचलन तीव्र हुआ है ऐसे में वृद्ध उपेक्षित एवं अलगावित हुए है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है। फलतः वृद्धों के कल्याण सम्बन्धी योजनाओं के प्रति राज्य की भूमिका कम हुई है एवं वृद्धों की स्थिति में गिरावट हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय युवा वर्ग में व्यक्तिवादी पश्चिमी जीवनशैली को अपनाने की होड़ मची है तथा वृद्धों के प्रति उनका आदर-भाव कम होता जा रहा है। परिणामस्वरूप वृद्धों को युवाओं के सामने परिवार की शांति हेतु घुटने टेकने पड़ रहे हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उपयोगितावादी मूल्यों का प्रसार हुआ है फलतः उनको ही महत्व प्राप्त हो रहा जिनकी उपयोगिता (Utility) है। चूंकि वृद्धों की उपयोगिता खत्म मान ली जाती है जिससे उनको महत्वहीन समझा जाता है एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मनोरंजन के नए साधनों का विकास हुआ है जैसे-टीवी, विडियो गेम, इंटरनेट आदि पहले बच्चे जहाँ मनोरंजन के लिए दादा-दादी एवं नाना-नानी से कहानियाँ सुनते थे एवं उनसे गहरा लगाव का अनुभव करते थे। परन्तु आज के दौर में बच्चे मनोरंजन के नवीन साधनों के प्रति आकर्षित हुए है एवं वृद्धों के प्रति उनका लगाव खत्म हुआ है।

वैश्वीकरण : संभावित प्रश्न

1. भारतीय समाज पर वैश्वीकरण के अंतर्विरोधी प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
2. आज वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय समाज संक्रमणकालीन अवस्था से गुजर रहा है। वर्णित कीजिए।
3. भारतीय समाज एवं संस्कृति पर संचार साधनों के अंतर्विरोधी प्रभावों की चर्चा कीजिए।
4. हाल के वर्षों में विवाह में उत्पन्न नवीन प्रवृत्तियों की वैश्वीकरण के साथ सहसम्बद्धता को स्पष्ट कीजिए।
5. हमारी परम्परागत सामाजिक संस्थाएँ वैश्वीकरण के इस दौर में क्रमिक क्षरण की प्रक्रिया से ग्रसित है, स्पष्ट कीजिए।
6. नागरिक समाज एवं नवीन जन-आन्दोलनों के उद्भव में वैश्वीकरण की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
7. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पहचान के संकट को उत्पन्न किया है और भारतीय समाज को परम्परा की ओर उन्मूख किया है। स्पष्ट कीजिए।
8. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय महिलाओं को एक तरफ सशक्त किया है तो दूसरी तरफ उन्हें उपभोग की वस्तु के रूप में चित्रित करके उनका दैहिक शोषण को बढाया है। चर्चा कीजिए।
9. वैश्वीकरण की समकालीन प्रक्रिया ने धर्म को एक साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों किया है। स्पष्ट कीजिए।
10. वैश्वीकरण ने भारतीय लोकतंत्र को एक साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों किया है। चर्चा कीजिए।
11. सोशल नेटवर्किंग साइट्स क्या है? इसके भारतीय जन मानस पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कीजिए।
12. वैश्वीकरण ने एक आधुनिक परन्तु अलगावित मानव का निर्माण किया है। स्पष्ट कीजिए।
13. परम्परागत भारतीय लोक-कला एवं लोक-संस्कृति को वैश्वीकरण से अनुरक्षण हेतु उपायों की चर्चा कीजिए।
14. वैश्वीकरणजनित जीवनशैली ने हमारी कार्यशील जनसंख्या की मानसिकता में क्या परिवर्तन उत्पन्न किया है? उत्तर दीजिए।
15. जनजातीय समाज एवं संस्कृति पर वैश्वीकरण के अंतर्विरोधी प्रभावों को समझाइए।
16. धार्मिक पुनःप्रवर्त्तनवाद क्या है? इसकी सामाजिक उपयोगिता पर चर्चा कीजिए।
17. धार्मिक कट्टरतावाद क्या है? इसके दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए और इसको रोकने हेतु उपाय सुझाएँ।
18. धर्म का लोगों के जीवन में क्या भूमिका है? वैश्वीकरण के इस दौर में धर्म के स्वरूप में हुए बदलावों की चर्चा कीजिए।
19. Globalization क्या है? क्या यह सिर्फ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के द्वारा व्यवहृत बाजार की रणनीति है या सांस्कृतिक संश्लेषण की प्रक्रिया है जो हमारे समक्ष अपना स्थान निर्मित कर रहा है।
20. वैश्वीकरण ने किस प्रकार हमारी घरेलू कला तथा साहित्यिक परम्परा एवं ज्ञान के समक्ष समस्या को उत्पन्न किया है? स्पष्ट कीजिए।
21. उपभोग की संस्कृति क्या है? भारतीय समाज पर इसके प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
22. वैश्वीकरण का महिला श्रम तथा बाल श्रम पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कीजिए।
23. वैश्वीकरण एवं पहचान के संकट पर एक टिप्पणी लिखिए।
24. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत में सांस्कृतिक संकट को उत्पन्न किया है। टिप्पणी कीजिए।
25. श्रम के स्त्रीकरण से आपका क्या तात्पर्य है? वैश्वीकरण के प्रभावों के संदर्भ में इसको स्पष्ट कीजिए।
26. वैश्वीकरण की प्रक्रिया का भारत के युवा वर्ग पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
27. वैश्वीकरण एवं जनजातीय नृजातीयता से संबंध को दर्शाइए और इसके प्रभावों की समीक्षा कीजिए।

✪✪✪✪✪

9 भारत में विविधता (Diversity in India)

भारतीय समाज में विविधता (Diversity in Indian Society)

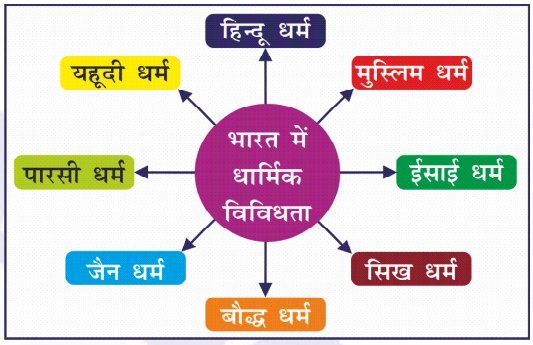
भारत विविधताओं का देश है। भारतीय समाज और संस्कृति के विभिन्न पक्षों में सर्वत्र अनेकता के दर्शन होते हैं। क्षेत्रगत, भाषागत, जातिगत, प्रजातिगत तथा धार्मिक विभिन्नता सम्पूर्ण समाज में व्याप्त है। इसी कारण भारतीय समाज एंव संस्कृति को एक रंगीन साड़ी नहीं वरन् बहु-रंगी चुनरी की संज्ञा दी जाती है। इस कथन का तात्पर्य है कि भारतीय संस्कृति में विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक तत्वों का एक अनुपम समन्वय देखने को मिलता है। भारतीय समाज में सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ (Caste and Sub-castes) पायी जाती हैं। विभिन्न भाषा-भाषी लोग भी यहाँ मौजूद हैं।

साथ ही यह अनेक धर्मों का जन्म-स्थल भी है। यहाँ कोई हिन्दू है, तो कोई मुसलमान, कोई ईसाई है तो कोई बौद्ध, सिख आदि। यह देश भौगोलिक दृष्टि से भी अनेक क्षेत्रों में बंटा हुआ है। यहाँ जलवायु संबंधी भिन्नताएँ भी कम नहीं हैं। साथ ही यहाँ लोगों के रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा में भी कई प्रकार की भिन्नताएं दिखाई पड़ती हैं। भारतीय समाज में पायी जाने वाली विविधता का हम निम्न रूप में विवेचन कर सकते हैं:-

धार्मिक विविधता (Religious Diversity)

भारत विभिन्न धर्मों की भूमि है। कालान्तर में विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के आगमन के फलस्वरूप यहाँ अन्य धर्मों का भी प्रसार हुआ जिससे धार्मिक विविधता और बढ़ती गयी।

यहाँ विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों की संख्या का प्रतिशत इस प्रकार है- हिन्दू 79.8 प्रतिशत, मुसलमान 15.2 प्रतिशत, ईसाई 2.3 प्रतिशत, सिख 1.7 प्रतिशत, बौद्ध 0.7 प्रतिशत, जैन 0.4 प्रतिशत तथा अन्य 0.9 प्रतिशत। हिन्दू धर्म में अनेक देवी देवताओं की पूजा आराधना की जाती है। धार्मिक उत्सव, दान, व्रत, हवन, यज्ञ, तीर्थ-यात्रा आदि का विशेष महत्व है। बौद्ध धर्म में सुदृष्टि, सद्भाव, सद्भाषण, सद्कर्म, सद्निर्वाह, सद्प्रयत्न, सद्विचार और सद्ध्यान इन आठ संयमों पर बल दिया जाता है। जैन धर्म ने त्याग और अहिंसा पर बल दिया है। इस्लाम धर्म एक एकेश्वरवादी धर्म है। सिख धर्म एकेश्वरवादी व मूर्तिपूजा विरोधी है, धर्मों की विविधता भारत की अपनी रोचक विशेषता है। भारत में विभिन्न धर्मों में पायी जाने वाली विविधता की चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं:-



1. हिन्दू धर्म

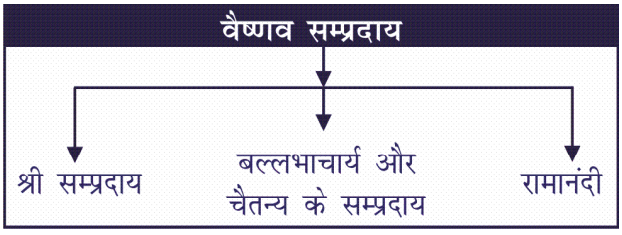
मूल रूप से 'हिन्दू' शब्द न तो धर्म का प्रतीक था और न ही किसी विचारधारा का, इसके पीछे भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Conditions) थीं। प्राचीन ईरानियों ने सिंधु नदी के पूर्वी क्षेत्र को 'हिन्द' कहा और इस क्षेत्र में रहने वाले 'हिन्दू' कहलाए। कालांतर में हिन्दू शब्द धर्म और संस्कृति से जुड़कर रूढ़ हो गया और उस समय प्रचलित धर्म को 'हिन्दू धर्म' की संज्ञा दी गयी।

हिन्दू धर्म को समस्त ऊर्जा वेदों से मिलती है। वेदों की संख्या चार मानी गयी है-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। सबसे प्राचीन ऋग्वेद है, जिसके कुछ भागों की रचना 1000 ई.पू. से पहले हुई थी। शेष वैदिक साहित्य की रचना बाद में हुई। आर्यों के जीवन और संस्थाओं के ऐतिहासिक पुनर्निर्माण का आधार यही साहित्य हैं।

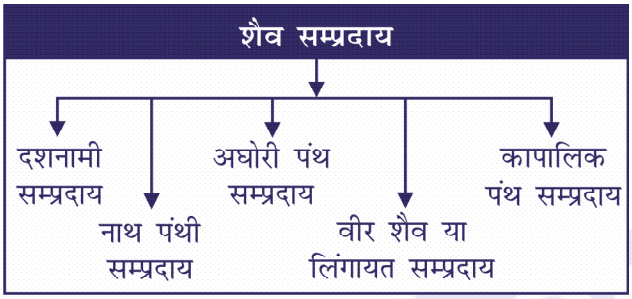
हिन्दू धर्म में सबसे अधिक सम्प्रदाय और उप-सम्प्रदाय (Sects and Sub-sects) हैं। हिन्दुओं में शिव, विष्णु और मातृदेवी जिसकी पूजा दुर्गा, काली और अन्य रूपों में की जाती है, महत्वपूर्ण देवी देवता हैं। अधिकतर पंथों संप्रदायों, उपसम्पद्रायों का उद्गम इन्हीं तीनों से हुआ है। इन पंथों में शिव और पार्वती के सम्प्रदाय सबसे प्राचीन हैं जबकि कृष्ण पंथ अपेक्षाकृत नया है।

हिन्दू धर्म के सम्प्रदाय एवं उप सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं:-

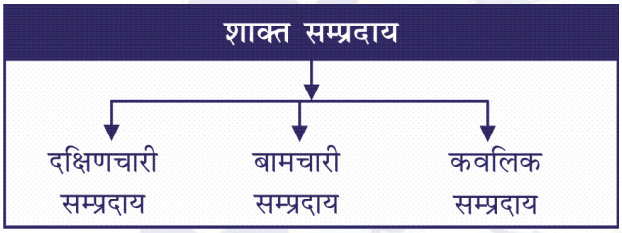
- ***वैष्णव सम्प्रदाय:-*** इस सम्प्रदाय के लोग विष्णु को कृष्ण या राम के रूप में पूजते हैं। इसके प्रमुख सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय इस प्रकार हैं:-



- ***शैव सम्प्रदाय:–*** इस सम्प्रदाय में भगवान शिव के विभिन्न रूपों की पूजा अर्चना की जाती है। इस सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय निम्नलिखित हैं:-



- ***शाक्त सम्प्रदाय:–*** शाक्त योग दर्शन में शक्ति (नारी शक्ति) को सर्वोच्च सत्ता माना गया है। इस सम्प्रदाय में दुर्गा, काली, भगवती, चामुण्डा, त्रिपुरा सुन्दरी, राजराजेश्वरी, पार्वती, सीता, राधा आदि देवियों की आराधना की जाती है। इस सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय निम्नलिखित हैं:–



हिन्दू धर्म विश्व के पुराने धर्मों में से एक है। यह एक बहुदेववादी (अनेक देवी-देवताओं) धर्म है। हिन्दुओं का सबसे अधिक प्रतिशत (95.17%) हिमाचल प्रदेश में है तथा सबसे कम प्रतिशत (2.75%) मिजोरम में है। हिन्दू धर्मावलम्बियों का अनुपात आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, ओड़िसा, राजस्थान, तमिलनाडु एंव त्रिपुरा में राष्ट्रीय औसत से अधिक है तथा जम्मू एंव कश्मीर, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड तथा पंजाब में राष्ट्रीय औसत से कम है।

जनगणना 2011 के अनुसार देश की लगभग 79.8 प्रतिशत आबादी हिन्दू है। देश के ज्यादातर भाग में यह मुख्य धर्म है लेकिन कुछ क्षेत्रों में, जैसे- कश्मीर घाटी, पंजाब, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड तथा केरल के कुछ भागों में हिन्दू अल्पसंख्यक हैं।

2. मुस्लिम धर्म

अरबी मूल के शब्द 'इस्लाम' का अर्थ है, 'आत्म-समर्पण' (Surrender) इस धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद थे। इस्लाम एकेश्वरवादी धर्म है। इस्लाम में दो मत हैं-शिया और सुन्नी। भारत में मुसलमानों की अधिकतम संख्या सुन्नियों की है। अपने आगमन के समय से लेकर वर्तमान काल तक इस्लाम लगभग हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति (Indian Culture) को प्रभावित करता रहा है। कला, संगीत, साहित्य, स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस्लामी संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा। सूफी आंदोलन मध्य भारत के भक्ति आंदोलन (Bhakti Movement) और इस्लामी विचारों के संसर्ग का ही प्रभाव था।

मुस्लिम धर्मावलम्बियों की जनसंख्या के लिहाज से भारत का स्थान पाकिस्तान और इण्डोनेशिया के बाद विश्व में तीसरा है। मुस्लिम देश के सभी भागों में मौजूद हैं लेकिन इनका सबसे अधिक संकेन्द्रण उत्तर-प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल, जम्मू एंव कश्मीर तथा उत्तराखण्ड के दक्षिणी-जिलों में हैं। जम्मू एंव कश्मीर में मुस्लिमों का सबसे अधिक प्रतिशत (68%) है तथा यह मिजोरम में नगण्य (1.35%) है। असम, बिहार, झारखण्ड, जम्मू एंव कश्मीर, केरल, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में इनका अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है।

3. ईसाई धर्म

ईसा मसीह ने ईसाई धर्म की नींव डाली थी। यह धर्म चौथी शताब्दी में रोम साम्राज्य का राज्य धर्म बना गया था। बाद में रोमन चर्च दो समूहों में बंट गया था-रोम में पोप के अधीन पश्चिमी तथा एंटीओक, अलेक्जेन्ड्रिया और कुस्तुतुनिया के प्राधिधर्माध्यक्ष के अधीन पूर्वी चर्च, बाद में रोमन चर्च भी प्रोटेस्टेंट के रूप में टूटा और पूर्वी चर्चों के कई समुदायों ने अपने प्राधिधर्माध्यक्ष बनाए। ईसाई धर्म एक सर्वव्यापक (Omnipresent) धर्म है, जिसके अनुयायी विश्व में सबसे अधिक हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह धर्म भारत में पहली सदी ई॰ में आया जब सीरियाई गिरिजाघर की स्थापना केरल में की गई।

केरल में ईसाईयों की सबसे अधिक जनसंख्या है- कुल जनसंख्या का 18.4%। आंध्र प्रदेश, मेघालय, नागालैंड तथा तमिलनाडु में ईसाई 1 मिलियन से अधिक हैं। मिजोरम तथा गोवा में भी वे अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। नागालैंड (88.1%) तथा मिजोरम (87.16%) की जनसंख्या में इनकी उच्चतम प्रतिशतता है।

4. सिख धर्म

सिख धर्म की स्थापना गुरु नानक साहेब द्वारा पंद्रहवीं सदी में की गई। इनका समय 1469-1538 ईसवी माना गया है। 'सिख' शब्द संस्कृत के 'शिष्य' से लिया गया है। गुरु नानक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए ऐसे मत का प्रवर्तन किया, जिसमें दोनों धर्मों की समर्पण भावना झलकती है। सिख धर्म में सम्प्रदायों का उदय ज्यादातर धार्मिक सुधारों और आंदोलनों के रूप में हुआ है। इनमें से कई सम्प्रदायों में हिन्दू और सिख दोनों इसके अनुयायी हैं। निरंकारी व्यास के राधास्वामी और नामधारी कुछ प्रमुख सम्प्रदाय हैं।

सिख देश की कुल आबादी का 2 प्रतिशत हिस्सा हैं (जनगणना, 2011)। सिख धर्म ने सामाजिक सौहार्द (Social Harmony) बनाने का प्रयास किया, यह धर्म हिन्दू जाति व्यवस्था को हटाना चाहता था एंव विधवा विवाह के पक्ष में था। लेकिन लम्बे समय तक यह पंजाब तक सीमित रहा तथा गुरुमुखी को अपनी भाषा माना। देश के सिखों की कुल जनसंख्या का 79% पंजाब में है। पंजाब के अलावा

सिख धर्मानुयायी हरियाणा, चंडीगढ़, दिल्ली, राजस्थान एंव उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड (ऊधमसिंह नगर) के तराई क्षेत्रों में भी निवास करते हैं। वर्तमान में सिख देश के सभी भागों में देखे जा सकते हैं तथा ये विश्व के कई देशों ब्रिटेन, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, केन्या, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, सिंगापुर तथा हांगकांग में भी मौजूद हैं।

5. बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म की स्थापना उत्तर भारत में गौतम बुद्ध (563-483 ई॰ पू॰) द्वारा की गई। बुद्ध का ज्ञान दर्शन इस प्रकार है-दुख है, दु:ख का हेतु और दु:ख का निरोध है तथा दु:ख निरोध का मार्ग है। इन्हें 'चत्वारि आर्य सत्यानि' कहा जाता है। 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' ही उनके उपदेश का सार है और आत्मसंयम उसका आधार है। वैशाली में 383 ई.पू. में द्वितीय बौद्ध सभा आयोजित हुई। इसमें नियमों में कुछ शिथिलता लायी गयी परिणामस्वरूप, बौद्धमत का दो सम्प्रदायों में विभाजन हो गया-स्थविर और महासंघिक।

बौद्ध मतावलम्बी देश के कुल जनसंख्या में एक प्रतिशत से भी कम हैं। 80% बौद्ध मतावलम्बी महाराष्ट्र में रहते हैं। बौद्ध धर्म का परम्परागत गढ़ लद्दाख, जम्मू एंव कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश तथा त्रिपुरा है।

6. जैन धर्म

भारत जैन धर्म का जन्म स्थान है। जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर का जन्म वैशाली के पास कुंडलग्राम में वज्जि गण के जातृक कुल के राजा सिद्धार्थ के यहाँ ई.पू. 540 में हुआ था। महावीर स्वामी को ही जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। महावीर के दो वर्ष बाद जब मगध में भीषण अकाल पड़ा, तब भद्रबाहु के नेतृत्व में कुछ जैन धर्मावलम्बी दक्षिण दिशा की ओर चले गये और बाकी स्थल-बाहु के नेतृत्व में मगध में रहे। पाटलिपुत्र में मगध के जैनों ने एक संगति (Fallowship) बुलाई जिसमें दक्षिण वाले शामिल नहीं हुए। तब से दक्षिण वाले दिगंबर और मगध वाले श्वेताम्बर कहलाए।

भारत में यह एक अल्पसंख्यक धर्म है (0.1%)। अन्य देशों में इस धर्म के अनुयायियों की संख्या नगण्य है। इस धर्म के अनुयायी महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात , मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा कर्नाटक में देखे जा सकते हैं, खासकर शहरी क्षेत्रों में जैनियों का व्यवसाय तथा राजनीति पर अच्छा खासा प्रभाव है।

7. पारसी धर्म

पारसी संत जरथुस्त्र इस धर्म के संस्थापक माने जाते हैं। इनका समय ई.पू. 6ठीं सदी या 7वीं सदी माना जाता है। इस धर्म का केन्द्र बिन्दु यह है कि अच्छे और बुरे के बीच संघर्ष होता है। देश में पारसियों की संख्या लगभग 1.67 लाख है। पारसी साम्राज्य के दिनों में यह एक प्रमुख धर्म था। इस धर्म के नीतिशास्त्र (Ethics of Religion) का सार तीन शब्दों से समझा जा सकता है: हुमाता (अच्छे विचार), हुकता (अच्छी बोली) तथा हुवर्सता। पारसियों का धार्मिक ग्रंथ किनकरी है।

पारसी सबसे पहले भारत में 766 ई॰ में आए (दीव)। उन्होंने अपनी 'कॉलोनी' (उपनिवेश) को भारत स्थानान्तरित किया (1490) । वहाँ से उनका विस्तार नवसारी तथा उदवाड़ा तक हुआ। उन पर हिन्दू रीति-रिवाजों (Custom and Tradition) का प्रभाव पड़ा है लेकिन वे ब्रह्मचर्य की वकालत नहीं करते हैं। पारसी धर्म पुनर्विवाह की इजाजत देता है। लगभग 80% पारसियों की आबादी वृहत् मुंबई में केन्द्रित है तथा अन्य नवसारी, उदवाड़ा, सूरत तथा अहमदाबाद में हैं।

8. यहूदी धर्म

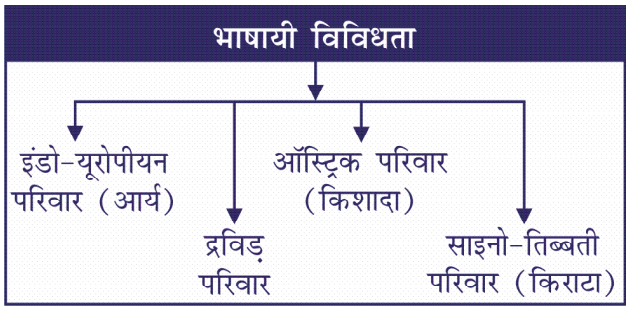
विश्व के प्रमुख प्राचीनतम धर्मों में से एक यहूदी धर्म एकेश्वरवाद में विश्वास रखता है। यहूदियों के इस धर्म से ही ईसाइयत और इस्लाम विकसित हुए। इस धर्म के आधारभूत नियम व शिक्षा 'तोराह-मूल' हिब्रू बाइबिल की प्रथम पांच पुस्तकों-पर आधारित हैं। भारत में यहूदियों के दो समुदाय हैं-मलयालम भाषी 'कोचीनी' और मराठी भाषी 'बेने इजराइल'। लगभग 2000 वर्ष पहले यहूदी शरणार्थी भारत के पश्चिमी तट पर आकर बसे थे। यद्यपि उनकी संख्या कम है, किन्तु प्रारम्भ से ही उन्हें अपने अंदाज में जीने, अपने सिनागॉग (यहूदी प्रार्थना भवन) बनवाने की अनुमति प्रदान की गयी है।

भारत के अधिकांश भाग में हिन्दू धर्म एंव संस्कृति का प्रभुत्व है तथा कहीं-कहीं मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध मतावलम्बी एंव जनजातियों की भी आबादी देखी जा सकती है। उत्तर पूर्वी पहाड़ी राज्यों में ईसाइयों, जनजातियों, हिन्दुओं तथा मुस्लमानों की मिश्रित जनसंख्या है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों की बहुसंख्या वाला क्षेत्र जम्मू एंव कश्मीर राज्य का कश्मीर प्रखण्ड तथा कारगिल क्षेत्र है। मुस्लिम उत्तरी केरल, आगरा, मेरठ, लखनऊ, रोहेलखण्ड तथा उत्तर प्रदेश के सहारनपुर प्रखण्ड में भी अच्छी खासी संख्या में हैं। पंजाब तथा केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ देश का सिख बहुल क्षेत्र है।

भाषायी विविधता (Linguistic Diversity)

मानवीय अभिव्यक्ति (Expression) का सर्वोत्तम साधन मानव की भाषा होती है। भाषा के माध्यम से ही विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों को एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। भारत विभिन्न भाषा-भाषी लोगों का देश है। हमारे देश में 189 भाषाएँ तथा 544 बोलियाँ प्रचलित हैं। भारतीय संविधान में 22 भाषाओं को मान्यता दी गयी है। इन 22 भाषाओं के अतिरिक्त मालवी, मारवाड़ी, भोजपुरी, पहाड़ी, राजस्थानी आदि भाषाएँ भी यहाँ महत्वपूर्ण हैं जिनका प्रयोग लोग बोलचाल में करते हैं।

भारत में बोली जाने वाली भाषाओं का संबंध निम्नलिखित भाषायी समूहों (Linguistic groups) से हैं:-



इंडो यूरोपीयन परिवार (आर्य)

यह भारतीय भाषाओं का सबसे प्रमुख भाषाई समूह है, जो उत्तरी भारत के ज्यादातर लोगों द्वारा बोली जाती है। इस भाषा का प्रमुख क्षेत्र खड़ी बोली का प्रदेश कहलाता है, जिसमें हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश शामिल हैं। इस क्षेत्र से दूर जाने पर इस भाषा से विभिन्न रूप तथा इससे बनी उप-भाषाएँ (Sub-languages) देखी जा सकती हैं। प्रो॰ ए॰ अहमद ने प्रमुख केन्द्र (Core Area) से दूर विभिन्न दिशाओं में खड़ी बोली के विसरण (Diffusion) का एक आरेख निरूपण (Formulation) किया है।

दार्दी, कोहिस्तानी, कश्मीरी, लहनदा, सिन्धी, गुजराती, मराठी, बंगाली, असमिया, बिहारी, अवधी, बाघेली, कच्छी, उड़िया, छत्तीसगढ़ी, हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, नेपाली तथा पहाड़ी इस भाषा की शाखाएँ हैं।

हिन्दी (राष्ट्रीय भाषा) इंडो-यूरोपीयन परिवार की मुख्य भाषा है, जो देश की 40% आबादी द्वारा बोली जाती है। यह मुख्य रूप से बिहार, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में बोली जाती है।

उर्दू का नजदीकी संबंध हिन्दी भाषा से है। उर्दू बिहार, दिल्ली, हैदराबाद, जम्मू एंव कश्मीर, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा नगरीय भारत के ज्यादातर स्थानों में लोकप्रिय है।

द्रविड़ परिवार

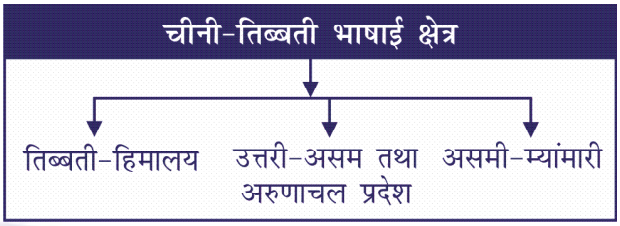
भारतीय भाषाओं के द्रविड़ परिवार में तेलुगू (आंध्र प्रदेश), कन्नड़ (कर्नाटक), तमिल (तमिलनाडु) तथा मलयालम (केरल) शामिल हैं, जो देश में 22% लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

ऑस्ट्रिक परिवार

ऑस्ट्रिक भाषा छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, मेघालय, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के जनजातीय समूहों द्वारा बोली जाती है। यह भाषा दो मुख्य शाखाओं से संबंध रखती है- (1) मुंडा (संथाली), तथा (2) मोन-खमेर (खासी तथा निकोबारी)। मोन खमेर (खासी) खासी तथा जयंतिया पहाड़ों (मेघालय) तक ही सीमित है तथा निकोबारी निकोबार द्वीप तक ही सीमित है। मुंडा भाषा छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के जनजातियों द्वारा बोली जाती है।

चीनी-तिब्बती परिवार

चीनी-तिब्बती भाषा मुख्यत: हिमालय क्षेत्र में बोली जाती है। इसके तीन प्रमुख उप-विभाजन (Sub-division) हैं:-



1. **तिब्बती-हिमालय–** इसमें हिमाचल प्रदेश की चम्बा, लाहौली, किन्नौरी तथा लेपचा भाषाएँ शामिल हैं। बालटी,भूटिया, लद्दाखी तथा तिब्बती -भाषा जम्मू एंव कश्मीर राज्य के उत्तरी भाग में बोली जाती हैं।
2. **उत्तरी-असम तथा अरुणाचल प्रदेश–** उत्तरी असम तथा अरुणाचल प्रदेश की मुख्य भाषाएँ हैं- अबोर, अका, असमियाँ, डाफला, मिरि तथा मिशिंग।
3. **असमी-म्यांमारी–** ये भाषा असम के लोगों, बोडो, कोच्चि, कुकीचीन, मिरी, नागा तथा जाकसा जनजातियों द्वारा बोली जाती है।

भारतीय राज्यों की रूपरेखा (Framework) 1956 में भाषा के आधार पर तय की गई। प्रत्येक अनुसूचित भाषा का एक विशेष प्रदेश होता है, जहाँ अधिकांश आबादी द्वारा इस भाषा को बोला जाता है। इस प्रदेश (राज्य) में ही उस भाषा का केन्द्र (Core) भी होता है। भाषाई प्रदेश की सीमा एक निर्धारित रेखा नहीं होती, बल्कि एक परिवर्ती (Variable) क्षेत्र होता है, जहाँ धीरे-धीरे एक भाषा अपना प्रभाव खो देती है तथा दूसरी भाषा का प्रभाव क्षेत्र शुरू हो जाता है। अनेक क्षेत्रों में भाषाओं का मिश्रण भी देखने को मिलता है। इसके अलावा कई राज्यों में निकटवर्ती राज्य की मुख्य भाषा उस राज्य की दूसरी प्रमुख भाषा होती है, जिसे उस राज्य के दूसरे सबसे बड़े समूह द्वारा बोला जाता है, उदाहरण के लिये केरल में तमिल दूसरी प्रमुख भाषा है तथा तमिलनाडु में तेलगु दूसरी प्रमुख भाषा है। उर्दू कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में दूसरी प्रमुख भाषा है।

हिन्दी भाषा देश की अधिकारिक भाषा है, जिसे देश के लगभग 40% लोगों द्वारा बोला जाता है। हिन्दी भाषा के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा दिल्ली शामिल हैं, जहाँ 90% आबादी हिन्दी बोलती है।

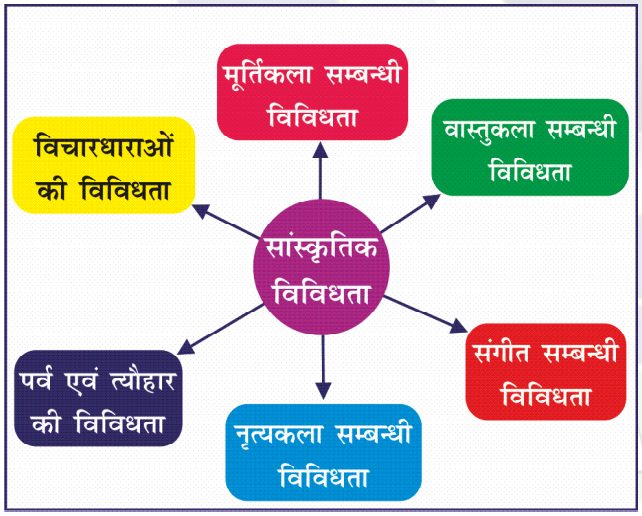
उर्दू मूलत: हिन्दी का एक रूपभेद (Formdifference) है, जिसे देवनागरी-लिपि की बजाय अरबी/ फारसी लिपि में लिखा जाता है। इसका जन्म भारत में हुआ, लेकिन एक ठोस प्रादेशिक आधार के अभाव में यह भाषा वास्तव में 'बेघर' है। जम्मू एंव कश्मीर ने इस भाषा को राज्य की आधिकारिक भाषा माना है। यह देश के लगभग 8% आबादी की मातृ-भाषा है। यह मुख्यत: उत्तर प्रदेश,

बिहार, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली तथा उत्तराखण्ड में बोली जाती है। गुजराती तथा कन्नड़ का इस क्रम में अगला स्थान है। द्रविड़ भाषाओं में मलयालम को बोलने वाले सबसे कम लोग हैं। इस भाषा का केन्द्र केरल (92%) है तथा विस्तार तमिलनाडु, महाराष्ट्र व आंध्र प्रदेश तक है।

बंगाली भाषा भारत के पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश की आधिकारिक भाषा है, लेकिन यह इसके आस-पास असम, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा तथा त्रिपुरा राज्य में भी बोली जाती है। उड़िया की एक विशेषता यह है कि यह पुरानी अपभ्रंश है तथा इसे संस्कृत द्वारा समृद्ध किया गया है। असमिया भाषा का एक भिन्न उच्चारण तथा व्याकरण है लेकिन इसे अक्सर बंगाल-असम समूह में शामिल किया जाता है।

सांस्कृतिक विविधता (Cultural Diversity)

भारत के विभिन्न प्रदेशों में भाषा, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, कला, संगीत, तथा नृत्य, लोकगीत, लोकगाथा, विवाह-प्रणाली तथा जीवन संस्कारों में हमें अनेक रोचक व आकर्षक भेद देखने को मिलते हैं। ग्रामीण और नगरीय लोगों की, हिन्दू और मुसलमानों की, परम्परावादी और आधुनिक कहे जाने वाले लोगों की वेश-भूषा और खान-पान में रात दिन का अंतर है। यहाँ विभिन्न नृत्य शैलियों के अतिरिक्त तुर्की, ईरानी, भारतीय व पाश्चात्य चित्रकला मूर्तिकला तथा वास्तुकला के विविध रूप देखने को मिलते हैं। यहाँ मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, स्तूपों आदि में कला की भिन्नताओं का सरलता से पता लगाया जा सकता है।



मूर्तिकला सम्बन्धी विविधता (Sculptural Variety)

भारत में मूर्तिकला की दो परम्परागत शैली प्रचलित रही है। पहली गंधार शैली है, यह शैली रोमन प्रभाव से मुक्त है इसमें मुख्यत: काले पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। इसमें बुद्ध को घुंघराले बालों में चित्रित किया गया है। मूर्तिकला की दूसरी शैली मथुरा शैली है, यह देशी शैली है इसमें लाल बलुआ पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

वास्तुकला सम्बन्धी विविधता (Architectural Diversity)

भारत में वास्तुकला की तीन शैलियाँ प्रचलित रही हैं। प्रथम नागर शैली है, जिसका विस्तार उत्तर भारत में रहा है, द्वितीय द्रविड़ शैली है, जिसका विस्तार दक्षिण भारत में रहा है एवं तीसरी बेसर शैली है जो उपरोक्त दोनों शैलियों का मिश्रित रूप है, इसका विस्तार मध्य भारत में देखा जा सकता है।

संगीत सम्बन्धी विविधता (Musical Diversity)

भारत में शास्त्रीय संगीत की दो मुख्य शैलियाँ प्रचलित रही हैं। पहली हिन्दुस्तानी शैली है, जिसका प्रसार मुख्यत: उत्तर भारत में देखा जाता है। द्वितीय कर्नाटक शैली रही है, जिसका प्रसार मुख्यत: दक्षिण भारत में रहा है।

शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में लोक संगीत की भी अपनी परम्परा रही है।

नृत्यकला सम्बन्धी विविधता (Choreographic Diversity)

आधुनिक विश्व में नृत्य को सर्वाधिक चित्ताकर्षक (Captivating) व माधुर्यपूर्ण (Melodious) कला माना जाता है। प्राचीनतम कला के रूप में भी नृत्य कला स्वीकृत है। आदिम युग में मानव अपने हृदयावेग को सर्वदा अंग-प्रत्यंग की गति की सहायता से प्रकट करते थे। वही क्रमश: नृत्यकला के रूप में विकसित हुआ।

भारत में नृत्य परंपरा 2000 वर्षों से भी ज्यादा वर्षों से निरन्तर चली आ रही है। नृत्य की विषयवस्तु धर्मग्रंथों, लोककथाओं और प्राचीन साहित्य पर आधारित रहती है। इसकी दो प्रमुख शैलियाँ- शास्त्रीय नृत्य और लोकनृत्य। शास्त्रीय नृत्य वास्तव में प्राचीन नृत्य परंपराओं पर आधारित होते हैं और इसकी प्रस्तुति के नियम कठोर हैं। इसमें प्रमुख हैं-'भरतनाट्यम', 'कथककली', 'कत्थक', 'मणिपुरी', 'कुचिपुड़ी', और 'ओडिसी'। 'भरतनाट्य' मुख्यत: तमिलनाडु का नृत्य है। 'कथकली' केरल की नृत्यशैली है। 'कत्थक' भारतीय संस्कृति पर मुगल प्रभाव से विकसित नृत्य का एक अहम शास्त्रीय रूप है। मणिपुर की नृत्य शैली 'मणिपुरी' में कोमलता और गीतात्मकता है जबकि 'कुचिपुड़ी' की जड़ें आंध्र प्रदेश में हैं। उड़ीसा का 'ओडिसी' प्राचीनकाल में मंदिरों में नृत्य रूप में प्रचलित था जो अब समूचे भारत में प्रचलित है। लोकनृत्य और आदिवासी नृत्य की भी विभिन्न शैलियाँ प्रचलित हैं।

पर्व एवं त्यौहारों की विविधता (Diversity of Religion and Festivals)

नानाविध धर्मों एवं भाषाओं की इंद्रधनुषी आभा से दीप्तिमान भारत देश के रंग-बिरंगे पर्व त्यौहार और मेले इसके सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं, जिनके बिना इस देश की संस्कृति अधूरी है। भारत के विभिन्न धर्मों एवं क्षेत्रों में मनाए जाने वाले पर्व एवं त्यौहारों के भी विविध रूप रहे हैं, जिसकी चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं-

- हिन्दुओं के पर्व त्यौहार पूरे वर्ष बनाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो हिन्दुओं के सभी सम्प्रदायों व वर्गों (Sects and Class) द्वारा

मनाए जाते हैं और कुछ क्षेत्रीय स्तर पर मनाए जाते हैं। कुछ प्रमुख हिन्दू पर्व एवं त्यौहार निम्नलिखित हैं:– मकर सक्रांति, लोहड़ी, पोंगल, बिहू, होली, दशहरा, दीपावली, रक्षाबंधन, गुरुपूर्णिमा इत्यादि।

- मुसलमानों के त्यौहार एवं धार्मिक दिन निश्चित तिथि को नहीं पड़ते, किन्तु प्रत्येक वर्ष लगभग 11 दिन पहले आते हैं। मुस्लिम त्यौहारों में ईद-उल-फितर, रमजान, ईद-उल-जुहा (बकरीद), मोहर्रम प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त सूफी संतों की कब्र पर उर्स का मेला लगता है। अजमेर में ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर उर्स का मेला लगता है, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बड़ी श्रद्धा से भाग लेते हैं।
- ईसाइयों के भी अपने पर्व-त्योहार हैं। इनमें 'ईस्टर', 'क्रिसमस' इत्यादि प्रमुख हैं। ईस्टर एक समारोही उत्सव है। यह ईसा मसीह के क्रूस पर लटकाए जाने के बाद उनके जीवित होने का उत्सव है। ईस्टर में समाप्त होने वाले पवित्र सप्ताह से जुड़े दिन हैं-'पाम संडे', इसे यीशु के जेरूसलम में प्रवेश का दिन मानते हैं, 'मॉन्डी थर्सडे', जो ईसा का आखिरी भोजन का दिन है, इस दिन उन्हें गिरफ्तार कर कैद में रखा गया था, 'गुड फ्राइडे', यह क्रूस पर ईसा के मरने का दिन है-यह शोक का दिन है, 'होली सैटरडे', यह पूरी रात जगने से जुड़ा है और 'ईस्टर संडे' को ईसा के पुनर्जीवन (Resuscitation) का दिन मानते हैं।
- 'क्रिसमस' ईसाइयों के लिए अत्यंत खुशी का दिन है। यह ईसा मसीह का जन्मोत्सव है। 25 दिसम्बर को यह उत्सव मनाया जाता है।
- सिख अपने गुरुओं का जन्मोत्सव 'गुरुपर्व' मनाते हैं। गुरु नानक का गुरुपर्व कार्तिक पूर्णिमा को पड़ता है और इसे बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। गुरु गोविंद सिंह का गुरुपर्व भी उतनी ही श्रद्धा व धूम-धाम से मनाया जाता है।
- बौद्ध वैशाख पूर्णिमा को बुद्ध जयंती मनाते हैं। यह बुद्ध के जन्म के साथ-साथ उनके ज्ञान प्राप्त करने का भी परिचायक है। लद्दाख के हेमस बौद्ध विहार में गोम्पा के संरक्षक इष्टदेव गुरु पद्मसम्भव के जन्म का वार्षिक उत्सव मनाया जाता है।
- जैनियों के 24वें और अंतिम तीर्थंकर महावीर का जन्म दिन महावीर जयंती के रूप में मनाया जाता है।
- पारसियों का सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार 'नवरोज' है यानि नया दिन। यह वसंत विषुव यानि 20 मार्च को मनाया जाता है। यह शाश्वत नवरोज का उल्लास भरा उत्सव है, जब अहुर मजदा का साम्राज्य पृथ्वी पर आएगा। पारसियों का एक सम्प्रदाय 'फासलिस' नवरोज को नववर्ष के रूप में मनाते हैं। अगस्त-सितंबर में पारसी, अपना नव वर्ष 'पतेती' मनाते हैं। इसके एक सप्ताह पश्चात् वे जरथुस्त्र का जन्म 'खोरदद साल' मनाते हैं। इन उत्सवों पर दिए जाने वाले प्रीतिभोज 'गहम्बर' कहलाते हैं।

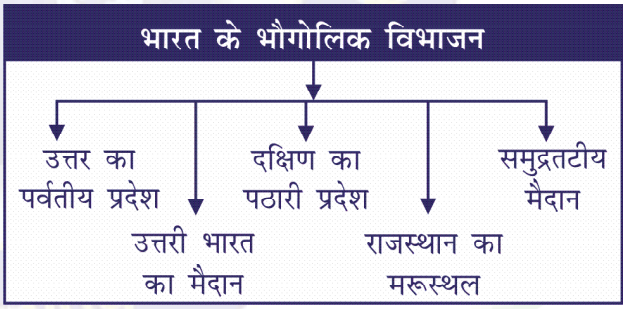
विचारधाराओं की विविधता (Diversity of Ideologies)

प्राचीन काल से भारत में अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का अस्तित्व रहा है। वास्तव में, अनेक विचारधाराओं का सहअस्तित्व (Coexistence) व एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता (Tolerance) का भाव प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की अद्वितीय विशेषता रही है। इन दार्शनिक विचारधाराओं में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, जैन, बौद्ध, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, चार्वाक आदि दर्शनों का प्रमुख स्थान है।

भौगोलिक विविधता (Geographical Diversity)

भारत में यदि एक ओर हिम से ढकी हुई व आकाश को छूती पर्वतों की चोटियाँ और हिमालय की लम्बी व ऊंची पर्वत श्रेणियाँ हैं, तो दूसरी ओर समुद्र की लहरों से खेलते हुए विस्तृत उपजाऊ मैदान है। यदि एक ओर राजस्थान का शुष्क मरुस्थल है जहाँ मीलों मानव का नामोनिशान तक नहीं है, तो दूसरी ओर सिन्धु-गंगा का मैदान भी है, जहाँ कोटि-कोटि मानव-जीवन हिलोरें ले रहे हैं। यहाँ दोमट और कछारी, काली और लाल विभिन्न प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं। किसी क्षेत्र की जमीन सोना उगलती है, तो किसी क्षेत्र की जमीन में बबूल भी नहीं उगता। इस भौगोलिक विविधता का प्रभाव यहाँ के निवासियों के रंग-रूप, बनावट, रहन-सहन, वेश- भूषा, साज-सज्जा, भाषा, धर्म और विधि- विधानों पर पड़ता है।

भारत की जलवायु में भी बड़ी भिन्नता देखने को मिलती है। भारत को भौगोलिक दृष्टि से पांच बड़े प्राकृतिक खण्डों में विभाजित किया गया है।



इन विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु संबंधी काफी भिन्नता देखने को मिलती है। मैदानी क्षेत्रों में ऋतु एवं तापमान में परिवर्तन आता रहता है। पहाड़ी क्षेत्रों में अधिकांशत: सर्दी का मौसम रहता है, तो दूसरी ओर रेगिस्तानी प्रदेशों में गर्मी का। कई प्रदेशों में भारी वर्षा होती है, तो कई क्षेत्रों में साल भर में मुश्किल से दो-चार इंच वर्षा होती है। अतएव विभिन्न स्थानों की सांस्कृतिक भिन्नता (Cultural Differences) का एक कारण जलवायु संबंधी भिन्नता भी है।

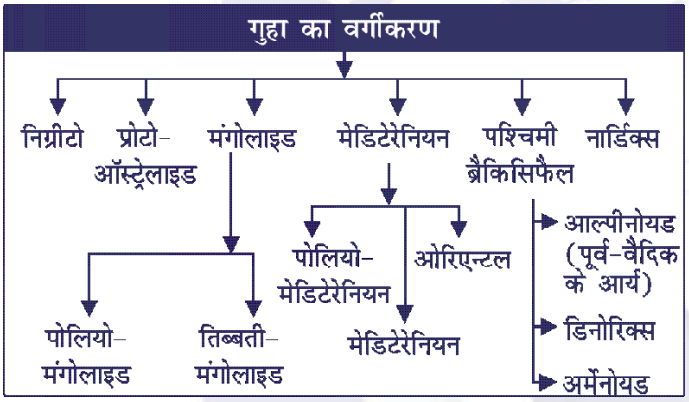
प्रजातीय विविधता (Racial Diversity)

भारत प्रजातियों का एक अजायबघर है। यहाँ प्रमुखत: नीग्रीटो, प्रोटो ऑस्ट्रेलियाड, नार्डिक, भूमध्य सागरीय, मंगोल और आर्य भाषा-भाषी

प्रजाति जैसे अल्पाइन, दीनारिक, अर्मीनियाई आदि पायी जाती है। यही कारण है कि भारत की अपनी कोई विशुद्ध प्रजाति नहीं है। यह कहा जाता है कि 'स्मरणातीत युगों से भारत परस्पर विरोधी प्रजातियों और सभ्यताओं का संगम स्थल रहा है और इसमें आत्मसातीकरण (Assimilation) तथा समन्वय की प्रक्रियाएं चलती रही हैं। सभी प्रजातियों में शारीरिक विविधताओं के साथ-साथ रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज एवं प्रथा परंपराओं संबंधी भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं।

गुहा का वर्गीकरण (Classification of Guha)

डॉ. बी॰एस॰ गुहा (भारत के मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण के पूर्व निदेशक) ने भारत की प्रजातियों का वर्गीकरण 1913 की जनगणना संचालन से प्राप्त भौतिक मापन के आधार पर किया है। गुहा द्वारा दिया गया भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण, सबसे विश्वसनीय माना जाता है। गुहा ने भारत में निम्नलिखित छः प्रजातीय समूहों (Ethnic Groups) को मान्यता दी है:-

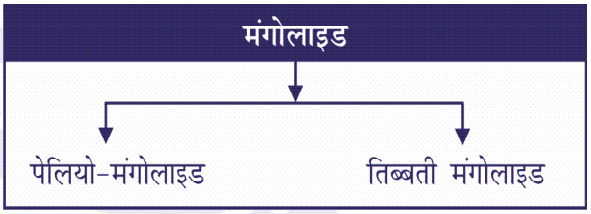


1. ***निग्रीटो-*** संभवतः निग्रीटो भारत में सबसे पहले आने वाली मानव प्रजाति थी। इस प्रजाति की विशेषता इनका छोटा कद (150 से॰मी॰), घुँघराले बाल, गोल ललाट, चपटी नाक, बाहर की ओर निकला हुआ जबड़ा, छोटी ठुड्डी, काला रंग, कमजोर हाथ तथा लम्बी भुजाएं हैं। इस प्रजाति के प्रतिनिधि हैं- अंडमानी तथा निकोबारी (अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह), इरूला, कादार, कनिकार, मुथाईवान, पनियन, पुलियन, तथा उराली जो तमिलनाडु, केरल तथा कर्नाटक के पहाड़ों पर रहते हैं।

   अंगामी-नागा में निग्रीटो की कुछ विशेषता पाई जाती हैं। यह माना जाता है कि निग्रीटो प्रजाति के लोग अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में (जारवा, ओंगे, सेंटिनलीज, शैम्पेन इत्यादि) मलेशिया के प्रायद्वीप से आए थे। रूप रंग, संस्कृति तथा रिवाजों में ये प्रजातियां मलेशियाई प्रायद्वीप की सेमाँग तथा सकाई जनजाति के अत्यंत करीब हैं।

2. ***प्रोटो-ऑस्ट्रेलाइड-*** निग्रीटो के बाद, भारत में प्रोटो ऑस्ट्रेलाइड का प्रवेश संभवतः आस्ट्रेलिया से हुआ। उनके प्रतिनिधि अभी भी भील, चेंचु, होस, कुरूम्बा, मुंडा, संथाल तथा येरूवा जनजातियों में मौजूद हैं। इस प्रजाति के लोग गहरे भूरे या काले-भूरे रंग के होते हैं, उनकी नाक चौड़ी होती है, बाल घुँघराले, कद छोटा तथा होंठ मोटे व बाहर की ओर निकले हुए होते हैं।

3. ***मंगोलाइड-*** मंगोलाइड चीन, मंगोलिया, तिब्बत, मलेशिया, थाइलैंड तथा म्यांमार से भारत आए। इस प्रजाति ने जम्मू एवं कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम, हिमालय तथा हिमालय के सीमांत क्षेत्रों (Marginal Areas) एवं भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों को अधिकृत किया।

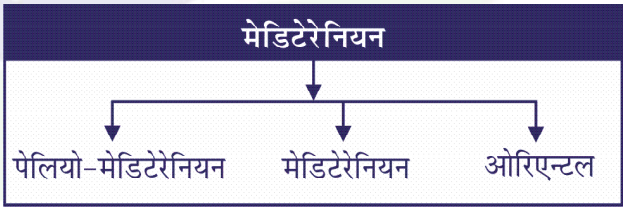


डॉ॰ बी॰एस॰ गुहा ने मंगोलाइड के दो उप-समूहों को मान्यता दी:-

(a) पेलियो-मंगोलाइड- सबसे आदिम मंगोलाइड प्रजाति का प्रकार है। इसके लम्बे बदन पर कम बाल होते हैं। यह प्रजाति हिमालय के सीमांत प्रदेश में पाई जाती हैं, विशेषकर अरुणाचल, असम तथा भारत म्यांमार सीमा से लगे जिलों में। डफला, गारो, कचारी, खासी, कुकी-नागा, लालुंग, माची, मिरी तथा टिप्पेरा इस प्रजाति के प्रतिनिधि हैं।

(b) तिब्बती-मंगोलाइड- भूटान, हिमाचल प्रदेश, नेपाल, सिक्किम तथा उत्तराखण्ड में पाए जाते हैं। इस प्रजाति की विशेषता लम्बा कद, हल्का पीला रंग, बदन पर प्रचुर मात्रा में बाल, तिरछी आँखे, लम्बी नाक तथा चपटा चेहरा है। भूटिया, गोरखा, लद्दाखी, किन्नौरी तथा थारू तिब्बती-मंगोलाइड प्रजाति समूह के प्रतिनिधि हैं।

4. ***मेडिटेरेनियन-*** डॉ॰ गुहा के अनुसार यह प्रजाति मेडिटेरेनियन क्षेत्र से भारत आयी। डॉ॰ गुहा ने मेडिटरेनियन प्रजाति के तीन उप-समूहों की खोज की, ये हैं:-

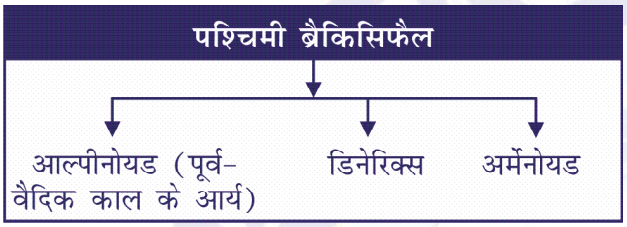


(a) पेलियो-मेडिटेरेनियन- पेलियो मेडिटेरेनियन सबसे पुराना समूह है। इनकी विशेषता इनका छोटा कद, लम्बा सिर, छोटी तथा मध्यम नाक एवं भूरा रंग है। इस प्रजाति का भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश संभवतः नवपाषाण काल में हुआ तथा वे विंध्य पर्वत के दक्षिण के एकाकी एवं सापेक्षिक (Isolated and Relative) एकाकी क्षेत्रों में फैल गए।

(b) मेडिटेरेनियन– इस प्रजाति का मध्यम कद, जैतूनी-भूरा रंग, लम्बा सिर तथा बड़ी आँखे होती हैं। यह प्रजाति हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा केरल में पायी जाती है।

(c) ओरिएन्टल मेडिटेरेनियन– यह प्रजाति भारत में प्रवेश करने वाली अंतिम प्रजाति है। यह प्रजाति अपने लम्बे एवं उत्तल नाक तथा गोरे रंग से पहचानी जाती है। यह प्रजाति राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तथा उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग (हरिद्वार तथा ऊधमसिंह नगर) तक सीमित हैं।

5. *पश्चिमी ब्रैकिसिफैल–* डॉ॰ गुहा ने इस प्रजाति को तीन उप-समूहों (Sub-group) में विभाजित किया–



(a) आल्पीनोयड (पूर्व-वैदिक काल के आर्य)– इस प्रजाति का प्रवेश सिन्धु घाटी में हुआ तथा वे गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु में फैल गए। बाद में इनका प्रवेश गंगा की घाटी में हुआ तथा वे पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा तक जा पहुंचे। इस प्रजाति की विशेषता मध्यम कद, गोल चेहरा, लम्बे सीधे बाल तथा गोरा रंग होता है।

(b) डिनेरिक्स– डिनेरिक्स ने आल्पीनोयड का अनुसरण (Pursuance) किया तथा गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु तक जा पहुंचे इस प्रजाति की विशेषता इनका लम्बा कद, भूरा रंग, लम्बा चेहरा तथा तीखी नाक है। यह प्रजाति आल्पीनोयड के साथ मिल गई है। इस प्रजाति के मुख्य प्रतिनिधि मुख्यतः काठियावाड़ तथा कुर्ग (कर्नाटक) में पाए जाने वाले लोग हैं।

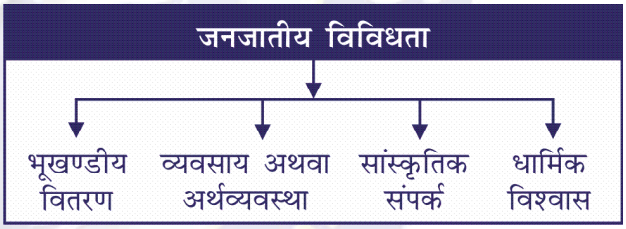
(c) अर्मेनोयड– अर्मेनोयड अर्मेनिया से भारत आए। इस प्रजाति की विशेषता इनका मध्यम कद, चौड़ा सिर, लम्बी नाक तथा इनके बदन पर बाल है। इस प्रजाति के मुख्य प्रतिनिधि मुख्यतः मुंबई तथा गुजरात के पारसी हैं।

6. *नार्डिक्स–* नार्डिक्स अथवा वैदिक आर्य लगभग दूसरे मिलेनियम ईसा पूर्व में उत्तर पश्चिम दिशा से भारत पहुंचने वाली अंतिम प्रजाति थी। नार्डिक्स ने द्रविड़ को हराकर उत्तरी भारत के मैदान (आर्यवर्त अथवा मध्य प्रदेश) में अपना गढ़ स्थापित किया। बाद में वे दक्षिण भारत पहुंचे तथा वहां बड़े राज्यों की स्थापना की। इस प्रजाति की मुख्य विशेषता इनका लम्बा कद, लम्बा सिर, लम्बा चेहरा, नीली आँखे तथा सुनहरे बाल हैं। इस प्रजाति के प्रतिनिधि पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणी उत्तराखण्ड में ऊंची जातियों, जैसे-राजपूत अथवा ब्राह्मण के बीच देखे जा सकते हैं। पश्चिम बंगाल तथा महाराष्ट्र में स्थानीय रूप से इस प्रजाति का अन्तर-मिश्रण अन्य प्रजातियों तथा मानवजातीय समूहों (Ethnic Groups) से हुआ।

यद्यपि भारतीय प्रजातियों तथा मानवजातीय समूहों का गुहा द्वारा दिया गया वर्गीकरण सबसे विश्वसनीय माना जाता है लेकिन वर्तमान विश्व में विभिन्न समूहों का अन्तर-मिश्रण अधिक हो रहा है। एकाकी तथा सापेक्षिक एकाकी के क्षेत्रों को सड़कों के द्वारा राष्ट्रीय व राज्य राजमार्ग से जोड़ा गया है, जिसके कारण विभिन्न प्रजातियों, धर्मों तथा जातियों के बीच परस्पर-क्रिया (Mutual Action) बढ़ गई है। 21वीं सदी के सांस्कृतिक परिदृश्य में कोई एकाकी समूह (Isolated Group) शायद ही ऐसा है, जो अपने प्रजाति तथा मानवजातीय समूह का सही तथा प्रारूपिक प्रतिनिधि है। प्रजातीय, मानवजातीय तथा जाति समूहों में लोगों का विभाजन उप-राष्ट्रवाद को जन्म देता है, जो राष्ट्रीय एकीकरण के प्रक्रिया के विपरीत है।

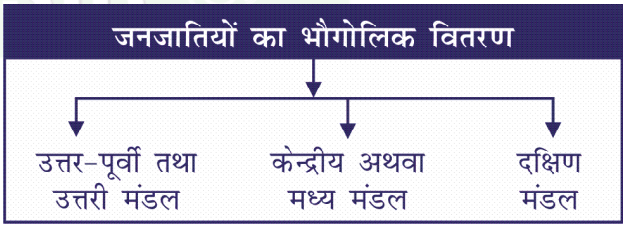
जनजातीय विविधता (Tribal Diversity)

कारकों की बहुलता (Multiplicity of Factors) तथा समस्या की जटिलता के कारण भारतीय जनजातियों का विभिन्न समूहों में वर्गीकरण करना बहुत सरल नहीं है। फिर भी भारत की जनजातियों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है:-



जनजातियों का भौगोलिक वितरण (Geographical Distribution of Tribes)

भारत के भौतिक मानचित्र को देखते हुए तथा जनजातीय जनसंख्या के वितरण के अनुसार हम पाते हैं कि भूगोल तथा जनजातीय जनसांख्यिकी भी क्षेत्रीय समूहीकरण (Grouping) तथा मण्डलीय वर्गीकरण की अनुमति देते हैं। बी.एस. गुहा ने भारतीय जनजातियों को तीन मण्डलों में वर्गीकृत किया है।



1. *उत्तर-पूर्वी तथा उत्तरी मण्डल–* इसमें हिमालय के नीचे का क्षेत्र तथा भारत की पूर्वी सीमाओं की पहाड़ी घाटियाँ सम्मिलित

हैं। असम, मणिपुर तथा त्रिपुरा के जनजातीय लोगों को इस भौगोलिक मण्डल के पूर्वी भाग में सम्मिलित किया जा सकता है, जबकि उत्तरी भारत में पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की जनजातियों को सम्मिलित किया जा सकता है।

असम तथा तिब्बत के मध्य रहने वाली कुछ महत्त्वपूर्ण जनजातियाँ अका, डफ़ला मिरी, गुरुंग व अपतानी सुबनसिरी नदी के पश्चिम में बसती हैं। 'मिश्मी' जनजाति देवांग तथा लोहित नदियों के बीच उच्च क्षेत्रों में बसती हैं तथा इसके पूर्व में खामती तथा हिंसको जनजाति पायी जाती हैं। नागा पर्वतों के दक्षिण में मणिपुर, त्रिपुरा राज्य के मध्य होकर तथा चिरागम पहाड़ियों की श्रृंखला में कुकी, लुशाई, खासी तथा गारों (अब नवगठित मेघालय राज्य के निवासी) जनजातियाँ रहती हैं। सिक्किम हिमालय के निचले क्षेत्र में तथा दार्जिलिंग के उत्तरी भाग में अनेक जनजातियाँ रहती हैं, उनमें लेप्चा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश के हिमालयी क्षेत्र में थारू, भोकसा, जौनसारी (खासा), मोठिया, राजी जैसी महत्वपूर्ण जनजातियाँ पायी जाती हैं।

सम्पूर्ण भौगोलिक मण्डल में विरल जनसंख्या पायी जाती है। (यद्यपि यह क्षेत्र पर्याप्त रूप से विस्तृत है) भौगोलिक समानता के फलस्वरूप इस मण्डल की अधिकांश जनजातियाँ या तो सोपान कृषि (टेरेस खेती) करती हैं, जिसे स्थानीय भाषा में झूम खेती भी कहते हैं। ये जनजातियाँ अधिकांशतया (Mostly) अत्यन्त निर्धन व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं।

2. ***केन्द्रीय अथवा मध्य मण्डल***– इस मण्डल में उत्तर भारत के गंगा मैदान तथा मोटे तौर पर दक्षिण में कृष्णा नदी के मध्य पठारों तथा पहाड़ी पट्टी सम्मिलित हैं तथा यह उत्तरी पूर्वी मण्डल से गारो पहाड़ियों तथा राजमहल पहाड़ियों के लुप्तांश द्वारा पृथक् हो जाती है। इस मण्डल में हम मध्य प्रदेश की जनजातीय जनसंख्या का एक जबरदस्त जमाव पाते हैं, जिसका विस्तार उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, दक्षिणी राजस्थान, उत्तरी महाराष्ट्र, बिहार तथा उड़ीसा तक है। उत्तरी राजस्थान, दक्षिणी महाराष्ट्र तथा बस्तर इस मण्डल की परिधि (Circumference) का निर्धारण करते हैं। इस मण्डल में बसने वाली महत्वपूर्ण जनजातियाँ सवारा, गदवा, गंजाम जनपद की वोरिडो, जवांग, खारिया, खोंड़, भूमिज तथा ओडिशा की पहाड़ियों की भुइयाँ हैं। छोटा नागपुर के पठार में मुण्डा, सन्थाल, ओराँव, हो व बिरहोर जनजातियाँ बसती हैं इसके और पश्चिम में विंध्य श्रृंखला के साथ कटकारी, कोल तथा भील जनजातियाँ रहती हैं। गोंड सबसे बड़े समूह की संरचना (Group Structure) करते हैं तथा 'गोंडवाना प्रदेश' के नाम से पुकारे जाने वाले क्षेत्र में रहते हैं। सतपुड़ा के दोनों ओर तथा मैकाल पहाड़ियों के चारों ओर भी जनजातियाँ पायी जाती हैं जैसे–कोराकू, अगारिया, परधान तथा वैगा, बस्तर की पहाड़ियों में कुछ सबसे रंगारंग (Colorful) जनजातियाँ रहती हैं जैसे मुरिया अबुझमार पहाड़ियों के पहाड़ी मुरिया तथा इन्द्रावती घाटी की गौर के सीमा वाली मारिया जनजातियाँ। इस मण्डल की अधिकांश जनजातियाँ अस्थायी कृषि (शिफ्टिंग खेती) के द्वारा अपना जीवनयापन करती हैं, किन्तु ओराँव, संथाल, मुण्डा तथा गोंड जनजातियों ने पड़ोसी ग्रामीण लोगों से सांस्कृतिक सम्पर्क के फलस्वरूप हल से कृषि करना सीख लिया है।

3. ***दक्षिण मण्डल***– इस मण्डल में दक्षिणी भारत का वह भाग आता है जो कृष्णा नदी के दक्षिण में है तथा जो वायनाड से केप केमोरिन तक फैला हुआ है। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, कुर्ग, ट्रावनकोर, कोचीन, तमिलनाडु आदि इस मण्डल में सम्मिलित हैं। इस मण्डल के उत्तर-पूर्व से प्रारम्भ करके चेंचू कृष्णा के उस पार नल्ली-मलाई पहाड़ियों के क्षेत्र तथा पूर्ववर्ती हैदराबाद राज्य में बसे हैं। दक्षिण किनारा के लोरागा से पश्चिमी घाटों के साथ-साथ यरुवा और टोडा कूर्म पहाड़ियों के निचले ढलान पर रहते हैं। जबकि इरुला, पलियन तथा कुरुम्बा वायनाड क्षेत्र में बसते हैं। भारतीय जनजातियों में सबसे आदिम जैसे-कडार, कानिक्कर, मालवादन, मलाकुखन आदि कोचीन तथा ट्रावनकोर के घने जंगलों में बसते हैं। वे विश्व के आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक पिछड़े लोगों में सम्मिलित हैं किन्तु उपरोक्त कथन के कुछ अपवाद (Exception) भी हैं जैसे टोडा, बदागा तथा कोटा जो नीलगिरि पहाड़ियों में रहते हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश जनसमूह अपने भोजन संग्रह के लिए आखेट तथा मछली पकड़ने पर निर्भर रहते हैं।

- यद्यपि गुहा ने अण्डमान तथा निकोबार द्वीपों के निवासियों को इन मण्डलों में भी सम्मिलित नहीं किया है तथापि इन जनजातीय लोगों को, चतुर्थ मण्डल की संरचना करने वाला कहा जाता है। इस मण्डल में रहने वाली मुख्य जनजातियाँ-जारवा, ओंगे, उत्तरी सेंटिनलीज, अण्डमानी, शैम्पेन तथा निकोबारी हैं। यद्यपि ये भारतीय जनजातियों की मुख्य धारा से अलग हैं, फिर भी दक्षिण भारतीय जनजातियों से सजातीय दृष्टि से अधिक निकट हैं।

भारत की कुछ प्रमुख जनजातियाँ (Same Major Tribes of India)

भारत की कुछ प्रमुख जनजातियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है:–

गोंड

गोंडों की आबादी लगभग एक करोड़ बत्तीस लाख (2011) है तथा भारत का सबसे बड़ा जनजातीय समूह (Tribal Group) है। यह जनजाति छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार तथा पश्चिम बंगाल में पायी जाती है। इस जनजाति का मुख्य संकेन्द्रण विंध्य तथा सतपुड़ा के बीच वन तथा

पहाड़ी क्षेत्रों में है। इस जनजाति की विशेषता इनका गहरा रंग, चपटी नाक, मोटे होंठ, सीधे बाल तथा छोटा कद है। इनकी भाषा गोंडी है, जिसका संबंध ऑस्ट्रिक जाति से है।

यह जनजाति 20-30 परिवारों के छोटे गांवों में रहती हैं तथा अपने घरों का निर्माण पूर्व-पश्चिम दिशा में सड़कों के दोनों ओर करते हैं। इनमें से ज्यादातर कृषि मजदूर अथवा छोटे स्थानाबद्ध (Localized) कृषक होते हैं। इनमें से कुछ, जैसे- ढीमर तथा केवट मत्स्यन पर निर्भर हैं, वही रावत मवेशी पालक हैं।

गोंड घोटुल (युवा-आवास) का निर्माण करते हैं। यह एक क्लब की ही भांति हैं, जहाँ अविवाहित लड़के तथा लड़कियां अलग-अलग कोठरी में सोते हैं तथा एक दूसरे को पसंद कर वैवाहिक बंधन में बंध जाते हैं। वे संगीत तथा नृत्य में भाग लेते हैं। वे गांव को रात्रि में सुरक्षा भी प्रदान करते हैं।

ऐसे प्रेम प्रसंगों को विवाह से पहले गुप्त रखा जाता है। लेकिन यह एक सामान्य सूझबूझ की बात है कि शायद ही कोई लड़की वैवाहिक संबंध से पहले कुंवारी रहती है। वास्तव में यह समुदाय शादी से पहले के यौन संबंधों की अनदेखी कर देता है, लेकिन शादी के बाद पति तथा पत्नी एक दूसरे के प्रति निष्ठावान होते हैं। इस समुदाय में सजातीय (Endogamy) विवाह होता है। इस जनजाति में बहुविवाह (Polygamy) प्रथा प्रचलित है। इस जनजाति में तलाक भी आम बात है। यह जनजाति जड़त्ववादी (जीववादी) धर्म में विश्वास रखती है तथा अपने वंश देवता का पूजन करती है।

गोंड परिश्रमी तथा ईमानदार होते हैं एवं चोरी को एक गंभीर अपराध मानते हैं। गोंड अंधविश्वासी (Superstitions) होते हैं तथा जादू-टोना व काला जादू में विश्वास करते हैं।

भील

भील जनजाति की कुल आबादी 1.7 करोड़ (2011) से अधिक है। भीलों के वास स्थान की विशेषता यहाँ पाए जाने वाले मैदान, पहाड़ियाँ, पठार तथा वन क्षेत्र हैं। वे एकाकी तथा सापेक्षिक रूप से एकाकी स्थानों में रहते हैं।

'भील' शब्द की उत्पत्ति द्रविड़ शब्द 'बिल्लू (अर्थ-धनुष)' से हुई है। दरअसल प्राचीन काल में भील अपनी धनुर्विद्या के लिये प्रसिद्ध थे, एकलव्य भी एक भील था।

कुछ मानव विज्ञानी भील को द्रविड़ से पहले की एक जनजाति मानते हैं, जिसका शासन राजपूतों से पहले राजस्थान पर था। भील भाषा राजस्थानी भाषा की एक शाखा है।

पहले भील जनजाति का मुख्य कार्य शिकार करना, खाद्य एकत्रण तथा चरागाही था। उनकी अर्थव्यवस्था स्थानीय संसाधनों पर आधारित थी। धीरे-धीरे यह जनजाति एक स्थान पर बसने लगी तथा इन्होंने स्थानाबद्ध कृषि (Local Agriculture) की शुरूआत की। उनके आर्थिक क्रियाकलाप में पशुपालन, मुर्गीपालन, चराई, वन उत्पादों का एकत्रण, लम्बरिंग, मत्स्यन तथा सेवा प्रदान करना शामिल हैं।

भील आर्थिक रूप से पिछड़ी तथा अत्यधिक गरीब जनजाति है। मदिरा सेवन तथा जुआ खेलने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ गई है। प्रायः वे दूसरे समुदायों के साहूकारों से धोखा खाते हैं। कृषि क्रियाकलापों में पुरुष तथा महिला दोनों भाग लेते हैं।

भील समाज विभिन्न राज्यों में 41 वंशों में विभाजित हैं। चूँकि भीलों का हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क रहा है, इसलिये उनकी प्रथाएँ तथा रिवाज (Custom and Traditions) इस जनजाति में देखी जा सकती हैं। देश के कई भागों में वे लगभग हिन्दू जनजाति बनकर रह गए हैं क्योंकि वे जन्म, मुंडन, विवाह तथा मृत्यु पर हिन्दू संस्कारों का अनुसरण (Pursuance) करते हैं।

भील जनजाति में विवाह न केवल सर्वव्यापक है, बल्कि अनिवार्य भी है क्योंकि अविवाहित पुरुष एवं महिला समाज द्वारा अच्छी नजर से नहीं देखे जाते हैं। लड़के लड़कियों को विवाह की पर्याप्त स्वतंत्रता है, वे अपने जीवन साथी का चयन करते हैं तथा इनका गांव के समुदाय द्वारा सामाजिक अनुमोदन (Approval) होता है। लेकिन निमर के ठाकुर भील इस स्वतंत्रता की इजाजत नहीं देते तथा वैवाहिक बंधन से पहले सगाई को प्रमुखता देते हैं।

तलाक दोनों पक्षों में से किसी के द्वारा गांव पंचायत की सहमति से लिया जा सकता है। इस जनजाति में बाल विवाह प्रथा प्रचलित नहीं है।

भील प्रकृति से जड़त्ववादी (जीववादी) होते हैं तथा यह उनके लोक संगीत एवं कला द्वारा प्रतिबिम्बित होता है। वे पुनर्जन्म में तथा आत्मा के स्थानांतरण में विश्वास रखते हैं। मोक्ष के लिये वे अच्छे आचरण पर बल देते है, वे अपदूतों, भूतों तथा काले जादू पर भी विश्वास रखते हैं। बीमारियों से बचने के लिये बड़वा (जादूगर) की सेवा ली जाती है। वे अंधविश्वासी भी होते हैं। इस जनजाति की महिलाओं में गोदना का प्रचलन है। वे अपने घरों के दीवार को लोक आकृतियों से सुसज्जित करते हैं। वे नृत्य तथा संगीत में भी रूचि रखते हैं तथा समुदाय के उत्सवों के लिये नौटंकी का भी आयोजन करते हैं।

समाज मूल रूप से पितृ प्रधान होता है। इस जनजाति के परिवार देवी तथा देवताओं के लिये आदर की भावना रखते हैं। इसके अलावा वे 'बाबा देव' तथा 'घट देव' की भी अर्चना करते हैं।

वे सामान्यतः छोटे-छोटे पुरवा बस्तियों में रहते हैं तथा अपने घरों का निर्माण करते हैं तथा अपने एकाकी परिवार का ध्यान रखते हैं।

संथाल

यह जनजाति, एक बड़ा जनजातीय समूह है। मानव वैज्ञानिक साक्ष्यों के अनुसार इस जनजाति का उद्गम द्रविड़ों से हुआ है, जिसकी संपुष्टि उनकी ऑस्ट्रिक भाषा (संथाली भाषा तथा कोल चिका लिपि) करती हैं। संथाली विचारक यह मानते हैं कि संथालों ने ही सिन्धु घाटी सभ्यता को विकसित किया।

संथाल मूल रूप से कृषक होते हैं (68%)। इस जनजाति की संपत्ति भूमि के रूप में होती है तथा शायद ही कोई संथाल भूमिहीन होता है। इसके अतिरिक्त यह जनजाति शिकार, मत्स्यन तथा वन उत्पादों के एकत्रण में भी जुटे रहते हैं। बढ़ती साक्षरता तथा सांस्कृतिक सम्पर्क (Cultural Contact) के कारण यह जनजाति सेवा, व्यापार तथा संविदा व्यापार के क्षेत्र में कार्य कर रही है। इस जनजाति की माँग वृहत झारखण्ड के लिये है, जिसका विस्तार पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा के संथाल क्षेत्रों में है।

संथालों की एक संस्कृति तथा एक सुस्पष्ट सामाजिक व्यवस्था होती है। विधवा-विवाह की इजाजत इस जनजाति में दी गई है। संथालों का समाज पितृ-प्रधान (Patriachal) होता है। संथाली महिलाएँ भी परिवार के आय में योगदान करती हैं। ये महिलाएँ कृषि क्रियाकलापों में भाग लेती हैं तथा वंदना उत्सव से पहले अपने घरों को सुसज्जित करती हैं।

कर्मा महिलाओं का एकमात्र त्योहार है, जो भादो के महीनों में मनाया जाता है। इस जनजाति के अन्य प्रमुख त्योहार रक्षाबंधन अथवा सोहराई (शीत ऋतु में फसल कटने के बाद) हैं।

संथाल जीववादी होते हैं तथा कई देवी व देवताओं में आस्था रखते हैं। चांदो (चाँद) सबसे बड़ी शक्ति है। जाहिर-एरा इस जनजाति के ग्रामदेव हैं।

नागा

नागा (जनसंख्या लगभग 2 मिलियन) उत्तर-पूर्वी भारत की एक बड़ी तथा राजनीतिक दृष्टि से जागरूक जनजाति है। इस जनजाति का सांस्कृतिक केन्द्र नागालैंड है, जहाँ वे कुल आबादी का लगभग 89 प्रतिशत हिस्सा हैं। वे मणिपुर, असम तथा मेघालय में अच्छी खासी संख्या में हैं। वे म्यांमार से सटे सीमावर्ती जिलों में भी देखे जा सकते हैं। जिस भू-भाग में नागा जनजाति रहती है, उसकी विशेषता ब्रेल श्रेणी तथा अराकान योमा का दंतुरित कटक है। नागालैंड में शीत ऋतु ठंडी होती है तथा ग्रीष्म ऋतु साधारण रूप से गर्म व आर्द्र होती है। अंग्रेजी नागालैंड की आधिकारिक भाषा है। यह भाषा नागालैंड के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एकीकरण में सहायक हुई है। नागाओं का गाँव सुरक्षा के कारण कटकों के ऊपर स्थित होता है। वे पहाड़ के ढालों का उपयोग वेदिका कृषि के लिये करते हैं।

जहाँ वेदिकाओं का विकास मुश्किल होता है, वे वहां स्थानांतरित कृषि (Shifting Agriculture) के अभ्यस्त हैं।

प्रत्येक गाँव में अविवाहितों के लिये एक मोरंग (समुदायिक शयनशाला) होता है जहाँ लड़के व लड़कियां दोनों रात में रहते हैं। यह एक युवा क्लब की तरह कार्य करता है, जहाँ युवाओं को जनजातीय प्रथाओं से अवगत कराया जाता है। उन्हें यौन शिक्षा भी दी जाती है तथा अक्सर विवाह के पूर्व के उनके संबंध ग्रामीण समुदाय की सहमति से स्थायी संबंधों (विवाह) में परिवर्तित हो जाते हैं।

नागा मुख्यतः कृषक समुदाय के होते हैं (87%)। वे स्थानांतरित कृषि (झूम कृषि) के अभ्यस्त हैं। कोहिमा के नजदीक अंगामी जनजाति ने धान की खेती के लिये वेदिकाओं का निर्माण किया है। वे धान, दलहन, सब्जी तथा कपास की खेती करते हैं। नागा अपने कलात्मक हस्तशिल्प के लिये मशहूर हैं खासकर बुनाई तथा लकड़ी पर नक्काशी के लिए।

नागाओं का एक सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन है, जो अनेकता में एकता का उदाहरण है। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी इस जनजाति में प्रचलन में है। परिवारिक तथा सामुदायिक मामलों में गाँव का मुखिया एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नागाओं में बाल विवाह का चलन नहीं है। यह जनजाति विवाह से पहले लड़कियों को अधिक आजादी देती है। वे एक सुखद जीवन जीते हैं। महिलाओं तथा पुरुषों दोनों के पहनावे अच्छे होते हैं। सामुदायिक अवसरों पर इस जनजाति के सदस्य नृत्य भी करते हैं। परम्परागत रूप से वे जीववादी हैं, लेकिन अब अधिकांश नागा ईसाई बन गए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह जनजाति आगे हैं।

थारू

थारू (जनसंख्या लगभग 1.25 लाख) उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड की सबसे प्रमुख जनजाति है। थारू का सबसे अधिक संकेन्द्रण ऊधमसिंह नगर के खटीमा तथा सितारगंज तहसील में है, जहाँ इनकी आबादी कुल जनसंख्या का लगभग 55% है। वे पीलीभीत, खीरी, गोरखपुर तथा बहराइच में भी पाए जाते हैं।

थारू मुख्य रूप से कृषक हैं। कृषि के मन्द महीनों में मत्स्यन इस जनजाति का मुख्य व्यवसाय हो जाता है।

इस जनजाति के कुछ लोगों के लिये शिकार करना तथा खाद्य एकत्रण मुख्य व्यवसाय है। थारू मुख्य रूप से मंगोलाइड प्रजाति के हैं, जिनमें कुछ गैर-मंगोलाई विशेषताएँ भी देखी जा सकती है।

थारू एक सुव्यवस्थित समुदाय है तथा इनके प्रत्येक गांव में एक ग्राम पंचायत होती है, जिसका प्रमुख प्रधान होता है, जो समुदाय के सब मामलों में एक अहम भूमिका निभाता है।

यद्यपि इस जनजाति का समाज पितृ प्रधान होता है लेकिन महिलाओं को ऊंचा दर्जा दिया गया है। थारू अपने आप को राजपूत मानते हैं। इस जनजाति में ज्यादातर हिन्दू धार्मिक रिवाज प्रचलन में हैं। वे होली, दीवाली तथा दशहरा भी मनाते हैं। वे जादू-टोना में भी विश्वास करते हैं। मूलतः इस जनजाति के लोग ईमानदार, शान्तिप्रिय तथा सीधे-साधे होते हैं, लेकिन बाहरी सम्पर्क के कारण इनके आचरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। थारू अत्यधिक अंधविश्वासी होते हैं तथा अपने पुरोहित में पूर्ण रूप से आस्था रखते हैं।

टोडा

तमिलनाडु के नीलगिरि जिले में तथा निकटवर्ती कर्नाटक के कुरनूल जिले में पायी जाने वाली टोडा एक लघुसंख्यक जनजाति है। यह जनजाति पशुचारणिक चलवासिता (Pastoral nomadism) का एक उदाहरण है। 'टोडा' शब्द की उत्पत्ति 'टांड्रा' से हुई है, जो इस जनजाति के लिये एक पवित्र वृक्ष है।

टोडा एक पशुचारी जनजाति (Pastoral Tribe) है। इस जनजाति की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से भैंसों के प्रजनन तथा डेरी उत्पादों पर आधारित है। इस जनजाति में भ्रातृ बहुपति-प्रथा (Fratenral Polyandry) देखा जाता है। सबसे बड़े भाई का विवाह जिस लड़की के साथ होता है, उस पर सभी छोटे भाइयों का समान अधिकार होता है। इस जनजाति का समाज पितृ-प्रधान है। विवाह एक साधारण समारोह होता है तथा तलाक यदा-कदा ही देखने को मिलता है। महिलाओं को आदर भाव के साथ देखा जाता है। यह जनजाति जीववादी है। वे टिकिरजी की पूजा करते हैं। अब ईसाई धर्म भी टोडा तक पहुंच रहा है।

इस देश में जनसंख्या की दृष्टि से अनेक भिन्नताएं पायी जाती हैं। यहाँ विभिन्न जनजातीय लोगों की कुल जनसंख्या वर्तमान में 10.43 करोड़ (2011) से कुछ अधिक ही है। प्रत्येक जनजातीय समूह के जीवन की एक विशिष्ट पद्धति है, जो अन्य जनजातियों की जीवन पद्धति से भिन्न है।

शीर्ष पाँच अनुसूचित जनजाति जनसंख्या वाले राज्य / के.शा.प्र.	
• मध्य प्रदेश (14.7%)	1,53,16,784
• महाराष्ट्र (10.1%)	1,05,10,213
• ओडिशा (9.2%)	95,90,756
• राजस्थान (8.9%)	92,38,534
• गुजरात (8.6%)	89,17,174

जनजातियों का भाषायी वर्गीकरण

भारत के जनजातीय लोग मुख्यत: तीन भाषा परिवारों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं:- 1. द्रविड़, 2. ऑस्ट्रिक, 3. तिब्बती-चीनी।

द्रविड़ भाषागत परिवार के अन्तर्गत आने वाली भाषाओं को बोलने वाले जनजातीय लोग मध्य तथा दक्षिणी भारत में बसते हैं।

गोंड द्रविड़ परिवार में बोली जाने वाली जनजातीय बोलियों में प्रमुख स्थान रखती है तथा यह गोंड जनजाति द्वारा, जो मध्य प्रदेश से आन्ध्र प्रदेश तक फैली है, विस्तार के साथ बोली जाती है। इसका कोई साहित्य नहीं है, किन्तु इसके बोलने वालों की संख्या बल को ध्यान में रखते हुए इसे जनजातीय भाषाओं के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इस समूह की एक अन्य महत्वपूर्ण भाषा 'कोई' है जो उड़ीसा के कांध, छोटा नागपुर की ओराँव तथा राजमहल पहाड़ियों के माल्टो द्वारा बोली जाती है। टोडा, पलियन, चेन्चू, इरुला तथा कादार भी द्रविड़ परिवार में सम्मिलित किए जाते हैं।

ऑस्ट्रिक परिवार की बोलियाँ मुण्डा भाषा परिवार के रूप में भी जानी जाती हैं। मैक्समूलर प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने उसे द्रविड़ भाषा परिवार से अलग किया तथा उन्होंने ही इस समूह को मुण्डा बोली परिवार का नाम प्रदान किया। इस परिवार की बोलियाँ मुख्यत: छोटानागपुर क्षेत्र की जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं किन्तु उनका प्रचलन, कुछ कम सीमा तक मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मद्रास तथा बिहार से शिमला की पहाड़ियों तक हिमालय के तराई क्षेत्रों में फैला है। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की संथाली बोली तथा बिहारी क्षेत्र की मुण्डारी, हो, खरिया, भूमिज व कुछ अन्य बोलियाँ भी इस परिवार में सम्मिलित हैं।

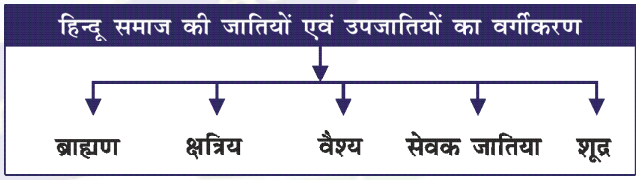
तिब्बती-चीनी बोलियाँ मंगोल प्रजाति समूह की अधिकांश जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं। यह परिवार दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है- 1. तिब्बत-बर्मी, 2. सियामी- चीनी। असम, मेघालय तथा उत्तर-पूर्वी भारत के अन्य भागों की जनजातियाँ इस परिवार की एक न एक बोली बोलते हैं।

जातीय विविधता (Caste Diversity)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की मौलिक विशेषता है, जो प्राय: भारत के प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में पायी जाती है। यह भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) के एक प्रमुख स्वरूप को परिलक्षित करती है।

जाति व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय समाज कुछ जातीय समूहों में वर्गीकृत है और ये समूह सोपानिक रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसके अंतर्गत एक जाति समूह एक अंतर्विवाही समूह होता है जिसकी सदस्यता जन्मजात होती है, उसका एक निश्चित व्यवसाय होता है और जो कुछ विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं (Privileges and Disabilities) के साथ खान-पान और सामाजिक सहवास संबंधी निषेधों का पालन करता है।

हिन्दू समाज अनेक जातियों एवं उपजातियों में विभक्त है। इसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं:-



1. **ब्राह्मण–** नम्बूदरी, चितपावन, सारस्वत, कान्यकुब्ज, सरयूपारणी, बंगाली, तमिल एवं कश्मीरी।
2. **क्षत्रिय–** सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, राजपूत: परिहार, चौहान, राठौर, कुशवाह आदि।
3. **वैश्य–** अग्रवाल, गुप्ता, चेट्टियार, मारवाड़ी, गहोई, साहू, महाजन, सेठ आदि।
4. **सेवक जातिया–** अहीर, कुर्मी, सोनार, नोनिया, काछी, कहार, कोटार, नाई, लोहार, बढ़ई, माली, बारी आदि।
5. **शूद्र–** चमार, महार, मांग, धोबी, हेला, भंगी, दुसाध, धरकार।

भारतीय समाज में विविधताओं में मौलिक एकता
Fundamental Unity in Diversity in Indian Society

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत एक बहुलवादी समाज है जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। यहाँ जलवायुवीय एवं भाषायी विविधता के साथ अनेक संस्कृतियाँ हैं। कला एवं साहित्य, परंपरा एवं विश्वासों में विभिन्नता है। लेकिन इस विभिन्नताओं के बावजूद भारतीय समाज में एकता की विभिन्न कड़ियां मौजूद है। ये कड़ियां यद्यपि कभी-कभी सांस्कृतिक संघर्षों एवं नृजातीय संघर्षों के कारण कमजोर होती दिखती है, किंतु वे स्वतः मजबूत भी हो जाती है। वर्तमान वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के युग में यह विभिन्नता कम हुई है, जिससे भारतीय समाज के विविध समुदायों में पहचान की समस्या उत्पन्न होती दिखाई दे रही है। इसके बावजूद वर्तमान परिवर्तनशील विश्व में जहाँ भारत के पड़ोसी देश अपने एकरंगी समाज को भी एक सूत्र में नहीं बांध पाए एवं असफल राष्ट्र बन गए है, वहीं भारतीय समाज ने अपनी ग्रहणशीलता एवं लचीलेपन के कारण अपनी बहुरंगी छवि को कायम ही नहीं रखा बल्कि उसे और मजबूत बनाया है। भारत की यह बहुरंगी संस्कृति एवं अनेकता भारत की कमजोरी नहीं बल्कि उसकी मजबूती को बयां करती है तथा उसे विश्व में एक विशिष्ट प्रस्थिति (Status) प्रदान करती है।

भारतीय समाज में एकता के लक्षणों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:-

भौगोलिक विविधता में एकता (Unity in Geographical Diversity)

भारत एक बड़ा भौगोलिक क्षेत्र है, जहाँ की प्रकृति एवं पर्यावरण में भिन्नता दिखाई पड़ती है, किंतु ये विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र मिलकर भारत को एक उपमहाद्वीप के रूप में निर्मित करते हैं। यहाँ विभिन्न क्षेत्र इतने अलग नहीं है कि इनको पार करते हुए वहां तक पहुंच नहीं बनायी जा सकती दक्षिण भारत का व्यक्ति आराम से हिमालयी राज्यों एवं पूर्वोतर क्षेत्र में आ जा सकता है। भारत के अधिकांश क्षेत्र एक ही ऋतु चक्र से प्रभावित है। मानसूनी वर्षा भारत के अधिकांश क्षेत्रें को प्रभावित करती है हिमालय की नदियों का पानी विभिन्न राज्यों से बहता हुआ दक्षिण पूर्वी तट पर समुद्र में गिरता है तथा समुद्र का जल वाष्पित होकर हिमालय को पुनः हिमाच्छादित करता है।

यद्यपि भारतवर्ष को भौगोलिक दृष्टिकोण से कई क्षेत्रों में विभक्त किया गया है फिर भी भारत एक सम्पूर्ण भौगोलिक इकाई है। प्रायद्वीप का सीमा क्षेत्र दुर्गम हिमाच्छादित पर्वतों, सागरों का बना है जो इस देश के लोगों को अन्य देशों व वहां की संस्कृतियों से पृथक तो करता ही है, साथ ही इस भू-भाग में बसने वालों को राष्ट्रीय स्वरूप भी प्रदान करता है। यहाँ की पर्वतमालाएँ, नदियां, कछार, पठार, मैदान तथा सागर तट एक दूसरे के पूरक होकर जनजीवन को प्रभावित करते हैं तथा किसी एक भू-भाग पर आक्रमण अथवा अतिक्रमण होने पर समूचा देश उद्वेलित हो उठता है।

धार्मिक विविधता में एकता (Unity in Religious Diversity)

भारत में विभिन्न धर्मावलम्बी (Religious) रहते हैं उनके देवता या आदर्श भिन्न दिखाई पड़ते हैं किंतु उन सभी धर्मावलम्बियों में एकता के तत्व विराजमान हैं। सभी धर्मावलम्बियों में एकेश्वरवाद, आध्यात्मवाद, मुक्ति की अवधारणा, उपासना की एक निश्चित पद्धति, कर्म की अवधारणा, माया विचार, जगत की शाश्वतता (Eternity) का मूल्य, आध्यात्मिक सत्ता से संबंध जोड़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है। विभिन्न धर्मावलम्बियों के त्यौहारों में अन्य धर्म के लोग भाग लेते हैं जो कि भारत की सांस्कृतिक एकता (Culture Unity) का प्रतीक है। भारत की धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था ने भी विभिन्न धर्मों के बीच भिन्नता के होते हुए भी उनको एकता के सूत्र में बांध दिया है क्योंकि भारत का कोई राजधर्म नहीं है और राज्य की नजर में सभी धर्मों का समान महत्व है।

देश में विभिन्न धर्मावलम्बी हैं जो अपनी पद्धति के अनुसार उपासना करते हैं। ये धर्म व्यक्ति के जन्म व जाति से जुड़े रहते हैं। देश के सभी क्षेत्रों में धर्मावलंबियों के तीर्थस्थल हैं। आध्यात्म, मत-मतान्तर एंव साहित्य ने एक दूसरे धर्म से बहुत कुछ अंगीकार किया है और जनजीवन पर गंगा-जमुना ने बहुरंगी छवि छोड़ी है। धार्मिक सहिष्णुता का पराक्रम ऐसा रहा है कि सभी धर्म एक ही रंग में रंग से गये हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता में एकता (Unity in Socio-Cultural Diversity)

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बसे लोगों के परिवार, विवाह, रीति-रिवाज, वस्त्र शैली, आदि में भी पर्याप्त भिन्नता के बावजूद समाज व्यवस्था में सांस्कृतिक एकता के दर्शन होते हैं। संयुक्त परिवार-प्रणाली, जाति प्रथा, ग्राम पंचायत, गोत्र व वंश-व्यवस्था भारतीय समाज के आधार रहे हैं। रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, होली, ईद, मोहर्रम आदि त्यौहारों का फैलाव समूचे भारत में है। इसी प्रकार सारे देश में जन्म-मरण के संस्कार व विधियां, विवाह-प्रणालियां, शिष्टाचार, आमोद-प्रमोद, उत्सव, मेलों, सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं में पर्याप्त समानता देखने को मिलती है। भारतीय जीवन में कला की एकता भी कम उल्लेखनीय नहीं है। स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत आदि के क्षेत्र में हमें अखिल भारतीय समानता देखने को मिलती है।

देश के विभिन्न भागों में बने मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, आवास भवनों तथा इमारतों में भी कला के अपूर्व संयोजन का आभास होता है। दरबारी, ध्रुपद, भजन, टप्पा, गजल, यहाँ तक कि पाश्चात्य धुनों का भी विस्तार सारे भारतवर्ष में है। इसी प्रकार भरतनाट्यम, कथककली, कत्थक आदि नृत्य भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। अतः कला के क्षेत्र में भारत में अखण्ड एकता है।

भारतीय समाज में यद्यपि संगीत एवं कलाएं विविध रूपों में विराजमान रही है, किंतु अखिल भारतीय स्तर पर इन कलाओं का प्रचलन हर क्षेत्र में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए यद्यपि द्रविड़ शैली दक्षिण भारत एवं नागरशैली उत्तर भारत की मंदिर निर्माण कला शैली है किंतु इनका फैलाव सम्पूर्ण भारत में दिखाई पड़ रहा है। इसी प्रकार संगीत के विभिन्न घरानों का संगीत अखिल भारतीय स्तर पर विराजमान है।

भाषाई विविधता में एकता (Unity in Linguistic Diversity)

भारत वर्ष में भाषाओं की बहुलता (Multiplicity of Languages) है परन्तु रोचक तथ्य तो यह है कि वे सभी एक ही सांचे में ढली हुई हैं। अधिकांश भाषाओं की वर्णमाला एक ही है व उन सभी पर संस्कृत भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। डॉ॰ लूनिया ने लिखा है कि ईसा से पूर्व तृतीय शताब्दी में इस विशाल देश की एक ही राष्ट्रभाषा प्राकृत भाषा थी। कतिपय शताब्दी पश्चात संस्कृत जैसी एक अन्य भाषा ने इस उप-महाद्वीप के दूरस्थ भागों में भी अपना प्रभाव जमा लिया। त्रिभाषा फार्मूले के अंतर्गत शिक्षण संस्थाओं में छात्रों को हिन्दी, अंग्रेजी व एक अन्य प्रान्त की भाषा सिखायी जाती है। इससे विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच एकता के भाव पैदा हुए हैं। समस्त देश को एक सूत्र में पिरोने का काम पहले प्राकृत व संस्कृत भाषा ने किया, वर्तमान में यह अंग्रेजी एंव हिन्दी भाषा द्वारा किया जा रहा है।

प्रजातीय विविधता में एकता (Unity in Racial Diversity)

यह सच है कि भारत वर्ष प्रजातियों का एक अजायबघर है। यहाँ विश्व की तीन प्रजातियां श्वेत, पीत, और श्याम वर्ण तथा इनकी उप शाखाओं के लोग निवास करते हैं। प्रजातीय भिन्नता (Racial Difference) होने पर भी अमेरिका एंव अफ्रीका की भांति यहाँ प्रजातीय संघर्ष (Racial Conflict) एंव टकराव रंगभेद के आधार पर नहीं हुए वरन पारस्परिक सद्भाव और सहयोग ही पनपा है। बाहर से आयी आर्य, द्रविड़, शक, हूण, तुर्क, पठान, मंगोल आदि प्रजातियाँ हिन्दू समाज में इतनी घुल मिल गई है कि इनके पृथक अस्तित्व को आज पहचानना कठिन है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बाहरी तौर पर भारतीय समाज, संस्कृति व जनजीवन में विभिन्नताएं दिखलाई देने पर भी भारत एक है, मौलिक व अखण्ड रूप से एक है। एक ही है इसकी संस्कृति, धर्म, भाषा और राष्ट्रीयता। इस एकता को नष्ट नहीं किया जा सकता।

भारतीय समाज में विविधताजनित चुनौतियाँ
Challenges Arising from Diversity in Indian Society

भारतीय समाज विविधताओं से युक्त है। भारतीय समाज की विविधता जहाँ इसे कई रूपों में मजबूती प्रदान करती है तो वहीं इसके समक्ष कई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है।

भारत एक बहुधार्मिक समाज (Multi-religious Society) है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी आदि धार्मिक समुदाय के लोग निवास करते हैं। भारतीय समाज की यह धार्मिक विविधता सम्प्रदायवाद के रूप में भारतीय समाज के समक्ष एक महत चुनौती प्रस्तुत कर रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् से हमें लगातार सम्प्रदायिक दंगों का सामना करना पड़ रहा है। सम्प्रदायवाद का विस्तार कश्मीर से तमिलनाडु एवं गुजरात से असम तक देखा जा सकता है। 1984 के सिख दंगे, 2002 के गुजरात दंगे तथा अभी हाल ही में हुए असम दंगे एवं मुजफ्फरनगर दंगे भारतीय विविधता के समक्ष गंभीर चुनौती पेश कर रहे हैं। आज धर्म आधारित आतंकवाद भी भारतीय समाज की एकता व अखंडता के समक्ष एक वृहद चुनौती प्रस्तुत कर रहा है।

भारतीय समाज की नृजातीय विविधता (Ethnic Diversity) क्षेत्रवाद व अलगाववाद के रूप में चुनौती पेश कर रही है। क्षेत्रवाद व अलगाववाद भारतीय समाज की एकता व अखंडता के समक्ष लगातार खतरा प्रस्तुत कर रहा है। क्षेत्रीयता की वैचारिकी ने भूमि पुत्र (Sun of the soil) के नारे के आधार पर क्षेत्रीय पृथकतावादी आन्दोलन उभारा है। गोरखालैंड, बोडोलैंड तथा खालिस्तान के निर्माण से सम्बन्धित आन्दोलनों ने भारतीय एकता, अखंडता व स्थायित्व के समक्ष गंभीर चुनौती पेश की है। क्षेत्रवाद से सम्बन्धित एक प्रमुख समस्या स्थानीय बनाम बाहरी का भी रहा है। असम में बिहारी मजदूरों की हत्या एवं भगाया जाना, महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों द्वारा बाहरी लोगों का विरोध आदि घटनाएँ भी भारतीय समाज की विविधता में एकता के समक्ष गंभीर चुनौती पेश कर रही हैं।

भारत में जाति व्यवस्था एक संस्था के रूप में अत्यंत प्राचीन है। भारतीय जाति व्यवस्था के अन्तर्गत सैकड़ों जातियों की उपस्थिति जातीय विविधता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। किन्तु जातिवाद भारतीय समाज के जातीय विविधता के समक्ष कई रूपों में गंभीर चुनौती पेश कर रहा है। जातिवाद का आधुनिक स्वरूप भारत में औपनिवेशिक काल में उभरा है। आधुनिक काल में जातिवाद ने अगड़ी एवं पिछड़ी जातियों को सामाजिक दृष्टि से एक दूसरे के विरूद्ध लामबंद किया है। जातीय ध्रुवीकरण ने जातीय संघर्ष को बढ़ाया है। इसका विकराल रूप जातीय नरसंहारों के रूप में दृष्टिगत होता है। आज हमारा समाज जातीय हिंसा एवं जातीय संघर्ष आदि का सामना कर रहा है। इसके कारण विभिन्न जाति समूहों के मध्य कटुता का फैलाव हुआ है।

भारतीय समाज में भाषा के आधार पर भी विविधता दृष्टिगत होती है। भाषायी विविधता (Linguistic Diversity) भाषावाद के रूप में चुनौती प्रस्तुत कर रही है। दक्षिण भारत में हिन्दी विरोधी आन्दोलनों को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। भाषायी आधार पर अक्टूबर, 1953 में तेलगु भाषी राज्य आन्ध्र प्रदेश के निर्माण के

पश्चात् भारत के विविध क्षेत्रों-गुजरात, पंजाब, हरियाणा, नागालैंड आदि में भी पृथकतावादी आन्दोलन का दौर शुरू हुआ तथा कालांतर में भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। भाषायी आधार पर राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया ने कई क्षेत्रीय आन्दोलनों को जन्म दिया जैसे-तेलंगाना का पृथकतावादी आन्दोलन, विदर्भ आन्दोलन, द्रविड़स्तान आन्दोलन इत्यादि। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि विभिन्न राज्यों में गैर भाषायी अल्पसंख्य समूहों के प्रति बैर की भावना विकसित हुई। उपरोक्त घटनाएँ भारतीय समाज की विविधता में एकता के समझ एक महत्वपूर्ण चुनौती पेश कर रहे हैं।

उपरोक्त विवेचन भारतीय समाज की विविधता जनित चुनौतियों को स्पष्ट करते हैं। परन्तु उपरोक्त चुनौतियों का एक मात्र कारण विविधता को ठहराना तार्किक नहीं होगा क्योंकि विविधता तो भारतीय समाज की प्राचीन काल से ही प्रमुख विशेषता रही है, परन्तु अधिकतर विविधता जनित चुनौतियाँ नवीन परिघटना है। अत: यह कहना अधिक तार्किक होगा कि कई कारकों ने भारतीय समाज के विविधता युक्त वातावरण ने कई कारकों के साथ संयुक्त होकर उपरोक्त चुनौतियों को उत्पन्न किया है।

भारतीय समाज-विविधता में एकता : संभावित प्रश्न

1. भारतीय समाज की विविधता के विभिन्न पहलुओं की चर्चा कीजिए। भारतीय समाज एकता में अनेकता एवं अनेकता में एकता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय समाज की विविधता ने भारत का एक राष्ट्र के रूप में समेकन में किस प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न की है। चर्चा करें।
3. वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज की विविधता को किस प्रकार प्रभावित किया है? उत्तर दीजिए।
4. "वर्तमान सम्प्रदायिक हिंसा व क्षेत्रवाद की बढ़ती घटनाएँ भारतीय समाज की अनेकता में एकता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं।" स्पष्ट कीजिए।
5. भारतीय समाज की विविधता को एकता के सूत्र में पिरोने वाले कारकों को स्पष्ट कीजिए।
6. लुप्त होती जनजातियाँ जनजातीय विविधता के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं। इस चुनौती से निपटने के उपाए सुझाएँ।
7. भारत में भाषाई विविधताजनित चुनौतियों से निपटने हेतु भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की नीति कहाँ तक सफल रही, अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

10 जनसंख्या संबंधी मुद्दें (Population Related Issues)

पारिभाषिक शब्दावली (Glossary Term)

- ***जनसंख्या (Population):*** किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले व्यक्तियों के समूह को जनसंख्या कहते हैं।
- ***जनगणना (Census):*** जनगणना जनसंख्या के आँकड़ों को संकलित करने की सबसे विश्वसनीय विधि है। इसका अभिप्राय, किसी देश या उसके द्वारा सीमांकित क्षेत्र में किसी विशिष्ट समय पर सभी व्यक्तियों से सम्बन्धित जनांकिकी, आर्थिक एवं सामाजिक आँकड़ों को संकलित करने, एकत्रित करने व प्रकाशित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है।
- ***डी फैक्टो विधि (De-facto Method):*** इस पद्धति के अनुसार सारे देश में सभी व्यक्तियों की गणना पूर्व निर्धारित रात या दिन में उसी स्थान पर कर ली जाती है जहाँ वह जनगणना के समय उपस्थित होता है। इसमें गणना का कार्य एक ही रात या दिन में पूरा कर लिया जाता है। इसे One Night Enumeration या date system भी कहते हैं।
- ***डी जुरे विधि (De-jure Method):*** इस पद्धति के अंतर्गत व्यक्तियों की गणना उनके निवास स्थान के आधार पर एक पूर्व निर्धारित अवधि में की जाती है।
- ***जनसंख्या पिरामिड (Population Pyramid):*** यदि आयु और लिंग संरचना का आरेखीय चित्रण प्रस्तुत किया जाए तो यह एक पिरामिड का आकार ग्रहण कर लेता है। इस रेखीय चित्रण को ही जनसंख्या पिरामिड या आयु लिंग पिरामिड कहते हैं।
- ***जनसंख्या घनत्व (Population Density):*** किसी देश में निवास करने वाली जनसंख्या व सम्बन्धित क्षेत्र के क्षेत्रफल के पारस्परिक अनुपात को जनसंख्या घनत्व कहा जाता है, जिसको किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या में उस क्षेत्र विशेष के क्षेत्रफल का भाग देकर प्राप्त किया जाता है।
- ***लिंग अनुपात (Sex Ratio):*** यह किसी विशिष्ट समय में किसी देश या स्थान के स्त्री तथा पुरुष जनसंख्या के बीच अनुपात को प्रदर्शित करता है।

$$\text{लिंग अनुपात} = \frac{\text{स्त्रियों की कुल जनसंख्या}}{\text{पुरुषों की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

- ***प्रजननशीलता व उर्वरता (Fertility and Fecundity):*** प्रजननशीलता का अभिप्राय: किसी स्त्री या स्त्री समूह द्वारा समय विशेष में कुल सजीव जन्में बच्चों की वास्तविक संख्या से है। उर्वरता (Fecundity) से तात्पर्य किसी स्त्री में बच्चों को जन्म देने की क्षमता से है चाहे उसने बच्चों को जन्म दिया हो या न दिया हो।
- ***अशोधित जन्म दर (Crude Birth Rate):*** यह किसी वर्ष विशेष में जन्में कुल बच्चों की संख्या तथा उस वर्ष की कुल जनसंख्या के मध्य अनुपात को प्रदर्शित करता है, जिसे सामान्यत: प्रति एक हजार में व्यक्त किया जाता है।
- ***कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate):*** यह बच्चों की वह संख्या है जो किसी भी स्त्री के सम्पूर्ण प्रजनन काल में उत्पन्न होते हैं।
- ***अशोधित मृत्यु दर (Crude Death Rate):*** यह किसी वर्ष विशेष में कुल मृत्युओं की संख्या तथा उस वर्ष के कुल जनसंख्या के मध्य अनुपात को प्रदर्शित करता है, जिसे सामान्यत: एक हजार में व्यक्त किया जाता है।
- ***शिशु मृत्यु दर (Child Death Rate):*** किसी निश्चित वर्ष में एक वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की मृत्यु संख्या और उसी वर्ष में सजीव जन्में बच्चों की संख्या का अनुपात, शिशु मृत्यु दर कहलाता है।

जनांकिकी संक्रमण सिद्धांत (Demographic Transition Theory)

जनांकिकी संक्रमण का तात्पर्य यह है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के समग्र स्तरों से जुड़ी होती है एवं प्रत्येक समाज विकास से संबंधित जनसंख्या वृद्धि के एक निश्चित स्वरूप का अनुसरण (Pursuance) करता है। इस सिद्धांत के द्वारा ऐसे सामान्य नियमों का प्रतिपादन (Rendering) करने का प्रयास किया गया है जो औद्योगीकरण के फलस्वरूप मानवीय जनसंख्या की मात्रा और संरचना में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार यह माना जाता है कि जनसंख्या विकास तीन अवस्थाओं से गुजरा है।

1. ***प्रथम अवस्था:*** पूर्व औद्योगिक समाजों में जनसंख्या लगभग स्थिर थी अर्थात् इस काल में जन्मदर व मृत्यु दर दोनों ही ऊँची थी।
2. ***द्वितीय अवस्था:*** स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता आदि में प्रगति के फलस्वरूप मृत्युदर में कमी आती है परन्तु जन्मदर यथावत रहती है। फलत: जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती है।
3. ***तृतीय अवस्था:*** जीवन स्तर में सुधार व सामाजिक विकास के कारण जन्म दर व मृत्यु दर दोनों कम होते हैं। फलत: जनसंख्या लगभग स्थिर होती है।

भारत में जनांकिकी संक्रमण
(Demographic Transition in India)

भारत में जनसंख्या संबंधी आंकडों का अध्ययन किया गया है और इसकी निम्न अवस्थाओं की चर्चा की गयी है:-

1. ***Ist Stage (1891-1921)—*** स्थिर जनसंख्या/मंदवृद्धि का काल
2. ***IInd Stage (1921-1971)—*** जनसंख्या विस्फोट का काल
3. ***IIIrd Stage (1971-1991)—*** जनसंख्या वृद्धि धीमी गति से, जन्मदर के साथ मृत्युदर में भी गिरावट
4. ***IVth Stage (1991-2020 या 2045)-*** जहाँ अनुमानित किया गया है कि जन्मदर-मृत्युदर दोनों कम हो जायेंगे और जनसंख्या वृद्धि स्थिर होगी।

भारत की जनसंख्या-आकार, संगठन एवं वितरण
(Population of India - Size, Organization Distribution)

जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश भारत है। 1991 में भारत की जनसंख्या विश्व के विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का 19.1 प्रतिशत थी। आज वह सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या के लगभग 17.5 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है, जबकि उसका भू-क्षेत्र विश्व के कुल भू-क्षेत्र का मात्र 2.4 है। जनसंख्या में इस तीव्र वृद्धि का कारण मृत्युदर में हुई तीव्र गिरावट है। 1981 की जनगणना के अनुसार देश की प्रत्येक हजार की जनसंख्या पर जन्म-दर 33.3 और मृत्युदर 12.5 थी जबकि 1991 में जन्म दर व मृत्युदर के आँकड़े प्रति हजार की जनसंख्या पर क्रमशः 30.0 और 10.0 थे जो 2001 में क्रमशः 26.1 व 8.3 तथा 2011 में क्रमशः 20.22 व 7.4 पहुंच गए। इस प्रकार जन्म-दर और मृत्युदर दोनों में गिरावट आई है किन्तु जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को देखते हुए यह गिरावट पर्याप्त नहीं है।

भारत में जनसंख्या वृद्धि (Population Growth in India)

जनगणना का वर्ष	आबादी (करोड़ में)	औसत वार्षिक वृद्धि दर%
1901	23.83	0.30
1911	25.20	0.56
1921	25.13	-0.03
1931	27.89	1.04
1941	31.86	1.33
1951	36.10	1.25
1961	43.91	1.96
1971	54.82	2.22
1981	68.52	2.20
1991	84.63	2.16
2001	102.87	1.97
2011	121.05	1.64

भारत में जन्मदर एवं मृत्यु दर
(Birth Rate and Death Rate in India)

वर्ष	प्रति 1000 व्यक्तियों पर जन्म दर	प्रति 1000 व्यक्तियों पर मृत्यु दर
1901	–	–
1911	49.2	42.6
1921	48.1	47.2
1931	46.4	36.6
1941	45.2	31.2
1951	40.8	25.1
1961	40.9	22.8
1971	41.1	18.9
1981	33.9	12.5
1991	30.0	10.0
2001	26.1	8.8
2011	20.22	7.4

भारत में जनसंख्या घनत्व
(Population Density in India)

जनगणना का वर्ष	प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व
1901	77
1911	82
1921	81
1931	90
1941	103
1951	117
1961	142
1971	177
1981	216
1991	267
2001	325
2011	382

भारत में जनसंख्या की सघनता (Density) या जन घनत्व 1901 के 77 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 2011 में 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। इस प्रकार जनसंख्या की सघनता में 5 गुना वृद्धि हुई है।

भारत में जन घनत्व क्षेत्रीय स्तर पर अत्यंत विविधता लिए हुए है। सबसे कम सघनता अरुणाचल प्रदेश में है जहाँ एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में केवल 17 व्यक्तियों का अनुपात है। कम जनघनत्व वाले अन्य राज्य मिजोरम, सिक्किम, मणिपुर, नागालैण्ड हैं। असम और त्रिपुरा को छोड़कर सभी पूर्वोत्तर राज्यों में जनसंख्या की सघनता कम है। समान रूप से हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर जैसे पहाड़ी राज्यों

में भी जनघनत्व कम है। दिल्ली, चण्डीगढ़ और पुदुचेरी में जनसंख्या की सघनता सबसे ज्यादा है। जिन स्थानों में जनसंख्या की सघनता राष्ट्रीय औसत से तिगुना से अधिक है वे हैं दमन और दीव, जहाँ दोगुना या उससे ज्यादा हैं, वे हैं बिहार, केरल और पश्चिमी बंगाल, जिन राज्यों में जनसंख्या की सघनता राष्ट्रीय औसत से ऊपर है वे हैं-गोवा, असम, झारखण्ड, पंजाब, तमिलनाडु, हरियाणा और दादर नगर हवेली। राष्ट्रीय औसत से कम सघनता वाले राज्य हैं- महाराष्ट्र, त्रिपुरा, कर्नाटक, गुजरात और आंध्र प्रदेश।

भारत में स्त्री-पुरुषों का परस्पर अनुपात लम्बे समय से पुरुषों के पक्ष में है। 1901 में जहाँ स्त्रियों का अनुपात प्रति एक हजार पुरुष पर 972 था, वहीं 2011 में स्त्रियों की यह संख्या घटकर 943 हो गयी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में स्त्री पुरुष लिंगानुपात में निरन्तर गिरावट देखी जा सकती है। यद्यपि 2001 की तुलना में 2011 की जनगणना के लिंगानुपात (Sex Ratio) में 10 अंक तक की वृद्धि हुई है।

जनसंख्या से जुड़ा दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय साक्षरता की दर है। 'पोस्टकार्ड लिख और पढ़ सकने वाली' साक्षरता (Literacy) की परिभाषा के अनुरूप भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार 74.04 प्रतिशत साक्षरता है। पुरुषों में साक्षरता की दर 82.14 प्रतिशत है जबकि स्त्रियों में यह केवल 65.46 प्रतिशत है। स्त्री-पुरुषों के बीच साक्षरता सम्बन्धी यह अन्तराल बहुत ही स्पष्ट है। केरल देश का पहला राज्य है जहाँ लगभग शत-प्रतिशत लोग साक्षर हैं। हिन्दी भाषी राज्यों में साक्षरता दर कम है।

भारत की कुल आबादी के लगभग 16.6 प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों के हैं। यह आबादी लगभग एक हजार जातियों में बंटी हुई है अनुसूचित जातियों में प्रमुख हैं- चमार (जिनकी संख्या कुल अनुसूचित जातियों की एक चौथाई है), भंगी, आदि-द्रविड़, पासी, मडिगा, दुसाध, माली, परियन, कोली या कोरी, महार, नामशूद्र आदि।

अनुसूचित जातियों की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हिन्दी भाषी राज्यों में रहता है। दक्षिण में अनुसूचित जातियों की आबादी मुख्यतः तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में केन्द्रित है। पूर्व में उनकी आबादी पश्चिम बंगाल में केन्द्रित है। कुल आबादी में अनुसूचित जातियों के लोगों का सर्वाधिक अनुपात (28.9 प्रतिशत) पंजाब में है इसके बाद हिमाचल प्रदेश (25 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (22 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (20.69 प्रतिशत) और हरियाणा (19 प्रतिशत) का स्थान है। देश में जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक अनुसूचित जाति वाला राज्य उत्तर प्रदेश है। अनुसूचित जातियों की ज्यादातर आबादी (84 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हैं और वे लोग खेतिहर मजदूर, बटाईदार, छोटे किसान और कारीगर के रूप में जीविका अर्जित करते हैं।

जनजातियों की संख्या देश की कुल आबादी का लगभग 8.6 प्रतिशत है। उनकी गणना देश के दुर्बलतम वर्गों में की जाती है। उनकी भाषा व बोलियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं और वे देश के सभी प्रकार के भू-जलवायु क्षेत्रों में रहते हैं। जनजातियों की आबादी का 55 प्रतिशत हिस्सा देश की पूर्वी और केन्द्रीय जनजाति पट्टी में केन्द्रित है। भारत में सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति मध्य प्रदेश में पायी जाती है जो राज्य की समस्त जनसंख्या का 21.1% है। उनकी लगभग 28 प्रतिशत आबादी गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, दादर-नगर हवेली और गोवा, दमन एवं दीव की पश्चिमी जनजाति पट्टी में रहती है और 6 प्रतिशत आबादी दक्षिण के आन्ध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। देश में चार राज्य और दो केन्द्र शासित प्रदेश ऐसे हैं जहाँ कि 65 प्रतिशत से अधिक आबादी अनुसूचित जनजातियों के वर्ग में आती है, जैसे-मेघालय (80.58 प्रतिशत), नागालैण्ड (83.99 प्रतिशत), अरुणाचल प्रदेश (66.82 प्रतिशत), मिजोरम (93.55 प्रतिशत), दादर नगर हवेली (76.82 प्रतिशत) और लक्षद्वीप (93.82 प्रतिशत)। पाँच राज्य ऐसे भी हैं जहाँ 20 प्रतिशत से अधिक आबादी जनजातियों की है, जैसे-मध्य प्रदेश (22.97 प्रतिशत), मणिपुर (37.30 प्रतिशत), उड़ीसा (22.43 प्रतिशत), सिक्किम (23.22 प्रतिशत) और त्रिपुरा (28.44 प्रतिशत)।

प्रमुख जनजातियों में भीलों की संख्या (60 लाख) सबसे ज्यादा है। भीलों के बाद आते हैं गोंड (लगभग 50 लाख), संथाल (लगभग 40 लाख) और ओराँव (लगभग 20 लाख)। जनजातियों में ग्रेट अण्डमान जनजाति के अब केवल 30 लोग शेष हैं, इनकी बस्तियाँ तेजी से उजड़ रही है। अण्डमान निकोबार द्वीप समूह की सेंटिनलीज, जरवा और ओंगे जनजाति के लोगों की संख्या 200 से ज्यादा नहीं है। देश के सम्पूर्ण भू-क्षेत्र के लगभग 15 प्रतिशत भाग पर जनजातियों की आबादी है, लेकिन देश की 70 प्रतिशत वन और खनिज सम्पदा भी इन्हीं क्षेत्रों में स्थित है।

भारतीय समाज सदैव से बहुधर्मी और बहुजातीय (Multireligion and Multicaste) रहा है जहाँ विश्व के सभी धर्मों के अनुयायी रहते हैं, उदाहरणार्थ- हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, बौद्ध, जोरोस्ट्रियन (पारसी) और यहूदी। देश में हिन्दू कुल आबादी का लगभग 79.8% है। उनके बाद मुसलमान (लगभग 14%) आते हैं। पारसी और यहूदी बहुत कम संख्या में हैं। बड़ी संख्या वाले समुदायों के लोग अर्थात् हिन्दू, मुसलमान और ईसाई (2.3) देश के लगभग सभी क्षेत्रों में निवास करते हैं और स्थानीय भाषाएँ व बोलियाँ बोलते हैं। धार्मिक रूप से अल्पमत समुदायों में बहुमत वाले समुदायों की तुलना में शिक्षा और साक्षरता अधिक है। पारसी, जैन, यहूदी और ईसाई समुदाय इसके प्रमाण हैं।

भारत में जनसंख्या वृद्धि / विस्फोट (Population Growth in India)

जनसंख्या वृद्धि वर्तमान भारत की एक महत्त्वपूर्ण समस्या के रूप में उभरी है क्योंकि यहाँ आज विश्व के कुल क्षेत्र के 2.4% भाग में विश्व की 17.5% जनसंख्या निवास कर रही है।

1961 से 2011 तक के 50 वर्षों की अवधि में जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि (17.64% दशकीय वृद्धि दर) दर्ज की गयी है जहाँ प्रतिवर्ष एक ऑस्ट्रेलिया की जनसंख्या (1.85 करोड़) भारत की जनसंख्या में जुड़ जाती है। इस तरह 1951 में 36.11 करोड़ से यह बढ़कर 2001 में 102.87 करोड़ और 2011 में 121 करोड़ हो गयी है और यही हाल रहा तो 2035 तक चीन को पीछे छोड़कर विश्व का प्रथम सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा।

जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक कारक (Social Factors of Population Growth)

भारत में जनसंख्या वृद्धि हेतु जन्मदर एवं मृत्युदर (Birth Rate and Death Rate) में बढ़ता हुआ अन्तर प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। चूंकि चिकित्सीय सुविधाओं के विस्तार से मृत्युदर बहुत हद तक नियंत्रित हो गई। (1931 में मृत्यु 36.3 प्रति हजार से घटकर 2011 में 7.4 प्रति हजार) परंतु जन्मदर में अपेक्षित कमी नहीं हो पाई (2011 में 20.22 प्रति हजार) अतः भारत में जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रमुख रूप से जन्मदर बढ़ाने वाले कारक ही उत्तरदायी रहे हैं; जैसे:-

1. भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है। यहाँ की धार्मिक मान्यताएँ, जैसे- विवाह की अनिवार्यता, मोक्ष प्राप्ति हेतु पुत्र की प्राप्ति और संतानों को ईश्वर की देन मानना और 'पैदा करने वाला भोजन भी देगा' जैसी भाग्यवादी (Fatalis) मान्यताओं व परिवार नियोजन को न अपनाने जैसी समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के लिये उत्तरदायी रही हैं।
2. अशिक्षा और अज्ञानता के कारण बच्चों के पालन-पोषण एवं उनके उच्चतर जीवनस्तर सम्बन्धी दूरदर्शिता का अभाव भी अधिक जन्मदर व जनसंख्या वृद्धि का महत्त्वपूर्ण कारण है।
3. गरीबी और निम्न जीवनस्तर के लोगों में बच्चों को आय का साधन माना जाता है साथ ही गरीबों में मनोरंजन के साधनों के अभाव में यौन-आनन्द ही मनोरंजन का एक मात्र साधन होता है जो जन्म दर को बढ़ाकर जनसंख्या में वृद्धि करते हैं।
4. कम आयु में विवाह (यूनिसेफ द्वारा जारी बच्चों की स्थिति की रिपोर्ट 2007 के अनुसार आज भी भारत में औसतन 46% महिलाओं का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में कर दिया जाता है) के कारण जनन क्षमता (Fertility) काल का पूरा उपभोग होता है जिससे अधिक संतानें उत्पन्न होती हैं।

   अशिक्षा के कारण विवाह की आयु, प्रजनन व्यवहार, शिशु मृत्युदर, परिवार नियोजन कार्यक्रम आदि नकारात्मक रूप में प्रभावित होते हैं जिससे जनसंख्या वृद्धि होती है।
5. पितृसत्तात्मक (Patriarchal) व्यवस्था में प्रजनन व्यवहार पर पुरुषों का नियंत्रण होता है और महिलाओं की सहमति का महत्त्व बहुत कम होता है जिसके कारण जन्म दर अधिक होती है। भारत में संयुक्त परिवारों में बच्चों के पालन-पोषण की सहज व्यवस्था उपलब्ध होती है जिसके कारण भी बच्चों का प्रजनन (Reproduction) अधिक होता है।
6. अधिक शिशु मृत्युदर (आज 30.15 प्रति हजार है) से जन्मदर में वृद्धि में होती है। 'पुत्र बुढ़ापे का सहारा है' ऐसी मान्यताएँ भी जनसंख्या वृद्धि में सहायक होती हैं।
7. चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि के कारण मृत्युदर नियंत्रित (मृत्युदर 1951 के 27.4 प्रति हजार से घटकर 2011 में 7.4 प्रति हजार तथा शिशु मृत्युदर 1951 के 149 प्रति हजार से घटकर 30.15 प्रति हजार) हो गया है। परन्तु जन्म दर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है जिससे जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई है।

जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक परिणाम (Social Consequences of Population Growth)

भारत में तेजी से बढ़ती इस जनसंख्या ने अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्याएँ पैदा कर दी हैं। जनसंख्या वृद्धि ने देश के योजनाबद्ध विकास के समक्ष अनेक बाधाएँ उत्पन्न की हैं। जनाधिक्य (Over Population) के कारण उत्पन्न समस्याएँ निम्न हैं:-

1. जनसंख्या-वृद्धि के परिणामस्वरूप बचत का अधिकांश भाग जनसंख्या के भरण-पोषण पर खर्च होने से शुद्ध राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय बहुत ही कम रह जाती है।
2. जनसंख्या के बढ़ने से वस्तुओं की मांग में भी वृद्धि हो जाती है, किन्तु उसी मात्रा में पूर्ति न होने पर वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं।
3. जनसंख्या-वृद्धि होने पर लोगों को बसाने और उनके लिए स्वस्थ्य प्रद मकानों की समस्या पैदा होती है। लोग काफी मात्रा में गाँवों से नगरों में आते हैं जिससे गन्दी बस्तियों एवं आवास की समस्या बढ़ जाती है।
4. देश में जनसंख्या बढ़ने किन्तु उसकी तुलना में उपलब्ध साधनों एवं पूंजी आदि की कमी के कारण बढ़ी हुई श्रमशक्ति का प्रयोग नहीं हो पाता, परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है।
5. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने से देश के लोगों को सन्तुलित भोजन नहीं मिल पाता है जिसके कारण उनका पर्याप्त शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं हो पाता है और स्वास्थ की समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।
6. जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ देश में निरक्षरों (Illiterate) की संख्या में वृद्धि होती है और जनसंख्या-वृद्धि के कारण बच्चों की संख्या बढ़ती है जो शिक्षा के विस्तार में समस्या खड़ी कर देती है।
7. देश में प्राकृतिक संसाधन एवं भूमि सीमित मात्रा में हैं। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति संसाधनों की उपलब्धता

कम हो जाती है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय पर भी पड़ता है। फलतः देश में सामान्य गरीबी बनी रहती है।

8. जनसंख्या-वृद्धि ने औद्योगीकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। लोग गाँव छोड़कर नगरों की ओर जाने लगे हैं। परिणामस्वरूप औद्योगिक एवं नगरीय केन्द्रों में अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।
9. जनसंख्या-वृद्धि के कारण परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ जाने से सीमित आय को सभी पर खर्च करना होता है जिससे सदस्यों के लिए सुविधाएँ समुचित रूप से नहीं जुटाई जा सकती और जीवनस्तर निम्न हो जाता है।
10. जनसंख्या-वृद्धि तीव्र होने पर सभी के भरण-पोषण (Maintenance) के लिए साधन जुटा पाना सम्भव नहीं होता है। ऐसी दशा में देश में गरीबी और बेकारी बढ़ जाती है जिससे सामाजिक विघटन एवं अपराध की दर बढ़ जाती है।
11. परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने पर माता-पिता परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए घर से बाहर कमाने चले जाते हैं तो बच्चे नियन्त्रण के अभाव में पारिवारिक मूल्यों की अवहेलना करने लगते हैं जिससे पारिवारिक विघटन की स्थिति पैदा होती है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि वर्तमान भारत की एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है जिसने देश के समक्ष अनेक समस्याओं को उत्पन्न किया है। वर्तमान आर्थिक सुधारों ने जहाँ व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा एवं जागरूकता को प्रोत्साहित किया है वहीं आर्थिक विषमता में वृद्धि करके कहीं न कहीं जनसंख्या वृद्धि हेतु भी अभिप्रेरक (Motivator) रहा है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जहाँ मनुष्य संसाधन के रूप में स्थापित हो रहा है, जहाँ ज्ञान-समाज का उद्भव (Emergence) हो रहा है अथवा जहाँ ज्ञान को शक्ति के रूप में देखा जा रहा है तथा जहाँ ज्ञान अर्थव्यवस्था का महत्त्व बढ़ता जा रहा है जनसंख्या वृद्धि के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण में भी बदलाव आ रहा है और जनसंख्या को समस्या के बजाय संसाधन के रूप में देखा जा रहा है।

अतः भारत के संदर्भ में भी हमें इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखना होगा और भारत में जनसंख्या वृद्धि के समाधान में जनसंख्या नियंत्रण के निम्न उपायों पर अमल करना होगा-

1. सामाजिक आर्थिक विकास को तीव्र कर इसके परिणामों को निचले स्तर तक पहुँचाना होगा।
2. आधुनिक शिक्षा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार करना और जनसामान्य तक इनकी पहुँच सुनिश्चित करना चाहिए।
3. परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार और इसके प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास होना चाहिए।
4. गर्भपात के नियमों को उदार बनाना एवं इसको प्रोत्साहन देने से भी अनचाहे गर्भों को समाप्त किया जा सकता है।
5. बाल-विवाह पर प्रतिबंध और अधिक आयु में विवाह को प्रोत्साहन देना चाहिए।
6. स्त्री-पुरुष समानता की स्थापना करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
7. स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करनी चाहिए।

जन्म दर को कम करने हेतु उपरोक्त सुझावों पर अमल करने के साथ-साथ विद्यमान जनसंख्या को एक संसाधन के रूप में विकसित करके आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना होगा तभी हम जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से बचते हुए इसको एक वरदान के रूप में स्थापित कर सकते हैं।

भारत में जन्म दर (Birth Rate in India)

जन्म दर किसी भी देश की जनसंख्या संरचना (Population Structure) का महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्व है और इसकी अधिकता जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारक होती है। भारत में अधिक जन्म दर एक महत्त्वपूर्ण जनसांख्यिकीय (Demographic) परिघटना और जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारक रही है। यद्यपि 1921-31 के 46.4 प्रति हजार से घटकर 2011 में 20.22 प्रति हजार हो गया है तथापि यह अन्य देशों की तुलना में अभी भी अधिक है।

भारत में जन्म दर के संदर्भ में क्षेत्रीय विविधता भी देखी जाती है, जैसे-यह शहरों की तुलना में गांवों में अधिक है तथा तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र की तुलना में बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम आदि में जन्म दर अधिक है।

उच्च जन्म दर के सामाजिक निर्धारक (Social Determinants of High Birth Rates)

भारतीय स्त्रियों की उच्च प्रजनन क्षमता को कई तथ्य प्रभावित करते हैं, जो उच्च जन्म दर के निर्धारक के रूप में जाने जाते हैं; जैसे:-

1. वैवाहिक संस्था की सार्वभौमिकता ने उच्च जन्मदर को आधार प्रदान किया है। हिन्दुओं में एक पुरुष से यह आशा की जाती है कि वह अपने आश्रम के कर्त्तव्यों को पूरा करे, जिसमें विवाह भी एक कर्त्तव्य है। हिन्दू औरतों के लिए विवाह आवश्यक समझा जाता है क्योंकि वे मात्र इसी संस्कार की अधिकारी हैं।
2. बौद्ध धर्म को छोड़कर दुनिया का हर धर्म अपने अनुयायियों को जन्म देने और वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करता है। धर्मों तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा प्रबलता से समर्थित उच्च जनन

क्षमता की प्रवृत्ति ने पारंपरिक भारत में परिवार के आकार के स्तर को अपने अनुसार तय किया।

3. भारत में बाल विवाह प्रथा प्रचलित रही है जो बाल विवाह निरोधक कानून के बाद भी जारी है। कम उम्र में विवाह के परिणामस्वरूप प्रजनन काल की अवधि बढ़ जाती है जिससे अधिक बच्चों के पैदा होने की संभावना बढ़ जाती है। अत: भारत में, स्त्रियाँ अपने पूरे प्रजनन काल में बच्चों को जन्म देती हैं। अल्पवयस्क (Minor) अवस्था में विवाह होने से प्रजनन हेतु तार्किक दृष्टिकोण का विकास भी नहीं हो पाता जिसके कारण बाल विवाह के परिणामस्वरूप अधिक बच्चे पैदा होते हैं।
4. परंपरागत समाज की तरह, भारत में बच्चों के जन्म के प्रति अत्यंत सकारात्मक दृष्टिकोण है। अधिक बच्चे पैदा करना जहाँ एक ओर पुरुषत्व के प्रतीक के रूप में मान्यता प्राप्त है तो दूसरी तरफ परिवार की शक्ति के रूप में भी बड़े परिवार एवं अधिक बच्चों के प्रति सशक्त दृष्टिकोण है जिसके परिणामस्वरूप लोग अधिक से अधिक बच्चे पैदा करते हैं।
5. पारिवारिक क्रम की निरंतरता बनाए रखने के लिए और माता-पिता की बुढ़ापे में देख-रेख करने के लिए लड़कों की आवश्यकता ने भी जन्म दर को बढ़ाए रखा है।
6. भारतीय समाज में बच्चे पैदा करना सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्य हैं। यहाँ बच्चों की संख्या सीमित रखने का कोई आर्थिक अभिप्रेरण (Motivation) नहीं होता है क्योंकि बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी संयुक्त परिवार की होती है।
7. भाग्यवादिता (Fatalism) भारतीय समाज में एक अंतर्निहित (Implicit) प्रवृत्ति है। ऐसी प्रवृत्ति से बच्चों को ईश्वर का उपहार समझा जाता है। नवजात और बाल मृत्यु की ऊँची दर के कारण भी एक पति-पत्नी इसलिए बहुत सारे बच्चे पैदा कर लेते हैं कि इनमें से कुछ तो जवान होने तक जिन्दा बच ही जाएंगे।

इन सभी कारकों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। वास्तव में यह अनेक कारकों का सम्मिश्रण है जो भारत में उच्च जन्म दर में अपना योगदान देते हैं। उच्च जनन क्षमता के तथ्यों के संबंध में परंपरागत भारतीय मान्यताओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए जो दम्पत्ति के प्रजनन व्यवहार को प्रभावित करता है।

उच्च जन्म दर के सामाजिक परिणाम (Social Consequences of High Birth Rate)

देश की जनसंख्या वृद्धि की समस्या को व्यापक रूप से प्रभावित करने के अलावा, उच्च जन्म दर परिवार और समाज को भी कई तरह से प्रभावित करता है।

औरतें अपने उत्पादक जीवन के वर्षों में संतानोत्पत्ति और उनके लालन-पालन से बंध जाती हैं। इस तरह वे अपनी क्षमता के प्रदर्शन और आत्म विकास के अन्य माध्यमों को ढूँढने से वंचित रह जाती हैं। अत्यधिक संतानोत्पत्ति उसके स्वयं के और उसके बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

बड़े परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी कमाने वाले व्यक्ति पर अतिरिक्त भार डालती है जो जीवन में तनाव पैदा करती है। दैनिक जीवन की समस्याओं से बचने के लिए वह शराब आदि व्यसनों का सहारा ले सकता है जो परिवार के आर्थिक और भावनात्मक स्थिति को और बिगाड़ देती है।

अधिक बच्चों के होने से उन पर होने वाला पालन-पोषण व्यय बहुत अधिक बढ़ जाता है, जिससे अधिकांश बच्चे कुपोषित रह जाते हैं। साथ ही इनकी शिक्षा आदि का भी उचित प्रबंध नहीं हो पाता है जिससे इनके स्वास्थ्य के साथ ही विकास भी दुष्प्रभावित होता है।

बच्चे जो बहुधा अनचाहे, बिना प्यार के और तिरस्कृत होते हैं, अपनी मर्जी से अपना जीवन गुजारने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों में कभी-कभी अपराधी प्रवृत्ति पनपने लगती है। बड़े परिवार के बच्चों को बहुधा बहुत कम उम्र से काम करना पड़ जाता है जिससे वे स्कूल जाने और शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जाते हैं। इन परिस्थितियों में सर्वाधिक हानि लड़कियों को ही उठानी पड़ती है। वह बहुधा स्कूल ही नहीं भेजी जाती है ताकि घरेलू कामकाज में अपनी माँ की मदद करें और अपने से छोटे बच्चों की देखभाल करें।

सुखी और स्वस्थ परिवार ही वह आधार है जिस पर स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। अत्यधिक जनन क्षमता जो पारिवारिक असंतोष और अस्वस्थता के कारणों में से एक है, में स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए कमी करने की आवश्यकता है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है कि भारत में उच्च जन्म दर की विद्यमानता एक महत्त्वपूर्ण जनांकिकीय घटना है और जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारक रहा है। परंतु वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जन्मदर की अधिकता के संदर्भ में परंपरागत दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है और अब जनसंख्या को समस्या के बजाय संसाधन के रूप में देखा जाने लगा है। फिर भी यह तथ्य है कि भारत में जन्म दर में वृद्धि कई रूपों में समस्यात्मक रही है।

अत: जन्म दर को कम करने के लिए निम्न सुझावों पर अमल करने की जरूरत है:-

1. सामाजिक-आर्थिक विकास को तीव्र किया जाए। इस विकास के परिणामस्वरूप एक तरफ अवसर उपलब्ध होगें तो दूसरी तरफ लोगों में इन अवसरों का लाभ लेने की महत्त्वकांक्षा, प्रजनन

के दबाव को कम करने में मदद करेंगी जिससे जन्म दर को नियंत्रित करने में सहायता मिल सकेगी।

2. आधुनिक शिक्षा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार पर बल दिया जाना चाहिए, जिससे लोगों को अधिक प्रजनन के दुष्परिणामों का ज्ञान हो सके और वह प्रजनन निरोधक उपायों को अपनाने में सहज हो सकें। आधुनिक शिक्षा द्वारा उन परम्परागत मान्यताओं (Traditional Beliefs) को भी दूर करने में सहायता मिली है जो अधिक संतानोत्पत्ति को धार्मिक रूप से वैध बनाते हैं और अधिक जन्म को प्रोत्साहित करते हैं।
3. बाल-विवाह प्रतिबंध को प्रोत्साहन प्रदान कर इसे कठोरता से लागू किया जाना चाहिए और एक सक्षम निगरानी तंत्र का विकास करना चाहिए, जो बाल विवाह संबंधी घटनाओं की रोकथाम एवं इनके विरुद्ध उचित कार्यवाही कर सके। बाल विवाह के खतरों के प्रति लोगों में अधिकतम जागरुकता का विकास करना चाहिए और इस प्रकार के विवाहों में सम्मिलित लोगों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान करना चाहिए।
4. स्त्री-पुरुष समानता की स्थापना की दिशा में प्रयास को तीव्र करना चाहिए, जिससे सन्तानोत्पत्ति में दोनों पक्षों की सहमति बन सके और स्त्रियों को प्रजनन के लिए बाध्य न होना पड़े। साथ ही अवसरों की समानता के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक सहभागिता (Participation) बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि उन पर प्रजनन का दबाव कम हो सके।
5. परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रचार प्रसार और इसके प्रति लोगों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन पर बल दिया जाना चाहिए जिससे अधिकतम लोग परिवार नियोजन के उपायों को अपना सके, साथ ही ऐसे लोगों को विभिन्न पुरस्कारों द्वारा प्रोत्साहित करना चाहिए। ऐसे लोगों के लिए नकारात्मक प्रोत्साहन की व्यवस्था करनी चाहिए जो इन कार्यक्रमों को नहीं अपनाते और अधिक बच्चे पैदा करते हैं।
6. गर्भपात के नियमों को उदार बनाना और प्रोत्साहन (Incentive) देना भी जन्म दर को कम करने में सहायक होगा। भारत में अशिक्षा एवं जागरुकता (Awareness) के अभाव के कारण अक्सर अनचाहे गर्भों में वृद्धि होती है और गर्भपात के नियमों की कठोरता के कारण इन बच्चों की जन्म देने की बाध्यता हो जाती है। अत: गर्भपात के कानूनों को सहज बनाकर और सुरक्षित गर्भपात की सुविधा को बढ़ाकर जन्म दर को नियंत्रित किया जा सकता है।
7. स्वस्थ मनोरंजन का साधन उपलब्ध कराने और गरीब लोगों तक इसकी पहुंच बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे लोगों की मनोरंजन व्यवस्था में वृद्धि हो एवं गरीब लोगों के पास यौन सम्बन्ध के अलावा मनोरंजन के अन्य विकल्प उपलब्ध हो सके। इस प्रयास से भी जन्म दर को नियंत्रित किया जा सकता है।

भारत में जन्म दर कम करने हेतु उपरोक्त सुझावों पर अमल करने के साथ-साथ विद्यमान जनसंख्या को एक संसाधन के रूप में विकसित करने की जरूरत है तभी हम अधिक जन्म दर के दुष्परिणामों से बचते हुए आर्थिक विकास, ज्ञान- अर्थव्यवस्था या ज्ञान समाज के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में मृत्यु दर (Mortality Rate in India)

भारत एक विकासशील देश है। यद्यपि स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार करके यहाँ मृत्यु दर को काफी नियंत्रित किया गया है (1921 के 36.3 प्रति हजार से घटकर 2011 में 7.4 प्रति हजार) तथापि, अन्य देशों की तुलना में यह अभी भी अधिक है। मृत्यु दर की यह अधिकता जहाँ प्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या वृद्धि को हतोत्साहित करती रही है, वहीं परोक्ष रूप से जन्म दर को बढ़ाकर जनसंख्या वृद्धि के लिए भी उत्तरदायी रही है। इस रूप में उच्च मृत्यु दर को अविकास का सूचक माना जाता है और इसे जनांकिकीय या सामाजिक समस्या के रूप में देखा जाता है।

उच्च मृत्यु दर के सामाजिक कारक (Social Factors of High Mortality Rate)

भारत में उच्च मृत्यु दर के लिए अनेक कारक उत्तरदायी रहे हैं, जैसे:-

1. निम्न स्वास्थ्य एवं जीवनस्तर (प्रति व्यक्ति निम्न आय, स्वास्थ्य पर किया जाने वाला कम खर्च) के कारण सहायक बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता (Sensitivity) बढ़ जाती है जो मृत्यु दर को बढ़ा देती है। भारत में टी.बी., हैजा, मलेरिया, टिटनेस व रेबीज से मरने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है।
2. पौष्टिक आहार की कमी (प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता, प्रति व्यक्ति पोषक तत्वों की उपलब्धता) के कारण कुपोषण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न होती हैं जो अधिक मृत्यु दर का कारण बन जाती हैं। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगठनों की रिपोर्टों का निष्कर्ष है कि भारत में बच्चों एवं महिलाओं में बहुत बड़ी संख्या में कुपोषण व्याप्त है और अधिक राज्यों में यह समस्या अत्यंत गंभीर है, जिसके कारण मृत्यु दर में वृद्धि हो रही है।
3. चिकित्सा सुविधा की उपलब्धता में कमी और प्रति व्यक्ति डॉक्टर की उपलब्धता में कमी के कारण लोगों को सही समय पर चिकित्सा सुविधा प्राप्त नहीं हो पाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सालय अत्यंत दूर-दूर हैं और डॉक्टर भी ग्रामीण क्षेत्रों में आना नहीं चाहते, जिसके कारण लोगों को उचित समय पर चिकित्सा सहायता नहीं मिल पाती, परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में छोटी स्वास्थ्य समस्याएँ भी गंभीर रूप ले लेती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है।

4. अत्यधिक गरीब जनसंख्या उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं ले पाती है। इनका जीवनस्तर निम्न होने के कारण इनमें महामारियों का प्रकोप भी अधिक होता है, जिससे मृत्यु दर अधिक होती है। भारत के गरीब क्षेत्रों में सामान्य संक्रामक बीमारियां जैसे टी.बी., कालरा, हैजा, चेचक आदि महामारियों का रूप ले लेती है क्योंकि गरीब जनता के पास स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करने के लिए धन नहीं होता, परिणामस्वरूप मृत्यु दर बढ़ जाती है।
5. अशिक्षा और अज्ञानता के कारण परिवार नियोजन अपनाने में अतार्किक निर्णय, बाल-विवाह, भाग्यवादिता तथा स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति उदासीनता के कारण भी मृत्यु का दबाव बना रहता है। अशिक्षा और जागरुकता के अभाव में लोगों में अंधविश्वास (Superstition) की प्रवृत्ति बढ़ती है, जिससे वे बीमारियों व अन्य समस्याओं की नैदानिक विधियों के बजाय जादू-टोने आदि अतार्किक विधियों को अपनाते हैं, जिससे मृत्यु दर बढ़ जाती है।
6. रुढ़ियाँ और अवैज्ञानिक मान्यताएं परम्परागत भारतीय समाज की विशेषता रही हैं। इनके कारण लोग नवीन तकनीकों को अपनाने के प्रति उदासीन रहे हैं जिससे मृत्यु दर अधिक बनी रही है। धर्म और परम्पराएं नवीन चिकित्सकीय उपलब्धियों के प्रति उदासीन होती हैं, जिसके कारण रुढ़िवादी (Conservative) जनता इसका लाभ नहीं ले पाती, फलतः मृत्यु दर में वृद्धि होती है।
7. कम उम्र में विवाह ने मातृ-मृत्यु दर और शिशु-मृत्यु दर के रूप में मृत्यु दर को ऊंचा रखा है। कम आयु में विवाह एवं प्रजनन से एक तरफ जहाँ माताओं का स्वास्थ्य दुष्प्रभावित होता है साथ ही कम उम्र में विवाह से महिलाओं पर प्रजनन का दबाब अधिक होता है, जिसके कारण प्रजनन के समय उनकी मृत्यु की संभावनाएं बढ़ जाती है और मृत्यु दर में वृद्धि होती है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

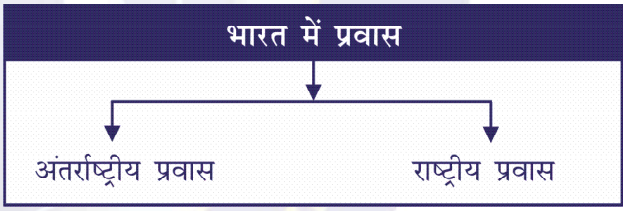
यद्यपि स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाकर, विभिन्न तरह के टीकों के प्रयोग एवं दवाई के छिड़काव द्वारा महामारी पर नियंत्रण करके, अकाल आदि में राहत कार्यों द्वारा तथा आर्थिक विकास एवं शिक्षा के द्वारा मृत्यु दर को नियंत्रित किया जा रहा है। परंतु अभी भी मृत्यु दर की अधिकता (7.4 प्रति हजार) इन प्रयासों की अपर्याप्तता को परिलक्षित (Reflected) करती है।

अतः वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु और एक विकसित आधुनिक समाज की स्थापना हेतु आवश्यक है कि भारत में वर्तमान मृत्यु दर को और अधिक नियंत्रित किया जाए और इसके लिए निम्न सुझावों पर अमल किया जा सकता है-

1. अधिकाधिक चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाए और इनका अधिकतम जनसंख्या तक विस्तार किया जाए।
2. मातृत्व एवं शिशु कल्याण संस्थानों की स्थापना की जाए।
3. चिकित्सा सुविधाओं का स्तर बढ़ाकर इसके न्यायपूर्ण वितरण (Equitable Distribution) को सुनिश्चित किया जाए।
4. संक्रामक महामारियों और बीमारियों से निपटने के लिए पर्याप्त आपात व्यवस्था बनायी जाए।
5. आर्थिक विकास द्वारा गरीबी का उन्मूलन किया जाए।
6. आधुनिक शिक्षा का प्रसार करके लोगों में तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित किया जाए।
7. स्त्रियों की प्रस्थिति एवं उनके प्रति लोगों के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाया जाए।

भारत में प्रवास (Migration in India)

जनसंख्या वृद्धि के निर्धारक के रूप में प्रवास एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या संरचना के सभी पक्षों को कमोबेश प्रभावित करता है, जिसके कारण सामाजिक संरचना एवं समाज की संस्थाएं भी प्रभावित होती हैं। आजादी से पूर्व यातायात और संचार में अपर्याप्त विकास के कारण प्रवास की दर सीमित थी, परंतु यातायात और संचार के विकास के साथ इसके दर में तेजी से वृद्धि हुई है, जिसे हम दो रूपों में देख सकते हैं-

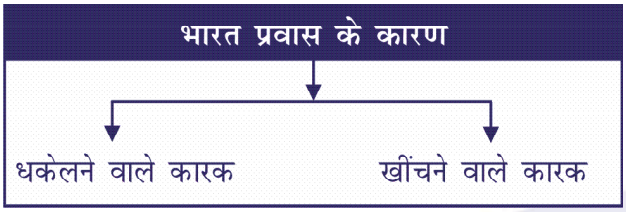


आजादी के बाद अंतर्राष्ट्रीय प्रवास के दौरान भारत से बाहर जाने वाले उत्प्रवासियों में मुख्य रूप से खाड़ी देशों में मजदूर के रूप में तथा इंग्लैण्ड, अमेरिका व कनाडा आदि देशों में प्रतिभा पलायन महत्त्वपूर्ण है। जबकि, भारत आने वाले अप्रवासियों में नेपाल, तिब्बत, भूटान एवं बांग्लादेश से आने वाले लोगों एवं शरणार्थियों को शामिल किया जा सकता है, जिन्होंने भारतीय जनसंख्या संरचना को प्रभावित किया है।

आंतरिक प्रवास के अंतर्गत विवाह के कारण और मजदूरी करने हेतु गाँव से शहरों की ओर प्रवास की दर अधिक है। परंतु औद्योगीकरण के कारण गाँव से नगरों में, नगरों से नगरों में और हाल के वर्षों में अल्प मात्रा में नगर से गांव की ओर प्रवास में वृद्धि हुई है। वर्तमान भारत के लिए ग्रामीण-नगरीय प्रवास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है जो कई कारकों का परिणाम है और कई रूपों में भारत की सामाजिक संरचना को प्रभावित किया है। (प्रत्येक वर्ष बीमारू राज्यों से दिल्ली की ओर लगभग 3 लाख तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात की ओर लगभग ढ़ाई लाख लोग प्रवासित होते हैं)

भारत में प्रवास की उपरोक्त प्रवृत्ति के सामाजिक कारक (Social Factors of the above trend of Migration in India)

भारत में प्रवास के कारकों को दो वर्गों में बाँट कर देखा जा सकता है–



1. ***धकेलने वाले कारक (Push Factors)-*** निम्नांकित तथ्यों को ऐसे कारकों के रूप में उल्लेख किया जा सकता है जो लोगों को शहरों की ओर प्रव्रजन अथवा प्रवसन (Migration) के लिए मजबूर करते हैं:–

(i) जनसंख्या वृद्धि भारत की एक प्रमुख समस्या रही है और ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि और विद्यमान साधनों (कृषि) पर उनके बढ़ते हुए दबाव ने लोगों को अन्य जगहों पर जीविका के साधनों की तलाश के लिए मजबूर किया है।

(ii) गरीबी, बेरोजगारी और निम्न उत्पादकता (बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश आदि के ग्रामीण क्षेत्र के संदर्भ में) के कारण भी रोजगार हेतु नगरों एवं सम्पन्न राज्यों की ओर प्रवास में वृद्धि होती है।

(iii) ग्रामीण क्षेत्र में आय के वैकल्पिक साधनों के अभाव के कारण लोगों में नगरों की ओर जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(iv) संयुक्त परिवार व्यवस्था और उससे संबंधित कठोर नियमों से मुक्ति के लिए लोग नगरों में जाना पसंद करते हैं।

(v) संपत्ति संबंधी एवं संपत्ति के विभाजन संबंधी कठोर नियम युवकों को शहर की ओर ढकेलते हैं।

(vi) परंपरागत सामंती व्यवस्था (Feudal System) के अवशेष के रूप में शोषण की प्रवृत्ति के कारण गाँवों से गरीबों एवं निम्न जातियों का नगरों की ओर पलायन होता है।

(vii) आंतरिक संघर्ष, अशांति एवं असुरक्षा की स्थिति से बचने के लिए भी लोगों का प्रवास अच्छी कानून व्यवस्था वाली जगहों पर होता है।

(viii) प्राकृतिक आपदाओं (बिहार के बाढ़ग्रस्त क्षेत्र) के कारण भी लोग अपना क्षेत्र छोड़ते हैं और आर्थिक संभावनाओं के क्षेत्र की ओर प्रवास करते हैं।

(ix) बुनियादी सुविधाओं यथा बिजली, पानी, यातायात आदि के अभाव के कारण भी लोग गांव से नगरों की ओर गमन करते हैं।

2. ***खींचने वाले कारक (Pull Factors)-*** ऐसे तथ्य जो लोगों को शहरों की ओर आकर्षित करते हैं, खींचने वाले कारक के रूप में स्पष्ट किये जा सकते हैं। इन कारकों में निम्नांकित का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है–

(i) नगरों में बेहतर रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं जो लोगों को आकर्षित (Attract) करते हैं। नगरीय क्षेत्रों में हुए औद्योगिक विकास एवं नवीन नगरीय आवश्यकताओं ने नगरीय क्षेत्रों के अनेक रोजगार के अवसरों को उत्पन्न किया है, जिसका लाभ लेने के लिए बहुत बड़ी संख्या में लोग नगरीय क्षेत्रों की तरफ आते हैं।

(ii) नगरों में उच्च मजदूरी की दर एवं विकास की अन्य सम्भावनाएँ भी गरीब मजदूरों को अपनी तरफ आकर्षित करती हैं, जिससे वह अधिक आय अर्जित कर अपना जीवन स्तर (Quality of life) ऊँचा कर सके।

(iii) बेहतर काम की दशाएँ और कार्य सम्बन्धी सुविधाएँ नगरों में गाँवों की अपेक्षा अधिक होती हैं, जिसके कारण श्रमिक वर्ग (Working Class) नगरों की ओर आकर्षित होते हैं, जिससे वह शोषणयुक्त (Exploited) व खराब कार्य व्यवस्थाओं से मुक्ति पा सके।

(iv) आधुनिक मूल्य-व्यवस्था (Value System) के कारण लोगों को अपनी योग्यतानुसार स्वयं को स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। साथ ही उनकी अर्जित प्रस्थिति (Earned Status) की मान्यता के कारण प्रदत्त या जातीय प्रस्थिति से संबंधित निर्योग्यताओं से छुटकारा मिल जाता है, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों से निम्न जातीय प्रस्थिति के लोगों का बहुत बड़ी संख्या में नगरीय क्षेत्रों में प्रवास होता है।

(v) विकसित संचार एवं यातायात व्यवस्था तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की उपस्थिति नगरीय जीवन को सहज बनाती है, जिससे लोग नगरों की तरफ आकर्षित होते हैं।

उच्च प्रवास के परिणाम (Consequences of High Migration)

भारत में प्रवास की उच्च दर ने कई तरह के प्रभावों को उत्पन्न किया है, जिनको निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत बांटकर देखा जा सकता है–

जनांकिकीय परिणाम (Demographic Consequences)

1. पुरुषों के अकेले प्रवास के परिणामस्वरूप लिंगानुपात में असमानता हो जाती है।
2. गाँवों से युवकों के प्रवास ने गाँवों में औरतों, बूढ़ों और बच्चों के अनुपात को बढ़ाया है। परिणामस्वरूप भारत के गाँवों में जन्म दर के घटने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है (मुख्यत: उन राज्यों में जहाँ ग्रामीण-नगरीय प्रवास अधिक है)।

आर्थिक परिणाम (Economic Consequences)

1. प्रवासियों के जीवनस्तर में सुधार हुआ है और औसत उत्पादकता बढ़ी है।
2. प्रवासियों के माध्यम से दूसरे क्षेत्रों से उनके स्वयं के क्षेत्रों में धन का आगमन संभव हुआ है, जिसके कारण उनके क्षेत्रों में आर्थिक सुधार एवं जीवनस्तर में सुधार संभव हो पाया है।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरों की कमी महसूस की जा रही है और उनकी मजदूरी की दर में वृद्धि होने लगी है।
4. प्रवासी जहाँ प्रवासित हुए हैं, उन क्षेत्रों पर जनसंख्या के दबाव में वृद्धि हुई है। फलतः आर्थिक संसाधन एवं बुनियादी सुविधाएं कम पड़ने लगी हैं, जिसे भारत में हम अतिनगरीकरण के रूप में देख सकते हैं और जिसने अन्य कई नगरीय समस्याओं को उत्पन्न किया है। परंतु, दूसरी ओर इन प्रवासियों के श्रम (कुशल या अकुशल) ने इन क्षेत्रों के आर्थिक विकास में सहयोग दिया है।

सामाजिक परिणाम (Social Consequences)

1. ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय संस्कृति का प्रवेश हुआ है।
2. उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ है, जिसका प्रसार अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो रहा है।
3. प्रवास के परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन की स्थितियों में भी बढ़ोत्तरी हुई है।
4. प्रवास के कारण क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय तनाव में वृद्धि देखी गई है।
5. इसने यौन-व्यभिचार को बढ़ावा दिया है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है आधुनिक भारत में प्रवास एक महत्त्वपूर्ण घटना है जो न केवल जनसंख्या वृद्धि का, बल्कि कई सामाजिक-आर्थिक कारणों का संयुक्त परिणाम है और इसने न केवल जनांकिकीय प्रभावों को, बल्कि कई सामाजिक-आर्थिक प्रभावों (Social Economic effects) को उत्पन्न किया है। आज नगरीकरण जनित समस्याओं के मूल में इसे प्रमुख कारक के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

परंतु, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में इन नकारात्मक परिणामों के बावजूद प्रवास को रोका नहीं जा सकता है, क्योंकि, औद्योगिक समाज की यह माँग होती है कि योग्य व्यक्ति को उसके अपेक्षित स्थान-तक पहुँचाया जाए और इस संदर्भ में हम देखें तो वर्तमान वैश्विक गाँव के निर्माण की प्रक्रिया मे प्रवास (Migration) अपेक्षित है। अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि देश के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु प्रवास को रोकने के बजाए इसकी प्रवृत्ति को संतुलित करने की आवश्यकता है और यह तभी संभव है, जब भारत के ग्रामीण क्षेत्रों और अविकसित एवं बीमारू राज्यों को विकास के मार्ग पर लाया जाए।

भारत में विवाह की आयु (Age of Marriage in India)

विवाह की आयु जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख निर्धारक कारक है। कम उम्र में विवाह संपूर्ण प्रजनन काल के उपयोग को संभव बनाकर जन्म दर में वृद्धि करता है और इसके विपरीत स्थिति को जन्म दर कम करने वाले कारक के रूप में देखा जाता है।

भारत में बाल विवाह या कम आयु में विवाह एक ऐतिहासिक घटना रही है। यद्यपि अनेक उपायों द्वारा बाल विवाह को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता रहा है तथापि, अभी भी यहाँ कम आयु में विवाह एक सामान्य घटना है और जनसंख्या वृद्धि का एक प्रमुख कारण भी है। यूनिसेफ द्वारा बच्चों की स्थिति पर रिपोर्ट भी इस तथ्य को पुष्ट करता है जिसके अनुसार आज भी भारत में औसतन 46% महिलाओं का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में कर दिया जाता है।

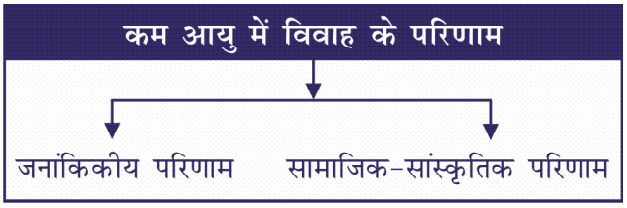
भारत में कम आयु में विवाह के कारण (Causes of Early Marriage in India)

भारत में कम आयु में विवाह के लिए कई कारण उत्तरदायी रहे हैं, जैसे –

1. हिन्दू धर्म की प्रमुख धार्मिक मान्यता जैसे-किसी लड़की को माता-पिता के घर में रजस्वला होने पर माता-पिता एवं भाई को नरक (Hell) में जाना पड़ता है, के कारण बाल विवाह की प्रथा प्रचलित हुई।
2. जाति, अंतर्विवाह और सगोत्र, सप्रवर एवं ग्राम बहिर्विवाह जैसे विवाह सम्बन्धी निषेधों ने बाल विवाह को व्यापक बनाया।
3. संयुक्त परिवार व्यवस्था एवं पितृसत्तात्मकता (Patriarchal) के अंतर्गत स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता के कारण लड़कियों का विवाह जल्दी कर दिया जाता है।
4. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति (Low Status) के चलते लड़कियों एवं स्त्रियों से उनके निर्णय नहीं पूछे जाते, इस कारण भी बाल विवाह को बल मिला है।
5. अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण बाल विवाह के दुष्परिणामों के बारे में ज्ञान की कमी रही है।
6. दहेज प्रथा के कारण लड़कियों को आर्थिक उत्तरदायित्व समझा जाता है, जिसको जल्दी पूरा करने की भी प्रवृत्ति बाल विवाह को बढ़ावा देती है।

कम आयु में विवाह के परिणाम (Consequences of Early Marriage)

भारत में एक सामाजिक घटना के रूप में कम आयु में विवाह ने कई तरह के परिणामों को उत्पन्न किया है जिनको निम्न वर्गों में बांटकर देखा जा सकता है-



जनांकिकीय परिणाम (Demographic Consequences)

1. कम आयु में विवाह के कारण महिलाओं के प्रजनन काल का संपूर्ण उपयोग होने के कारण जन्म दर में वृद्धि हुई है, फलतः जनसंख्या में वृद्धि हुई है।
2. कम आयु में ही प्रजनन के कारण उत्पन्न होने वाले बच्चों का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता परिणामस्वरूप शिशु-मृत्यु दर में वृद्धि हुई है।
3. प्रजनन के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और लगातार प्रजनन दबाव के कारण मातृत्व-मृत्यु दर में वृद्धि (1951 के 437 प्रति लाख से 2016 में 130 प्रति लाख) हुई है।
4. स्त्रियों के कम उम्र में विवाह के कारण मातृत्व मृत्युदर में वृद्धि लिंगानुपात में कमी (1901 के 972 के घटकर 2011 में 943 हो गया है) हुई है।
5. अधिक प्रजनन के कारण 0-15 वर्ष के बच्चों की संख्या में वृद्धि के कारण आश्रित जनसंख्या में वृद्धि हुई है, फलतः सामाजिक आर्थिक विकास और जीवनस्तर दुष्प्रभावित हुआ है।

सामाजिक - सांस्कृतिक परिणाम (Social - Cultural Consequences)

1. विवाहोपरांत नए परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने और नवीन भूमिकाओं को निर्वहन करने में कम आयु की लड़कियाँ असक्षम रही हैं।
2. अल्पायु में विवाह व गृहस्थी के बोझ के कारण महिलाओं में तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई है जो व्यक्तित्व के विकास में बाधक सिद्ध होता है।
3. योग्य जीवनसाथी के चुनाव की समस्या तथा बेमेल विवाह की संभावना बढ़ी है, जिससे दाम्पत्य जीवन दुष्प्रभावित हुआ है और वैवाहिक जोड़ों के बीच तनाव में वृद्धि से विघटन (Dissolution) की समस्या उत्पन्न हुई है।
4. परिपक्वता के संदर्भ में देखा जाए तो कम उम्र में विवाह अपरिपक्व निर्णय की संभावना को जन्म देते हैं। फलतः अन्य दबाव न रहे तो अधिक उम्र में विवाह की अपेक्षा इनमें तलाक की दर अधिक होती है और यही स्थिति भारत में भी दृष्टिगत हुई है।
5. कम आयु में विवाह से स्त्री के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इस समय वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से परिपक्व नहीं होती है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने कम आयु में विवाह के कुछ सकारात्मक प्रभावों को भी दर्शाया है, जैसे-इस प्रकार के विवाह पारस्परिक अनुकूलन (Adaptation) में सहायक होते हैं। इससे आर्थिक-आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है, इन विवाहों से नैतिक पतन पर रोक लगती है।

हाल के वर्षों में भारत में विवाह की आयु में निरंतर वृद्धि हुई है और कुछ समुदायों में तथा क्षेत्रों में तो इतनी अधिक हो गई है कि इसे समस्या के रूप में देखा जाने लगा है और इस घटना के लिए भी कई कारक उत्तरदायी हैं, जैसे-

1. शिक्षा के प्रसार से लोगों की चेतना में वृद्धि हुई है और लोग बाल विवाह के दुष्परिणामों के प्रति सचेत हुए हैं, जिससे अधिकांश लोग अपने बच्चों का बड़ी उम्र पर विवाह करने लगे हैं।
2. स्त्रियों की प्रस्थिति (Status) में सुधार होने से उनको भी विकास के अवसर प्रदान किए जाने लगे है और उनके निर्णयों को भी मान्यता दी जाने लगी है, जिसके कारण विवाह आयु में वृद्धि हुई है।
3. जीवनसाथी के चुनाव में लड़के-लड़कियों की स्वतंत्रता भी विवाह आयु बढ़ाने में सहायक हुई है।
4. आत्मनिर्भरता और रोजगार का महत्त्व तथा इसके लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता ने भी विवाह की आयु को बढ़ाया है।
5. परिवार के संयुक्त ढाँचे में परिवर्तन (जहाँ आर्थिक सुरक्षा संबंधी प्रकार्य कमजोर हुए हैं) ने बाल विवाह के पारम्परिक दृष्टिकोण में परिवर्तन किया।
6. बढ़ती महत्त्वाकांक्षा के कारण भी लोग विवाह देर से कर रहे हैं।
7. दहेज प्रथा ने भी विवाह आयु पर प्रभाव डाला है।
8. नगरों में विशेष रूप से आया यौनसंबंधों में खुलापन और सहनिवास (co-living) जैसी प्रवृत्तियों ने भी विवाह आयु बढ़ाने में मदद की है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है कम उम्र में विवाह ने संप्रति (Present) भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभावों को उत्पन्न किया है। परंतु, आज जब हम आधुनिक समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हैं तब इन सकारात्मक प्रभावों के बावजूद कम उम्र में विवाह को प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसको शिक्षा के प्रसार, विधानों के क्रियान्वयन (बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 के द्वारा भारत में होने वाले बाल-विवाह को रोकने के लिए प्रयास किया गया है और इस कानून के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी राज्यों को दी गयी है तथा असफल होने पर फंड में कटौती का प्रावधान है), लिंग समानता

के लक्ष्य में प्रगति (स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार), दहेज प्रथा का उन्मूलन, अधिक आयु में विवाह का प्रचार-प्रसार आदि के द्वारा कम उम्र में विवाह को हतोत्साहित करना होगा, तभी हम इसके नकारात्मक प्रभावों से बचते हुए एक आदर्श-आधुनिक समाज (Ideal Modern Society) की स्थापना कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए अत्यधिक आयु में होने वाले विवाह को भी नियंत्रित करना होगा, ताकि मानव समाज के आदर्श स्वरूप (Ideal Form) और विवाह की आयु के बीच संतुलन बना रहे।

जनसंख्या नीति और परिवार नियोजन (Population Policy and Family Planning)

किसी देश की जनसंख्या को उस देश में उपलब्ध संसाधनों के साथ अनुकूलित करने की नीति 'जनसंख्या नीति' कहलाती है। भारत में 16 अप्रैल, 1976 में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति घोषित की गई और यह जून 1977 में लागू की गई। 1976 में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति प्रथम बार घोषित किए जाने तक भारत की जनसंख्या नीति सामान्यतः परिवार नियोजन नीति मानी जाती थी। भारतीय जनसंख्या नीति की अंतर्राष्ट्रीय परिधि में आलोचना के आधारों में से यह एक था कि जनसंख्या नीति के अन्य समाधानों को यह अनदेखा कर देता था। जनसंख्या नीति के वक्तव्य ने जनसंख्या की समस्या के कतिपय पहलुओं यथा सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक के मध्य कुछ जटिल संबंधों को ध्यान में रखा। इसने जनसंख्या समस्या के निवारण के लिए समीचीन (Accurate) उपायों को समाहित किया, जिनमें से कई उपाय परिवार नियोजन से आगे बढ़कर जनसंख्या नीति व्यवस्था में परिवार नियोजन कार्यक्रम की बेहतरी के लिए समाहित थे।

29 जून, 1977 को दिया गया परिवार कल्याण कार्यक्रम नीति का वक्तव्य वैसे किसी भी तरीके को समाप्त करता है जिसमें बाध्यता अथवा दबाव की थोड़ी भी संभावनाएं हैं। परिवार नियोजन कार्यक्रम का नाम भी बदलकर परिवार कल्याण कार्यक्रम हो गया जो सरकार की परिवार और समुदाय के कार्यक्रम के द्वारा संपूर्ण कल्याण बढ़ाने की चिंता को दर्शाता है।

1976 में घोषित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति द्वारा निर्मित उपायों को बरकरार रखा गया है। ये निम्न हैं:-

1. विवाह के लिए कानूनन निम्नतम निर्धारित उम्र को बढ़ाकर लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष करना।
2. 2001 तक 1971 की जनसंख्या दर रखना, हर परिस्थिति में जहाँ जनसंख्या राज्य के साथ केंद्रीय स्रोतों की साझेदारी में कारक है, यथासम्भव राज्य की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता का आवंटन, करों और शुल्कों की सहायता राशि का हस्तांतरण करना।
3. राज्य की योजनाओं को दी जाने वाली 8 प्रतिशत केंद्रीय सहायता को सिद्धांत रूप से उनके परिवार कल्याण कार्यक्रम के साथ जोड़ दिया जाना।
4. औपचारिक स्कूली शिक्षा में जनसंख्या शिक्षा को जोड़ दिया जाना।
5. परिवार कल्याण कार्यक्रम (Family Welfare Programme) को हर माध्यम का उपयोग कर लोकप्रिय बनाने की योजना।
6. कार्यक्रम को लागू कराने में स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता।
7. औपचारिक और अनौपचारिक माध्यम के द्वारा औरतों का शैक्षणिक स्तर बढ़ाना। नीति वक्तव्य में यह भी घोषित किया गया कि सरकार प्रजनन जैविकीय और गर्भ-निरोधण के क्षेत्र में होने वाले शोध पर विशेष ध्यान देगी।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (National Population Policy, 2000)

भारत में जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने और उसे देश के संसाधनों के साथ नियोजित करने के लिए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 बनाई गई जिसके कुछ अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्य रखे गए।

अल्पकालिक उद्देश्यों में गर्भ निरोधक साधनों का तेजी से प्रचार करना, स्वास्थ्य-अधोसंरचना (Sub-structure) का विकास करना, स्वास्थ्य कार्मिक तथा जननी स्वास्थ्य देखभाल के लिए एकीकृत सेवा पर अधिक ध्यान देना आदि प्रमुख थे। इनका लक्ष्य तात्कालिक रूप से जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण लगाने का प्रयास करना था। इसके साथ ही मध्यकालीन उद्देश्य के रूप में 2010 तक प्रजनन दर को कम करना लक्ष्य बनाया गया।

दीर्घकालीन उद्देश्यों में 2045 तक जनसंख्या को सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए स्थिर करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया जिससे जनसंख्या और राष्ट्रीय संसाधनों को सर्वोत्तम रूप से समायोजित (Well Adjust) किया जा सके।

उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 14 राष्ट्रीय सामाजिक-जनसांख्यिकीय लक्ष्य निर्धारित किए गए जिन्हें 2010 तक प्राप्त करना था, जैसे-

1. जननी और बाल स्वास्थ्य सेवाएं और अधोसंरचना संबंधी आवश्यकताएं पूरी करना।
2. 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को निःशुल्क व आवश्यक बनाना।
3. शिशु मृत्यु दर को प्रति एक हजार पर 30 से कम करना।
4. मातृ-मृत्यु दर को एक लाख पर 100 से कम करना।
5. लड़कियों का विवाह 20 वर्ष के बाद करने के लिए प्रोत्साहित करना।
6. 80% प्रसव संस्थात्मक तरीकों से और 100% प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा करवाने पर बल देना।
7. कुल प्रजनन दर (TFR) के न्यूनतम स्तर के लिये छोटे परिवार के विचार को प्रोत्साहित करना।
8. गर्भपात के विषय में पूरी जानकारी उपलब्ध करवाना।

9. जनसंख्या नियंत्रण के कार्य को मॉनिटर करने के लिए एक 'राष्ट्रीय आयोग' की स्थापना का भी लक्ष्य रखा गया।

छोटे-परिवार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निम्न अभिप्रेरणा संबंधी उपाय का सुझाव दिया गया:–

1. अनुकरणीय (Exemplary) कार्यों के लिए जिला परिषदों और ग्राम-पंचायतों को पुरस्कार देना।
2. दो बच्चों तक लड़की के लिए 500 रु. तक नगद पुरस्कार देना।
3. गाँवों में पहली संतान 19 वर्ष की आयु के बाद जन्म देने पर 500 रु. का पुरस्कार देना।
4. 1976 के बाल-विवाह निषेध अधिनियम को सख्ती से लागू करना। (बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 2006)
5. 2026 तक लोकसभा के लिए सदस्य संख्या न बढ़ाना।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (National Population Commission)

नई जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने व उसकी समीक्षा के लिए 11 मई, 2000 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरी 100 सदस्यीय 'राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग' (National Population Commission) का गठन किया गया।

आयोग की पहली बैठक 22 जुलाई, 2000 को नई दिल्ली में सम्पन्न हुई जिसमें जनसंख्या नियंत्रण की परियोजनाओं के वित्तीयन के लिए एक नए जनसंख्या स्थिरीकरण कोष के गठन की घोषणा की गयी।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन की समीक्षा एवं निगरानी के लिए गठित राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का पुनर्गठन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 19 मई, 2005 को किया हैं। पुनर्गठित आयोग में भी प्रधानमंत्री स्वयं इस आयोग के अध्यक्ष हैं, जबकि केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री व योजना आयोग के उपाध्यक्ष इसके दो उपाध्यक्ष होंगे। यह आयोग अभी तक योजना आयोग के अधीन था किन्तु आगे से इसे स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखा गया है।

आयोग के प्रभावी एवं सुचारू कार्य संचालन की दृष्टि से इसके सदस्यों की संख्या को 131 से घटाकर अब 40 किया गया है। सदस्यों में 8 प्रमुख केन्द्रीय मंत्री व 7 राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल हैं। ये मुख्यमंत्री मुख्यत: उन राज्यों के हैं जहाँ जनसंख्या एक बड़ी समस्या है या फिर जहाँ जनसंख्या नियंत्रण में विशेष सफलता प्राप्त की गयी है। आयोग के अन्य सदस्यों में राष्ट्रीय स्तर के सभी छह राजनीतिक दलों के अध्यक्ष, आईएमए के अध्यक्ष एवं गणमान्य हस्तियाँ शामिल हैं।

राष्ट्रीय जनसंख्या कोष

फरवरी, 2000 में घोषित नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के क्रियान्वयन के लिए फरवरी, 2003 में राष्ट्रीय जनसंख्या कोष की स्थापना की गयी। 100 करोड़ की प्राथमिक पूंजी के साथ इस कोष के लिए विभिन्न निजी संस्थानों, चैरिटेबिल संस्थाओं, उद्योगों, गैर सरकारी संगठनों से सहयोग भी लिया गया है। प्रधानमंत्री इस कोष के पदेन अध्यक्ष तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री इसके उपाध्यक्ष हैं। वर्ष 2025 तक जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य (मध्यावधि समीक्षा के अनुसार लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकेगा) को प्राप्त करने हेतु इस कोष द्वारा विभिन्न प्रकार के जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इस कोष से पिछड़े राज्यों को विशेष सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग की रिपोर्ट

केन्द्र सरकार द्वारा जुलाई, 2000 में गठित राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के तकनीकी कार्यदल के वर्ष 2006 के मध्य पेश रिपोर्ट में कहा गया है कि आगामी 20 वर्षों अर्थात् वर्ष 2026 में देश की जनसंख्या 140 करोड़ हो जाएगी। इस प्रकार 2001 में 102.9 करोड़ की तुलना में जनसंख्या में 37.1 करोड़ (36 प्रतिशत) की वृद्धि 2026 तक हो जाएगी।

रिपोर्ट के अनुसार इस 25 वर्षों में (2001-2026 के दौरान) जनसंख्या में सर्वाधिक 102 प्रतिशत की वृद्धि दिल्ली में होगी, जबकि सबसे कम 15 प्रतिशत की वृद्धि तमिलनाडु में व 17 प्रतिशत की वृद्धि केरल में होने की संभावना इसमें व्यक्त की गयी है। रिपोर्ट के अनुसार 2001-26 के दौरान देश में जनसंख्या में जहाँ 36 प्रतिशत वृद्धि होगी, वहीं हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश में यह वृद्धि 40-50 प्रतिशत की होगी, जबकि हिमाचल प्रदेश, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक में जनसंख्या में 20-30 प्रतिशत वृद्धि अपेक्षित की गयी है।

रिपोर्ट के अनुसार 2001-26 के दौरान 25 वर्षों की अवधि में देश की जनसंख्या में जो 37.1 करोड़ वृद्धि अपेक्षित है, उसकी 50 प्रतिशत वृद्धि (18.7 करोड़ की वृद्धि) अकेले सात राज्यों-बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड में ही होगी तथा 24.9 करोड़ जनसंख्या के साथ उत्तर प्रदेश देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य बना रहेगा। रिपोर्ट के अनुसार 2001-26 के दौरान देश की कुल जनसंख्या वृद्धि का लगभग 22 प्रतिशत भाग उत्तर प्रदेश में ही जुड़ेगा। तकनीकी कार्यदल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आंकड़ों का सारांश अधोलिखित है; यथा–

2026 में देश का जनसंख्या परिदृश्य: एक दृष्टि में	
• कुल प्रक्षेपित जनसंख्या	140 करोड़
• अप्रेक्षित जन्म दर	16 प्रति हजार
• शिशु मृत्यु दर	40 प्रति हजार
• स्त्री-पुरुष अनुपात	930:1000
• जनसंख्या घनत्व (जनसंख्या प्रतिवर्ग किमी)	426
• 2001-26 के दौरान देश में जनसंख्या वृद्धि	36 प्रतिशत

परिवार नियोजन (Family Planning)

परिवार नियोजन जिसे आज परिवार कल्याण कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है, जनसंख्या नियंत्रण हेतु भारत सरकार की ओर से संचालित किया जा रहा एक कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य गर्भ-निरोधक साधनों का प्रचार एवं प्रसार करके जनता को उसका ज्ञान करवाना है जिससे विवाहित दम्पत्ति वांछित संतानों को ही जन्म देकर परिवार को सीमित रख सकें और देश में अनुकूल जनसंख्या (Favourable Population) के स्तर को बनाया रखा जा सके।

परिवार नियोजन के तहत जनसंख्या नियंत्रण हेतु मुख्यत: आठ साधन अपनाए जाते हैं जिनमें दवाओं एवम् कृत्रिम तरीकों के अलावा ऑपरेशन, गर्भपात, यौन शिक्षा तथा परिवार नियोजन संबंधी ज्ञान प्रमुख हैं।

नई जनसंख्या नीति के तहत वर्तमान में इस कार्यक्रम के तहत कई प्रयास किए जा रहे हैं:-

1. प्रजनन योग्य दंपत्तियों तक इस कार्यक्रम को पहुँचाने के लिए जन शिक्षा एवं अभिप्रेरण (Motivation) का कार्य चलाया जा रहा है जिसके लिए रेडियो, टी.वी. समाचार पत्रों आदि द्वारा प्रचार- प्रसार किया जा रहा है।
2. स्कूलों एवं स्कूल के बाहर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में जनसंख्या को जोड़ दिया गया है।
3. श्रम समूहों, स्वयं सेवी संगठनों, पंचायतों एवं स्थानीय कार्य-समितियों की भी इस कार्य में मदद ली जा रही है।
4. निम्न स्तर के अधिकारी, चिकित्सा अधिकारी, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों को परिवार नियोजन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।
5. 10 लाख से अधिक लोगों को इससे संबंधित पत्र और पत्रिकाएँ भेजी जाती है।
6. लगभग 26 हजार प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, 1.6 लाख उपकेंद्र और 2600 समुदाय स्वास्थ्य केंद्र तथा 5 लाख चिकित्सक और अर्द्ध-चिकित्सक और 6.5 लाख प्रशिक्षित दाई इसमें लगे हुए हैं।
7. विभिन्न राज्यों में 18 अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की गई है जो परिवार नियोजन एवं परिवार-कल्याण के बारे में नवीन जानकारी एवं साधनों की खोज करते हैं।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

परिवार नियोजन के तहत किए गए उपरोक्त प्रयासों का निश्चित तौर पर कुछ सकारात्मक प्रभाव सामने आया है। इस कार्यक्रम के प्रारंभ से लेकर (1952) आज तक इससे लगभग 47 लाख ऑपरेशन और 118 लाख गर्भ समापन आदि के द्वारा लगभग 28 करोड़ जन्म को रोका जा सका है। परन्तु, उपरोक्त उपलब्धियाँ अभी भी पर्याप्त नहीं हैं। भारत इस कार्यक्रम को चलाने वाला विश्व का प्रथम देश था, बावजूद इसके न हम अपेक्षित जन्म दर को प्राप्त कर सके हैं और न ही जनसंख्या नियंत्रण के अपेक्षित लक्ष्य को।

1975-77 के बीच (संजय गाँधी प्रभाव) इस कार्यक्रम के द्वारा अद्‌भुत सफलता प्राप्त की गई थी परंतु उसके बाद के वर्षों में सफलता की दर अपेक्षित नहीं रही। आज भी वर्ष भर में कुल गर्भाधानों का लगभग 25% अनचाहा होता है; गर्भधारण तथा बच्चों को जन्म देने की अवधि में 1 लाख से अधिक स्त्रियों की प्रति वर्ष मृत्यु हो जाती है, लगभग 58% प्रसव आज भी घरों में होता है और आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर लगभग 80 प्रति हजार है।

इस कार्यक्रम की असफलता या अपर्याप्तता हेतु कई सांस्कृतिक पक्ष उत्तरदायी रहे हैं, जैसे:-

1. पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा (मोक्ष (Salvation) प्राप्ति का अचेतन एवं बुढ़ापे का सहारा या कमाई का साधन चेतन उदेश्य) के कारण लोग एक पुत्र के लिए लगातार लड़कियां होने पर भी प्रजनन की निरंतरता बनाए रखते हैं।
2. अशिक्षा एवम् जागरूकता का अभाव, के चलते लोग परिवार नियोजन साधनों को नहीं अपनाते और बच्चों को भगवान की देन समझते हुए अधिक बच्चे पैदा करते हैं।
3. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति, के कारण प्रजनन पर उनकी सहमति नहीं ली जाती है और उन्हें पैदा करने व उसका पालन-पोषण (Upbringing) करने वाली मशीन के रूप में समझा जाता है जिससे जनसंख्या वृद्धि होती रहती है।
4. कम आयु में विवाह, के कारण महिलाओं के सम्पूर्ण प्रजनन काल का उपयोग होता है जिससे उनके अधिक बच्चे होते हैं जो जनसंख्या वृद्धि हेतु उत्तरदायी हैं।
5. संरचनात्मक (Structural) सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण बाल मृत्यु दर अधिक होती है जिससे लोग अधिक से अधिक बच्चे पैदा करते हैं साथ ही सुरक्षित गर्भपात की व्यवस्था न होने के कारण अनचाहे गर्भ को भी पैदा करने का बाध्यता हो जाती है।
6. प्रचार-प्रसार के साधनों की अपर्याप्तता, के चलते लोगों में जागरुकता का विकास नहीं हो पाता फलतः वह परिवार नियोजन कार्यक्रम व इसके लाभों से अनभिज्ञ (Unaware) रहते हैं जिससे जनसंख्या निरंतर बढ़ती रहती है।
7. प्रशासनिक एवं राजनीतिक दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी के कारण परिवार नियोजन संबंधी कठोर कानून नहीं बन पाते और न ही बने हुए कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन (Implementation) हो पाता है जिससे जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश नहीं लगा पाता है।
8. संजय-इफेक्ट का दुष्प्रभाव, भी जनसंख्या वृद्धि का एक कारण रहा है क्योंकि संजय गांधी के लक्ष्य उन्मुखी नसबन्दी कार्यक्रम के कारण लोगों में परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रति संदेह एवं भय उत्पन्न कर दिया था जिससे लोग इन कार्यक्रमों से कतराने लगे थे।

स्पष्ट है कि उपरोक्त योजनागत कमियों को दूर करने के साथ-साथ हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक विश्व दृष्टि में परिवर्तन अपरिहार्य है तभी हम इस कार्यक्रम की सफलता की आशा कर सकते हैं। हाल के समाजशास्त्री भी यह दर्शाते हैं कि यह जागरूकता (Awareness) एवं लघु मानदण्ड की स्वीकृति के बावजूद इस कार्यक्रम से अपेक्षित सफलता तब तक नहीं मिल सकती जब तक कि हमारी विचारधारा एवं दृष्टिकोण (Ideology and Approach) में परिवर्तन नहीं आ जाता है। इसके लिए महिला सशक्तिकरण को आज एक सहायक कारक के रूप में देखा जा रहा है जो महिलाओं की जागरूकता के साथ समाज की पितृसत्तात्मकता की प्रवृति में कमी लाएगा और कार्यक्रम को सफल बनाने में सहायक रहेगा।

इस कार्यक्रम की सफलता के लिए **अमर्त्य सेन** का **'केरल मॉडल'** (महिलाओं की स्वास्थ्य सुविधाओं से संबंधित तथ्य) भी एक सराहनीय प्रयास साबित हो सकता है।

उपरोक्त प्रयासों के अलावा चीनी मॉडल (दबावात्मक प्रयास) को भी संशोधित रूप में अपनाया जाना चाहिए। इस संदर्भ में राष्ट्रीय विकास परिषद् की जनसंख्या संबंधी उपसमिति द्वारा किया गया सुझाव भी एक महत्त्वपूर्ण कदम साबित हो सकता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य (Important Facts)

राष्ट्रीय विकास परिषद का सुझाव (National Development Council's Suggestion)

राष्ट्रीय विकास परिषद् की जनसंख्या संबंधी उपसमिति ने यह सुझाव दिया है कि जन प्रतिनिधि कानून में संशोधन करके जिन व्यक्तियों की दो से अधिक संतान हैं उन्हें संसद और राज्य-विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित कर देना चाहिए।

यद्यपि यह प्रस्ताव अभी तक लागू नहीं किया जा सका परंतु राजस्थान सरकार ने पंचायत चुनाव हेतु यह प्रावधान किया कि जिन व्यक्तियों के दो से अधिक बच्चे हैं वो पंचायत के लिए चुनाव नहीं लड़ सकेंगे। यदि पंचायत सदस्य होने के बाद व्यक्ति को तीसरी संतान होती है तो उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाएगी। छत्तीसगढ़ में भी यह कानून लागू है।

अमर्त्य सेन का केरल मॉडल

अमर्त्य सेन ने **माल्थस** का विरोध और कंडोरसेट का समर्थन करते हुए केरल परिकल्पना का विकास किया। उन्होंने साक्षरता में वृद्धि और अच्छी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण हेतु उपाय के रूप में प्रस्तुत किया और इसके लिए केरल को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया।

चीनी मॉडल

जनसंख्या वृद्धि की समस्या से निजात पाने के उद्देश्य से 1978 में चीन में परिवार नियोजन को मौलिक नागरिक कर्त्तव्यों में जोड़ दिया गया। 1980 में वहां के उप-प्रधानमंत्री 'यावो इलिन' ने 'प्रति व्यक्ति एक संतान' का नारा दिया, जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन के साथ-साथ कई दबाव मूलक कारक भी प्रयोग में लाए गए। जनसंख्या नियंत्रण हेतु प्रयुक्त किए गए इस तरीके (मुख्यतः दबाव मूलक तरीके) को 'चीनी मॉडल' के नाम से जाना जाता है।

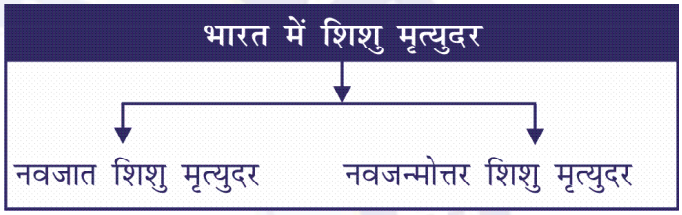
भारत में शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate in India)

शिशु मृत्यु दर से तात्पर्य आयु के प्रथम वर्ष (0-1) की मृत्यु से है। शिशु मृत्युदर को समाज की सामान्य स्वास्थ्य दशाओं का सर्वश्रेष्ठ सूचक माना जाता है। यह दर जितनी कम होगी जीवन स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होगा व प्रजनन दर भी कम होगी। इसके विपरीत, जहाँ शिशु मृत्युदर अधिक होगी वहाँ प्रजनन दर (Fertility Rate) भी ऊँची होगी।

शिशु मृत्युदर को ज्ञात करने हेतु जीवन के प्रथम वर्ष (0-1) में हुई कुल मृत्यु को उसी काल विशेष में सजीव जन्में शिशुओं की कुल संख्या से भाग दिया जाता है व प्रति संख्या को शिशु मृत्युदर कहा जाता है और यह दर यदि प्राप्त हजार जन्मों में निकालना हो तो भागफल को 1000 से गुणा कर दिया जाता है।

$$IMR = \frac{\text{किसी निश्चित क्षेत्र या वर्ष में 1 वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की मृत्यु की कुल संख्या}}{\text{उसी वर्ष और क्षेत्र में सजीव जन्में शिशुओं की कुल संख्या}} \times 1000$$

शिशु मृत्यु दर को आयु के आधार पर दो भागों में बाँटा जाता है-



1. ***नवजात शिशु मृत्युदर (Neo Natal Mortality Rate)-*** इसके अंतर्गत 4 सप्ताह अथवा 1 माह से कम आयु के शिशुओं की मृत्युदर को ज्ञात किया जाता है।

$$N.N.MR. = \frac{\text{एक माह से कम आयु के मृतक बच्चों की संख्या}}{\text{सजीव जन्में कुल बच्चों की संख्या}} \times 1000$$

2. ***नवजन्मोत्तर शिशु मृत्युदर (Neonatal Mortality Rate)-*** प्रथम चार सप्ताह के बाद वर्ष के शेष 48 सप्ताहों में हुई मृत्यु को इसके अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है व इसकी गणना भी NNMR की तरह ही की जाती है।

शिशु-मृत्युदर जनसंख्या संरचना का प्रमुख पक्ष है और किसी भी देश में इसकी अधिकता अविकास का सूचक मानी जाती है। भारत में 2011 के आंकड़े के अनुसार शिशु मृत्युदर 30.15 प्रति हजार है जो तुलनात्मक (Comparative) रूप से अभी भी अधिक है तथा विकसित देशों (स्वीडन-3 प्रति हजार, ऑस्ट्रेलिया-6, जापान-3, फ्रांस-4, जर्मनी-4 प्रति हजार) से कई गुना अधिक है। भारत में शिशु मृत्युदर में क्षेत्रीय आधारों (Regional Basis) पर भी विभिन्नता दृष्टिगत होती है। यह ग्रामीण क्षेत्रों (लगभग 80 प्रति हजार) और उड़ीसा (96 प्रति हजार) उत्तर प्रदेश (82 प्रति हजार), मध्य प्रदेश (85 प्रति हजार) जैसे राज्यों में अधिक है तो नगरीय क्षेत्रों (47 प्रति हजार) या केरल (14 प्रति हजार), महाराष्ट्र (48 प्रति हजार) जैसे राज्यों में कम है।

उच्च शिशु मृत्युदर के परिणाम
(Consequences of High infant Mortality Rate)

भारत में शिशु मृत्युदर की इस अधिकता ने कई परिणामों को उत्पन्न किया है, जैसे:–

1. अधिक शिशु मृत्युदर के परिणामस्वरूप उत्पन्न संतति उत्तर जीविका (Survival) के भय के कारण जन्मदर में वृद्धि होती है जो जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।
2. अधिक शिशु मृत्यु दर से उत्पन्न प्रजनन दबाव के कारण इससे मातृ-मृत्युदर में वृद्धि होती है जिससे बच्चों के पालन पोषण और समाजीकरण (Socialization) जैसी समस्या उत्पन्न हुई है।
3. महिला शिशुओं की उपेक्षा के कारण शिशु मृत्यु दर में महिला शिशुओं की संख्या अधिक होने से लिंगानुपात में कमी आई है जिसके परोक्ष परिणाम के रूप में वेश्यावृत्ति या विवाह-विच्छेद में वृद्धि हुई है।
4. अधिक शिशु मृत्यु से उत्पन्न असुरक्षा के कारण प्रजनन दर में वृद्धि हुई है, 0-15 वर्ष की जनसंख्या अथवा निर्भरशील जनसंख्या (Dependent Population) में वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप आर्थिक विकास दुष्प्रभावित हुआ है।
5. शिशु मृत्युदर की अधिकता से माता-पिता को भावनात्मक चोट पहुँचती है।

उच्च शिशु मृत्युदर के सामाजिक कारक
(Social Factors of High infant Mortality Rate)

भारत में उच्च शिशु एवं बाल मृत्युदर अविकास का परिचायक है और इसके लिए मुख्यत: निम्न कारक उत्तरदायी रहे हैं:-

1. गरीबी और कुपोषण (Poverty and Malnutrition) (लगभग 22% लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं, निम्न प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता, निम्न प्रति व्यक्ति प्रोटीन उपलब्धता) के कारण बच्चों एवं उनको दूध पिलाने वाली माताओं में स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो शिशु मृत्युदर बढ़ा देती है।
2. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति एवं पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार (Patriarchal Joint Family) में स्त्रियों के स्वास्थ्य पर कम ध्यान दिया जाना स्त्रियों में कुपोषण का एक कारण है जिससे शिशु मृत्यु दर में वृद्धि होती है।
3. प्रजनन व्यवहार संबंधी निर्णय पर पुरुषों के नियंत्रण के कारण अधिक प्रजनन होता है फलत: शिशु मृत्युदर में वृद्धि होती है।
4. धर्म प्रधान समाज में परिवार नियोजन एवं चिकित्सा सुविधाओं का लाभ उठाने का विरोध किया जाता है तथा पुत्र प्राप्ति की इच्छा (मोक्ष प्राप्ति एवं बुढ़ापे के सहारे हेतु) के कारण प्रजनन दर अधिक होती है फलत: शिशु मृत्युदर अधिक होती है।
5. भाग्यवादिता 'संतान ईश्वर की देन है तथा जन्म देने वाला अन्न देगा' जैसी भावनओं को मजबूत करती है फलत: जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।
6. रूढ़ियाँ और अवैज्ञानिक मान्यताएँ (Unscientific Belief) भी जनसंख्या वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि इनसे 'लड़कियों को अपने माता-पिता के घर रजस्वला नहीं होना चाहिए' जैसी मान्यताओं को बढ़ावा मिलता है जो अन्तिम रूप से जनसंख्या वृद्धि की प्रेरक होती हैं।
7. अशिक्षा और अज्ञानता के कारण अति जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के निवारण हेतु किए गए उपाय असफल हो जाते हैं।
8. कम उम्र में विवाह (यूनीसेफ 46%- 2007) अधिकाधिक संतानोत्पत्ति का अवसर प्रदान करता है जिसका परिणाम जनसंख्या वृद्धि है।
9. चिकित्सा सुविधाओं के निम्नस्तर और अपर्याप्तता के कारण जहाँ एक ओर उच्च प्रसूति तथा नवजात शिशु मृत्युदर का कारण बनता है वहीं अवांछनीय गर्भ भी संतान के रूप में सामने आता है।

नवजात शिशु मृत्युदर में जैविकीय तथ्य (Biological Facts) निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। ये तथ्य भी अल्पविकास के तथ्य के रूप में जाने जाते हैं। इसके प्रमुख कारण निम्न हैं:–

1. उच्च नवजात मृत्युदर तब होती है जबकि माँ अठारह वर्ष से कम अथवा 35 वर्ष से अधिक उम्र की हो एवं दो बच्चों के जन्मों के मध्य का अंतर एक वर्ष से कम हो। ये परिस्थितियाँ हमारे देश में सामान्य हैं जो उच्च नवजात मृत्यु का कारण बनती हैं।
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा निर्दिष्ट मानक (Specified Standard) यह स्पष्ट करता है कि 2500 ग्राम से कम वजन के बच्चों की मृत्यु की संभावना अधिक होती है और उन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। 24 से 37 प्रतिशत तक भारतीय बच्चे 2500 ग्राम से कम वजन के होते हैं जिनकी कोई खास देख-रेख की व्यवस्था नहीं होती है।
3. सामान्यतया गर्भवती महिलाओं की भलाई के लिए किए जाने वाले नव प्रसूति उपचार सम्बन्धी सावधानियों की हमारे देश में कमी है।
4. भारत में स्वच्छता की व्यवस्था और जन्म के समय चिकित्सा संबंधी सावधानी सुनिश्चित नहीं हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। प्रसव सामान्यतया दाई (अप्रशिक्षित पारंपरिक प्रसव कराने वाली) के द्वारा कराया जाता है।
5. बच्चों को कतिपय बीमारियों से प्रतिरक्षित करने के अवसर से वंचित रखा जाता है जिससे उनमें नव प्रसूति-मृत्युदर की संभावना बढ़ जाती है।

बाल मृत्युदर को प्रभावित करने वाले कारण सामान्यतः जैविकीय ही नहीं होते अपितु पर्यावरण से भी सम्बन्धित होते हैं। ये कारक बहिर्जात तथ्य (Exogenous Facts) के रूप में जाने जाते हैं जिनको निम्न रूप में देखा जा सकता है:–

1. बचपन की सामान्य बीमारी, जैसे-डिप्थीरिया, कुकुर-खांसी, चेचक, पोलियो और क्षय रोग आदि बाल मृत्युदर को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण हैं। ग्रामीण जनता में अज्ञानता और अंधविश्वास तथा प्रतिरक्षण सेवा में कमी के कारण बाल मृत्युदर को नियंत्रित नहीं किया जा सका है।
2. डायरिया और इसके परिणामत: निर्जलीकरण दूसरा तथ्य है जो बाल मृत्यु की दर को बढ़ाने में अत्यधिक योगदान देता है। प्रतिवर्ष लगभग 15 लाख 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे डायरिया के कारण मर जाते हैं जिसमें से 60 से 70 प्रतिशत निर्जलीकरण के कारण मरते हैं।
3. पोषण की कमी एक अन्य तथ्य है जो बाल मृत्युदर को प्रभावित करता है। 1981 में किए गए एक अध्ययन में राष्ट्रीय पोषण संस्थान ने यह पाया कि लगभग 85 प्रतिशत चार वर्ष से कम आयु के बच्चे कुपोषण का शिकार थे जिनमें से लगभग 6 प्रतिशत गंभीर रूप से कुपोषित थे। इन कुपोषित बच्चों में डायरिया तथा अन्य दुर्बलताजन्य रोगों के होने की संभावना अधिक होती है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है कि अधिक शिशु मृत्युदर वर्तमान भारत की प्रमुख जनांकिकीय घटना है जो कई सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का परिणाम है और इन कारकों को दूर करके ही इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में सामाजिक-आर्थिक विकास का लक्ष्य हमारे लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। ऐसे में शिशु मृत्युदर की अधिकता जहाँ जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाली है वहीं यह कई रूपों में हमारे आर्थिक विकास या आधुनिक समाज के लक्ष्य को भी बाधित करती है। अत: यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि, आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, शिक्षा एवं जागरुकता का प्रसार, गरीबी का उन्मूलन, जीवनस्तर में सुधार, महिला सशक्तिकरण आदि को संभव बनाया जाए तभी शिशु मृत्युदर को नियंत्रित करके देश का सामाजिक-आर्थिक विकास (Social-Economic Development) और आधुनिक समाज के आदर्श लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में लिंगानुपात (Sex Ratio in India)

प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या को लिंगानुपात कहते हैं जो जनसंख्या संरचना का प्रमुख पक्ष है और इसका सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम विस्तृत है। भारत में लिंगानुपात के परिदृश्य पर गौर करें तो यहाँ लिंगानुपात में निरंतर कमी आई है जो समाजशास्त्रीय चिंता का विषय रहा हैं 1901 में लिंगानुपात 972 था, 1991 में घटकर 927 हो गया। यद्यपि 2011 में इसमें कुछ बढ़ोत्तरी (943) अवश्य हुई है परंतु यह अभी भी विकसित देशों की तुलना में काफी कम है।

भारत में लिंगानुपात की प्रवृत्ति विभिन्न क्षेत्रों एवं समुदायों में अलग-अलग रही है। नगरों में यह गांवों की अपेक्षा कम है तो राज्य स्तर पर केरल (1084) में सर्वाधिक, हरियाणा (877), पंजाब (873) और सिक्किम (875) में सबसे कम है। समुदाय के स्तर पर देखा जाए तो ईसाइयों में सर्वाधिक-986 हिंदुओं में 930, मुस्लिमों में 922, अनुसूचित जनजातियों में 982 और अनुसूचित जातियों में 932 है।

घटते लिंगानुपात के सामाजिक परिणाम (Social Consequences of Declining Sex Ratio)

निश्चित ही लिंगानुपात की भिन्नता या इसमें आई कमी किसी भी देश के लिए समस्यात्मक है और यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कई सामाजिक परिणामों को उत्पन्न कर रही है, जैसे:-

1. घटते हुए लिंगानुपात के कारण लोगों को अपने अधिमान्य विवाह समूहों (Preferential Marriage Groups) में विवाह साथी के रूप में महिलाओं की कमी होती जा रही है जिसके चलते विवाह संबंधी निषेधों के उल्लंघन (उपजाति निषेध, गोत्र संबंधी निषेध, सप्रवर निषेध टूट रहे हैं) हो रहे हैं।
2. लिंगानुपात की क्षेत्रीय विषमता के करण कुछ राज्यों में महिलाओं की संख्या इतनी कम है कि उन्हें अपने विवाह साथी की तलाश अन्य राज्यों से करनी पड़ रही है जिससे अंतर्राज्यीय विवाहों (Interstate Marriage) में वृद्धि (हरियाणा, पंजाब) हो रही है।
3. लिंगानुपात के लगातार घटने के कारण बहुत से पुरुषों के लिए विवाह हेतु महिलाएँ उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं जिससे अनेक युवक बिना शादी के ही रह जी रहे हैं जिससे वेश्यावृत्ति जैसी कुप्रथाओं में वृद्धि (हरियाणा और पंजाब) हुई है।
4. विभिन्न जातीय समूहों में लिंगानुपात के असंतुलन के चलते उनमें अन्तर्जातीय विवाह प्रोत्साहित हुए हैं जिससे कई स्तरों पर वधू मूल्य का प्रचलन और दहेज प्रथा हतोत्साहित (यद्यपि यह प्रभाव भी सामान्य रूप से दृष्टिगत नहीं हो रहा है, परंतु ये आशा की जा रही है कि आने वाले समय में यही स्थिति रही तो इसकी संभावना बढ़ सकती है- पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब के कुछ समुदायों के संदर्भ में) हो रही है।
5. जातिवाद में कमी (यद्यपि यह प्रभाव बहुत ही कम है) आई है।

घटते लिंगानुपात के सामाजिक कारक (Social Factors of Declining Sex Ratio)

भारत में घटते लिंगानुपात के लिए निम्न कारकों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है:-

1. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति के कारण स्त्रियों पर कम ध्यान और प्रजनन व्यवहार के निर्णय पर पुरुषों के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप कुपोषण और अधिक प्रजनन होता है जिससे स्त्री मृत्युदर, मातृ मृत्युदर, बालिका शिशु मृत्युदर अधिक होती है।
2. पुत्र को अधिक महत्व (मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में और वृद्धावस्था में सहारे के रूप में) देने के कारण मादा भ्रूण हत्या और बालिका शिशु मृत्युदर की अधिकता पाई जाती है।
3. दहेज प्रथा के कारण स्त्रियों को बोझ माना जाता है परिणामस्वरूप उन पर कम ध्यान दिया जाता है जो अन्ततः स्त्री मृत्युदर, मातृ मृत्युदर, बालिका-शिशु मृत्युदर तथा मादा भ्रूण हत्या के रूप में सामने आता है।
4. अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण विवाह की आयु, प्रजनन व्यवहार, चिकित्सा सुविधाओं एवं परिवार नियोजन आदि के प्रति अतार्किक और रूढ़िगत निर्णय (Conservative Decision) लिए जाते हैं फलस्वरूप स्त्री-मृत्युदर, मातृ मृत्युदर, बालिका-शिशु-मृत्युदर और मादा-भ्रूण-हत्या में वृद्धि होती है।
5. पुरुषों के प्रवास के कारण क्षेत्रीय लिंगानुपात में असंतुलन (मुख्यतः दिल्ली आदि) उत्पन्न हो जाता है। ग्रामीण एवं अविकसित क्षेत्रों से युवकों का नये अवसरों की तलाश में नगरीय क्षेत्रों में प्रवासन होता है जिससे एक तरफ तो गांवों में महिलाओं का अनुपात बढ़ जाता है तो दूसरी तरफ नगरीय क्षेत्रों में महिला अनुपात कम हो जाता है।
6. छोटे परिवार की धारणा को तार्किक रूप से स्वीकृति और साथ ही पुत्र प्राप्ति की इच्छा की विद्यमानता भी लिंगानुपात पर असर डालती है। क्योंकि अधिकांश परिवार एक या दो पुत्र पैदा होने पर ही परिवार नियोजन अपना लेते हैं और महिला बच्चों को नहीं पैदा करना चाहती है।
7. उच्च तकनीकी का विकास (अल्ट्रासाउण्ड जो कन्या भ्रूण हत्या में सहायक) के चलते आज गर्भपात के समय ही बच्चे के लिंग का पता लगा लिया जाता है और महिला भ्रूणों का गर्भपात कर दिया जाता है जिसके कारण भी लिंगानुपात असंतुलित हुआ है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है लिंगानुपात में कमी भारत के लिए समस्यात्मक है और अविकास का सूचक है तथा इसके लिए जिम्मेदार कारकों में सर्वाधिक जिम्मेदार कारक भारत में स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति (Low Status) रही है जिसकी पुष्टि केरल में या ईसाई समुदाय में लिंगानुपात की अधिकता (क्रमशः 1050 व 986) या मुस्लिम समुदाय में लिंगानुपात में कमी (922) से भी होती है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में प्रवास में होने वाली वृद्धि में भी लिंगानुपात को असंतुलित किया है परंतु आर्थिक विकास और शिक्षा के प्रसार द्वारा स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार करके और उनके दृष्टिकोण में सकारात्मक सुधार लाकर आने वाले समय में लिंगानुपात को संतुलित किया जा सकता है और इसके दुष्परिणामों (Bad effects) से बचा जा सकता है। इस दिशा में किए जा रहे विभिन्न प्रयास यथा हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2004 और बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 2006 महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकते हैं।

भारत में शिशु लिंगानुपात (Child Sex Ratio in India)

भारत में शिशु लिंगानुपात सम्बन्धी आँकड़े (Child Sex Ratio Statistics in India)

2001 (933) की तुलना में जनगणना 2011 में (943) लिंगानुपात में 10 अंक वृद्धि से जहाँ आशा की किरण दिखाई पड़ती है वहीं शिशु लिंगानुपात (0-6) में 2001 (927) की तुलना में 2011 (919) में 8 अंकों की कमी गहन चिंता का विषय है।

15वीं जनगणना (2011) के अंतिम (Final) आंकड़ों के अनुसार 0-6 आयु वर्ग की ग्रामीण एवं शहरी शिशु जनसंख्या क्रमशः 121.28 एवं 43.19 मिलियन रही अर्थात् उक्त आयु वर्ग की कुल शिशु जनसंख्या 73.27% एवं शहरी शिशु जनसंख्या 26.27% की सहभागिता रही।

1. वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में जहाँ ग्रामीण शिशु जनसंख्या में 5.21 मिलियन की कमी आयी वहीं उक्त समयावधि में शहरी शिशु जनसंख्या में 5.83 मिलियन की वृद्धि दर्ज की गयी।
2. सर्वाधिक ग्रामीण एवं शहरी शिशु जनसंख्या वाला राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र क्रमशः उत्तर प्रदेश, दिल्ली (24.25 मिलियन एवं 2.0 मिलियन) में है।
3. न्यूनतम ग्रामीण एवं शहरी शिशु जनसंख्या वाला राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र क्रमशः सिक्किम (क्रमशः 47,038 एवं 14,039) व लक्षद्वीप हैं।
4. शिशु लिंगानुपात (0-6) में वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में (-) 8 अंकों की कमी आयी है। जबकि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिंगानुपात में क्रमशः 11 एवं 1 की कमी आयी है।
5. सर्वाधिक शहरी शिशु लिंगानुपात वाला राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र नागालैण्ड (979) पुदुचेरी (969) हैं।
6. न्यूनतम शिशु लिंगानुपात वाला शहरी राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र क्रमशः हरियाणा (829) व चण्डीगढ़ (867) हैं।

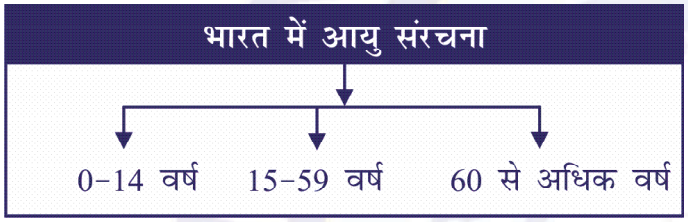
0-6 आयु वर्ष का लिंगानुपात

	2001	2011	अन्तर
भारत	927	919	(-)8
ग्रामीण	934	913	(-)11
शहरी	906	905	(-)1

शिशु (0-6) लिंगानुपात (1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या)				
	सर्वाधिक		न्यूनतम	
क्षेत्र	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
राज्य	मेघालय / छत्तीसगढ़	नागालैण्ड	हरियाणा	हरियाणा
	(972)	(979)	(831)	(829)
केन्द्रशासित	अण्डमान एवं निकोबार	पुदुचेरी	दिल्ली	चण्डीगढ
क्षेत्र	(975)	(969)	(809)	(867)

भारत में आयु संरचना (Age Structure in India)

किसी देश की जनसंख्या में विभिन्न आयु वर्गों (Age Groups) के अनुपात को आयु संरचना के रूप में जाना जाता है जिसके अंतर्गत मुख्यत: तीन आयु वर्ग के लोगों को शामिल किया जाता है:-



किसी जनसंख्या के आयु संरचना से कार्यशील जनसंख्या, (Working Papulation) निर्भरशील जनसंख्या, संतान उत्पादक जनसंख्या आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए जिम्मेदार सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों (Social-Cultural Factor) और इसके द्वारा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया जा सकता है। वर्तमान भारत की आयु संरचना के संदर्भ में हम देखते हैं कि यहाँ-

1. प्रजनन दर के नियंत्रित होने के कारण 0-14 वर्ष के आयु वर्ग वाली जनसंख्या में कमी आई है। (1980 में 48% से घटकर वर्तमान में 29.7%)
2. स्वास्थ्य सेवाओं में विकास एवं शिशु-मृत्यु दर में कमी के कारण कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि हुई है (1980 के 54.7% से बढ़कर वर्तमान में 64.9%)
3. विज्ञान का विकास एवं स्वास्थ्य एवं सामान्य सेवाओं के प्रसार के साथ हुई जीवन प्रत्याशा में वृद्धि के कारण 65 वर्ष से ऊपर के लोगों का अनुपात भी बढ़ा है। (1980 के 6.2 % से बढ़कर वर्तमान 8.9%)। आने वाले समय में आयु वर्ग में और वृद्धि होने की संभावना है।

भारत में वर्तमान आयु संरचना में होने वाले उपरोक्त परिवर्तन निश्चित रूप से सकारात्मक हैं और आर्थिक विकास की संभाव्यता को पुष्ट करते हैं। परंतु, विकसित देशों की तुलना में अभी भी यह अपर्याप्त है (जापान में कार्यशील जनसंख्या लगभग 70%, अमेरिका की कार्यशील जनसंख्या लगभग 70% एवं मध्य एवं पूर्वी यूरोप की कार्यशील जनसंख्या लगभग 70%) क्योंकि आज भी हमारी जनसंख्या में निर्भरशील जनसंख्या (Dependent Population) लगभग 35% है जो कई दृष्टिकोण से समस्यात्मक कही जा सकती है, जैसे:-

1. निर्भरशील जनसंख्या उपार्जक नहीं होती और इसके बढ़ने से सामाजिक-आर्थिक विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहा है क्योंकि राष्ट्रीय आय (National Income) का एक बड़ा भाग इनकी सुरक्षा एवं विकास में नियोजित हो जाता है।
2. मुख्यत: 0-14 वर्ष की जनसँख्या, जनसँख्या नियंत्रण कि दिशा में मुख्य समस्या है क्योंकि इस आयु वर्ग की जनसँख्या जो कालांतर में प्रजननशील आयु वर्ग के अनुपात में वृद्धि करेंगी। इससे तुलनात्मक रूप से जन्मदर को नियंत्रित करना अधिक मुश्किल होगा। फलत: यह जनसंख्या वृद्धि में अभी भी सहयोगी हैं जो अनेक सामाजिक दुष्परिणामों (Social bad effects) को उत्पन्न कर रही है।

वर्तमान आयु संरचना के इस समस्यात्मक पक्ष के लिए प्रमुख निर्धारक कारक जन्मदर की अधिकता है जो कई सामाजिक सांस्कृतिक कारकों का परिणाम है। परंतु, हाल के वर्षों में भारत की आयु संरचना (Age Structure) में परिवर्तन की प्रवृत्ति निश्चित रूप से सकारात्मक रही है। पिछले 60 वर्षों में:-

1. स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार से प्रजनन पर उनका समर्थन भी लिया जाने लगा है जिससे जन्म दर नियंत्रित हुई है।
2. शिक्षा के प्रसार एवं जागरूकता में वृद्धि के कारण लोगों को छोटे परिवार के लाभ समझ में आने लगे हैं जिससे लोग कम बच्चे पैदा कर रहे हैं।
3. आधुनिक मूल्यों के प्रसार से व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता व महत्वाकांक्षा में वृद्धि ने लोगों को छोटे परिवार की धारणा अपनाने के लिए बाध्य किया है।
4. लघु परिवार की महत्ता तेजी से स्थापित हो रही है।
5. जनसंख्या समस्या के बारे में जागरूकता बढ़ रही है। जिसके चलते अधिकांश शिक्षित एवं जागरूक लोग कम से कम बच्चे उत्पन्न करना चाहते हैं।
6. स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार भी तेजी से हो रहा है, जिससे शिशु मृत्यु दर से उत्पन्न असुरक्षा की भावना कम हुई और लोग अधिक बच्चे पैदा नहीं कर रहे हैं।
7. परिवार नियोजन का विस्तार होने के कारण आज गर्भ निरोधक तकनीकों तक लगभग सभी की पहुंच हो गयी है जिसको अपना कर लोग प्रजनन को नियंत्रित कर रहे हैं।

उपरोक्त परिस्थितियों के विकास के कारण जन्मदर को बहुत हद तक नियंत्रित कर लिया गया है। आज अधिकांश भारतीय लघु परिवार के मानदंडों को स्वीकार कर रहे हैं। इसीलिए जनसंख्या के वर्तमान परिदृश्य को अमर्त्य सेन सामाजिक- आर्थिक विकास हेतु

सकारात्मक प्रवृत्ति (Positive Trend) के रूप में इंगित करते हैं। यद्यपि निश्चित ही वर्तमान प्रवृत्ति विकसित देशों की तुलना में अच्छी नहीं है परंतु हम निरंतर सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर हैं।

संभावित प्रश्न

1. भारत के आर्थिक विकास में भारत की वृहद जनसंख्या कहाँ तक सहायक है? स्पष्ट करें।
2. जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रण करने संबंधी उपायों के बावजूद अपेक्षित सफलता न मिलने के क्या कारण हैं? स्पष्ट करें।
3. उत्तर तथा दक्षिण के राज्यों के मध्य साक्षरता तथा लिंगानुपात में आए अंतर के सामाजिक कारणों को स्पष्ट करें।
4. 2011 के जनगणना आंकड़ों में शिशु लिंगानुपात में उत्तरोत्तर कमी ने कन्या भ्रूण हत्या में वृद्धि को स्पष्ट रूप से इंगित किया है। कन्या भ्रूण हत्या के कारणों व इसे रोकने के उपायों की चर्चा कीजिए।
5. नगरों में अपेक्षाकृत बेहतर साक्षरता दर के बावजूद कन्या भ्रूण हत्या संबंधित मामलों में हाल के कुछ वर्षों में वृद्धि हुई है। एक शिक्षित समाज के द्वारा किए गए इस कृत्य का क्या कारण हैं?
6. जनांकिकीय लाभांश से क्या समझते हैं? भारत जैसे विकासशील देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में इसकी भूमिका को रेखांकित करें।
7. भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता का मूल्यांकन करें।
8. ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या नियंत्रण के संबंध में सामाजिक सांस्कृतिक बाध्यताओं को स्पष्ट करें।
9. भारत की सामाजिक संरचना इसके जनसंख्या गतिकी का प्रमुख निर्धारक है। चर्चा कीजिए।
10. भारत की विशाल जनसंख्या आर्थिक विकास हेतु बाधक है, अथवा साधक? अपना मत प्रस्तुत करें।
11. 2011 के जनगणना आंकड़ों में लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गयी जबकि शिशु लिंगानुपात में कमी दर्ज की गयी है। इस विरोधाभास के कारणों को स्पष्ट करें।
12. भारत में ग्रामीण-नगरीय प्रवास में वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं को स्पष्ट करें तथा इसे दूर करने हेतु उपाय सुझाएँ।
13. गिरते स्त्री-पुरुष अनुपात के सामाजिक कारणों की चर्चा करें।
14. आधुनिक समाज में कन्या भ्रूण हत्या के सामाजिक दुष्प्रभावों की चर्चा करें।
15. निम्न लिंगानुपात के सामाजिक दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए।
16. भारत में वृद्धजनों की समस्या आधुनिकता का दुष्परिणाम है। स्पष्ट कीजिए।
17. जनसंख्यिकी संक्रमण के सिद्धांत के बुनियादी तर्क को स्पष्ट कीजिए। संक्रमण अवधि 'जनसंख्या विस्फोट' के साथ क्यों जुड़ी है? उत्तर दीजिए।
18. मृत्यु दर और जन्म दर का क्या अर्थ है? कारण स्पष्ट कीजिए कि जन्म दर में गिरावट अपेक्षाकृत धीमी गति से क्यों आती है जबकि मृत्यु दर बहुत तेजी से गिरती है।
19. भारत में कौन-कौन से राज्य जनसंख्या संवृद्धि के 'प्रतिस्थापन स्तरों' को प्राप्त कर चुके हैं अथवा प्राप्ति के बहुत नजदीक हैं? कौन-से राज्यों में अब भी जनसंख्या संवृद्धि की दरें बहुत ऊँची हैं? आपकी राय में इन क्षेत्रीय अंतरों के क्या कारण हो सकते हैं?
20. जनसंख्या की 'आयु संरचना' का क्या अर्थ है? आर्थिक विकास और संवृद्धि के लिए उसकी क्या प्रासंगिकता है?
21. 'स्त्री-पुरुष अनुपात' का क्या अर्थ है? गिरते हुए स्त्री-पुरुष अनुपात के क्या निहितार्थ हैं? क्या आप यह महसूस करते हैं कि माता-पिता आज भी बेटियों की बजाय बेटों को अधिक पसंद करते हैं? आपकी राय में इस पसंद के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?

✪✪✪✪✪

11 भारत में नगरीकरण (Urbanisation in India)

पारिभाषिक शब्दावली (gLOSSARY OF tERMS)

- ***बस्ती (Colony):*** मानव द्वारा निर्मित आवासों का संगठित स्वरूप बस्ती कहलाता है।
- ***गाँव (Village):*** घरों का एक ऐसा समूह जिसकी एक निश्चित स्थानीय सीमा तथा एक नाम होता है। यह ऐसा लघु समुदाय है जो प्राथमिक, अनौपचारिक संबंधों की प्रधानता एवं समरूपता से युक्त होता है। जनसंख्या की दृष्टि से कम घनत्व वाला होता है और व्यवसाय की दृष्टि से कृषि प्रधान होता है।
- ***कस्बा (Town):*** मानवीय आवास का वह स्वरूप जो अपने जीवनक्रम एवं क्रियाओं में ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार के तत्वों को संजोये रखता है या जब बड़े गांव/केन्द्रीय गांव में नगरीय गतिविधियाँ विकसित होने लगती हैं तो यह कस्बा कहलाता है।
- ***नगर (City):*** एक नगर अत्यधिक वृहद् आकार तथा जनसंख्यात्मक घनत्व वाला एक ऐसा समुदाय है, जिसके निवासी विविध और अकृषिक कार्यों में संलग्न होते हैं, जिनकी विशिष्ट जीवन शैली होती है, जो प्रायः ग्रामीण जीवन शैली से भिन्न होती है।
- ***नगरवाद (Urbanism):*** नगरीय जीवन के साथ व्यक्तियों के समायोजन की प्रक्रिया अर्थात् नगर के लोगों के जीवन का तरीका, नगरीयता/नगरवाद कहलाता है।
- ***नगरीकरण (Urbanisation):*** नगरवाद के लक्षणों के विकास (विचारों एवं व्यवहारों के रूप में) एवं प्रसार की प्रक्रिया नगरीकरण कहलाती है।
- ***शहरी विकास (Urban Growth):*** मानव की आखेट अवस्था से नगरीय अवस्था तक की यात्रा, जहाँ नगर की संख्या में वृद्धि होती है शहरी विकास कहलाता है।
- ***नगरीकरण चक्र (Cycle of Urbanisation):*** नगरीकरण चक्र वह प्रक्रिया है, जिसमें कोई राष्ट्र कृषि सामाजिक व्यवस्था से औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था की ओर बढ़ता है। इस संदर्भ में यदि विचार किया जाए तो नगरीकरण की वक्ररेखा अंग्रेजी के S शब्द का अनुकरण करती है।
- ***अतिनगरीकरण (Over Urbanisation):*** विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में नगरों के विकास की प्रक्रिया भिन्न रही है। जहाँ विकसित देश में नगर की ओर गई जनसंख्या, नगर के साथ समायोजित हो गयी वहीं विकासशील देशों में इसका समायोजन नगर के साथ नहीं हो पाया है। नगर की आर्थिक एवं संरचनात्मक क्षमता से अधिक जनसंख्या का नगर में केन्द्रीकरण हो गया है और इन सब की आवश्यकताओं को पूरा करने में नगर असहाय महसूस कर रहा है।
- ***उपनगर (Suburbs):*** किसी बड़े नगर की परिधि पर बसा हुआ अपेक्षाकृत एक लघु समुदाय जो सामान्यतः अपनी आर्थिक आवश्यकता आदि के लिए मुख्य नगर पर निर्भर रहता है, किन्तु राजनीतिक इकाई की दृष्टि से वह मुख्य नगर से स्वतंत्र होता है।
- ***उप-नगरीकरण (Sub-Urbanisation):*** उपनगरीकरण की यह प्रक्रिया नगरों के परिधीय विस्तार को प्रकट करती है। प्रारम्भ में यह विस्तार जनसंख्या के बाह्य प्रवास एवं आर्थिक क्रियाकलापों के द्वारा घने नगरीय क्षेत्रों से कम घनी, सटी हुई बस्ती के रूप में होता है।
- ***नगरीय फैलाव (Urban Sprawl):*** जब नगर से बाहर कम नगरीय घनत्व वाले क्षेत्रों (जो क्षेत्र कृषि के लिए प्रयोग किये जाते हैं) पर अनियोजित रूप में नगर का विकास हो तो यह शहरी फैलाव कहलाता है।
- ***जीवन निर्वाह नगरीकरण (Substantial Urbanisation):*** भारत में गांव से नगरों की ओर प्रवासित व्यक्ति नगरों के साथ पूर्णता से समायोजित नहीं हो पाये हैं और उन्हें झुग्गी-झोपड़ी या मलिन बस्तियों में जीवन बिताना पड़ रहा है। यद्यपि वे नगरों में ही रहते हैं तथापि वे इस अर्थ में वहां से अनुपस्थित होते हैं कि इनके पास न तो नगरीय जीवन में किसी तरह का कोई योगदान देने की और न ही नगरीय सुख सुविधाएँ भोगने की क्षमता एवं साधन होते हैं। यह स्थिति निर्वाह शहरीकरण कहलाती है।
- ***प्रति-नगरीकरण (Counter Urbanism):*** नगरीय क्षेत्र से दूर जनसंख्या एवं आर्थिक कार्यकलापों का संक्रमण प्रति-नगरीकरण कहलाता है। प्रति नगरीकरण हेतु, धकेलने वाले कारक एवं खींचने वाले कारक दोनों जिम्मेवार हैं। नगरों की आंतरिक भाग की भीड़-भाड़, आवास की कमी, जहाँ धकेलने वाले कारक का कार्य करते हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्र व नगरों के बाहरी भागों का शांति प्रिय वातावरण एवं सस्ती आवास सुविधा खींचने वाले कारक का कार्य करते हैं। प्रति-नगरीकरण को अतिनगरीकरण की समस्या के निदान के रूप में भी प्रोत्साहित किया जा रहा है।
- ***विरोधी-नगरीकरण (Anti-Urbanism):*** नगरीकरण के प्रति नकारात्मक मनोभाव का प्रदर्शन तथा गाँव के प्रति मोहक लगाव को Anti-Urbanism कहा जाता है।

- ***Metro Polis/Metro Politan City:*** एक विशाल मुख्य नगर, जो सामान्यतया आस-पास की नगरीय बस्ती एवं कस्बों से घिरा हो, ये बस्तियाँ एवं कस्बे आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से Metro Polis पर निर्भर हो तथा Metro Politan area का केन्द्रीय नगर हो और इसकी जनसंख्या 10 लाख या अधिक हो Metro Polis कहलाती है।
- ***मेगालो पोलिस (Megalo Polis):*** इसे ममफोर्ड नगरों की सभ्यता एवं संस्कृति के पतन का आरम्भ मानते हैं यहाँ पूंजीवाद अपने चरम पर होता है। उत्पादन के क्षेत्र में विशाल मशीनों का प्रयोग, सर्वहारा का शोषण, प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष, सामूहिकता की भावना का ह्रास और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का विकास इस अवस्था के प्रमुख लक्षण हैं।
- ***ग्राम्य-नगरीकरण (Rurbanisation):*** ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय की पारस्परिक अंत:क्रिया द्वारा ग्रामीण एवं नगरीय जीवन शैली के घुलने-मिलने तथा मिश्रित ग्रामीण-नगरीय क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया को ग्राम्य- नगरीकरण कहा जाता है।
- ***ग्रामीण शहरी सातत्य (Rural Urban Continuum):*** इसमें ग्राम्य और नगरीय अंतर को दो ध्रुवों के बीच सम्मिलिन को देखा जा सकता है जहाँ प्रत्येक ध्रुव की विशेषताएँ दूसरे ध्रुव में घुली मिली होती है।
- ***नगरीय पुंज (Urban Agglomaration):*** 1961 की जनगणना में समीप स्थित दो या दो से अधिक विधिक नगरों के समूह को टाउन समूह कहा गया है, जिसे 1971 Agglomeration कहा गया।
- ***गन्दी बस्ती (Slums):*** नगर का वह स्थान जहाँ आवश्यक सुविधाओं (स्वास्थ्य, वातावरण पानी, बिजली आदि) का अभाव होता है तथा जहाँ अनेक प्रकार की सामाजिक मनोवैज्ञानिक, शारीरिक समस्याओं का उद्भव होता है वह Slums कहलाता है। गंदे एवं जर्जर मकान, क्षमता से अधिक लोगों का जमावड़ा, वेश्यावृत्ति, जुआ, शराब आदि यहाँ के प्रमुख लक्षण हैं।
- ***नगरीय नियोजन (Urban Planning):*** नियोजित तरीके से नगरों का निर्माण/नगर निर्माण हेतु नियोजन नगर नियोजन कहलाता है। भौतिक नियोजन में Washington DC विश्व में सर्वप्रथम नियोजित नगर का प्रतिनिधित्व करता है और मध्यकाल में इसी सन्दर्भ में चार दीवारी के भीतर नगर fort raise town का विकास हुआ।

भारत में नगर की परिभाषा (Definition of City in India)

वर्ष 1961 में अन्य प्रशासनिक और जनसांख्यिकीय विशेषताओं (Demographic Characteristics) के साथ-साथ आर्थिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शहरी क्षेत्र को परिभाषित किया गया। 2011 में भी यह परिभाषा अपवर्तित रही। इस परिभाषा के अनुसार निम्नलिखित शहरी क्षेत्र हैं:-

1. वह स्थान जो या तो नगर निगम हो अथवा निगम क्षेत्र हो, या नगर पालिका, अथवा अधिसूचित नगर क्षेत्र या छावनी बोर्ड के अधीन हो।
2. वह कोई भी स्थान जो निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करता हो।
   - कम से कम 5000 व्यक्ति
   - कम से कम 75% कार्य व्यवसाय कृषि-भिन्न हो।
   - जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति किमी. से कम न हो।
   - ऐसे किसी भी स्थान पर कुछ शहरी विशेषताएँ और सुविधाएँ होनी चाहिए। जैसे नए स्थापित क्षेत्र, बड़ी आवास बस्तियाँ, पर्यटन महत्व के स्थान और नागरिक सुविधाएँ।

स्पष्ट प्रकार से परिभाषित नगरों/शहरों के अतिरिक्त, इनके साथ तेजी से बढ़ते हुए बाहरी हिस्से भी नगरी इलाके कहलाते हैं। 1961 के जनगणना में 'नगरीय समूहों' (Urban Groups) की अवधारणा अपनायी गयी, जिससे नगरों के फैलाव का अंदाजा लगाया जा सके। 1971 में नगरी इलाकों की अवधारणा को अपनाया गया, जिससे शहरीकरण (Urbanization) से संबंधित प्रक्रियाओं को ठीक से समझा जा सके। 2011 की जनगणना तक यही विचार चलता आ रहा है। नगरीय इलाके से तात्पर्य है नगर का बाहरी फैलाव, जिसमें नगर तथा उसके बाहरी हिस्सों को शामिल किया जाता है, अथवा दो या दो से अधिक नगर, पड़ोसी नगर तथा उनसे जुड़े बाहरी हिस्से।

भारत में नगरों का वर्गीकरण (Classification of Cities in India)

1. 5 हजार से कम जनसंख्या-ग्रामीण बस्ती
2. 1 लाख से कम तथा 5 हजार से अधिक-कस्बा (Town)
3. 1 लाख या अधिक जनसंख्या-नगर (City)
4. 10 लाख से अधिक जनसंख्या-महानगर (Metropolitan)

नगरीकरण का स्तर (जनगणना-2011 के अनुसार)

सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली तथा चण्डीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र सर्वाधिक नगरीकृत हैं जिनकी नगरीय जनसंख्या क्रमश: 75.5% तथा 97.25% है इसके बाद दमन और द्वीव (75.2%) तथा पुदुचेरी (68.3%) हैं।

राज्यों में गोवा 62.2% नगरीय जनसंख्या के साथ सबसे अधिक नगरीकृत राज्य है। उत्तर पूर्वी राज्यों में मिजोरम (51.5%) सर्वाधिक नगरीकृत है। बड़े राज्यों में तमिलनाडु (48.4%) सर्वाधिक नगरीकृत है। इसके बाद केरल (47.1%) तथा महाराष्ट्र (45.2%) का स्थान है। हिमाचल प्रदेश न्यूनतम नगरीकृत है। इसके बाद बिहार (11.3%), असम (14.1%) तथा ओड़ीसा (16.7%) का स्थान है।

नगरों में रहने वाली कुल जनसंख्या के सन्दर्भ में महाराष्ट्र (50.8 मिलियन लोग) का प्रथम स्थान है जो देश की कुल नगरीय जनसंख्या का 13.5% है। इसके बाद उत्तर प्रदेश (44.4 मिलियन) तथा तमिलनाडु (34.9 मिलियन) का स्थान है।

नगरीय जनसंख्या संबंधी महत्वपूर्ण आंकड़ें भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति (1901-2011)

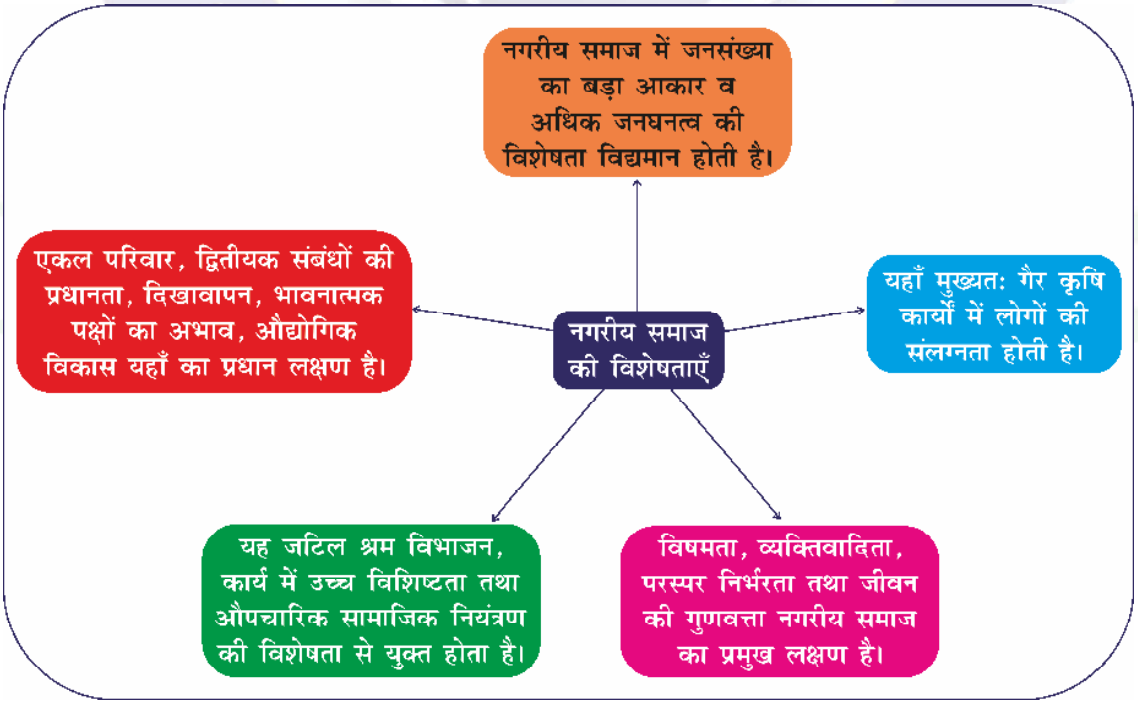
वर्ष	नगरों की संख्या	कुल जनसंख्या (करोड़ में)	नगरीय जनसंख्या (करोड़ में)	कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का %	दशक में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि दर % में	नगरीय जनसंख्या में % वार्षिक वृद्धि दर
1901	1,827	23.83	2.59	10.84	–	–
1911	1,815	25.21	2.59	10.29	0.35	0.03
1921	1,49	25.13	2.81	11.18	8.27	0.79
1931	2,072	27.89	3.35	11.99	19.12	1.75
1941	2,250	31.87	4.42	13.86	31.97	2.77
1951	2,843	36.10	6.24	17.29	41.42	3.47
1961	2,365	43.92	7.89	17.97	26.41	2.34
1971	2,590	54.82	10.91	19.91	38.23	3.21
1981	3,378	68.33	15.95	23.34	46.14	3.83
1991	3,768	84.43	21.72	25.72	36.19	3.09
2001	5,161	102.87	28.61	27.81	31.72	3.13
2011	7,935	121.05	37.71	31.16	31.2	3.18

नगरीय समाज एवं नगरीकरण का अर्थ (Meaning of Urban Society and Urbanization)

मानवीय जीवन की विभिन्न क्रियाओं में ग्रामीण समाज से स्पष्ट अंतर दृष्टिगत होता है। निम्न विशेषताओं से युक्त समाज को नगरीय समाज की संज्ञा दी जाती है:-

नगरीय समाज का अर्थ (Meaning of Urban Society)

नगरीय समाज का तात्पर्य विशिष्ट जीवन शैली से जुड़ा है जहाँ



नगरीकरण का अर्थ (Meaning of Urbanization)

नगरीकरण का तात्पर्य नगरीय जनसंख्या, नगरीय क्षेत्रों तथा नगरीय जीवन शैली के प्रसार से है। इस प्रकार नगरीकरण मुख्यत: नगरीय समाज की विशेषताओं के क्षेत्रीय विस्तार से संबद्ध है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर प्रवास तथा नगरीय जनसंख्या में वृद्धि दोनों शामिल हैं। नगरीकरण की इस प्रक्रिया में नगरीय व्यवहार, विश्वास, मूल्यों व प्रतिमानों (Values and Pattern) का भी निरंतर विस्तार होता है।

नगरीकरण के जनांकिकीय (Demographic) एवं स्थानिक कारकों में ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों के स्थान बदलने, शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या के घनत्व तथा कृषि कार्यों से गैर-कृषि कार्यों के लिए भूमि के उपयोग के स्वरूप में हुए परिवर्तनों को शामिल किया जाता है जबकि आर्थिक कारकों का संबंध कृषि व्यवसाय से गैर-कृषि व्यवसायों में हुए परिवर्तनों के रूप में देखा जाता है। शहर विविध आर्थिक अवसरों के केंद्र रहे हैं अत: वे ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को आकर्षित करते हैं। यह आकर्षण ग्रामीण जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को शहरी क्षेत्रों में खींच लेता है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त गरीबी, कृषि, अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन, कुटीर एवं लघु उद्योगों का समाप्त होना आदि भी ग्रामीणों को शहरी क्षेत्रों में जाने के लिये बाध्य करते हैं। कभी-कभी लोग शहरी जीवन को कुछ अन्य कारणों से भी पसन्द करते हैं जैसे कि शहरों में गुमनामी की जिन्दगी जी जा सकती है। इसके अलावा, यह तथ्य कि नगरीय जीवन में अपरिचितों से सम्पर्क होता रहता है, कुछ भिन्न कारणों से लाभकारी साबित हो सकता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों जैसे सामाजिक रूप से पीड़ित समूहों को शहरी रहन-सहन रोजमर्रा की उस अपमान जनक स्थिति से उन्हें बचाता है जो गांवों में उन्हें भुगतनी पड़ती है, जहाँ हर कोई उनकी जाति से उन्हें पहचानता है। शहरी जीवन की गुमनामी के कारण सामाजिक दृष्टि से प्रभुत्वशाली (Dominant) ग्रामीण समूहों के अपेक्षाकृत गरीब लोग शहर में जाकर कोई भी नीचा समझने वाले काम करने से नहीं हिचकिचाते, जिसे वे गाँव में रहते हुए बदनामी के डर से नहीं कर सकते थे। प्रव्रजन (Migration) के ये कारक नगरीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत में नगरीकरण (Urbanization in India)

भारत में नगरीकरण एक सतत् ऐतिहासिक प्रक्रिया (Historical Process) का परिणाम रहा है, जिसके बीज सिन्धु घाटी सभ्यता में पाये जाते हैं, जिसके दो शहर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नगरीय विकास के चरमोत्कर्ष को अभिव्यक्त (Expressed) करते हैं। नगरीय विकास की यह प्रक्रिया वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक धीमी गति से निरन्तर चलती रही। ब्रिटिश शासनकाल में कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास जैसे तीन महानगरीय बन्दरगाहों की स्थापना, रेलवे तथा उद्योगों की स्थापना, तमाम हिल स्टेशनों, चाय बागानों, सिविल लाइन्स तथा कैन्टोनमेंट आदि की स्थापना ने भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को एक नयी दिशा दी।

ब्रिटिशकालीन भारतीय शहर पश्चिमीकरण (Westernization) के केंद्र के रूप में विकसित हुए। विद्यालय एवं महाविद्यालय विद्यार्थियों को पश्चिमी विचारधारा एवं भाषाओं में प्रशिक्षित करते थे। एक नए शहरी अभिजात वर्ग का उदय हुआ जिसकी वेशभूषा, खान-पान की आदतें एवं सामाजिक व्यवहार (Social behavior) पाश्चात्य मूल्यों एवं प्रवृत्तियों को ही प्रतिबिंबित करते थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, भारत में बड़े स्तर पर तेजी से नगरीकरण हुआ। इस काल में भारत के नगरीकरण की निम्नलिखित प्रमुख प्रवृत्तियां थीं:-

1. मुख्यत: उत्तरी भारत के नगरीय क्षेत्रों में शरणार्थियों एवं उनकी बस्तियों का निर्माण हुआ।
2. नए प्रशासनिक शहरों की स्थापना हुई जैसे चंडीगढ़, भुवनेश्वर एवं गांधीनगर आदि।
3. प्रमुख शहरों के निकट नए औद्योगिक शहरों एवं नगर-क्षेत्रों का विस्तार हुआ।
4. एक लाख एवं दस लाख जनसंख्या वाले शहरों का तेजी से विकास हुआ।
5. छोटे नगरों की वृद्धि धीमी रही।
6. गंदी बस्तियाँ एवं ग्रामीण-शहरी उपान्तों की संख्या में व्यापक वृद्धि हुई।
7. नगर योजना का सूत्रपात एवं नागरिक सुख-सुविधाओं में सुधार का प्रयास किया जाने लगा।

औद्योगीकरण तथा नगरीय केन्द्रों का विकास (Industrialization and development of Urban Centers)

नगरीय वृद्धि में औद्योगीकरण की एक सकारात्मक भूमिका है। औद्योगिक इकाईयों की स्थापना के साथ ही औद्योगिक श्रमिकों की माँग पैदा होती है, और ग्रामीण कृषि क्षेत्र में लगी हुई श्रम शक्ति, नगरों के उद्योगों को स्थानान्तरित हो जाती है। अत: जितनी अधिक औद्योगिक और उत्पादक ईकाइयों (Production Units) की स्थापना होती है, उतनी ही अधिक ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर आती है। इसके कारण नगरीय जनसंख्या का आकार बढ़ता है और जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होती है।

औद्योगीकरण और नगरीय वृद्धि के साथ-साथ अन्य दूसरे सहायक आर्थिक उद्योगों का भी विकास होता है जो ग्रामीण जनसंख्या को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। तृतीयक क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों के विविध अवसरों जैसे-कॉल सेन्टरों की सेवा, कोरियर, यातायात, संचार, बच्चों और वृद्धों की देखभाल, होम डिलीवरी, आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाएँ, अच्छे शैक्षिक संस्थानों के अलावा नए और आधुनिक मनोरंजन के अवसर जैसे मल्टीप्लेक्स, क्लब और नाइट क्लब आदि नगरों में ही विकसित होते हैं। ये सभी कारक ग्रामीण जनसंख्या को

नगरीय केन्द्रों की ओर खींचते हैं। महाराष्ट्र में मुम्बई, गुजरात में अहमदाबाद, कर्नाटक में बंगलुरु, आंध्र प्रदेश में हैदराबाद, पश्चिम बंगाल में कोलकाता, उत्तर प्रदेश में नोएडा, गाजियाबाद, मुरादाबाद और कानपुर तथा अभी हाल में राजस्थान में जयपुर मुख्य रूप से अपने अंधाधुंध औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के कारण भारत के सर्वाधिक विकसित और उच्च रूप से नगरीकृत नगरों में से हैं। हम यह भी देखते हैं कि देश में बहुत से नगर उनमें स्थापित उद्योगों के कारण ही जाने जाते हैं। उदाहरण के लिए भिलाई, आसनसोल, टाटानगर, भदोही आदि।

भारतीय नगरीकरण का प्रतिमान (Pattern) असंतुलित रहा है। प्रथम श्रेणी के नगर विशेषकर बड़े नगर बहुत तेजी से विकसित हुए हैं, जबकि छोटे नगरों में स्थिरता रही है। क्षेत्रीय और स्थानीय नगरों में अप्रवास की दर न्यूनतम से शून्य तक रही है। नगरीय जनसंख्या का साठ प्रतिशत से अधिक भाग प्रथम श्रेणी के नगरों में निवास करता है। देश में नगरीय वृद्धि के असमरूप प्रकृति का कारण मुख्य रूप से भारत सरकार द्वारा अपनाई गयी नगरोन्मुख औद्योगिक नीतियाँ रही हैं। यह अभी हाल की बात है कि नीति निर्माताओं का ध्यान विशाल नगरों से क्षेत्रीय नगरों की ओर गया है और इसके परिणामस्वरूप ग्राम-नगर प्रवसन का रूझान सर्वदेशीय नगरों से क्षेत्रीय नगरों, जैसे राज्यों की राजधानियों और जिला मुख्यालयों की ओर हो गया है। इसका संभावित सुखद परिणाम यह हुआ है कि ग्रामीण जनसंख्या के दिल्ली, मुम्बई और अमृतसर जैसे बड़े नगरों की ओर तीव्र पलायन, जैसा कि अस्सी के दशक तक होता आया था, पर रोक लगी है। इसी के साथ क्षेत्रीय नगर बहुत तेजी से विकसित हो रहे हैं।

भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव (Social Impact of Urbanization in India)

आधुनिकता, वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की आड़ में नगरीकरण की संकल्पना ने परम्परागत भारतीय समाज के प्रायः सभी पहलुओं में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इन परिवर्तनों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

परिवार व्यवस्था में परिवर्तन (Change in Family System)

नगरीकरण के प्रभावस्वरूप परम्परागत संयुक्त परिवार की संरचनात्मक विशिष्टिताओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप परम्परागत पारिवारिक मूल्य (Family Values) टूट रहे हैं एवं परिवार का आकार छोटा हो रहा है। नगरीकरण केवल एक प्रक्रिया न होकर एक जीवनशैली है जिसके अपने विशिष्ट मूल्य हैं। यह आधुनिक तार्किक व वैज्ञानिक विश्व दृष्टि के साथ स्वतंत्रता, समानता एवं व्यक्तिवादी मूल्यों (Individualist Values) पर आधारित है जो परम्परागत संयुक्त परिवार के सामूहिक, पितृसत्तात्मक एवं प्रस्थिति (Status) असमानता के मूल्यों के विपरीत है जिसके चलते नगरीकरण ने संयुक्त परिवार के मूल्यों को कमजोर किया है। साथ ही व्यक्तिवाद, आर्थिक उपयोगितावाद (Economic Utilitarianism) एवं नगरीय समस्याओं जैसे आवास, मंहगाई आदि ने बड़े परिवारों को सीमित करते हुए छोटे एवं नाभिकीय परिवारों को प्रोत्साहित किया है।

नगरीकरण के कारण परिवार के ढांचे व आकार में परिवर्तन हो रहे हैं तथा पारिवारिक नातेदारी संबंध कमजोर हुए हैं। चूंकि कुछ अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि शहरी समुदायों में आज भी एकल परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों की संख्या ज्यादा है। इसलिये निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नगरीकरण से संयुक्त परिवार का संरचनात्मक स्वरूप भले ही परिवर्तित हुआ है किन्तु प्रकार्यात्मकता (Functional) बनी हुई है।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन (Change in Caste System)

नगरीकरण के प्रभाव से जाति व्यवस्था में परिवर्तन और निरंतरता दोनों ही देखने को मिलती है। नगर में व्यक्ति जाति से ही नहीं बल्कि अन्य उपलब्धियों से अपनी प्रस्थिति प्राप्त करता है। शहर के लोग ऐसे सम्बन्धों में भाग लेते हैं, जिनमें अनेक जातियों के लोग होते हैं। कार्यालय व दफ्तर, होटल व रेस्टोरेन्ट तथा यातायात को साधनों का एक साथ प्रयोग करने की बाध्यता ने जाति संबंधी मूल्यों व प्रतिमानों में अनेक परिवर्तन किये हैं।

लगातार अन्तःक्रिया (Interaction) के कारण विभिन्न जातियों के बीच पवित्रता संबंधी दृष्टिकोण कमजोर हुआ है और जातियों के बीच सामाजिक दूरी में कमी आई है। नगरों में विशिष्टपरक निष्ठाओं की संरचना के स्थान पर सामाजिक और राजनैतिक भागीदारी की अधिक परिष्कृत व्यवस्था मिलती है।

शहरी लोग जाति प्रतिमानों का कठोरता से पालन नहीं करते हैं। नगरीकरण के कारण जातीय प्रस्थिति (Caste Status) के बजाय आर्थिक प्रस्थिति को महत्व मिला है। नगरों में एक ही प्रकार की आर्थिक प्रस्थिति वाले विभिन्न जातियों में लोगों के मध्य अंतःक्रिया को बढ़ाकर उनमें वर्गीय भावना को मजबूत किया है और उनके बीच सामाजिक संबंधों के दायरे को विस्तृत किया है। सहशिक्षा एवं कार्यालयों में साथ रहने एवं काम करने के कारण विभिन्न जातियों के स्त्री व पुरुषों को सामाजिक अन्तःक्रिया (Social Interaction) के अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं जिससे प्रेम विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाहों के प्रचलन में वृद्धि हुई है। सहभोज सम्बन्धों, विवाह सम्बन्धों, सामाजिक सम्बन्धों, यहाँ तक कि व्यवसायिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है। अन्तर्जातीय विवाह की संख्या में हो रही वृद्धि भी नगरीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करती है। इस प्रकार शहरों में जातीय एकता की भावना उतनी मजबूत नहीं हैं जितनी की ग्रामों में है।

महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन (Change in Status of Women)

नगरीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति (Political Status) में बड़े ही दूरगामी परिवर्तन किए हैं। आज नगरीय महिलाएँ अपने मौलिक अधिकारों के

प्रति ज्यादा जागरूक हो गयी हैं। उनका स्वरूप कामकाजी हो रहा है। प्रशासन, राजनीति, विज्ञान, संचार, तकनीकी आदि सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी बढ़ती जा रही है।

शहरी महिलाओं में आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा ज्यादा होती है। परिणामतः न केवल उनके विवाह की औसत आयु बढ़ी है वरन् तलाक, पुनर्विवाह आदि मामलों में वे स्वतंत्रता पूर्वक निर्णय ले रही हैं। बैंकिग, कॉल सेन्टर तथा निजी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। किन्तु, अभी भी उन्हें यौन उत्पीड़न, भेदभाव जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नगरीकरण के परिणामस्वरूप महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता कम हुई है तथा वे ज्यादा स्वतंत्रता का अनुभव कर रही हैं।

ग्रामीण समाज में परिवर्तन (Change in Rural Society)

नगर और गाँव कभी भी दो ध्रुवों की तरह अलग-अलग नहीं रहे हैं। इन दोनों के बीच कमोबेश नैरन्तर्य बना रहता है। जहाँ ग्रामीण समुदाय नगरीय संस्कृति से प्रभावित होता रहता है। वहीं नगरीय समुदाय पर भी ग्रामीण संस्कृति के प्रभावों को देखा जा सकता है। नगरीकरण का एक उपयुक्त माध्यम नगरों की ओर ग्रामीण प्रवास है और इस प्रकार गाँवों से नगरों की ओर प्रवसन (Migration) के माध्यम के रूप में नगरीकरण एक सार्वभौमिक घटना है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार विश्व के नगरों की जनसंख्या में वार्षिक वृद्धि का एक तिहाई से अधिक भाग ग्रामीण-नगरीय स्थानांतरण का परिणाम है। यह स्थानांतरण मुख्य रूप से राजधानी नगरों एवं महानगरों की ओर होता है।

लोग शहरों की ओर पलायन इसलिए करते हैं कि वहाँ अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। प्रवासन ग्रामवासियों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन (Cultural Life) को प्रभावित करता है। सामाजिक परिवर्तनों के अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीकरण से उत्पन्न तीन प्रकार की दशाओं की पहचान की गयी है:-

1. गाँवों में, जहाँ से लोग बड़ी संख्या में शहरों में रोजगार की तलाश में जाते हैं, शहरी रोजगार एक सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है।
2. नगरों और शहरों में कार्यरत बड़ी संख्या में प्रवासियों वाले किसी औद्योगिक नगर के निकट स्थित गाँवों में आवास, क्रय-विक्रय एवं सामाजिक व्यवस्था संबंधी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।
3. नगर के विस्तार के साथ ही कुछ गाँव नगरीकृत क्षेत्रों में ग्रामीण अंचलों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार, ग्रामवासी नगर के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में सीधे भागीदारी निभाते हैं।

इस प्रकार, प्रवसन नगरीकरण की वृद्धि में निहित एक मुख्य घटक है जो आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा नियंत्रित होता है। यह सांस्कृतिक संपर्क शहरी क्षेत्रों में परस्पर क्रिया से जुड़ी प्रक्रियाओं एवं सामाजिक सामंजस्य के विभिन्न तरीकों की शुरुआत करता है। कृषि के व्यापारीकरण के चलते प्रवसन का एक विशेष महत्व हो गया है। इसके बावजूद मूल स्थान पर प्रवासी अपने विभिन्न प्रकारों एवं सोपानों को रखते हैं और उसी के अनुसार ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच निरंतरता बढ़ती है। अनेक सांस्कृतिक विशेषताएँ एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं, साथ ही, नए विचारों, विश्वासों और आदतों का प्रसार भी गांवों की ओर होता है।

नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता (Urbanization and Social Mobility)

जाति और सामाजिक गतिशीलता में औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। शहरी क्षेत्र सामाजिक गतिशीलता के लिए अधिक अवसर प्रदान करते हैं लेकिन फिर भी यह आवश्यक नहीं हैं कि सभी जातियाँ अपनी सामाजिक प्रस्थितियों (Social Status) को ऊँचा उठाने में सफल होती हैं। नगरीकरण और गतिशीलता के संदर्भ में एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि आज के युग में व्यक्ति की व्यावसायिक प्रतिष्ठा अधिकतर उसकी शिक्षा पर निर्भर है। जितनी ऊँची शिक्षा होगी उतनी ही ऊँची व्यावसायिक प्रतिष्ठा (Social Prestige) प्राप्त करने की सम्भावना होती है। शहरी समुदाय अच्छे शैक्षिक अवसर प्रदान करते हैं इसलिए यहाँ प्रस्थिति गतिशीलता के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। नगरीकरण से उत्पन्न व्यावसायिक विशिष्टीकरण ने लोगों को अनेक संभावनायें प्रदान की है जिसके कारण व्यक्ति की योग्यता व कुशलता को उसकी जातीय प्रस्थिति से अधिक महत्व दिया जाने लगा है और व्यावसायिक एवं आर्थिक सफलता व्यक्ति की पहचान का मानदण्ड बनने लगा है। आज विभिन्न जातियों के सफल लोगों को एक ही वर्ग के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार से व्यवसाय और समृद्धि की संभावनाओं को उत्पन्न करते हुए नगरीकरण ने बन्द स्तरीकरण (Closed Stratification) की जाति व्यवस्था में वर्ग स्तरीकरण के लक्षणों को उत्पन्न करते हुए गतिशीलता के नये अवसर प्रदान किये हैं।

नगरीय पड़ोस का उद्भव (Emergence of Urban Neighborhoods)

पड़ोस को एक प्राथमिक समूह माना गया है जिसके सदस्य एक दूसरे के साथ घनिष्ठता का संबंध रखते हैं। नगरीकरण ने पड़ोसी सम्बन्धों को इस प्रकार प्रभावित किया है कि पड़ोसी एक दूसरे से सामान्यतः अजनबी बने रहते हैं।

आन्तरिक नगरीय क्षेत्रों में रहने वालों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि आय, शिक्षा और व्यवसाय जैसे संदर्भों में उसी पड़ोस में रहने वाले लोग बिल्कुल भिन्न जीवन व्यतीत करते हैं। पड़ोस में रहने वालों

को कई समूहों में यथा-अप्रवासी, पेशेवर, छात्र, बुद्धिजीवी, व्यापारी, नौकरी पेशा वाले, कम शिक्षित, उच्च शिक्षित और मध्यम तथा धनी वर्ग के सदस्य के रूप में विभक्त किया जा सकता है। ये विविध सामाजिक वर्ग (Social Class) यद्यपि अत्यन्त भौतिक निकटता में रहते हैं, फिर भी सामाजिक रूप से वे अलग-अलग संसार में रहते हैं। नगरों में नव-विकसित बड़ी कॉलोनियों या अपार्टमेन्ट में रहने वाले लोगों के घर अलग न भी हो लेकिन सामाजिक दृष्टि से वे स्पष्ट और अलग जीवन व्यतीत करते हैं। वहाँ रहने वाले धनी लोग अपने को स्थानीय समुदाय का हिस्सा नहीं मानते हैं। उच्च वर्ग के सदस्य परस्पर एक दूसरे को जानते हैं लेकिन अन्य केवल उनके बारे में ही जानते हैं। इस प्रकार यहाँ भी लोग सामान्यतः अपने पड़ोसियों से अनजान ही बने रहते हैं।

जनगणना 2011 ग्रामीण-शहरी जनसंख्या के अन्तिम आँकड़े जनसंख्या (करोड़ में)

	2001	2011	अन्तर
भारत	102.9	121.05	18.15
1. ग्रामीण	74.26 (72.19%)	83.34 (68.84%)	9.08
2. शहरी	28.61 (27.81%)	37.71 (31.2%)	9.1

सर्वाधिक ग्रामीण जनसंख्या वाले 4 राज्य

राज्य	जनसंख्या (मिलियन में)
• उत्तर प्रदेश	155.31
• बिहार	92.34
• पश्चिम बंगाल	62.18
• महाराष्ट्र	61.55

सर्वाधिक शहरी जनसंख्या वाले 4 राज्य

राज्य	जनसंख्या (मिलियन में)
• महाराष्ट्र	50.81
• उत्तर प्रदेश	44.49
• तमिलनाडु	34.91
• पश्चिम बंगाल	29.09

शीर्ष पाँच शहरी जनसंख्या % वाले राज्य

रैंक	राज्य	नगरीकरण % में
प्रथम	गोवा	62.2
द्वितीय	मिजोरम	52.1
तृतीय	तमिलनाडु	48.4
चतुर्थ	केरल	47.7
पंचम	महाराष्ट्र	45.2

स्रोतः जनगणना-2011 के अंतिम आँकड़ें

शीर्ष चार शहरी जनसंख्या % वाले संघीय क्षेत्र

रैंक	संघीय क्षेत्र	नगरीकरण % में
प्रथम	दिल्ली	97.5
द्वितीय	चंडीगढ़	97.3
तृतीय	लक्षद्वीप	78.1
चतुर्थ	दमन और दीव	75.2

स्रोतः जनगणना-2011 के अंतिम आँकड़ें

नगरीकरण पर संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष द्वारा प्रत्येक वर्ष विश्व की जनसंख्या पर पेश होने वाली 'द स्टेट ऑफ वर्ल्ड पापुलेशन' नामक 30वीं रिपोर्ट का विषय 'शहरीकरण' रखा गया था। इस रिपोर्ट में विश्व के आँकड़ों के अध्ययन को आधार पर बनाया गया है कि शहरी जनसंख्या में लगभग 60% वृद्धि का कारण पहले की शहरी जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि है। शेष 40% वृद्धि बाहरी लोगों के आने और जनसंख्या के पुनर्वर्गीकरण (Reclassification) के कारण है। रिपोर्ट में बताया गया था कि वर्ष 2008 में विश्व की कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या पहली बार ग्रामीण जनसंख्या से अधिक हो जाएगी अर्थात् कुल जनसंख्या की आधे से अधिक हो गयी, जो लगभग 3 अरब 30 लाख अनुमानित की गयी थी। वर्ष 2030 तक विश्व में शहरी जनसंख्या 5 अरब से अधिक हो जाएगी जो विश्व की कुल जनसंख्या की 60% होगी। रिपोर्ट में एशिया और अफ्रीका पर विशेष बल दिया गया है। एशिया की शहरी जनसंख्या वर्ष 2000 के 1.4 बिलियन से बढ़कर 2030 में 2.6 बिलियन, अफ्रीका की 30 करोड़ से बढ़कर 74 करोड़ तथा लैटिन अमेरिका और कैरेबियाई देशों की 40 करोड़ से बढ़कर 60 करोड़ हो जाएगी। रिपोर्ट में वर्ष 2000 और वर्ष 2030 के बीच शहरी जनसंख्या दो गुना बढ़ने का अनुमान लगाया गया है। यह रिपोर्ट इस मिथक को तोड़ती है कि प्रवासियों के कारण शहरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। रिपोर्ट के अनुसार प्रवासियों को रोकने का प्रयास जन अधिकारों का अतिक्रमण (Encroachment) करना है। यदि नीति निर्धारकों को लगता है कि शहरी वृद्धि की दर बहुत अधिक है तो वे मानवाधिकारों का सम्मान करने वाली नीतियाँ अपना सकते हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि शहरी जनसंख्या की तेज वृद्धि की प्रवृत्ति का मतलब यह नहीं है कि लोगों को शहर आने से जबरदस्ती रोका जाए। आवश्यकता इस बात की है कि शहरी नियोजन में अपेक्षित सुधार किए जाएँ तथा स्थितियों का पहले से आकलन कर तैयारी की जाए। विश्व की शहरी जनसंख्या का आधे से अधिक हिस्सा पाँच लाख से कम जनसंख्या के शहरों में रहता है, इसलिए इन शहरों के विकास की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसलिए झुग्गियों में रहने वालों की बेहतरी पर विशेष ध्यान आवश्यक है। रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन के दौर में समुद्र

तटीय क्षेत्रों के लिए तूफान और जलस्तर ऊपर उठने के खतरे बढ़े हैं। इसके बावजूद भूमंडलीकरण (Globalization) में निर्यात पर बढ़ते बल और दूसरे कारणों से निचले समुद्र तटीय क्षेत्रों की शहरी जनसंख्या बढ़ी है, जो खतरनाक साबित हो सकती है।

रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2030 तक भारत में वर्तमान 31.2% के मुकाबले शहरी जनसंख्या 40.76% हो जाएगी। भारत में शहरीकरण की यह गति विश्व के किसी भी दूसरे देश के मुकाबले बहुत अधिक होगी। वर्ष 2030 तक भारत में शहरीकरण की गति 2.5% हो जाएगी, जबकि विश्व में औसत शहरीकरण की गति 1.9% है। वर्ष 2020 तक मुम्बई विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला दूसरा सबसे बड़ा शहर बन जाने की संभावना है। हालांकि यह भी दिलचस्प है कि मुम्बई और कोलकाता जैसे महानगरों में बाहर से आने वाले लोगों की अपेक्षा शहर छोड़कर जाने वालों की संख्या अधिक है। देश में 15वीं जनगणनानुसार महाराष्ट्र राज्य में सर्वाधिक शहरी जनसंख्या निवास करती है; अर्थात् 50.1 मिलियन शहरी जनसंख्या, जो समस्त शहरी जनसंख्या का 13.48% है। उसके पश्चात् क्रमशः उत्तर प्रदेश (44.47 मि.), तमिलनाडु (34.95 मि.) एवं प. बंगाल (29.13 मि.), का स्थान है।

मेगा सिटी

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार–ऐसे नगरीय संकुलन जिनकी जनसंख्या 10 मिलियन (अर्थात् एक करोड़) से अधिक है, 'मेगा सिटी' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। भारतीय जनगणना-2011 में इस अवधारणा को स्वीकार किया गया है। देश के 53 मिलियन प्लस नगरीय संकुलनों (Urban Cluster) में से तीन नगरीय संकुलन 'मेगा सिटी' की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। यथा–

1. वृहद मुम्बई (18.41 मिलियन)
2. दिल्ली (16.31 मिलियन)
3. कोलकाता (14.11 मिलयन)

ध्यातव्य है कि 2001 में उक्त तीनों शहरों का अनुक्रम था– मुम्बई, कोलकाता एवं दिल्ली। ज्ञातव्य है कि 2011 से पहले भारत के नगर निगम क्षेत्र में 40 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों को 'मेगा सिटी' कहा जाता था।

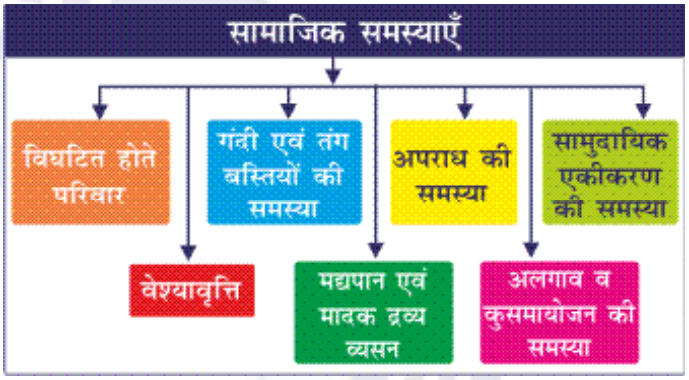
मेगा सिटी दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर (% में)

शहरी	दशकीय जनसंख्या 1991-2001	वृद्धि दर 2001-11	अन्तर
1. मुम्बई	30.47	12.05	(-)18.42
2. दिल्ली	52.24	26.69	(-)25.55
3. कोलकाता	19.60	06.87	(-)12.73

भारत में नगरीकरण की समस्याएँ (Problems of Urbanisation in India)

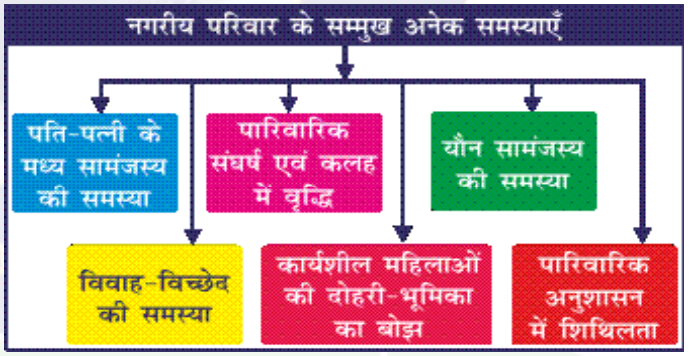
भारत में औद्योगीकरण के विकास ने अन्य तथ्यों के साथ मिलकर नगरीकरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। परिणामतः नगरीय विकास के साथ ही विभिन्न नगरीय समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं को निम्न रूपों में देखा जा सकता है:-

सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ (Socio-Cultural Problems)



विघटित होते परिवार (Disintegrating Family)

नगरीकरण की प्रक्रिया में पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव के साथ संयुक्त परिवारों (Joint Family) का विघटन हो रहा है। इसी के फलस्वरूप नगरीय परिवार के सम्मुख अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं जो कि निम्नलिखित हैं:-



वेश्यावृत्ति (Prostitution)

आधुनिक औद्योगिक नगरों की अपनी संरचनात्मक विशेषताएँ (Structural Features) हैं, जिन्होंने नगरों में वेश्यावृत्ति को फलने-फूलने का अवसर दिया है। इसमें गुप्त एवं सुरक्षित स्थान, अनजानापन आदि प्रमुख हैं। महानगरों में वेश्यावृत्ति अब मनोरंजन केन्द्रों तक सीमित नहीं है अब यह उच्च वर्गीय अपार्टमेंट में जहाँ लोग ऊँची कीमत दे सकें से लेकर गन्दी बस्तियों तक फैल चुका है।

आज केवल गरीब व शोषित महिला ही इससे नहीं जुड़ी है अपितु आज हाई प्रोफाइल कॉल गर्ल भी काफी संख्या में मौजूद है

जो अपने भौतिकवादी महत्वाकांक्षा (Materialistic Ambition) की पूर्ति हेतु वेश्यावृत्ति में संलग्न है।

गंदी एवं तंग बस्तियों की समस्या (Problem of Dirty and Crowded Slums)

नगरीकरण की तेज गति के फलस्वरूप नगरों में गंदी बस्तियों की समस्या एक बड़ी सामाजिक समस्या के रूप में उभरी है। यह नगरों में आवास की समस्या से परिणामिक (Consequential) रूप से जुड़ी है। नगरीय आबादी का लगभग पाँचवां भाग गंदी और तंग बस्तियों में रहता है।

गंदी बस्तियाँ सांस्कृतिक व सामाजिक विघटन (Social Dissolution) के केन्द्र होते हैं। ऐसे क्षेत्रों में शराबखोरी, मादक द्रव्य व्यसन, वेश्यावृति जैसी सामाजिक समस्याओं का सकेन्द्रण देखा जा सकता है। गन्दी बस्तियों में अपराधियों के छुपने की जगह भी मुहैया कराते हैं।

मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन (Alcoholism and Drug Addiction)

वैसे तो नगर एवं ग्रामीण दोनों समाजों में मद्यपान एक गंभीर समस्या के रूप में उभर रहा है पर 20वीं सदी के अंत में महानगरों में कुछ ऐसे कारक रहे हैं जिन्होंने इसे और भी गंभीर बना दिया है। अब शराब पीना महानगरीय संस्कृति का अंग बनता जा रहा है। महानगरीय युवाओं में शराब सेवन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। नए विकसित संचार माध्यमों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नगरीय समाज का एक बहुत बड़ा भाग मजदूरों एवं उद्योगों के श्रमिकों से मिलकर बना है। यह वर्ग अपनी शारीरिक थकान मिटाने के लिए शराब का सेवन करना आवश्यक समझता है।

मद्यपान के अतिरिक्त नगरों में मादक-द्रव्य व्यसन की समस्या में भी वृद्धि हुई है। आज नगरों में रेव पार्टियों के प्रचलन में वृद्धि हुई है। पब व डांस क्लब मादक द्रव्य व्यसन के अड्डे बन गए हैं। मादक-द्रव्य व्यसन के कारण व्यक्तिगत विघटन के साथ-साथ सामुदायिक विघटन (Community Dissolution) की समस्याओं में भी वृद्धि हो रही है।

मद्यपान एवं मादक द्रव्य-व्यसन युवाओं को अपराध व हिंसा की ओर उन्मुख कर रहे हैं।

अपराध की समस्या (Problem of Crime)

पिछले कुछ दशकों में नगरीकरण की तेज गति ने विकसित तथा विकासशील समाजों में अपराध की समस्या को जन्म दिया है। संसार के सभी महानगर तथा बड़े नगर अपराध तथा बाल अपराध हेतु अनुकूल अवसर प्रदान करते हैं। भारत में भी ग्रामीण तथा आदिवासी इलाकों की तुलना में नगरों में अपराध की दर उच्च हैं। नगरीकरण की बढ़ती दर के साथ अपराध की दर भी बढ़ती है क्योंकि सफलता के लिए संस्थागत अवसर, आकांक्षा रखने वालों की तुलना में कम होते हैं। इसके साथ ही नगर की अपरिचित परिस्थिति भी अवैध-क्रियाओं के लिए सामाजिक अनुकूलता (Social Compatibility) प्रदान करती है।

क्योंकि, इन दशाओं में कानून तथा व्यवस्था के लिए जिम्मेदार परंपरागत सामाजिक नियंत्रण की संस्थाएँ कमजोर पड़ जाती हैं। पाश्चात्य समाजों की तुलना में भारत के नगरों में अपराध की दर कम है, फिर भी बड़े नगरों की आबादी में अभूतपूर्व वृद्धि तथा व्यापक आर्थिक असुरक्षा तथा कानून-व्यवस्था की बिगड़ती हुई स्थिति के कारण फौजदारी अपराधों के साथ ही आर्थिक अपराध चाहे वह 'ब्लू-कॉलर' हो या 'व्हाइट-कॉलर' अत्यन्त तेजी से बढ़ रहे हैं।

अलगाव व कुसमायोजन की समस्या (Isolation and Maladjustment Problem)

नगरीकरण की प्रक्रिया में नगरीय सामाजिक जीवन में सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विषमताओं, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष तथा सामाजिक जटिलता के अनन्य पक्षों की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी स्थिति में भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश (Socio Cultural Environment) के लोग जब नगरीकरण की प्रक्रिया में एक दूसरे के निकट आते हैं तो पारस्परिक समायोजन (Mutual Adjustment) उनके नगरीय सामाजिक जीवन की प्राथमिक शर्त होती है। जिन व्यक्तियों में निराशा, हीनता तथा सामाजिक असुरक्षा की भावना जैसी मानसिक विकृतियाँ पैदा होती हैं उनमें नगरीय समाज से अलगाव उत्पन्न होता है और वे मूल्यहीनता (Valuelessness) की स्थिति में आ जाते हैं। उनका यह मानसिक अन्तर्द्वन्द प्रथमतः सामाजिक कुसमायोजन उत्पन्न करता है जिसकी परिणति आपराधिक गतिविधियों के रूप में होती है। नगरों में होने वाली हत्याएं, बलात्कार, डकैती आदि परम्परागत अपराधों के पीछे इस अलगाव व कुसमायोजन को देखा जा सकता है।

सामुदायिक एकीकरण की समस्या (Problem of Community Integration)

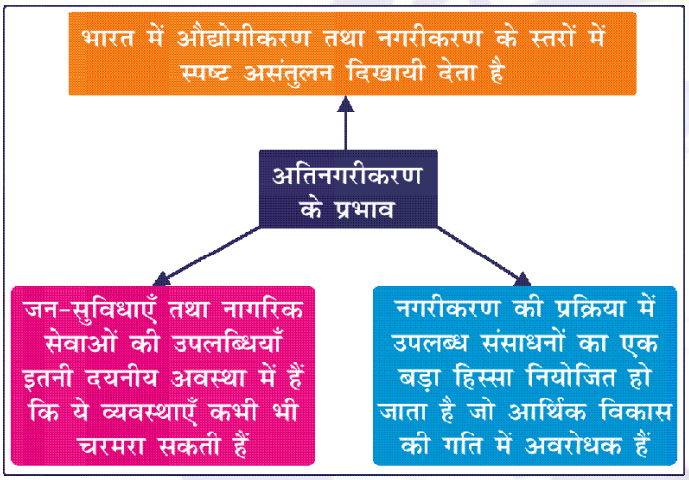
अल्पसंख्यक समुदायों का गांवों से नगरों की ओर प्रवास नगरीय सामाजिक पारिस्थितिकी का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इनके शहरी सामाजिक संरचना में एकीकृत होने की समस्या सदैव विद्यमान रही है।

नगरों में प्रवासियों द्वारा कई बार स्थानीय सदस्यों की जीवनशैली को नहीं अपनाया जाता है बल्कि इसके विपरीत अपने पृथक निवास स्थानों, अपने निजी समुदाय संस्थाओं और संघों की स्थापना कर लेते हैं। इसी प्रकार के एकीकरण की प्रक्रिया हम बंगालियों, पंजाबियों, केरलवासियों, तमिलों, महाराष्ट्रियों और कश्मीरियों में भी देख सकते हैं जो अपने मूल नगरों से दूसरे राज्यों के नगरों में जाकर बस जाते हैं। वे केवल अपने संघ ही नहीं बनाते बल्कि विशेष अवसरों पर एक दूसरे से मिलते भी हैं जहाँ वे अपनी सामाजिक प्रथाओं का पालन करते हैं। कई अध्ययनों में यह पाया गया है कि पड़ोसियों के साथ सम्बन्धों में आक्रामक व्यवहार दिखाई देता है। यहाँ महाराष्ट्रियों का अपने उन पड़ोसियों के साथ नकारात्मक व्यवहार दिखाई दिया जो

अन्य क्षेत्रों से आए थे। परन्तु, महाराष्ट्रीय लोग शिव सेना के आदर्शों से अधिक प्रभावित हैं इसीलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इसी प्रकार की विचारधारा देश के अन्य भागों में विभिन्न नृजातीय समूहों (Racial Groups) के बीच सम्बन्धों को निर्धारित करती है।

अति-नगरीकरणजनित समस्या (Problem Caused by Over-urbanization)

नगरीय आबादी का इतना ज्यादा बढ़ जाना कि शहर अपने निवासियों को एक अच्छी जीवनशैली देने में असफल हो जाए तो यह स्थिति अतिनगरीकरण कहलाती है। इससे जन-सुविधाओं एवं मकानों पर अत्यधिक आबादी का दबाव बढ़ जाता है। भारतीय संदर्भ में अतिनगरीकरण के कई प्रभाव रहे हैं, जैसे-,



भारत में तीव्र नगरीकरण शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बीच संसाधनों के आवंटन में असंतुलन उत्पन्न कर रहा है, जिसके फलस्वरूप आर्थिक विकास की गति पर प्रतिकूल असर पड़ा है। भारत में नगरीय समस्याएँ केवल अतिनगरीकरण का परिणाम ही नहीं हैं बल्कि इसको मुख्यत: नगरीकरण के स्वरूप को संचालित करने वाली प्रभावपूर्ण नगरीय नीति के अभाव के परिणाम के रूप में भी देखा जा सकता है।

आवास की समस्या (Problem of Housing)

नगरीय जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि ने अनेकों समस्याओं को जन्म दिया है जिसमें सबसे बड़ी समस्या आवास की है। नगरवासियों का एक विशाल भाग अति दयनीय आवासों और तंग-बस्तियों में रहता है। अनुमानत: बड़े-बड़े नगरों के लगभग 70 प्रतिशत लोग निम्न स्तर के मकानों में रहते हैं। इसी प्रकार सैकड़ों ऐसे व्यक्ति हैं जो शहरों में 'फुटपाथों' पर बिना किसी आश्रय के जीवन व्यतीत करते हैं।

सुरक्षित और पर्याप्त जल-आपूर्ति की समस्या (Problem of Safe and Adequate Water Supply)

नगरों में घरेलू उपयोग के लिए जल की उपलब्धता एक आधारभूत आवश्यकता (Basic Need) है। परंतु, भारत सहित तृतीय विश्व के देशों के नगरों में कुछ ही नगरवासी ऐसे हैं जो इस सुविधा को लगातार एवं संतोषजनक रूप से प्राप्त कर रहे हैं।

भारत में लगभग 30 प्रतिशत नगरवासी शुद्ध पेय जल की सुविधाओं से वंचित (Debrived) हैं। नगरों तथा शहरों में पानी प्राप्त करने के प्रमुख स्रोत नगरपालिकाओं के नल तथा हैण्ड पम्प हैं। किंतु ज्यादातर नगरों में, विशेषत: तेजी से बढ़ रहे नगरों में, झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों को घरेलू उपयोग हेतु सुरक्षित जल की प्राप्ति में भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

प्रभावी और पर्याप्त परिवहन की समस्या (Problem of Effective and Adequate Transportation)

एक अच्छी व संतुलित परिवहन व्यवस्था नगरवासियों को निवास और काम के स्थल के बीच तथा प्रमुख व्यापारिक केंद्रों पर आना-जाना सुगम बनाती है। इस तरह की परिवहन व्यवस्था उन लोगों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है जो रोजी-रोटी के लिए नगरों पर आश्रित होते हैं पर नगर में स्थायी निवास करने के बजाय गाँव से प्रतिदिन नगर में आते-जाते हैं।

भारत के नगरों में एक तरफ संकीर्ण और तंग सड़कें व गलियाँ एवं उनकी दयनीय स्थिति तथा दूसरी तरफ भीड़-भाड़ व जाम ट्रैफिक का भयावह दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जो लगभग नगर के प्रत्येक भाग में, खासतौर से व्यापारिक क्रियाओं के इलाकों तथा अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में दिखाई देता है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या (Problem of Environmental Pollution)

वर्तमान समय में औद्योगीकरण एवं नगरीय विकास ने सम्पूर्ण विश्व के समक्ष पर्यावरण प्रदूषण जैसी भयानक समस्या को जन्म दिया है। भारत में कोलकाता, मुम्बई, कानपुर तथा दिल्ली जैसे शहर घनी आबादी के साथ ही प्रथम श्रेणी के प्रदूषित शहर हैं। अन्य शहरों की स्थिति भी दिन-व-दिन खराब होती जा रही है।

नगरों में बढ़ते प्रदूषण के कारकों में भीड़-भाड़ भरी सड़कें, लगातार बढ़ रहे परिवहन के साधन, सीवेज, परम्परागत घरेलू ईंधन, औद्योगिक कारखाने तथा गंदी बस्तियाँ आदि प्रमुख हैं।

प्रौद्योगिकीय प्रदूषण (Industrial Pollution) के स्रोतों के साथ ही पर्यावरण प्रदूषण के कारणों में मानवीय गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पर्यावरण की स्वच्छता के बारे में नगरवासियों तथा उद्योगपतियों की लापरवाही, स्थानीय अधिकारियों की पर्यावरण की सुरक्षा के लिए प्रामाणिक मानदंडों (Criteria) के प्रति उपेक्षा, उपलब्ध जमीन पर स्वार्थी समूहों का आधिपत्य और जन-सुविधाओं, जैसे -शौचालय, गटर, कूड़ा-करकट इकट्ठा करने की पेटियाँ, नल तथा स्नानाघर की दयनीय हालत नगर के वातावरण में प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। नगरीकरण की लगातार बढ़ती दर एवं उपलब्ध जमीन पर आबादी के बढ़ते दबाव के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण नगरवासियों

के स्वास्थ्य तथा सुखमय जीवन के लिए एक चुनौती के रूप में उपस्थित हुआ है।

नगरीय समस्याओं के कारण
(Causes of Urban Problems)

भारत में नगरीकरण ने जिन विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जन्म दिया है, उनके लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं:-



1. ***व्यक्तिवादिता तथा तीव्र प्रतिस्पर्धा (Individualism and Intense Competition)*** – नगरीय समाज में व्यक्तिवादिता एक प्रमुख विशेषता बन गयी है। व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित (Self Centric) होता जा रहा है तथा धनसंपत्ति को ही अधिक महत्व देता है। अधिक से अधिक धन संग्रह की प्रवृत्ति में व्यक्ति को तीव्र प्रतिस्पर्धा हेतु मजबूर किया है। उपरोक्त प्रवृत्ति कई सारी नगरीय समस्याओं के लिए एक महत्वपूर्ण कारण है।
2. ***उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार (Spread of Consumerist Culture)*** – आज नगरीय समाज में उपभोक्तावादी संस्कृति अपने चरम पर है। लोग दिखावे के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। नगरों में व्यक्ति की प्रस्थिति (Status) उसकी आय या जाति से निर्धारित न होकर अपितु उसके उपभोग के स्तर से निर्धारित होती है। दिखावे की संस्कृति की यह होड़ कई सारी नगरीय सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है।
3. ***जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)*** – नगरीकरण की अधिकता तथा इससे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं हेतु सबसे प्रमुख उत्तरदायी कारण जनसंख्या विस्फोट की स्थिति का होना है। नगरों में आवास, परिवहन, प्रदूषण तथा अन्य समस्याओं के लिए जनसंख्या विस्फोट की स्थिति सर्वाधिक जिम्मेदार है।
4. ***नगरीय क्षेत्रों में नागरिक संस्कृति का अभाव (Lack of Civic Culture in Urban Areas)*** – नगरों में विभिन्न वर्गों व समुदायों के लोग एक साथ रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक विविधता (Cultural Diversity) की स्थिति पायी जाती है। ऐसे में किसी सामान्य नागरिक संस्कृति का अभाव हो जाता है जो नगरीय अपराध व संघर्ष की समस्या को उत्पन्न करता है।
5. ***तीव्र-ग्रामीण नगरीय प्रवास (Rapid Rural Urban Migration)*** – ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में कमी तथा नगरीय आकर्षण से उत्पन्न ग्रामीण-नगरीय प्रवास ने शहरों में जनसंख्या के दबाव को बढ़ाकर संबंधित समस्याओं को जन्म दिया है। गंदी बस्तियों का फैलाव, अपराध जैसी समस्याओं के लिए यह प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।
6. ***राष्ट्रीय नगरीकरण की नीति का अभाव (Lack of National Urbanization Policy)*** – सरकार द्वारा राष्ट्रीय नगरीकरण की नीति का अभाव भी विभिन्न नगरीय समस्याओं के लिए उत्तरदायी है।
7. ***नगरीय निकायों की परंपरागत संरचना (Traditional Structure of Urban Bodies)*** – नगर निकायों की संरचना का विकास दशकों पूर्व हुआ है। वर्तमान समय में नगरों में हुए परिवर्तन के साथ इनका समुचित समायोजन (Adjustment) संभव नहीं हो पाता है। नगरीय समस्याओं के लिए उत्तरदायी कारणों में यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है।
8. ***राजनीतिक व प्रशासनिक इच्छाशक्ति का अभाव (Political and Administrative will Power)*** – नगरीय नियोजन (Urban Planning) हेतु विभिन्न नियमों व वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद यह संभव नहीं हो पा रहा है। इसके लिए राजनीतिक व प्रशासनिक इच्छाशक्ति का अभाव प्रमुख कारण है।
9. ***केन्द्र की सीमित भूमिका (Limited Role of the Center)*** – नगर नियोजन राज्य सूची का विषय है जिसके कारण इसमें केन्द्र की भूमिका सीमित हो जाती है। परिणामतः एक समान नगर नियोजन की नीति का निर्माण व पर्याप्त वित्त का अभाव नगरीय समस्याओं को बढ़ा देते हैं।
10. ***राज्यों के पास वित्त का अभाव (States Lack Finance)*** – राज्यों के पास पर्याप्त वित्त का अभाव नगरीय समस्याओं के समाधान न हो पाने हेतु प्रमुख कारण के रूप में विद्यमान हैं।
11. ***विकास कार्यक्रमों का राजनीतिकरण (Politicization of Development Programmes)*** – नगरीय समस्याओं के समाधान हेतु निर्मित विकास कार्यक्रमों का राजनीतिक लाभों

हेतु प्रयोग एक सामान्य घटक है। परिणामतः इन कार्यक्रमों का समुचित प्रभाव परिलक्षित नहीं हो पाता है।

12. भ्रष्टाचार (Corruption) – भ्रष्टाचार ने विकास कार्यक्रमों के समुचित क्रियान्वयन (Implementation) को सर्वाधिक दुष्प्रभावित किया है। परिणामतः नगरीय समस्याएँ अधिक जटिल हो गयी है।

नगरीय समस्याओं के समाधान के प्रयास (Efforts to Solve Urban Problems)

नगरीकरण तथा औद्योगीकरण आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक हैं अतः राष्ट्र के योजनाबद्ध विकास (Planned Development) के प्रयत्नों में नगरीकरण की दर में तीव्र वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं को काबू में लाने की नीतियाँ अपनाई जाती रही है। इन प्रयासों में ज्यादातर गरीब तथा निम्न आय वर्ग के लोगों की स्थिति को सुधारने पर बल दिया जाता रहा है। साथ ही यहाँ आवास एवं जल आपूर्ति की समस्याओं के साथ-साथ नगर विकास की अन्य समस्याओं को हल करने के लिए भी प्रयास किये जा रहे हैं।

नगरीय समस्याओं के समाधान की दिशा में किए गए प्रयासों को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है:-

1. सरकार द्वारा स्थापित परिवार परामर्श केन्द्र एवं विभिन्न NGO के माध्यम से पारिवारिक विघटन (Family Dissolution) रोकने हेतु निःशुल्क सुझाव एवं सहायता।
2. मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन को रोकने हेतु विभिन्न NGO द्वारा निःशुल्क नशा मुक्ति केन्द्र की स्थापना।
3. नगर विकास हेतु योजना तैयार करने के लिए नगर नियोजन संगठन की स्थापना।
4. प्रमुख नगरीय क्षेत्रों में नगर विकास हेतु नगर विकास प्राधिकरण का गठन।
5. शहरी भूमि अधिकतम सीमा निर्धारण एवं नियमन अधिनियम 1976 के द्वारा भूमि के वितरण को संतुलित करने का प्रयास।
6. 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत नगरीय विकास एवं मलिन बस्तियों में जीवन स्तर में सुधार का प्रयास।
7. दिल्ली हेतु राष्ट्रीय राजधानी नियंत्रण मण्डल की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश हेतु योजनाएं तैयार करना है।
8. नगरीय क्षेत्रों के विकास में नगरवासियों की भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए 74वें संविधान संशोधन विधेयक के द्वारा नगरीय स्थानीय संस्थाओं का गठन किया गया।
9. केन्द्र सरकार द्वारा इस दिशा में कई कार्यक्रम चलाये गये और इनके माध्यम से नगरीय विकास (Urban Development) का प्रयास किया जा रहा है।
10. राज्य सरकार द्वारा भी विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से नगरीय विकास का प्रयास किया जा रहा है।
11. विभिन्न सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी संगठनों के माध्यम से जैसे आवास एवं नगरीय विकास निगम (HUDCO), पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, जल विकास बोर्ड, NH DF आदि के द्वारा भी अपने-अपने क्षेत्रों में अनेक प्रयास किये गये।
12. स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा भी इस दिशा में कई प्रयास किये गये हैं जैसे नगरों में अनाथालयों की स्थापना, मलिन बस्तियों में शिक्षा प्रदान करना, नगरों में वृद्धा आश्रम की व्यवस्था आदि।
13. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे संयुक्त राष्ट्र मानव बस्ती केन्द्र, विश्व बैंक से सहायता प्राप्त नगरीय विकास परियोजना आदि के माध्यम से भी इस दिशा में कई प्रयास किये गये।
14. ग्रामीण विकास के द्वारा भी ग्रामीण नगरीय प्रवास पर नियंत्रण हेतु प्रयास किया गया ताकि नगरीकरण को रोका जा सके।
15. अन्य प्रयास–
    - (i) मलिन बस्ती (Dirty Slum) एवं आवास की समस्या हेतु राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना की गयी।
    - (ii) परिवहन व्यवस्था को प्रभावी बनाने हेतु राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति लागू की गयी।
    - (iii) पर्यावरणीय समस्या के समाधान हेतु पर्यावरणीय अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गयी।
    - (iv) नगरीय विकास के प्रशिक्षण हेतु कोलम्बो प्लान के माध्यम से प्रयास किया गया।
    - (v) मुख्यतः दिल्ली में प्रदूषण नियंत्रण और इस तरह की अन्य समस्याओं के समाधान हेतु जनहित याचिका के माध्यम से समाधान का प्रयास किया गया।
    - (vi) भारत में शहरों की स्वच्छता को बढ़ावा देने हेतु 2008 में शहरी स्वच्छता नीति को लागू किया गया।
    - (vii) शहरी फेरी वालों की समस्या के निराकरण हेतु शहरी फेरी वालों पर राष्ट्रीय नीति लागू किया गया एवं पथ विक्रेता (जीविका का संरक्षण एवं पथ विक्रय का विनियमन) विधेयक, 2014 को संसद द्वारा अभी हाल ही में पारित किया गया है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

भारत में नगरीकरण जनित समस्याओं और इन समस्याओं के समाधान की दिशा में किये गए प्रयासों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में 'नगरीय संस्कृति जनित' (Urban Culture Generated) और 'अति नगरीकरण' (Over urbanization) से जुड़ी कई तरह की नगरीय समस्यायें विद्यमान हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए कई स्तरों पर प्रयास भी जारी हैं।

निश्चित रूप से इन प्रयासों से नगरीय समस्याओं के समाधान की दिशा में कई उपलब्धियां दर्ज की गयी है जैसे आज दिल्ली जैसे नगरों में नगरीय उद्योगों का नगर से बाहर स्थानांतरण, CNG की अनिवार्यता, प्लास्टिक थैले पर रोक जैसे प्रयासों से उल्लेखनीय सफलता हासिल की गयी है। पर्यावरण के क्षेत्र में यह सफलता बम्बई, बंगलुरु, चेन्नई, कोलकाता जैसे शहरों में भी दृष्टिगत होती है। नगरवासियों को आज शुद्ध पेय जल काफी हद तक उपलब्ध हुआ है और निरंतर प्रयास के द्वारा गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर (Quality of Life) में काफी हद तक सुधार हुआ है। राजीव आवास योजना जैसे कई कार्यक्रमों के द्वारा गन्दी बस्तियों के लोगों के लिए आवास, पेयजल एवं जल निकास की व्यवस्था को दुरुस्त किया जा रहा है। आज भारत के नगरों में फ्लाई ओवर एवं मेट्रो रेल आदि के प्रयोग ने काफी हद तक यातायात संबंधी समस्याओं का समाधान (Solution) किया है। निरंतर नई एवं चौड़ी सड़कों का निर्माण, नगर पर भार को कम करने के लिए नगर के बाहर बस्तियों का विकास, स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना एवं मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण नगरीय प्रवास को रोकने के प्रयास का काफी हद तक सकारात्मक परिणाम सामने आया है और नगरीय समस्याओं में कमी आयी है। वृद्धों, अनाथ बच्चों एवं महिलाओं के लिए चलाये जा रहे अनाथालय केन्द्रों आदि ने भी संबंधित समस्याओं का काफी हद तक समाधान किया है।

परन्तु उपरोक्त उपलब्धियाँ अभी भी पर्याप्त नहीं हैं और आज भी हम नगरीय समस्याओं के समाधान की दिशा में अपेक्षित सफलता हासिल नहीं कर पाए हैं। दिल्ली की यमुना नदी, कानपुर की गंगा एवं दक्षिण भारत की महानदी, कावेरी आदि आज भी दुनिया की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में गिनी जाती है। दिल्ली, मुम्बई और अन्य कई महानगरों में स्वच्छ पीने योग्य जल उपलब्ध नहीं है और लोगों को पानी खरीदकर अपनी आवश्यकताएं पूरी करनी पड़ती है। नगरों में परिवहन की समस्या का समुचित समाधान नहीं हो पाया है और ट्रैफिक जाम प्रमुख समस्या बनी हुई है। दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई व बेंगलुरु जैसे महानगरों में 9-11 तथा 5-7 का समय टी.वी. व रेडियो के लिए महत्वपूर्ण होता है जो नगरों में ट्रैफिक जाम के बारे में सूचना देते नजर आते हैं।

मलिन बस्तियाँ आज भी नगरीय समस्या (Urban Problem) बनी हुई है और तमाम प्रयासों के बावजूद रेलवे लाइन के किनारे या नगरों के बीच में ढाबे के रूप में इस तरह की बस्तियां देखी जा सकती हैं। जहाँ लोग आज भी अपेक्षित जन सुविधाओं से वंचित हैं। आज भी आवास के अभाव में नगरीय आबादी का एक बहुत बड़ा भाग सड़कों, प्लेटफॉर्म या फ्लाई ओवर के नीचे जीवन बिताने के लिए विवश है।

व्यक्तिवादिता (Individualism), प्रतिस्पर्धा, मानसिक तनाव एवं आत्महत्या जैसी बढ़ती समस्याएं भारतीय नगरों के नकारात्मक प्रभावों को परिलक्षित (Reflected) कर रहे हैं। नगरों में हो रहे नैतिक पतन एवं कुंठा ने महिलाओं के विरुद्ध छेड़छाड़ बलात्कार व हिंसा जैसी घटनाओं को तीव्र कर दिया है।

इस तरह स्पष्ट है कि भारत में नगरीय विकास की दिशा में हम अभी अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये हैं और इसके लिए जहाँ एक तरफ कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन से संबंधित कमियाँ तो दूसरी तरफ कई तरह के संरचनात्मक कारक (Structural Factors) भी उत्तरदायी रहे हैं।

अत: निष्कर्ष है कि जब तक उपरोक्त कमियों को दूर नहीं किया जाता तब तक नगरीय समस्याओं का समाधान करके आदर्श नगरीय समाज की स्थापना संभव नहीं है। इसके लिए कुछ सुझावों पर अमल किया जा सकता है। सर्वप्रथम नगरों के समानांतर ग्रामीण विकास को संभव बनाना, ग्रामीण नगरीय प्रवास को रोका जाय क्योंकि यह भारत में आज अति नगरीकरण का सबसे प्रमुख कारण है।

✪✪✪✪✪

KHAN SIR

12 भारत में मलिन बस्तियाँ (Slums in India)

नगरीय क्षेत्रों में गंदी बस्ती एवं वंचन (Slums and Deprivation in Urban Areas)

गन्दी बस्ती प्रमुख रूप से एक ऐसा आवासीय क्षेत्र है जहाँ निवास-स्थान अत्यधिक भीड़-भाड़ युक्त होते हैं, जिनकी बनावट त्रुटिपूर्ण होती है जहाँ रोशनदान, प्रकाश एवं सफाई का अभाव होता है या इनमें से कुछ कारकों जैसे-मल-जल निकास का अभाव, शुद्ध पेय जल का अभाव, अस्वास्थ्यकर वातावरण के सम्मिलित प्रभाव के कारण सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं नैतिकता के लिए हानिप्रद होता है। गन्दी बस्ती की अवधारणा को अधिक स्पष्ट करने के लिए इसकी निम्न विशेषताओं की चर्चा की जा सकती है:-

भारत में गंदी बस्ती की समस्या का स्वरूप (Nature of Slums Problem in India)

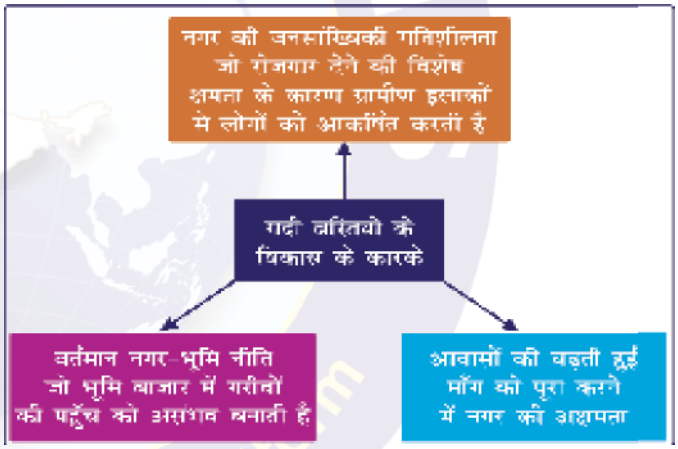
भारत में अतिनगरीकरण (Over-urbanization) एवं नगरीय गरीबी के कारण गंदी बस्तियों का विकास एक प्रमुख नगरीय समस्या रही है। नगरों में जीवनयापन के अवसरों की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों की एक बहुत बड़ी आबादी नगरों की ओर प्रवास करती है और यहाँ पर उनको आय इतनी अधिक नहीं हो पाती है कि वह सुरक्षित आवासों की व्यवस्था कर पाये और खाली पड़ी भूमि पर अवैध रूप से झुग्गी-झोपड़ियों का निर्माण कर लेते हैं। इन बस्तियों में आवासीय सुविधाओं यथा हवा, प्रकाश, पेयजल, सफाई आदि की कोई व्यवस्था नहीं होती है।

भारत के महानगरों में इन गंदी बस्तियों का संकेन्द्रण (Concentration) सर्वाधिक है। मुम्बई में धारावी एशिया की सबसे बड़ी गंदी बस्ती के रूप में जानी जाती है। भारत में अलग-अलग क्षेत्रों में इन बस्तियों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे मुम्बई में चाल, कानपुर में अहाता, मद्रास में चेरी, दिल्ली में झुग्गी आदि। नाम चाहे कुछ भी हो परंतु इन बस्तियों के संदर्भ में सर्वत्र एक समानता विद्यमान रहती है कि यह गंदी बस्तियाँ निम्न स्तरीय आवासीय क्षेत्र के रूप में दिखाई देती है और अनेक बुराइयाँ जैसे-मद्य व्यसन, मादक द्रव्य व्यसन, बाल अपराध, अशिक्षा, अज्ञानता, वेश्यावृत्ति आदि एवं सांस्कृतिक विघटन (Cultural Dissolution) का केन्द्र है।

भारत में नगरीय जनसंख्या का पांचवां भाग गन्दी बस्तियों में निवास करता है। 1981 में भारत की जनसंख्या 68.51 करोड़ थी जिसमें 21.81 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती थी। 2011 में देश की जनसंख्या बढ़कर 121 करोड़ हो गयी और नगरीय जनसंख्या (Urban Population) में वृद्धि के साथ-साथ गन्दी बस्तियों की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है फलतः नगरों में भूमि की कीमत, इमारती सामान व श्रम की कीमतों में वृद्धि हुई। अतः नए मकानों का निर्माण काफी कठिन हो गया और कई मंजिले मकान बनाने पड़े जिनमें हवा, रोशनी, जल व बिजली का पूरा प्रबन्ध नहीं हो पाता है। उनमें स्वास्थ्य एवं सफाई की सुविधाओं का पूर्णतः अभाव है।

गन्दी बस्तियों के विकास के कारक (Causes of Development of Slums)

'द नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेयर्स', नई दिल्ली के अनुसार गन्दी बस्ती प्रमुखतया तीन कारणों से बनती है:-



भारत के संदर्भ में सामान्य रूप से गन्दी बस्तियों के निर्माण एवं विकास के अनेक कारकों की चर्चा की जा सकती है, जैसे:-

1. भारत में औद्योगिकरण (Industrialization) एवं नगरीकरण ने गन्दी बस्तियों को जन्म दिया है। उद्योगों में काम करने के लिए गाँवों से आने वाले लोगों को निवास के लिए जब कम किराए पर अच्छे मकान उपलब्ध नहीं हो पाते तो वे गन्दे मकानों में रहने लगते हैं अथवा खाली पड़ी भूमि पर अनधिकृत कब्जा कर कच्चे- पक्के मकान अथवा झोपड़ियाँ बना लेते हैं।
2. भारतीय ग्रामों में उद्योगों एवं कृषि के पतन के कारण लोग व्यवसाय की तलाश में नगरों में आते हैं और नगरों में आने पर भी वे अपनी ग्रामीण निवास की आदतों को नहीं छोड़ पाते हैं और ऐसी बस्तियां बनाकर रहने लगते हैं।

3. भारत में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि जितनी तीव्र गति से हुई है, उतनी तीव्र गति से मकानों का निर्माण नहीं होने से लोगों के लिए आवास का अभाव पैदा हुआ है और लोग भीड़-भाड़ युक्त मकानों में अथवा एक ही मकान में कई परिवार मिलकर रहने लगते हैं।
4. भारत में जब कभी प्राकृतिक प्रकोप (Natural Disaster) होता है अर्थात् अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प एवं संक्रामक रोग आते हैं तो लोग अपने घर छोड़कर सुरक्षित स्थानों पर चले जाते हैं और वहाँ जनाधिक्य (Over Population) के कारण गन्दी बस्तियाँ पनपने लगती है।
5. नगरों में मनोरंजन, चिकित्सा, पुलिस, न्यायालय, जल, बिजली, शिक्षा, व्यापारिक सुविधा, उन्नति के अवसर आदि की उपलब्धता के कारण लोग आकर्षित होकर वहां निवास के लिए आते हैं। उनके लिए आवास के अभाव के कारण नगरों में गन्दी बस्तियों का निर्माण एवं प्रसार हुआ है।
6. लम्बे समय तक गन्दी बस्तियों में रहने के कारण लोग इस प्रकार से रहने के आदी हो जाते हैं और एक प्रकार का जीवन दृष्टिकोण विकसित कर लेते हैं, वे उस बस्ती को छोड़कर जाना भी नहीं चाहते। इस प्रकार एक गरीबी की संस्कृति का विकास होता है, जिससे उनको किसी अन्य स्थान पर बसाने पर भी वे उसी प्रकार से रहना प्रारम्भ कर देते हैं। भारत के संदर्भ में भी यह बात शत-प्रतिशत लागू होती है।
7. नगरों में श्रमिकों की अधिकता है जो अपने कारखाने एवं काम के स्थान के पास ही रहना चाहते हैं। फलस्वरूप वहां गन्दी बस्तियाँ बन जाती हैं।
8. जातीय भेदभाव (Caste Discrimination) के कारण भारतीय नगरों में भी जातिगत मुहल्ले पाए जाते हैं। एक जाति के लोग एक स्थान पर ही रहते हैं। फलतः निम्न जातियों की बस्तियां अपेक्षाकृत अधिक दयनीय स्थिति में स्वतः विकसित हो जाती है।
9. भारत में प्रान्तीयता, जातिवाद, भाषावाद एवं साम्प्रदायिकता की भावना के कारण भी एक ही धर्म, भाषा, संस्कृति व प्रान्त के लोग साथ-साथ रहना चाहते हैं। फलस्वरूप भीड़-भाड़युक्त गन्दी बस्तियों का निर्माण हुआ है।
10. भारत में देशान्तरगमन करने की बढ़ती प्रवृत्ति ने भी गन्दी बस्तियों को जन्म दिया है करोड़ों की संख्या में बांग्लादेश से आए शरणार्थियों (Refugees) ने गन्दी-बस्तियों के विस्तार में योगदान दिया है।
11. भारत में गन्दी बस्तियों के निर्माण का प्रमुख कारण गरीबी है। लोगों के पास इतना पैसा नहीं होता है कि वे ऊंचे किराए के स्वास्थ्यप्रद एवं अच्छे मकानों को किराए पर लेकर रह सकें। परिणामस्वरूप वे सस्ते किराए के मकानों में रहते हैं जो गन्दी बस्तियों में ही उपलब्ध होते हैं।
12. भारत में गन्दी बस्तियों के विकसित होने का एक कारण स्वयं सरकार द्वारा श्रमिकों एवं इन बस्तियों में सफाई, सुविधा आदि के प्रति उपेक्षा बरतना भी है।

गन्दी बस्तियों के दुष्परिणाम (Consequences of Slums)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में आवास एवं गन्दी बस्तियों की गम्भीर समस्या है जो अनेक आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक एवं पारिवारिक दोषों को जन्म देती है और राष्ट्रीय प्रगति को अवरूद्ध करती है, जैसेः-

1. आवास की दुर्व्यवस्था होने एवं गन्दी बस्तियों में रहने से लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मानव के लिए शुद्ध हवा, जल एवं रोशनी अति आवश्यक है। इनके अभाव में कई प्रकार की बीमारियां फैलती है और शरीर कमजोर हो जाता है।
2. गन्दे वातावरण में रहने के कारण सांस्कृतिक स्तर में गिरावट आती है और लोगों की मनोवृत्ति आपराधिक बन जाती है और उनका नैतिक पतन हो जाता है। उनमें चोरी, वेश्यावृत्ति, शराबखोरी और जुआ खेलने जैसी आदतें जन्म लेती हैं। मकानों की उचित व्यवस्था के अभाव में लोग गाँवों से अपनी स्त्रियां साथ नहीं ला पाते हैं। अतः वे वेश्यागामी (Prostitute) हो जाते हैं। एक ही कमरे में जब परिवार के सभी सदस्य रहते हैं और वयस्क व्यक्तियों के यौन व्यवहारों को बच्चे देखते हैं तो उन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है यही कारण है कि भारत के गन्दी बस्तियों में यौन अपराध अधिक पाए जाते हैं। गरीबी के कारण बच्चे इधर-उधर घूमते रहते हैं जिससे बाल अपराध एवं आवारागर्दी पनपती है।
3. श्रमिकों की कुशलता के लिए आवश्यक है कि उनका मकान ऐसी जगह हो जहाँ शुद्ध हवा व रोशनी आ सके ताकि वे अपनी थकावट दूर कर सकें एवं कार्य करने की क्षमता को पुनः प्राप्त कर सकें। भारत में गंदी बस्तियों में स्वच्छ एवं पर्याप्त मकानों के अभाव में श्रमिकों की कार्यक्षमता घट जाती है।
4. गंदी बस्तियों में आवास की दुर्व्यवस्था व्यक्ति के जीवन को विघटित कर देती है। वह असामान्य जीवन व्यतीत करने लगता है, शराब एवं मादक वस्तुओं का प्रयोग करने लगता है। जुआ खेलने, वेश्यागमन करने एवं अपराधी प्रवृतियों में लगे रहने से व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा भी गिर जाती है।
5. व्यक्तित्व विघटन (Personality Dissolution) पारिवारिक विघटन को भी जन्म देता है। व्यक्ति का परिवार के प्रति लगाव समाप्त होने लगता है, फलतः परिवार में असामंजस्य बढ़ता है और व्यक्ति परिवार की उपेक्षा करने लगता है।

6. बिगड़ी हुई आवास-व्यवस्था से उत्पन्न वैयक्तिक एवं पारिवारिक विघटन, सामाजिक एवं सामुदायिक विघटन (Community Dissolution) को भी जन्म देता है। व्यक्ति व परिवार की हानि से अन्ततः समाज व समुदाय को हानि होती है।
7. गन्दी बस्ती में रहने वाले व्यक्तियों की कार्यक्षमता कम होती है जिसका प्रभाव उनकी आय पर पड़ता है और कम आय होने पर उच्च जीवनस्तर व्यतीत करना सम्भव नहीं हो पाता यहाँ तक कि लोग अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी जुटाने में असमर्थ होते हैं। फलतः उनका झुकाव आपराधिक गतिविधियों की ओर होता है।

स्पष्ट है भारतीय नगरों में गन्दी बस्तियों के विकास ने कई तरह की समस्याओं को उत्पन्न किया है फिर भी नगरों में इनका अस्तित्व रोजगार की तलाश में आने वाले गरीब प्रवासियों के लिए आशीर्वाद का रूप है। इसमें ही असहाय लोग जैसे-औद्योगिक श्रमिक, दिहाड़ी-मजदूर, फेरी वाले, छोटे दुकानदार, सब्जी बेचने वाले तथा वे अन्य तमाम लोग जो नगर की महत्वपूर्ण सेवाओं में लगे होते हैं, आश्रय पाते हैं।

गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु किये गये प्रयास (Efforts Made to Eradicate of Slums)

आवास एवं गन्दी बस्तियों की समस्या को हल करने के लिए केन्द्र सरकार, नगरपालिकाओं एवं बीमा विभाग द्वारा अनेकों प्रयास किए गए हैं। गंदी बस्ती के उन्मूलन और सुधार हेतु नगर विकास प्राधिकरण का गठन किया गया जिसने नगरों में निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए आवास निर्माण का कार्य एवं झुग्गी झोपड़ियों की स्थिति सुधारने हेतु उपाय किये, साथ ही पोषाहार पूरक (Nutritional Supplement) कार्यक्रम द्वारा इस निम्न वर्ग के जीवन स्तर में सुधार के प्रयास किए गये।

इन्दिरा गांधी द्वारा शुरु किये गये 20 सूत्रीय कार्यक्रम में भी मलिन बस्तियों के सुधार के अनेक कार्यक्रम शामिल थे। सूत्र 14(4) के अन्तर्गत आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (Weaker Section) के लिए आवास उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी। सूत्र 14(5) के अन्तर्गत निम्न आय वर्गीय आवासों के निर्माण का प्रावधान किया गया और सूत्र 15 के अन्तर्गत गंदी बस्तियों के पर्यावरण में सुधार के कार्यक्रमों को समाहित किया गया।

गंदी बस्तियों के संरचनात्मक सुधार (Structural Reforms) हेतु 1970 में आवास एवं नगर विकास निगम (हुडको) की स्थापना की गयी। हुड़को द्वारा गरीबों के लिए आवास निर्माण हेतु, गन्दी बस्तियों के नवीनीकरण एवं मरम्मत हेतु तथा पर्यावरण में सुधार एवं संरचना आधारित स्वच्छता के लिए ऋण सहायता उपलब्ध करायी जाती है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों एवं जीवन बीमा निगम द्वारा अपने कर्मचारी एवं बीमादारों को भवन-निर्माण हेतु कम ब्याज पर धनराशि प्रदान की जाती है।

1988 में राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना की गई। यह बैंक गृह ऋण खाता योजना, वाणिज्यिक बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा आवास के लिए पुनर्वित्त योजना तथा हुड़को के माध्यम से भूमि विकास और वित्तीय कार्यक्रम चला रहा है। 1991 में भारत में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों की संख्या 4 करोड़ थी यद्यपि कुछ योजनाओं द्वारा अब तक 50 लाख लोगों के लिए ही आवास की सुविधाएं जुटायी गयी हैं। विभिन्न योजनाओं के द्वारा पानी की सुविधाएं देने, नालियों की व्यवस्था करने, गलियों को सुधारने और शौचालय बनाने की व्यवस्था भी की गयी है।

2008 में दिल्ली सरकार द्वारा गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों के आवास की समस्या के समाधान हेतु राजीव रत्न आवास योजना के तहत ढेर सारे मकान आवंटित किये जा रहे हैं।

सरकार ने हाल ही में राजीव आवासीय योजना एवं स्लम मुक्त भारत मिशन जैसी महत्वाकांक्षी परियोजनाओं के माध्यम से इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास प्रारम्भ किया है। उपरोक्त के अलावा कई अन्य प्रयास भी किए जा रहे हैं; जैसे-

1. 74वें संशोधन के अन्तर्गत स्थानीय नगरीय संस्थाओं का गठन किया गया और नगर निगम के द्वारा गंदी बस्तियों में संरचनात्मक सुविधा (Structural Facility) उपलब्ध कराना।
2. विदेशी सहायता प्राप्त कई योजनाएँ एवं कार्यक्रम भी इस दिशा में क्रियाशील रहे हैं जैसे-
   (क) इंग्लैण्ड के अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग से सहायता प्राप्त गन्दी बस्ती सुधार परियोजना
   (ख) जर्मनी से सहायता प्राप्त गन्दी बस्ती सुधार कार्यक्रम
3. इस दिशा में स्वयं सेवी संगठन द्वारा कई प्रयास किये गए हैं जैसे-
   (क) गन्दी बस्ती के बच्चों को पढ़ाना।
   (ख) गंदी बस्ती में हो रहे सांस्कृतिक अपघटन (Cultural Decomposition) रोकना।
   (ग) इनकी महिलाओं में स्वरोजगार हेतु अभिप्रेरण व सहायता प्रदान करना।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

भारत में गन्दी बस्तियों की समस्या एवं इनके उन्मूलन के प्रयासों से स्पष्ट है कि गन्दी बस्तियाँ नगरीकरण से संबंधित एक प्रमुख समस्या है जो मुख्यतः अतिनगरीकरण एवं नगरीय गरीबी का परिणाम रही है। इस समस्या के समाधान में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही अनेक प्रयास किये जाते रहे हैं। इन प्रयासों से गन्दी बस्ती की समस्या के समाधान की दिशा में निश्चित रूप से कई सफलताएं दर्ज की गई है और आज भारत के लगभग सभी महानगरों में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। उनके आवास

व अवसंरचनात्मक (Infrastructural) सुविधाओं का स्तर ऊंचा हुआ है और इनके घरों में टी.वी., कूलर, फ्रिज, वाशिंग मशीन जैसे विलासितापूर्ण उपकरणों को सहजता से देखा जा सकता है। इन गंदी बस्तियों में रहने वाले कई लोग ऐसे हैं जो मोटर साइकिल से चलते हैं और मध्यवर्गीय जीवन यापन करते हैं। नगर निगम एवं विभिन्न योजनाओं के तहत इन बस्तियों में पीने का पानी, चलायमान शौचालय की व्यवस्था, विभिन्न रोगों से बचाव हेतु दवा का छिड़काव, इनके बच्चों को शिक्षा देने हेतु कई कार्यक्रमों के तहत किये जा रहे प्रयास, इनके क्षेत्र में संबंधित समस्याओं के समाधान में आज व्यापक रूप से क्रियाशील है।

परंतु यह यथार्थ का केवल एक पक्ष है और इसका दूसरा पक्ष यह है कि आज भी हम नगरीय दृश्यपटल से गन्दी बस्तियों के उन्मूलन में पूरी तरह सफल नहीं हो पाये हैं और तमाम प्रयासों के बावजूद इनकी संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। सड़क, रेल लाइन की इर्द-गिर्द गन्दी बस्तियों का विकास नगरों की एक सामान्य समस्या बनी हुई है और भारत के आज लगभग सभी बड़े नगरों में ये गन्दी बस्तियां धब्बे की तरह आज भी विद्यमान है।

गन्दी बस्ती उन्मूलन की दिशा में किये गये तमाम प्रयासों के बावजूद आज भी इसकी निरंतरता के लिए कई कारकों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है; जैसे-

1. नगरीय गरीबी (Urban Poverty) आज भी भारतीय नगरों का प्रमुख पक्ष है जो गंदी बस्ती उन्मूलन के प्रयास के समक्ष एक प्रमुख चुनौती के रूप में चट्टान की तरह है।
2. नगरीय जनसंख्या मुख्यत: गन्दी बस्तियों की संख्या में प्राकृतिक रूप से होने वाली वृद्धि और नगरीय प्रवास (Urban Migration) के कारण होने वाली तीव्र वृद्धि आज भी जारी है। फलत: सरकार द्वारा किये गये प्रयास कम पड़ जाते हैं और पहले से विद्यमान नगरीय आधारभूत संरचना पर निरंतर भार बढ़ता जा रहा है जिसकी परिणति गन्दी बस्तियों के विकास के रूप में सामने आ रही है।
3. नगरीय आवासों पर भार बढ़ने से एक तरफ किराये की दर में वृद्धि हो रही है तो दूसरी तरफ श्रमिकों के ग्रामीण नगरीय प्रवास में वृद्धि से नगरों में श्रमिकों की आपूर्ति बढ़ाकर उनकी मजदूरी को न्यूनतम कर दिया है। फलत: वे मकान किराया वहन ना कर पाने के कारण गन्दी बस्ती की ओर उन्मुख हो जाते हैं।
4. इस दिशा में अपेक्षित सफलता नहीं मिलने का एक प्रमुख कारण गन्दी बस्तियों से संबंधित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव एवं सार्वजनिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार भी है जिन्होंने सरकारी प्रयासों को लक्षित समूह तक पहुँचने में बाधक के रूप में काम किया है और स्वयं उसका एक बहुत बढ़ा हिस्सा गटक गया है।

गरीबी की संस्कृति (Culture of Poverty) आज भी बस्तियों के अनियंत्रित विस्तार का एक प्रमुख कारण है क्योंकि ये गन्दी बस्ती में रहने में सहज महसूस करते हैं और सरकार द्वारा आवंटित स्तरीय आवास को किराये पर लगाकर पुन: गन्दी बस्ती में रहने चले जाते हैं।

5. ठेकेदारों, बाहुबलियों द्वारा गन्दी बस्ती को व्यवसाय के रूप में चलाना इसकी निरंतरता का प्रमुख कारण है क्योंकि ठेकेदार या ताकतवर लोग सरकारी जमीनों पर मौका मिलते ही गन्दी बस्ती विकसित कर देते हैं और उन्हें किराये पर लगाकर व्यवसाय के रूप में चलाते हैं।

अत: निष्कर्ष है कि भारतीय नगरों की प्रमुख समस्या के रूप में गन्दी बस्तियों का उन्मूलन तब तक संभव नहीं है जब तक इनकी निरंतरता को बनाये रखने वाले उपरोक्त कारकों के सन्दर्भ में इसके उन्मूलन का प्रयास न किया जाय और इसके लिए निम्न सुझावों पर विचार आवश्यक है।

गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु सुझाव
(Suggestions for Eradication of Slums)

1. ग्रामीण विकास को तीव्र करके ग्रामीण-शहरी प्रवास को रोका जाये क्योंकि गन्दी बस्ती के विकास का प्रमुख कारण ग्रामीण मजदूरों को शहरों की ओर प्रवास रहा है। इस दिशा में PURA जैसी महत्वाकांक्षी परियोजना को दृढ़ता से लागू किया जाना एक बेहतर प्रयास हो सकता है।
2. प्राकृतिक जनसंख्या (Natural Population) वृद्धि को नियंत्रित किया जाए क्योंकि यह अन्य समस्याओं के साथ-साथ गन्दी बस्तियों के विकास में सहयोग देती है।
3. गरीबी का तीव्र उन्मूलन किया जाए और इसके लिए गरीबी उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों को ईमानदारीपूर्वक लागू करवाना इस दिशा में बेहतर होगा।
4. नगरों में आवास की समस्या का समाधान किया जाए इस हेतु-
   (क) गन्दी बस्ती वालों में स्वयं बेहतर आवास निर्माण हेतु प्रेरणा विकसित की जाए।
   (ख) इनको आवास निर्माण हेतु न्यूनतम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाय।
   (ग) ऋण उपलब्धता कराने वाले एजेन्सियों को सरल एवं दुरुस्त किया जाए।
   (घ) इन सभी कार्यों को भ्रष्टाचार मुक्त बनाने का प्रयास किया जाए।
5. जो गन्दी बस्तियां विद्यमान हैं उनका नवीनीकरण किया जाए और इनमें पर्याप्त संरचनात्मक सुविधाओं जैसे जल निकास, शौचालय,

पेयजल, दवाओं के छिड़काव आदि की व्यवस्था की जाए।

6. इनमें रहने वाले लोगों को बेहतर जीवन एवं प्रस्थिति (Status) में सुधार हेतु प्रेरित किया जाए ताकि वे गरीबी की संस्कृति से बाहर निकल सकें।
7. उनको रोजगार के बेहतर अवसर उपलब्ध कराये जायें इस हेतु उन्हें स्वरोगजार हेतु प्रेरित किया जाए एवं सहायता करना, उनमें शिक्षा का प्रसार करना आदि कार्यों में स्वयं सेवी संस्थाओं, गैर सरकारी संगठनों और युवाओं की भागीदारी में वृद्धि की जाए।
8. उन ठेकेदारों एवं बाहुबलियों को जो गन्दी बस्तियों को व्यवसाय के रूप में चलाते हैं, हतोत्साहित (Discouraged) किया जाय, इनकी गन्दी बस्तियों को जब्त किया जाए।
9. नगरों में किराये की दर में होने वाली वृद्धि को नियंत्रित किया जाए और इसको प्रति व्यक्ति होने वाली आय में वृद्धि के साथ समायोजित (Adjust) किया जाय।

राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम - NSDP

राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम (एनएसडीपी) की शुरूआत एवं उद्घाटन प्रधानमंत्री ने कानपुर (उत्तर प्रदेश) में अगस्त 1996 में की थी। राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम के तहत राज्य/संघ शासित प्रदेशों को शहरी स्लम क्षेत्रों का विकास करने के लिए अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता (एसीए) जारी की जा रही थी। इस कार्यक्रम का उद्देश्य जलापूर्ति, बरसाती जल निकासी, समुदाय स्नान घर, मौजूदा लाइनों को चौड़ा करने एवं नई लाइनें बिछाने, सीवरेज, सामुदायिक शौचालयों एवं सड़क पर बिजली की व्यवस्था इत्यादि जैसी भौतिक सुविधाओं को उपलब्ध कराते हुए शहरी स्लम बस्तियों का सुधार करना था। इसके अलावा एनएसडीपी के तहत फंड राशियों को पूर्व स्कूली शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, प्रसूति, बाल स्वास्थ्य जिसमें जरूरी दवाओं को पिलाना शामिल है इत्यादि जैसी सामाजिक सुविधाओं एवं सामुदायिक इंफ्रास्ट्रक्चर की व्यवस्था पर खर्च किया जा सकता है। इस कार्यक्रम में आश्रय उन्नयन तथा नए मकानों का निर्माण भी एक हिस्से के रूप में था।

इस कार्यक्रम के तहत राज्य/संघ शासित प्रदेश की स्लम आबादी के आधार पर योजना आयोग ने वार्षिक रूप से फंड राशि को अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता के रूप में आवंटित किया था। वित्त मंत्रालय ने राज्यों को फंड की राशि जारी की थी और गृह मंत्रालय ने संघ शासित प्रदेशों को फंड जारी किए थे। राज्य सरकारों ने क्रियान्वयक एजेंसियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप फंड की राशि आगे जारी की थी। राज्यों में इस कार्यक्रम की प्रगति की निगरानी करने के लिए शहरी रोजगार एवं गरीबी उपशमन मंत्रालय को नोडल मंत्रालय के रूप में नामित किया गया था।

मलिन बस्ती मुक्त भारत मिशन (Slum Free India's Mission)

राजीव आवास योजना (RAY) के साथ मलिन बस्ती मुक्त भारत मिशन (Slum Free India's Mission) को प्रायोजित (Sponsored) करने की केन्द्र सरकार की योजना है। इसकी शुरूआत के बाद 2013-2022 की अवधि के दौरान इस योजना के क्रियान्वयन चरण को मिशन मोड के तहत चलाया जाएगा। इस मिशन का लक्ष्य सभी मलिन बस्तियों को औपचारिक प्रणाली के अंतर्गत लाना है और लोगों को वैसी सभी मूलभूत सुविधाएँ (Basic Facilities) प्रदान करना है, जो उस शहर के अन्य लोगों को प्राप्त है। इस मिशन के तहत शहरी गरीबों के लिए किफायती आवास समूह की योजना तैयार करने के अलावा उनकी सुविधाओं के लिए नीतियों में आवश्यक बदलाव कर औपचारिक प्रणाली की असफलताओं को दूर किया जाएगा।

मिशन के क्रियान्वयन चरण के दौरान RAY के तहत देश के सभी नगरों, शहरों एवं शहरी जमाव को शामिल किया जाएगा। शहर के विकास, शहर में झुग्गियों एवं अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अल्पसंख्यक जनसंख्या के अलावा समाज के अन्य कमजोर एवं पिछड़े वर्गों (Weaker and Backward Classes) की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए प्राथमिकता वाले महत्वपूर्ण जिला मुख्यालयों, धार्मिक नगरों, धरोहर एवं पर्यटक स्थलों का चयन राज्य द्वारा केन्द्र सरकार के परामर्श से किया जाएगा। इस मिशन के तहत पांच लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों, शहरों एवं शहरी जमाव वाले क्षेत्रों में परियोजना लागत का 50 प्रतिशत, पाँच लाख से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में परियोजना लागत का 75 प्रतिशत एवं विशेष दर्जे वाले राज्यों में परियोजना लागत का 80 प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा वहन किया जाएगा।

मलिन बस्ती मुक्त भारत मिशन के लिए राजीव आवास योजना में आवश्यक सुधार निर्धारित समय में किए जाएंगे। सुधारों के आधार पर ही केन्द्रीय सहायता निर्भर करेगी। इस हेतु किए जाने वाले सुधार निम्न हैं:-

1. मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों को दीर्घकाल के लिए गिरवी योग्य, नवीकरणीय (Renewable) योग्य पट्टा अधिकार प्रदान करना।
2. फ्लोर स्पेस इंडेक्स का 15 प्रतिशत या रहने योग्य इकाइयों का 35 प्रतिशत आरक्षित रखना, इनमें से जो भी आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (Weaker Section) के लिए अधिक हो।
3. शहरी गरीबों को बुनियादी सुविधा उपलब्ध कराने के लिए निगम बजट का 25 प्रतिशत आरक्षित रखना।
4. मलिन बस्तियों में रहने वाली एवं शहरी गरीबों की समस्याओं के निराकरण के लिए निगम संवर्ग (Corporate Cadre) की स्थापना।

(i) 'सम्पूर्ण शहर' आधार पर मलिन बस्ती मुक्त शहर कार्य योजना (SFCPOAS) तैयार करना। इस योजना के तहत चयनित शहरों को अपनी योजना तैयार करने में मदद दी जाएगी। इसमें अनुमानित निवेश लागत तथा प्राथमिकता के आधार पर मौजूदा मलिन बस्तियों में सुधार व विकास के अलावा अगले 10-15 वर्षों के लिए शहरी गरीबों हेतु आधारभूत नागरिक अवसंरचना एवं सामाजिक सुविधायुक्त आवास उपलब्ध कराना शामिल है।

(ii) 'संपूर्ण मलिन बस्ती' आधार पर विस्तृत परियोजना रिपोर्ट (DPR) तैयार करना। इस योजना में प्राथमिकता के आधार पर मलिन बस्तियों के लिए शहरों द्वारा आवासीय विशेष परियोजना रिपोर्ट तैयार की जाएगी, जिसके बाद एकीकृत 'संपूर्ण मलिन बस्ती' दृष्टिकोण के तहत चयनित मलिन बस्तियों में आवास, आधारभूत नागरिक संरचना (Basic Civic Structure) एवं सामाजिक सुविधा उपलब्ध करायी जाएगी।

जनगणना 2011 : मलिन बस्तियों पर रिपोर्ट (Census 2011 : Report on Slums)

1. 21 मार्च, 2013 को आवास सूचीकरण एवं आवासीय जनगणना, 2011 के आँकड़ों पर आधारित 'मलिन बस्तियों में आवासीय स्टॉक, सुविधाओं और परिसंपत्तियों पर रिपोर्ट' (Report on Housing Stock, Amenities and Assets in Slums) जारी की गयी।
2. जनगणना 2011 की इस रिपोर्ट के अनुसार देश के आवास सूचीकरण ब्लॉकों में कुल 1.73 करोड़ घर मलिन बस्ती घरों के रूप में वर्गीकृत किए गए हैं जिनमें 1.37 करोड़ परिवार रहते है।
3. देश के 19 मिलियन प्लस (10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले) शहर ऐसे हैं जहाँ 25 प्रतिशत से अधिक परिवार मलिन बस्तियों में निवासित हैं।
   - इनमें से 71 प्रतिशत 6 राज्यों, यथा-महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में निवासित हैं।
   - इन 19 शहरों में से 5 शहरों, यथा-मुंबई, विशाखापत्तनम, विजयवाड़ा, जबलपुर एवं मेरठ में 40% से अधिक मलिन बस्ती परिवार हैं।
4. मलिन बस्तियों में पीने के पानी के रूप में 74 प्रतिशत परिवारों के लिए पेयजल का मुख्य स्रोत नल है जबकि इसके बाद हैंडपंप/ट्यूबवेल (20.3 प्रतिशत) का स्थान है।
5. मलिन बस्तियों के 56.7 प्रतिशत परिवारों को पेयजल का स्रोत उनके आवासीय परिसर में तथा 31.9 प्रतिशत परिवारों को यह घर से 100 मीटर के भीतर उपलब्ध है जबकि 11.4 प्रतिशत परिवारों को 100 मीटर से अधिक दूर से पेयजल लाना पड़ता है।
6. 90 प्रतिशत से अधिक मलिन बस्ती परिवार प्रकाश के लिए विद्युत का उपयोग करते हैं।
7. मलिन बस्ती परिवारों में से 66 प्रतिशत को अपने आवासीय परिसर के भीतर शौचालय सुविधा उपलब्ध है।
   - 18.9 प्रतिशत मलिन बस्ती परिवार खुले में शौच करते हैं जबकि 15.1 प्रतिशत सार्वजनिक शौचालय का प्रयोग करते हैं।
8. मलिन बस्ती क्षेत्रों में 53.2 प्रतिशत परिवार बैंकिंग सुविधाएँ प्राप्त करते हैं तथा 70 प्रतिशत परिवारों के घरों में टेलीविजन एवं 18.7 प्रतिशत परिवारों के पास रेडियों सुविधा है।
9. मलिन बस्तियों में केवल 10.4 प्रतिशत परिवारों के घरों में कंप्यूटर/लैपटॉप उपलब्ध हैं जिनमें से मात्र 3.3 प्रतिशत के पास इंटरनेट कनेक्शन है।

✪✪✪✪✪

KHAN SIR

13 नगरीय विकास : एक विस्तृत विवेचन (Urban Development : A Detailed Analysis)

शहरी विकास (Urban Development)

नगरीकरण (Urbanization) आर्थिक विकास तथा प्रगति का एक प्रमुख घटक है। भारत में नगरीकरण को टाला नहीं जा सकता है। अगले कुछ दशकों में 50 प्रतिशत आबादी शहरों में रहने लगेगी। अभी शहरों में लगभग 31.2 प्रतिशत आबादी रह रही है। हाल के दशकों में भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति देखने को मिली है। बड़े शहरों में ज्यादा लोग आ रहे हैं तथा विभिन्न राज्यों और शहरों में शहरीकरण के तरीकों में भिन्नताएं हैं।

शहर अर्थव्यवस्था (Urban Economy) में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं और बदले में उन्हें बेहतर बुनियादी ढाँचा तथा सार्वजनिक सेवाएँ मिलती हैं। शहरों की उभरती आर्थिक महत्ता स्पष्ट है क्योंकि देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में उनका 50 प्रतिशत से अधिक योगदान है। शहरों की राजनीतिक महत्ता देखते हुए सामाजिक, आर्थिक रूप से तथा राजनीतिक रूप से बुनियादी ढाँचे तथा सेवाओं के प्रावधान की अति आवश्यकता है।

भारतीय संविधान में 74वें संशोधन (1992) के माध्यम से नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों के निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली भागीदारी बनाने का प्रयास किया गया। इसके माध्यम से नगर निकायों (नगर निगम, नगरपालिका, नगर पंचायतों) में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने के साथ-साथ यह भी सुनिश्चित कर दिया गया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई, उनके हित व विकास संबंधी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। 74वें संविधान संशोधन ने आम जन समुदाय की भागीदारी को स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित किया है। नगरीय निकायों को मिले अधिकारों व दायित्वों में महत्वपूर्ण बात यह है कि योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन का दायित्व नगरीय निकायों को होगा, यहाँ तक कि केन्द्र व राज्य की योजनाओं का क्रियान्वयन भी नगर निकायों के माध्यम से किया जायेगा।

अत: नगरों की उचित व्यवस्था एवं नागरिकों के सामाजिक व आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा कई प्रकार की योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन किया जा रहा है।

सात बड़े शहरों के सैटेलाइट टाउन में शहरी अवस्थापन हेतु योजना (Plan for Urban Settlement in Satellite Town of Seven Big Cities)

शहरी विकास मंत्रालय ने सात बड़े शहरों में शहरी अवस्थापना के लिए एक योजना बनाई है। इस योजना के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:-

1. सात बड़े शहरों में सैटेलाइट टाउन/ काउंटर मैग्नेट टाउनों में शहरी अवस्थापना सुविधाएँ जैसे पीने का पानी, सीवरेज, जल निकास, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन आदि का विकास करना एवं उनके भावी विकास को सुनिश्चित करना ताकि बड़े शहरों पर दबाव कम किया जा सके।
2. सुधारों जैसे ई-गवर्नेंस, संपत्ति कर, दोहरी लेखा प्रविष्टि, (Double Accounting Entry) बाधामुक्त वातावरण का निर्माण, राष्ट्रीय भवन कोड के अनुपालन में संरचनात्मक सुरक्षा मानदंडों (Structural Safety Criteria), जल एवं ऊर्जा, अपशिष्ट जल का उपयोग और सेवा स्तर यानी बैंचमार्कों का कार्यान्वयन करना।
3. सुधारों के कार्यान्वयन का सुदृढ़ीकरण जैसे उचित उपभोक्ता प्रभार का अधिभार, आधारभूत सुविधाओं हेतु बजट का निर्धारण एवं शहरी गरीबों के लिए आवासी स्थल का कम से कम 10-15 प्रतिशत आपदा प्रबंधन (Disaster Management) हेतु प्रावधानों को शामिल करने के लिए-उपनियम तैयार करना, जल पुनर्भरण, अपशिष्ट जल का पुन: उपयोग एवं सरकारी निजी भागीदारी परियोजनाओं का कार्यान्वयन।

उपरोक्त योजना सैटेलाइट टाउन का शहरी सुधारों के कार्यान्वयन से जुड़ा हुआ है। प्रथम चरण में सात महानगर शामिल होने हैं। जल आपूर्ति एवं स्वच्छता, सीवरेज एवं ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिए केन्द्रीय सहायता एवं योजना के अंतर्गत चिह्नित सुधारों के कार्यान्वयन के लिए क्षमता निर्माण में सहायता का प्रावधान है।

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (NUHM) (National Rural Health Mission)

1. 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM-National Rural Health Mission) प्रारम्भ किया गया था।

   इसकी मूल अवधि 2012 तक थी जिसे 12वीं पंचवर्षीय योजनावधि के लिए बढ़ा दिया गया।
2. देश के शहरी क्षेत्रों के लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा 'राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (NUHM - National Urban Health Mission) तैयार किया गया, जिसे 11वीं योजनावधि के दौरान ही प्रारम्भ किया जाना था परन्तु ऐसा नहीं हो सका था।
3. 15 अगस्त, 2012 को अपने स्वतंत्रता दिवस संबोधन में प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM - National Health Mission)

स्थापित किए जाने की घोषणा की थी जिसके अंतर्गत NRHM और NUHM दोनों उप-मिशनों के रूप में शामिल होने थे।

4. 1 मई, 2013 को मंत्रिमंडल ने महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत नए उप-मिशन के रूप में 12वीं योजनावधि के दौरान राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन का प्रारम्भ किए जाने की स्वीकृति प्रदान की है।
5. केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (NUHM) के तहत निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किए गए हैं:-

- प्रत्येक 50 से 60 हजार जनसंख्या पर एक शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (U-PHC)।
- बड़े शहरों में 5 से 6 U-PHCs पर एक सामुदायिक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (U-CHC)।
- प्रत्येक 10,000 जनसंख्या के लिए एक प्रसूति सहायिका (ANM - Auxiliary Nursing Midwifery)।
- प्रत्येक 200 से 500 परिवारों के लिए एक 'आशा' (ASHA - Accredited Social Health Activist, Community Link Worker)।

6. 5 वर्षों की अवधि के लिए NUHM की कुल अनुमानित लागत 22,507 करोड़ रुपये हैं जिसमें केन्द्र सरकार का हिस्सा 16,955 करोड़ रुपये हैं।

इस योजना के लिए केन्द्र और राज्यों का वित्तीय भागीदारी पैटर्न उत्तर-पूर्वी राज्यों तथा विशेष श्रेणी के राज्यों (जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड) के लिए 90:10 तथा शेष राज्यों के लिए 75:25 अनुपात में है।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)
(Swarna Jayanti Shahari Rozgar Yojana)

स्व-रोजगार उद्यमों की स्थापना के प्रोत्साहन अथवा मजदूरी रोजगार की व्यवस्था की मार्फत शहरी बेरोजगारों (Urban Unemployed) व अल्प-बेरोजगारों को लाभकारी रोजगार दिलाने के उद्देश्य से 01/12/1997 को भारत सरकार ने स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना नामक एक नवीन शहरी गरीबी उपशमन कार्यक्रम की शुरूआत की थी। इस योजना में गरीबों के लिए शहरी बुनियादी सेवाएँ (UBSP), नेहरू रोजगार योजना (एनआरवाई) तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (पीएमआईयूपीईपी) नामक पिछली तीन शहरी गरीबी उन्मूलन योजनाओं को मिला लिया गया था।

शहरी गरीबों के हालातों में सुधार हेतु योजना का मूल्यांकन करने के लिए आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय द्वारा 2006 में (एसजेएसआरवाई) का सतत रूप से मूल्यांकन किया गया था। राज्य सरकारों, शहरी स्थानीय निकायों तथा अन्य सहयोगियों से प्राप्त फीडबैक तथा क्रियान्वयन के निष्कर्षों की अद्यतन रिपोर्टों के आधार पर एसजेएसआरवाई योजना के मार्ग-निर्देशों में वर्ष 2009-10 से संशोधन किया गया है।

नई संशोधित एसजेएसआरवाई के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:-

1. शहरी बेरोजगारों अथवा अल्प बेरोजगार गरीबों को उनकी निरन्तर सहायता करने के साथ अथवा मजदूरी रोजगार शुरू करने के द्वारा उन्हें स्व-रोजगार उद्यमों (व्यक्तिगत अथवा समूह) की स्थापना के लिए प्रोत्साहित करते हुए लाभदायक रोजगार प्रदान करने के द्वारा शहरी गरीबी उन्मूलन (Poverty Eradication) पर कार्रवाई करना।
2. क्षमता विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रम को सहयोग करना ताकि शहरी गरीब, बाजार द्वारा खोले गए रोजगार के अवसरों तक पहुँच बनाने अथवा स्व-रोजगार खोलने में समर्थ हो सकें।
3. आस-पड़ोस समूहों (एनएचजी), आस-पड़ोस की समितियों (एनएचसी), आदि जैसी समुचित स्व-व्यवस्थित सामुदायिक पद्धतियों के माध्यम से शहरी गरीबी के मुद्दों को हल करने के लिए समुदाय को सशक्त बनाना।

राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (NULM)
(National Urban Livelihoods Mission)

1. आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय ने 12वीं पंचवर्षीय योजनावधि में 'स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना' (SJSRY-1 दिसम्बर, 1997 में प्रारम्भ) को प्रतिस्थापित करने हेतु राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (NULM - National Urban Livelihoods Mission) प्रारम्भ करने का प्रस्ताव रखा है।

NULM शहरी गरीबी से संबंधित प्राथमिक मुद्दों यथा-कौशल प्रशिक्षण, उद्यमशीलता विकास (Entrepreneurship Development) तथा शहरी गरीबों को मजदूरी रोजगार एवं स्व-रोजगार अवसर उपलब्ध कराने में मदद करेगा।

2. NULM के तहत दो नई योजनाएँ शहरी स्ट्रीट वेंडरों के समर्थन हेतु योजना एवं शहरी बेघरों के लिए आश्रय प्रदान करने की योजना भी शामिल करने का प्रस्ताव है।
3. NULM दो चरणों में कार्यान्वित होगा-प्रथम चरण (2013-17) तथा द्वितीय चरण (2017-22)।

शहरी आवास (Urban Housing)

आवास राज्य सूची का विषय है, लेकिन सामाजिक आवास योजनाएँ और विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों के लिए आवास सुविधाओं से संबंधित नीतियाँ बनाने और उनको लागू करने और उससे संबंधित कार्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार की है। इस संबंध में आवास एवं शहरी विकास मंत्रालय राष्ट्रीय स्तर की आवास नीति और कार्यक्रम तैयार करने, विभिन्न योजना कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समीक्षा करने, आवास, भवन सामग्री और तकनीक संबंधी आंकड़ों

को एकत्र करने और उनका प्रसार और भवन निर्माण की कीमतों को कम करने के लिए अपनाए गए आम उपायों और तरीकों को तैयार करने वाली सर्वोच्च संस्था है।

भारतीय संविधान के संघीय ढाँचे के अंतर्गत, आवास एवं शहरी विकास से संबंधित कार्य राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। संविधान के 74वें संशोधन में इन कार्यों को स्थानीय शहरी निकायों को सौंपा गया है। हालांकि यह अनिवार्य रूप से राज्यों का विषय है, लेकिन केंद्र सरकार अपनी कई योजनाओं के माध्यम से इन कार्यक्रमों की सहायता एवं निगरानी करने के साथ-साथ समन्वय स्थापित करती है। आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय के अंतर्गत कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं।

शहरी क्षेत्रों में ईडब्ल्यूएस / एलआईजी आवास (EWS / LIG Housing in Urban Areas)

सरकार शहरी नवीकरण के लिए एक व्यापक कार्यक्रम और शहरों और कस्बों में आवासों में व्यापक वृद्धि और ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों के लिए आवास की व्यवस्था करने के लिए प्रतिबद्ध है। सबके लिए आवास में शहरी क्षेत्रों में ईडब्ल्यूएस/एलआईजी आवास जैसी मदें है। शहरी क्षेत्रों में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों और अल्प आय वर्गो के लिए आवास की समस्याओं से निपटने के लिए शहरी क्षेत्रों में ईडब्ल्यूएस/ एलआईजी आवासीय मदों को शामिल किया गया है।

शहरी आवासों की कमी 2012-17 पर रिपोर्ट (Report on Urban Housing Short - 2012-17)

1. केन्द्रीय आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय द्वारा जेएनयू के प्रोफेसर डॉ. अमिताभ कुंडू (Dr. Amitabh Kundu) की अध्यक्षता में 12वीं योजनावधि (2012-17) के दौरान शहरी क्षेत्रों में आवासों की कमी के आकलन हेतु एक तकनीकी समिति का गठन किया गया था।
2. कुंडू समिति ने अपनी रिपोर्ट में आवास क्षेत्र (Housing Sector) को अवसंरचना क्षेत्र का भाग बनाने अथवा उद्योग की श्रेणी में इसे रखने की अनुशंसा की है।
3. कुंडू समिति द्वारा प्रस्तुत शहरी आवासों की कमी (2012-17) पर रिपोर्ट के अनुसार 12वीं योजना के प्रारम्भ में (मार्च, 2012 की स्थिति के अनुसार) देश में कुल 18.78 मिलियन आवासों की कमी थी।

   11वीं योजना के प्रारम्भ में यह कमी 24.71 मिलियन की थी।
4. इस रिपोर्ट के अनुसार शहरी क्षेत्र में आवासों की सर्वाधिक कमी वाले राज्य क्रमशः हैं:- उत्तर प्रदेश > महाराष्ट्र > प. बंगाल > आंध्र प्रदेश > तमिलनाडु > बिहार > राजस्थान।

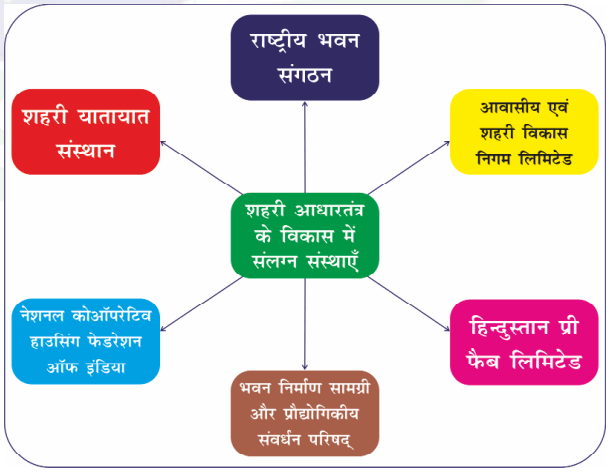
   इस सात राज्यों में ही देश में शहरी आवासों की कुल कमी का लगभग 60 प्रतिशत भाग है।
5. आर्थिक श्रेणियों के सन्दर्भ में सर्वाधिक कमी ई.डब्ल्यू.एस. (Economically Weaker Sections) श्रेणी के मकानों की थी (10.55 मिलियन; कुल कमी का 56.2 प्रतिशत भाग)।

आवासों की कुल कमी में एल.आई.जी. (Lower Income Group) श्रेणी में मकानों की कमी 39.5 प्रतिशत (7.41 मिलियन) तथा एम.आई.जी. या उच्च श्रेणी में यह कमी 4.3 प्रतिशत (0.82 मिलियन थी)।

शहरी परिवहन (Urban Transport)

शहरी जनसंख्या में वृद्धि के कारण शहरों के आकार में भी बढ़ोत्तरी हुई है, जिसके कारण यात्रा की मांग बढ़ी है। सार्वजनिक परिवहन पर ध्यान न देने के कारण व्यक्तिगत गाड़ियों के प्रयोग ने जाम, वायु प्रदूषण, दुर्घटनाओं की अधिक संख्या के साथ-साथ पेट्रोलियम उत्पादों की खपत में वृद्धि की है। शहरी क्षेत्रों में आवागमन के सुधार से आर्थिक विकास को सुगम बनाने के लिए सार्वजनिक परिवहन (Public Transportation), पैदल चलने तथा अन्य गैर मशीनीकृत साधनों की महत्ता में उल्लेखनीय सुधार की जरूरत है। आवागमन में इस प्रकार के सुधार का शहरी गरीबों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि इससे रोजगार के अवसरों, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं तक उनकी पहुँच सरल हो जाती है। शहरी नियोजन (Urban Planning) के लिए यह बहुत जरूरी है कि परिवहन के साधनों तथा यातायात संचालन के लिए समुचित नीति बनाई जाए। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति तैयार की है। नीति का मुख्य जोर 'लोगों को चलाओ, गाड़ियों को नहीं' पर है। यह नीति समन्वित भूमि प्रयोग तथा परिवहन नियोजन, सार्वजनिक परिवहन प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार, गैर मशीनीकृत परिवहन के तरीकों को प्रोत्साहन तथा पर्याप्त पार्किंग स्थल और शहरी परिवहन नियोजन में क्षमता निर्माण के लिए उपायों के समग्र सेट पर जोर देती है। इस समय दिल्ली, बेंगलुरु, चेन्नई, मुंबई, हैदराबाद तथा कोलकाता (पूर्व-पश्चिम मेट्रो कॉरीडोर) लखनऊ जयपुर में मुख्य मेट्रो रेल परियोजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। अन्य शहरों में भी मेट्रो परियोजनाओं पर विचार किया जा रहा है।

शहरी आधारतंत्र के विकास में संलग्न संस्थाएँ (Institutions Involved in Urban Infrastructure Development)



1. ***राष्ट्रीय भवन संगठन (National Building Organization):–*** आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय का एक सम्बद्ध कार्यालय है जो आवास एवं भवन निर्माण गतिविधियों से सम्बन्धित सांख्यिकीय सूचना के एकत्रीकरण, तालिकाकरण एवं प्रसार के लिए देश में शीर्षस्थ संगठन के रूप में कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय भवन संगठन को आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय ने JNNURM के अन्तर्गत शहरी गरीबी को बुनियादी सेवायें (BSUP) तथा एकीकृत आवास एवं स्लम विकास कार्यक्रम (IHSDP) के अन्तर्गत परियोजनाओं के मूल्यांकन, स्वीकृति, निगरानी एवं समीक्षा के कार्यों में समन्वय करने के लिए एक नोडल एजेंसी बनाया है।

2. ***आवासीय एवं शहरी विकास निगम लिमिटेड:–*** HUDCO, 1970 में अपनी स्थापना के प्रारम्भ से ही आवासीय और शहरी विकास के तकनीकी वित्तीय क्षेत्र में सतत कार्यरत है और इसका आदर्श वाक्य 'सामाजिक न्याय के साथ लाभप्रदता' है।

3. ***हिन्दुस्तान प्री फैब लिमिटेड (Hindustan Pree Feb Limited):–*** 1948 से पश्चिमी पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों के लिए आवास आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसकी स्थापना की गयी थी। हिन्दुस्तान प्री फैब लिमिटेड की स्थापना का उद्देश्य भारत में फ्री फैब तकनीक को प्रोत्साहित करते हुए बेहतरीन गुणवत्ता वाली आवासीय परियोजनाओं को जल्दी पूरा करना था।

4. ***भवन निर्माण सामग्री और प्रौद्योगिकीय संवर्धन परिषद् (Building Materials and Technological Upgrading Council):–*** भवन निर्माण सामग्री और प्रौद्योगिकीय संवर्धन परिषद् आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय, भारत सरकार के अन्तर्गत एक स्वायत संस्था है जिसकी स्थापना 1990 में हुई थी। यह विगत 18 वर्षों से ऊर्जा सक्षम पर्यावरण सम्बन्धी कार्यों में संलग्न है। अपनी स्थापना के बाद से यह परिषद् प्रभावी लागत, सक्षम-ऊर्जा पर्यावरण अनुकूल (Environmental Adaptation) तथा आपदा प्रतिरोधी भवन-निर्माण सामग्री एवं निर्माण प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण करती रही है।

5. ***नेशनल कोऑपरेटिव हाउसिंग फेडरेशन ऑफ इंडिया (National Co-operative Housing Federation of India):–*** इस संगठन का मुख्य उद्देश्य सहकारिता (Co-operation) आवास को बढ़ावा देना है।

6. ***शहरी यातायात संस्थान (Urban Transport Institute):–*** इस संस्थान की स्थापना शहरी विकास मंत्रालय के अंतर्गत 1997 में एक विशेषज्ञ संस्था के रूप में की गयी। इसका उद्देश्य यातायात सम्बन्धी आधुनिकतम तकनीक को प्रोत्साहित करने, बढ़ावा देने तथा समन्वय करने के साथ-साथ योजना, विकास, प्रचालन, शिक्षण, अनुसंधान तथा प्रबंधन आदि भी है।

राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति (National Urban Transport Policy)

तीव्र आर्थिक समृद्धि के साथ शहरी क्षेत्रों में परिवहन-व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति को लागू किया गया। इस नीति के तहत शहरों को अधिक व्यवस्थित बनाने की रणनीति को आगे बढ़ाया गया है जिससे हमारे शहर अधिक जीवन्त तथा विश्वस्तरीय हो सकें। सामाजिक तथा आर्थिक सुव्यवस्था के लिए शहरीकरण की अवसंरचना (Infrastructure) का विकास योजनाबद्ध किया जाना महत्वपूर्ण है। इस नीति के उद्देश्य निम्न हैं:-

1. सुरक्षित, आरामदायक, तीव्र तथा सतत विकास की ओर शहरों को ले जाना।
2. रोजगार, शिक्षा तथा सुविधाओं में वृद्धि करना।
3. वाणिज्य-व्यापार के लिए बाजारों की सुविधा का विस्तार।
4. इन्टेलिजेंट ट्रांसपोर्ट सिस्टम के अन्तर्गत मेट्रो, मोनो रेल, रैपिड ट्रांसपोर्ट सिस्टम को गति प्रदान करना।

राष्ट्रीय शहरी स्वच्छता नीति (Rashtriy Shari Swachhata Niti)

राष्ट्रीय शहरी स्वच्छता नीति को भारत सरकार ने 3 अक्टूबर, 2008 को स्वीकृति प्रदान की। इस नीति का उद्देश्य भारत में शहरी स्वच्छता को बढ़ावा देना है। सभी भारतीय शहर पूर्णतः स्वच्छ, स्वस्थ और रहने योग्य हों तथा नागरिकों को जनस्वास्थ्य सुविधाएँ (Public Health Facilities) प्रदान करने के लिए स्वच्छता सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। शहरों को जागरूक, स्वस्थ तथा रहने योग्य बनाने के लिए इस नीति में कुछ विशिष्ट लक्ष्यों को शामिल किया गया है। ये हैं:–

1. जागरूकता का सृजन तथा व्यवहार में बदलाव।
2. खुले शौच रहित शहर के लक्ष्य को हासिल करना।
3. एकीकृत शहरव्यापी स्वच्छता व्यवस्था।

प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण (Pradhan Mantri Awas Yojana)

लॉन्च (Launch):

इसे ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा वर्ष 2022 तक 'सभी के लिये आवास' के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु शुरू किया गया था। ज्ञात हो कि पूर्ववर्ती 'इंदिरा आवास योजना' (IAY) को 01 अप्रैल, 2016 से 'प्रधानमंत्री आवास योजना- ग्रामीण' के रूप में पुनर्गठित किया गया था।

उद्देश्य (Objective):

1. मार्च 2022 के अंत तक सभी ग्रामीण परिवार, जो बेघर हैं या कच्चे या जीर्ण-शीर्ण घरों में रह रहे हैं, को बुनियादी सुविधाओं (Basic Facilities) के साथ पक्का घर उपलब्ध कराना।

2. गरीबी रेखा से नीचे (BPL) जीवन व्यतीत कर रहे ग्रामीण परिवारों को आवासीय इकाइयों के निर्माण और मौजूदा अनुपयोगी कच्चे मकानों के उन्नयन में पूर्ण अनुदान के रूप में सहायता प्रदान करना।

लाभार्थी (Beneficiary):

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से संबंधित लोग, मुक्त बंधुआ मजदूर और गैर-एससी/एसटी वर्ग, विधवा महिलाएँ, रक्षाकर्मियों के परिजन, पूर्व सैनिक तथा अर्द्धसैनिक बलों के सेवानिवृत्त सदस्य, विकलांग व्यक्ति तथा अल्पसंख्यक।

लाभार्थियों का चयन (Selection of Beneficiaries):

तीन चरणों के सत्यापन के माध्यम से- सामाजिक आर्थिक जाति जनगणना 2011, ग्राम सभा, और भू-टैगिंग।

लागत साझा करना (Cost Sharing):

यूनिट सहायता की लागत मैदानी क्षेत्रों में 60:40 और उत्तर पूर्वी तथा पहाड़ी राज्यों के लिये 90:10 के अनुपात में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच साझा की जाती है।

विशेषताएँ:

1. स्वच्छ खाना पकाने की जगह के साथ घर का न्यूनतम आकार 25 वर्ग मीटर (20 वर्ग मीटर से) तक बढ़ा दिया गया है।
2. मैदानी राज्यों में यूनिट सहायता को 70,000 रुपए से बढ़ाकर 1.20 लाख रुपए और पहाड़ी राज्यों में 75,000 रुपए से बढ़ाकर 1.30 लाख रुपए कर दिया गया है।
3. स्वच्छ भारत मिशन-ग्रामीण (SBM-G), मनरेगा या वित्तपोषण के किसी अन्य समर्पित स्रोत के साथ अभिसरण के माध्यम से शौचालयों के निर्माण के लिये सहायता का लाभ उठाया जाएगा।
4. पाइप से पीने के पानी, बिजली कनेक्शन, एलपीजी गैस कनेक्शन जैसे विभिन्न सरकारी सुविधाओं के अभिसरण का भी प्रयास किया जाएगा।

प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी (Pradhan Mantri Awas Yojan-Urban)

- 25 जून, 2015 को प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) का शुभारंभ किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य शहरी क्षेत्रों के लोगों को वर्ष 2022 तक आवास उपलब्ध कराना है।
- ***कार्यान्वयन:*** आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय

विशेषताएँ:

1. यह शहरी गरीबों (झुग्गीवासी सहित) के बीच शहरी आवास की कमी को संबोधित करते हुए पात्र शहरी गरीबों के लिये पक्के घर सुनिश्चित करता है।
2. इस मिशन में संपूर्ण नगरीय क्षेत्र शामिल है (जिसमें वैधानिक नगर, अधिसूचित नियोजन क्षेत्र (Notified Planning), विकास प्राधिकरण, विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण, औद्योगिक विकास प्राधिकरण या राज्य विधान के अंतर्गत कोई भी प्राधिकरण जिसे नगरीय नियोजन का कार्य सौंपा गया है)।
3. PMAY(U) के अंतर्गत सभी घरों में शौचालय, पानी की आपूर्ति, बिजली और रसोईघर जैसी बुनियादी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।
4. यह योजना महिला सदस्य के नाम पर या संयुक्त नाम से घरों का स्वामित्व प्रदान कर महिला सशक्तीकरण (Women Empowerment) को बढ़ावा देती है।
5. विकलांग व्यक्तियों, वरिष्ठ नागरिकों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक, एकल महिलाओं, ट्रांसजेंडर और समाज के कमजोर वर्गों को इसमें प्राथमिकता दी जाती है।

चार कार्यक्षेत्रों में विभाजित:

1. निजी भागीदारी के माध्यम से संसाधन के रूप में भूमि का उपयोग करने वाले मौजूदा झुग्गीवासियों का इन-सीटू (उसी स्थान पर) पुनर्वास किया जाएगा।
2. क्रेडिट लिंक्ड सब्सिडी।
3. साझेदारी में किफायती आवास।
4. लाभार्थी के नेतृत्व वाले निजी घर निर्माण/मरम्मत के लिये सब्सिडी।

स्मार्ट सिटीज मिशन (Smart Cities Mission)

25 जून 2015 को भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा शुभारंभ एक शहरी विकास कार्यक्रम जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय शहरों को स्मार्ट बनाना है।

स्मार्ट सिटीज का अर्थ (Meaning of Smart City)

1. स्मार्ट सिटीज अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं एवं जीवन को बेहतर बनाने के सर्वाधिक व्यापक अवसरों पर ध्यान केंद्रित करते हैं।
2. वे अनेक प्रकार के दृष्टिकोणों डिजिटल एवं सूचना प्रौद्योगिकी, शहरी नियोजन हेतु सर्वोत्तम प्रथाओं, सार्वजनिक-निजी भागीदारी एवं नीति परिवर्तन का उपयोग करते हैं।
3. स्मार्ट सिटीज मिशन के दृष्टिकोण का उद्देश्य ऐसे शहरों को बढ़ावा देना है जो मुख्य आधारिक संरचना प्रदान करते हैं एवं अपने नागरिकों को एक अच्छी गुणवत्ता युक्त जीवन, एक स्वच्छ एवं सतत वातावरण तथा 'स्मार्ट' समाधानों का अनुप्रयोग प्रदान करते हैं।
4. सतत एवं समावेशी विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया है एवं विचार सुसम्बद्ध (कॉम्पैक्ट) क्षेत्रों को देखने, एक प्रतिकृति मॉडल बनाने का है जो अन्य महत्वाकांक्षी शहरों के लिए एक प्रकाश स्तंभ की भांति कार्य करेगा।

स्मार्ट सिटीज मिशन का उद्देश्य आर्थिक विकास को गति प्रदान करना एवं स्थानीय क्षेत्र के विकास को सक्षम करके लोगों के जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life) में सुधार करना तथा प्रौद्योगिकी का उपयोग करना है, विशेष रूप से वह प्रौद्योगिकी जो स्मार्ट परिणामों की ओर ले जाती है।

स्मार्ट सिटीज मिशन: आधारिक संरचनागत तत्व (Smart Cities Mission : Basic Structural Elements)

1. पर्याप्त जल आपूर्ति,
2. सुनिश्चित विद्युत आपूर्ति,
3. ठोस अपशिष्ट प्रबंधन सहित स्वच्छता,
4. कुशल शहरी गतिशीलता एवं सार्वजनिक परिवहन,
5. किफायती आवास, विशेष रूप से निर्धन वर्गों हेतु,
6. मजबूत सूचना प्रौद्योगिकी अनुयोजकता एवं डिजिटलाइजेशन,
7. सुशासन, विशेष रूप से ई-गवर्नेंस एवं नागरिक भागीदारी,
8. सतत पर्यावरण (Sustainable Environment),
9. नागरिकों, विशेषकर महिलाओं, बच्चों एवं बुजुर्गों की निरापदता एवं सुरक्षा, तथा
10. स्वास्थ्य एवं शिक्षा।

आच्छादन एवं अवधि (Coverage and Duration)

1. मिशन 100 शहरों को आच्छादित करेगा एवं इसकी अवधि पाँच वर्ष (वित्त वर्ष 2015-16 से वित्त वर्ष 2019-20) होगी।
2. प्रत्येक राज्य / केंद्र शासित प्रदेश में कितने स्मार्ट शहर हैं?
3. एक समान मानदंड के आधार पर राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों के मध्य कुल 100 स्मार्ट शहरों का वितरण किया गया है।
4. सूत्र राज्य / संघ राज्य क्षेत्र की शहरी आबादी एवं राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में सांविधिक कस्बों (Statutory Towns) की संख्या को समान महत्व (50 : 50) प्रदान करता है।
5. इस फॉर्मूले के आधार पर, प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में निश्चित संख्या में संभावित स्मार्ट शहर होंगे, जिनमें प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में न्यूनतम एक स्मार्ट शहर होगा।
6. अमृत योजना के लिए समान सूत्र का प्रयोग किया गया है।

स्मार्ट शहरों का वित्तपोषण (Financing of Smart Cities)

1. स्मार्ट सिटी मिशन को केंद्र प्रायोजित योजना (सीएसएस) के रूप में संचालित किया जाएगा एवं केंद्र सरकार ने मिशन को पांच वर्षों में 48,000 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता, अर्थात प्रति शहर प्रति वर्ष औसतन 100 करोड़ रुपये प्रदान करने का प्रस्ताव दिया है।
2. राज्य/ शहरी स्थानीय निकायों द्वारा एक समान राशि (मिलान के आधार पर) का योगदान करना होगा; अतः, स्मार्ट शहरों के विकास के लिए लगभग एक लाख करोड़ रुपये की सरकारी/ शहरी स्थानीय निकाय निधि उपलब्ध होगी।

मिशन स्मार्ट सिटी की प्रमुख चुनौतियाँ (Major Challenges of Smart City)

1. राज्य और शहरी स्थानीय निकायों को स्मार्ट सिटी के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायक भूमिका निभानी होगी।
2. इस स्तर पर स्मार्ट नेतृत्व और दृष्टि एवं निर्णायक कार्रवाई करने की क्षमता मिशन की सफलता का निर्धारण करने में महत्त्वपूर्ण कारक होगा।
3. नीति निर्माताओं, कार्यान्वयन करने वालों एवं अन्य हितधारकों (Stakeholders) द्वारा विभिन्न स्तरों पर रेट्रोफिटिंग की अवधारणाओं को समझना, पुनर्विकास और ग्रीनफील्ड विकास हेतु क्षमता सहायता की जरूरत होगी।
4. पूर्व योजना बनाने के दौर में ही समय और संसाधनों में प्रमुख निवेश करना होगा।
5. स्मार्ट सिटी मिशन को सक्रिय रूप से प्रशासन और सुधारों में भाग लेने वाले स्मार्ट लोगों की आवश्यकता है।
6. नागरिक भागीदारी शासन में एक औपचारिक भागीदारी (Formal Participation) की तुलना में काफी अधिक है। स्मार्ट लोगों की भागीदारी को सूचना तकनीक के बढ़ते उपयोग, विशेष रूप से मोबाइल आधारित उपकरणों के माध्यम से एसपीवी द्वारा सक्रिय किया जाएगा।

स्मार्ट सिटी और नया शहरी एजेंडा (Smart City and New Urban Agenda)

1. 'स्मार्ट सिटी' की संकल्पना, शहर-दर-शहर और देश-दर-देश भिन्न होती है, जो विकास के स्तर, परिवर्तन और सुधार की इच्छा, शहर के निवासियों के संसाधनों और उनकी आकांक्षाओं पर निर्भर करती है। इस मिशन में शहरों के मार्गदर्शन करने के लिये कुछ पारिभाषिक सीमाएँ अपेक्षित हैं।
2. भारत में किसी भी शहर निवासी की कल्पना में, स्मार्ट शहर तस्वीर में ऐसी अवसंरचना एवं सेवाओं की अभीष्ट सूची होती है, जो उसकी आकांक्षा के स्तर को वर्णित करती है। स्मार्ट सिटी अवधारणा, जहाँ नागरिकों की आकांक्षाओं और जरूरतों को पूरा करने के लिये, शहरी योजनाकार को आदर्श के तौर पर पूरे शहरी पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) का विकास करना होता है, वहीं नया शहरी एजेंडा जलवायु परिवर्तन और सतत विकास के लक्ष्यों को समाहित किये हुए है।
3. बेशक स्मार्ट सिटी का विचार ई-गवर्नेंस की अवधारणा को एक नए स्तर पर ले जाने का प्रयास है। पूर्णतः स्मार्ट सिटी हो जाने पर स्मार्ट सिटी के निवासियों की अधिकांश समस्याएँ स्वतः ही हल हो जाएंगी। स्मार्ट सिटी बनने की आवश्यक शर्तों

में ई-गवर्नेंस तो है ही, लेकिन यह एक धुरी मात्र है, जिस पर शेष सेवाएँ आधारित हैं। स्मार्ट सिटी के महाअभियान में जनसाधारण को शामिल किये बिना स्मार्ट सिटी का सपना पूरा नहीं हो सकता। स्मार्ट सिटी वस्तुतः एक ऐसा शहर होता है, जो सतत आर्थिक विकास व उच्च जीवन स्तर सुनिश्चित करता है तथा अर्थव्यवस्था, परिवहन, पर्यावरण, जीवन स्तर और सरकारी सेवाओं की सर्वोच्च श्रेष्ठता पर फोकस करता है। अतः स्मार्ट सिटी मिशन और नए शहरी एजेंडे का मिलन भारत में शहरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का समाधान बन सकता है।

अटल मिशन (AMRUT 2.0)

- ***अमृत मिशन के बारे में (About AMRUT Mission):***
  - अमृत मिशन को हर घर में पानी की सुनिश्चित आपूर्ति और सीवरेज कनेक्शन के साथ सभी की नल तक पहुँच को सुनिश्चित करने के लिये जून 2015 में शुरू किया गया था।
  - अमृत 2.0 का लक्ष्य लगभग 4,700 ULB (शहरी स्थानीय निकाय) में सभी घरों में पानी की आपूर्ति के मामले में 100% कवरेज प्रदान करना है।
  - इसका उद्देश्य स्टार्टअप्स और एंटरप्रेन्योर्स (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप) को प्रोत्साहित करके आत्मनिर्भर भारत पहल को बढ़ावा देना है।
- ***अमृत मिशन का उद्देश्य:***
  - यह पानी की जरूरत को पूरा करने, जल निकायों को फिर से जीवंत करने, जलभृतों का बेहतर प्रबंधन, उपचारित अपशिष्ट जल का पुनः उपयोग करने के लिये अमृत मिशन की प्रगति सुनिश्चित करेगा, जिससे पानी की एक चक्रीय अर्थव्यवस्था (Circular Economy) को बढ़ावा मिलेगा।
  - यह 500 अमृत शहरों में सीवरेज और सेप्टेज का 100% कवरेज प्रदान करेगा।
  - उपचारित अपशिष्ट जल के पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग से शहरों की कुल पानी की जरूरत का 20% तथा औद्योगिक मांग का 40% पूरा होने की उम्मीद है। मिशन के तहत प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ उपयोग सुनिश्चित करने के लिये स्वच्छ जल निकायों को प्रदूषित होने से बचाया जाएगा।
  - जल के समान वितरण, अपशिष्ट जल (Sewage Water) के पुनः उपयोग और जल निकायों के मानचित्रण का पता लगाने के लिये शहरों में पेयजल सर्वेक्षण किया जाएगा।
- ***अमृत मिशन के पहले चरण का प्रदर्शन:***
  - अमृत मिशन के तहत शहरों में 1.14 करोड़ नल कनेक्शन के साथ कुल 4.14 करोड़ कनेक्शन किये गए हैं।
  - 470 शहरों में क्रेडिट रेटिंग का काम पूरा हो चुका है। इनमें से 164 शहरों को निवेश योग्य ग्रेड रेटिंग (IGR) प्राप्त हुई है, जिसमें 36 शहर A- या उससे ऊपर की रेटिंग वाले हैं।
  - 10 ULB ने म्युनिसिपल बॉण्ड के जरिये 3,840 करोड़ रुपए जुटाए हैं। ऑनलाइन भवन निर्माण अनुमति प्रणाली को 455 अमृत शहरों सहित 2,471 शहरों में लागू किया गया है।
  - इस सुधार से वर्ष 2018 की विश्व बैंक की डूइंग बिजनेस रिपोर्ट (डीबीआर) की भारतीय रैंकिंग 181 रैंक से वर्ष 2020 में 27 हो गई।
  - 89 लाख पारंपरिक स्ट्रीट लाइटों को ऊर्जा कुशल एलईडी लाइटों से बदल दिया गया है, जिससे प्रतिवर्ष 195 करोड़ यूनिट की अनुमानित ऊर्जा बचत और CO_2 उत्सर्जन में प्रतिवर्ष 15.6 लाख टन की कमी आई है।

KHAN SIR

14 विकास संबंधी मुद्दे (Development Related Issues)

परिचय (Introduction)

विकास सामाजिक परिवर्तन (Social Change) की एक विशिष्ट और काफी लोकप्रिय प्रक्रिया है। इसके द्वारा एक देश के नागरिक उच्च भौतिक रहन-सहन, स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन के स्तर को प्राप्त करने के साथ-साथ अधिकाधिक मात्रा में शिक्षित होने का प्रयास करते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक जीवन में गुणात्मक सुधार तथा अधिकाधिक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति को विकास या सामाजिक विकास (Social Development) कहा जाता है। चूंकि विकास की अवधारणा में सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही तरह के विकास को समायोजित किया जाता है, अत: इसमें न केवल परिवर्तन और वृद्धि सम्मिलित रहते हैं अपितु परिवर्तन का अर्थपूर्ण तथा वृद्धि का उद्देश्यपूर्ण होना भी आवश्यक है। यही कारण है कि विकास की अवधारणा के अन्तर्गत निम्नांकित लक्ष्यों को प्रमुखता दी जाती है:-

विकास की अवधारणा के अंतर्गत प्रमुख लक्ष्य (Major Goals under the Concept of Development)

1. भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में आम आदमी के जीवन स्तर में सुधार होना चाहिए, जो उसके जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए जरूरी होते हैं।
2. संसाधनों, लाभों एवं आय का समान वितरण होना चाहिए ताकि सामाजिक, आर्थिक न्याय को सर्वसाधारण के लिए सुनिश्चित किया जा सके।
3. शक्ति के केंद्रीकरण पर रोक या शक्ति के विकेंद्रीकरण (Decentralisation) पर बल दिया जाना चाहिए ताकि व्यक्तिगत हित के स्थान पर सामूहिक हित सुनिश्चित हो सके।
4. मानव संसाधन का अधिकतम विकास किया जाना चाहिए ताकि विकास के चरम लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

विकास के इन्हीं लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में विकास की अवधारणा पूरी दुनिया में स्वीकार की जाती है और प्रतिदिन विकास के ये आयाम विस्तृत हो रहे हैं और भारत में विकास को इसी रूप में स्वीकार किया जाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास (Social-Economic Development) के प्रारूप को अपनाया गया। भारतीय संविधान भारत को एक समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक राष्ट्र घोषित करता है जिसका तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है, जिसमें सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय के साथ ही समानता एवं स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। इस संवैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थागत क्रियाविधि की नीति को आत्मसात् किया गया तथा नगरीय विकास एवं ग्रामीण विकास, दोनों ही क्षेत्रों में सक्रिय प्रयास किए गए ताकि 'समेकित विकास' (Integrated Development) के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से आज तक विकास की दिशा में कई प्रयास किए गए। बदलती परिस्थितियों में भारत में विकास के विभिन्न प्रतिमानों को स्वीकार किया गया। समेकित राष्ट्रीय विकास के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और तदनुरूप किए गए प्रयासों का ही फल है कि हमने पिछले 60 सालों में जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों में चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, विज्ञान हो, तकनीक हो या संचार हो, सफलता के सराहनीय आयाम स्थापित किए हैं और सफलताएं हासिल की हैं। आज हमारे देश की अर्थव्यवस्था विश्व की एक महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है। हमने विकास के सभी क्षेत्रों में वैश्विक पटल पर अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। किन्तु खाद्यान्न, उद्योग, तकनीक, विज्ञान, संचार तथा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में सारी उपलब्धियां विकास के एक पक्ष को दर्शाती हैं। भारत में विकास का दूसरा पक्ष यह है कि अंधाधुंध औद्योगीकरण, नगरीकरण, तकनीकीकरण तथा संसाधनों के दोहन के परिणामस्वरूप हमारे समक्ष विकास जनित विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं जिन्हें 'विकास का संकट' (Crisis of Development) माना जाता है। अत: हमें अपने विकास के मॉडल पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विकास से सम्बन्धित निम्न महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार किया जाए:-



विकास एवं विषमता (Development and Disparity)

स्वतंत्र भारत में हुए विकास की उपलब्धियों को समझने के लिए हमें स्वतंत्रता पूर्व भारत की स्थिति से अवगत होने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता पूर्व भारत में कृषि की हालत अत्यंत दयनीय हो चली

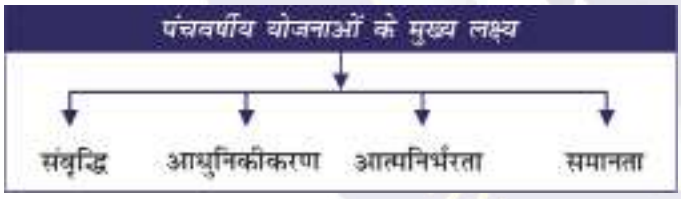
थी। कृषि में बिचौलियों का बोलबाला, पूंजी का अभाव, थोपी गयी वाणिज्यीकरण, कृषक दासता, बेगारी, ऋणजाल, पूंजी की कमी, सिंचाई साधनों तथा उन्नत तकनीकों के अभाव के कारण कृषि क्षेत्र पिछड़ता चला गया था। फिर भी कृषि पर निर्भर जनसंख्या लगभग 85% थी।

भारतीय उद्योग क्षेत्र में शिल्पों का पतन हो गया था तथा गिने चुने उद्योग ही भारत में लगे थे (जैसे सूती वस्त्र तथा पटसन उद्योग) । पूंजीगत उद्योग जिनसे अन्य उद्योगों को बढ़ावा मिलता है वे नगण्य थे। सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान नहीं के बराबर था। विदेशी व्यापार पर इंग्लैंड ने एकाधिकार (Monopaly) जमा रखा था। जनांकिकीय परिस्थितियाँ जटिल / मुश्किल हालात में थीं। जैसे-जीवन प्रत्याशा-32 वर्ष, शिशु मृत्युदर-218, साक्षरता-16% आदि। आधारिक संरचनाओं का नितांत अभाव था।

स्वतंत्रता के उपरांत, उपरोक्त समस्याओं से निपटने के लिए नेहरू तथा अन्य नेताओं व चिंतकों ने समाधान ढूँढ़ने के प्रयत्न किए।

हमारे सामने अर्थव्यवस्था के दो स्वरूप विद्यमान थे, पूंजीवादी तथा समाजवादी हमारे राजनेता तथा चिंतकों का मुख्य रुझान समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) की ओर था परन्तु वे इसे दोषमुक्त बनाना चाहते थे अत: एक ऐसी व्यवस्था चुनी गयी जो समाजवादी लक्ष्य रखते हुए समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोषों से मुक्त थी। यह मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलायी। आज दुनियाँ के अधिकतम देश मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले हैं।

विकास के पथ पर तीव्रता से चलने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया गया। योजना के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं:-



1. ***संवृद्धि (Growth)*** – इसका तात्पर्य क्षेत्र के अन्दर क्षमता निर्माण से है।
2. ***आधुनिकीकरण (Modernization)*** – यह विकास के लिए नई प्रौद्योगिकी के साथ-साथ नई सामाजिक सोच को भी दर्शाता है। जैसे-महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष मानना।
3. ***आत्मनिर्भरता (Self-reliance)*** – जहाँ तक संभव हो स्वयं उत्पादन करना।
4. ***समानता (Equality)*** – देश के अन्दर समता स्थापित करना अर्थात् विकास में सभी की भागीदारी सुनिश्चित करना।

इन सभी लक्ष्यों को एक समान महत्त्व देना संभव नहीं है अत: इनकी प्राथमिकता तय की जाती है तथा इनमें एक संतुलन बनाया जाता है। इन्हें पूरा करने के लिए अन्य तरीकों का सहारा लिया गया। जैसे-सहायिकी, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में लाइसेंस द्वारा नियंत्रण, औद्योगिक नीति, लघु उद्योगों को प्रोत्साहन तथा संरक्षण, व्यापार नीति, आयात प्रतिस्थापन (Import Replacement), घरेलू उद्योगों को संरक्षण आदि।

इन सभी उपायों का मिला-जुला असर हुआ। देश विकास के मार्ग पर आगे बढ़ा तथा कई मामलों में आत्मनिर्भर बना, उद्योगों में विविधिकरण बढ़ा, उद्योगों की सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी बढ़ी। कुछ समस्याओं में कृषि पर से निर्भरता अनुपात कम न होना, सार्वजनिक क्षेत्रक का कार्यकुशल न होना आदि को गिना जा सकता है।

1980 के दशक में अर्थव्यवस्था के अकुशल प्रबंधन (Inefficient Management) कच्चे तेल के आयात, बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट आदि के कारण सरकार को अपने राजस्व से अधिक खर्च करना पड़ा। अनावश्यक खर्चों के बढ़ने, आयात के बढ़ने तथा वित्त जुटाने के लिए निर्यात संवर्धन पर ध्यान नहीं देने के कारण भारत के लिए भुगतान संतुलन की समस्या आयी और इससे बचने के लिए सरकार को अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के दबाव में 1991 से अर्थव्यवस्था में आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत हुई।

इस उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण का भी देश के विकास पर मिला-जुला प्रभाव पड़ा है।

स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक की विकास यात्रा में हमने काफी विकास किया है फिर भी इस विकास का लाभ सभी वर्गों व सभी क्षेत्रों अर्थात् सभी लोगों को समान रूप से नहीं मिला है। इससे कई प्रकार की विषमताएँ हमारे देश में देखने को मिल जाती हैं। आजादी के बाद हमारा जोर उद्योगों की स्थापना करके भारत की प्रतिव्यक्ति आय (Percapita Income) को बढ़ाना था। प्रतिव्यक्ति आय बढ़ने के साथ-साथ आय की विषमता भी बढ़ने लगी। अमीर लोग और अमीर होते गए तथा गरीब लोग गरीबी में ही रह गए। विश्व बैंक के निर्धनता मानक (एक डॉलर प्रतिदिन से कम पाना) के अनुसार भारत में अभी भी 35% लोग निर्धनता रेखा से नीचे हैं। यह स्वतंत्रता के 6 दशकों बाद भी आय की भारी विषमता को दर्शाता है। इस विषमता के कारण देश का विकास भी अवरुद्ध होता है। यदि लोगों के पास आय नहीं होगी तो उनके पास क्रयशक्ति (Purchasing Power) का अभाव होगा, इससे वे वस्तुओं की कम मांग करेंगे तथा एक बड़े बाजार का अभाव बना रहेगा। कम आय के कारण व्यक्ति उद्यमशीलता की ओर अग्रसर नहीं हो पाएंगे क्योंकि उनकी जोखिम न लेने की प्रवृत्ति जारी रहेगी साथ ही कम आय वाले वर्गों को साख उपलब्धता में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि सर्वाधिक गरीबी कृषि क्षेत्र में दिखाई पड़ती है।

हमारे देश में साख उपलब्धता में भी यह विषमता दिखती है कि संपत्तिशाली वर्गों को उचित दर पर तथा औपचारिक क्षेत्रों यथा

बैंकों से ऋण उपलब्ध होता है, परन्तु निर्धनों तक इस साख की पहुँच नहीं है।

विकास से उपजी विषमताओं में क्षेत्रीय विषमता भी देखने को मिलती है। भारत के अनेक राज्य विकास में आगे हैं जैसे-पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महराष्ट्र, केरल जबकि कई राज्य जैसे-बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, ओडिशा आदि इस दौड़ में पिछड़ गए हैं। पिछड़े क्षेत्रों में और अन्य समस्याएँ भी अपनी जड़ें जमा रही हैं जैसे नक्सलवाद, उग्रवाद। ज्यादातर पिछड़े राज्य ही इन चरमपंथी विचारधाराओं की चपेट में आए हैं। आज ये समस्याएँ इतनी गहरी हो गयी हैं कि ये देश के समग्र विकास को ऋणात्मक रूप से प्रभावित कर रही हैं। इन समस्याओं का समाधान इन क्षेत्रों को विकास में हिस्सेदारी देकर ही किया जा सकता है।

हमने कृषि में विकास के लिए हरित क्रांति को अपनाया परन्तु इसका लाभ भी कुछ विशेष राज्यों को ही ज्यादा मिल पाया। भारत के गांवों व शहरों में भी काफी विषमताएँ हैं। विकास का ज्यादातर लाभ शहरों में पहुँचा है। शहरों या उनके आसपास ही ज्यादातर उद्योग लगे, रोजगार का निर्माण हुआ तथा अन्य जन सुविधाएँ जैसे-स्कूल, कॉलेज अस्पतालों आदि का विकास हुआ। गाँवों में इनका विकास बहुत सीमित रूप में हो पाया।

आधारिक संरचनाओं (Infrastructures) के विकास में भी इसी प्रकार की विषमताएँ दिखती हैं। शहरी क्षेत्रों तथा उद्योगों के लिए ज्यादा आधारिक संरचनाओं का विकास हुआ। हालांकि अब सरकार ने गाँवों की आधारिक संरचना के विकास के लिए सड़क निर्माण तथा विद्युतीकरण पर ध्यान दिया है परन्तु अभी भी गाँवों की मुख्य गतिविधि कृषि में संरचना निर्माण का कार्य गति नहीं पकड़ पाया है।

उदारीकरण का भी अधिकतम लाभ शहरों को ही मिला है बहुराष्ट्रीय कंपनियों (Multinational Companies) ने वहीं निवेश किया है जहाँ आधारिक संरचना मजबूत थी, जहाँ एक बड़ा क्रेता वर्ग था तथा ऐसे ही क्षेत्रों में निवेश भी किया जैसे-टेलीकॉम, बैंकिंग आदि।

शहरों में भी एक वर्ग अमीरों का है तो एक वर्ग मलिन बस्तियों में निवास करने वालों का जिनकी पहुँच आवश्यक जनसुविधाओं पानी, बिजली, स्वास्थ्य आदि तक बहुत कम या कठिनाई से हो पाती है। ये वर्ग ग्रामीण शहरी विषमता के कारण गांवों से शहरों की ओर रोजगार की तलाश में आते हैं। शहरों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ये लोग विकास का लाभ नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इनके विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। ये अवसर, ग्रामीण क्षेत्र में आधारिक संरचनाओं का विकास करके, ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देकर, कृषि कार्य के लिए साख उपलब्धता प्रदान करके बढ़ाए जा सकते हैं।

हमारे विकास में आर्थिक क्षेत्रकों (Economic Sectors) के योगदान में भी एक विषमता दिखती है। अन्य देशों में मुख्य रूप से कृषि के बाद उद्योग क्षेत्र का विकास तथा जीडीपी में योगदान ज्यादा होता है फिर सेवा क्षेत्र का परन्तु भारत में उद्योग क्षेत्र को पीछे छोड़ते हुए सेवा क्षेत्र ने जीडीपी में सर्वाधिक योगदान देना शुरू कर दिया। कृषि का योगदान जीडीपी में तो घटा है, परन्तु आज भी कृषि रोजगार में सर्वाधिक श्रमशक्ति (Labor forces) का उपयोग हो रहा है। यह स्थिति प्रछन्न बेरोजगारी के कारण होती है। औद्योगिक (विनिर्माण) क्षेत्रक के पर्याप्त विकास नहीं हो पाने के कारण भारत में रोजगार निर्माण की दर धीमी रही। इसी कारण भारत में यह आर्थिक क्षेत्रक विषमता दिखती है जिसमें जीडीपी में तो सर्वाधिक योगदान सेवा क्षेत्र का है, परन्तु रोजगार में सर्वाधिक निर्भरता कृषि (प्राथमिक क्षेत्र) में है।

इस विकास के साथ सामाजिक क्षेत्र में भी कई विषमताएँ प्रकट हुई हैं। विकास की हमारी यात्रा में कई वर्ग पीछे छूट गए। भारत में सामाजिक विषमता तो पहले से ही विद्यमान थी, विकास में भी इन्हें उचित भागीदारी नहीं मिल पायी। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के कल्याण के लिए नाकाफी उपाय हुए। बाद में 90 के दशक में उदारीकरण के बाद कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत आयीं तथा इन्होंने जनजातीय क्षेत्रों में खनन तथा ऊर्जा उत्पादन के कार्य शुरू किए। इसने देश का विकास तो किया पर जनजातियों और आदिवासियों के लिए यह नुकसानदायक रहा।

उनकी जमीन छीनी गयी, श्रमिक के रूप में भी उनका शोषण हुआ, उनकी आजीविका पर उल्टा असर हुआ। उदाहरण के रूप में देखें तो इस्पात कम्पनी पोस्को को इन्हीं सब कारणों से विरोधों का सामना करना पड़ा। भारी मात्रा में जमीन के अधिग्रहण से आदिवासी अपने संसाधनों से वंचित हुए। कंपनी के द्वारा फैक्ट्री स्थापना से महानदी के पानी का उपयोग किया गया तथा पानी में फैक्ट्री का कचरा आने से पानी दूषित हुआ। इन सबके अलावा प्रभावित होने वाले जनजातियों तथा मछुआरों को इसके लाभ में कोई भी हिस्सा नहीं मिल पाया। इन सब कारणों से इस प्रकार के विरोधों का उठना जारी रहेगा तथा अंतिम रूप से यह विकास को अवरुद्ध करेगा।

इन समस्याओं के उचित निपटारे की आवश्यकता है। इस विकास ने शिक्षा के क्षेत्र में भी विषमता को जन्म दिया है जैसे मेडिकल, फार्मा, इंजीनियरिंग, एम.बी.ए. आदि की पढ़ाई तथा शिक्षा संस्थानों में एक बड़ा उछाल आया है परन्तु कला क्षेत्र के शिक्षण संस्थान तथा विद्यार्थियों की संख्या में उस अनुरूप वृद्धि नहीं हो पायी।

ग्रामीण-शहरी, संपन्न-निर्धन, पुरुष- महिला विषमता के समानुपाती ही शिक्षा का स्तर भी इन क्षेत्रों में इसी अनुरूप ज्यादा या कम है। इसी प्रकार स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच में भी क्षेत्रवार, राज्यवार अंतर पाया जाता है।

विकास और वैयक्तिक विषमता (Development and Individual disparity)

जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि आर्थिक सुधारों (Economic Reforms) के लिए हमें कई तरह की नीतियाँ लागू करनी पड़ीं जिससे कि अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए हमें अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से आर्थिक सहायता मिल सके। इसके लिए हमें अपनी राजकोषीय नीति, व्यापार नीति, कर नीति, मुद्रा बाजार की नीति आदि में परिवर्तन करना पड़ा। इन परिवर्तनों का उद्देश्य आर्थिक घाटे को कम करना था घाटे को रोकने के लिए उठाए गए कदमों का प्रभाव सभी वर्गों पर एक समान नहीं पड़ा। इसका प्रभाव कुछ इस प्रकार हुआ कि गरीब और गरीब होते गए तथा अमीर और अमीर हो गए अर्थात् अमीरी और गरीबी का फासला बढ़ता चला गया। अनुमान है कि 10% आबादी के पास 90% संसाधनों का संकेन्द्रण है तथा 90% आबादी के पास मात्र 10% संसाधन उपयोग के लिए उपस्थित हैं।

वैयक्तिक विषमता के कारण (Causes of Individual Disparity)

राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) को कम करने के दबाव के कारण भारत को अपने खर्च में कटौती करनी पड़ी। वहीं कर को और कम करने पर बल दिया गया ताकि बाजार ज्यादा कुशलता से कार्य करे। इस कारण सरकार ने 90 के दशक में खर्च में कटौती की। सरकार चालू खर्चों को रोकने में असहज थी अत: पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure) को कम किया गया। कृषि, ग्रामीण विकास, आधारभूत संरचना विकास तथा उद्योग पर सरकारी खर्च को कम कर दिया गया। इससे पहले ही नाजुक हालात से गुजर रही आधारभूत संरचना जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि पर बुरा प्रभाव पड़ा।

खर्च को कम करने के लिए खाद्य पदार्थों पर दी जाने वाली सब्सिडी को भी कम किया गया। इसका प्रभाव सरकार की सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) पर पड़ा जो खाद्य पदार्थ का एक सस्ता जरिया था। सरकार ने यहाँ लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरूआत की जिसमें गरीबी रेखा के नीचे के लोगों के लिए ही खाद्यान्न का प्रबंध था। एफ.सी.आई. के आर्थिक लागत को निकालने के लिए सरकार ने खाद्यान्नों की कीमत भी बढ़ाई। इससे गरीबी रेखा से ऊपर के लोगों के लिए खाद्यान्नों का मूल्य दो गुना हो गया। इस काल में गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए भी खाद्यान्नों की कीमत में 80% तक का इजाफा हो गया। कई बड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में खर्च को कम करने के लिए छंटनी की गयी। इससे बड़े पैमाने पर रोजगारों का विनाश हुआ और लोगों की आय में विषमता बढ़ गयी। बड़े पैमाने पर विनिवेश (Disinvestment) तथा सरकार द्वारा बाजार से हाथ खींचने से बाजार भी प्रभावित हुआ। कई आवश्यक वस्तुओं का निर्माण निजी हाथों में चला गया तथा ये इकाईयाँ प्रतिद्वंद्वी कम्पनियों को बेच दी गयी। इससे रोजगार में कमी के साथ वस्तुओं के मूल्य में भी वृद्धि हुई।

स्वास्थ्य सेवाओं की अपर्याप्तता तथा मंहगाई के कारण निर्धन अपनी स्वास्थ्य आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाते हैं तथा स्वास्थ्य की असमर्थता के कारण इनकी जीवन प्रत्याशा में काफी कमी आ जाती है। इसके अलावा बीमार व्यक्ति रोजगार भी नहीं कर पाते, अत: वे गरीबी में जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

इसी प्रकार अविकसित इलाकों में जहाँ ज्यादातर निर्धन वास करते हैं स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रसार नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में भी विषमता का स्तर आर्थिक विषमता के समानुपाती है। शिक्षा व्यापार की तरह फैल रही है तथा अच्छी शिक्षा अच्छे मूल्य की माँग कर रही है। सरकार का आधारभूत ढाँचा शिक्षा में भी कमजोर है। सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों में कहीं शिक्षक का अभाव है तो कहीं प्रयोगशालाओं का तो कहीं खेल के मैदान का। अच्छी शिक्षा नहीं मिलने से सामान्य व्यक्ति के लिए अच्छी नौकरी पाना असंभव सा हो जाता है।

उपभोग के स्तर पर भी वैयक्तिक विषमता दिखती है। एक अध्ययन के अनुसार जब व्यक्ति उपभोग (Consumption) करता है तो संसाधन विहीन लोगों को अपनी आय से अधिक खर्च करना पड़ता है या अपने उपभोग पर अंकुश लगाना पड़ता है, वहीं ज्यादा आय वाले लोग ज्यादा खर्च करने के बावजूद बचत कर पाते हैं। इससे उपभोग आधारित विधि से विषमता की माप के सही आंकड़े प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है।

शहरी परिवारों की औसत आय ग्रामीण परिवारों की औसत आय का लगभग दो गुनी है। समुदायों के स्तर पर भी शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, आय आदि में विषमता काफी दिखाई पड़ती है। दलित तथा आदिवासी सामुदायिक स्तर पर सबसे पिछड़े हुए हैं। इनके बाद पिछड़ी जातियों तथा मुस्लिम समुदाय का नम्बर आता है।

सभी आय समूहों में वेतनभोगी ऊंचे स्तर पर हैं। सबसे खराब स्थिति में छोटे, सीमांत कृषक तथा कृषि मजदूर हैं।

वैयक्तिक विषमता कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Individual Disparity)

1. विषमता को दूर करने के लिए केन्द्रीय योजनाओं (Central Schemes) में सार्वजनिक सेवाओं पर खर्च को बढ़ाने की आवश्यकता है।
2. सार्वजनिक सेवाओं के माध्यम से रोजगार सृजन भी किया जा सकता है जिससे आय की विषमता कम हो।
3. सभी क्षेत्रों में आधारभूत संरचना का विकास करके लोगों को उचित मूल्य पर गुणवत्तायुक्त सेवा प्रदान करके आय की विषमता के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

4. रोजगार सृजन के लिए गुणवत्तायुक्त शिक्षा तथा रोजगार परक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाकर मानव संसाधन विकसित किया जा सकता है जो विकास से उपजे अवसरों का लाभ लेने को तैयार रहे।
5. कृषि क्षेत्र से अनावश्यक श्रमबल को उद्योगों की ओर स्थानांतरित करने के लिए उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सकता है।
6. सभी क्षेत्रों की तरह कृषि में भी ऋण व्यवस्था को और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार मनरेगा ने 32% तक गरीबी को कम किया है और लगभग 14 लाख लोगों को गरीब होने से बचाया है। कई महिलाओं के लिए नकद आय अर्जित करने के लिए मनरेगा पहला अवसर था। इससे संसाधनों पर महिलाओं के नियंत्रण में पर्याप्त वृद्धि हुई है तथा उनके हाथ में पैसा आया है और उनका बैंक खाता खुला। मनरेगा का लाभ लेने वाले घरों के बच्चों में शिक्षा का उच्च स्तर प्राप्त करने की संभावना अधिक रही है।

विश्व बैंक की नवीनतम महिला व्यापार और कानून संबंधी रिपोर्ट में यह प्रदर्शित किया गया है कि जिन देशों के कानूनों में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव होता हैं और लैंगिक समानता (Gender Equality) को बढ़ावा नहीं दिया जाता है ऐसे देश आर्थिक रूप से पिछड़े हैं।

विकास और क्षेत्रीय विषमता (Development and Regional Disparity)

भारत में क्षेत्रीय विषमता सर्वाधिक बहस का विषय बना हुआ है। भारत की क्षेत्रीय विषमता को देखने के लिए हम मुख्यतः 15 बड़े राज्यों को देख सकते हैं। इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है। विकसित राज्य तथा पिछड़े राज्य। पहली श्रेणी के राज्य हैं-आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु तथा दूसरी श्रेणी में आते हैं-असम, बिहार, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल।

भौगोलिक रूप से विकसित राज्य भारत के दक्षिणी तथा पश्चिमी भागों में स्थित हैं। 2001 के जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत के विकसित राज्यों में 40.4% जनसंख्या हैं तथा पिछड़े राज्यों में 55.1%। प्राकृतिक संसाधनों, पानी, मिट्टी की उर्वरता (Fertility) आदि के मामले में पिछड़े राज्य विकसित राज्यों से आगे हैं।

विकसित राज्यों की जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय जनसंख्या वृद्धि दर से कम है तथा पिछड़े राज्यों की अधिक। यह विकास तथा विषमता के स्तर को दर्शाता है। यहाँ तक कि केरल की जनसंख्या वृद्धि दर 1.5 है जो मिलेनियम डेवलपमेंट गोल (MDG) 2015 के लक्ष्य से भी कम है।

विकसित राज्यों की शिक्षण दर (Literacy Rate) भी राष्ट्रीय औसत से अधिक है। केरल की शिक्षा दर तो 90% से भी अधिक है। पिछड़े राज्यों में यह दर राष्ट्रीय दर से नीचे है।

आय के मामले में भी स्थिति कमोबेश उपरोक्त की तरह ही है। यह सर्वविदित है कि आर्थिक सुधार (90-91) के बाद यह विषमता और भी बढ़ी है क्योंकि कम्पनियाँ वहीं निवेश करना चाहती हैं जहाँ आधारभूत संरचना मौजूद हो। इस प्रकार विकसित राज्य और विकसित होते जाते हैं तथा पिछड़े राज्य पिछड़ते जाते हैं।

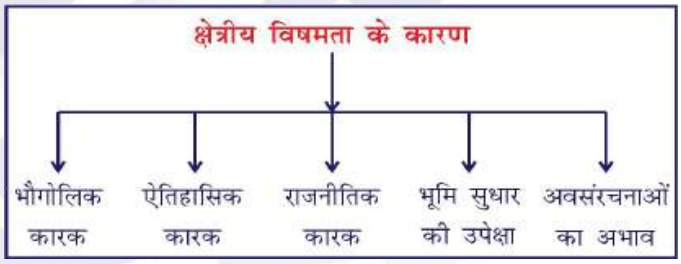
बैंकों के जमा तथा ऋण पैटर्न को देखें तो यह देखा गया है कि अगड़े राज्यों में जमा दर ज्यादा है तथा ऋण में हिस्सेदारी और भी ज्यादा है अर्थात् जमा से ज्यादा हिस्सेदारी ऋण में है। पिछड़े राज्य कम जमा कर पाते हैं, परन्तु उन्हें ऋण उससे भी कम मिला है। यह पिछड़े राज्यों के विकास में बाधा उत्पन्न करता है।

क्षेत्रीय विषमता में राज्य-राज्य विषमता के अलावा अंतरा-राज्य विषमता भी देखने को मिलती है जैसे-महाराष्ट्र जैसे विकसित राज्य का विदर्भ क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ है। राज्यों के विभाजन की माँग भी इसी प्रकार की विषमताओं के कारण उपजती है। मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा अभी हाल ही में आंध्र प्रदेश आदि के बंटवारे के पीछे इसी प्रकार के कारण रहे हैं।

इसके अलावा पिछड़े इलाकों में असंतोष के कारण अतिवाद (Extremism) को भी पनपने का मौका मिलता है। नक्सलवाद तथा आतंकवाद इसी के उदाहरण माने जा सकते हैं।

क्षेत्रीय विषमता के कारण (Causes of Regional Disparity)

क्षेत्रीय विषमता के कई कारण हैं। इसमें मुख्य हैं:-



1. ***भौगोलिक कारक (Geographical Factors)*** – कई राज्य तथा राज्यों के क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से आर्थिक कार्यों के लिए अनुपयुक्त होते हैं, जैसे राजस्थान, उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र आदि।
2. ***ऐतिहासिक कारक (Historical Factors)*** – कुछ राज्य जो पहले राजाओं के अंतर्गत थे उनमें वे राज्य प्रगति कर पाए जिनके शासक दूरदर्शी थे जैसे-कोचीन, त्रावणकोर आदि, वहीं तेलंगाना तथा दक्कन के अन्य क्षेत्र इस प्रकार के शासक नहीं होने के कारण पिछड़ गए।

3. ***राजनीतिक कारक (Political Factors)*** – किसी राज्य में शासन मुख्यत: अगड़े क्षेत्र से आए प्रतिनिधि चलाते हैं इससे पिछड़े क्षेत्र उपेक्षित रह जाते हैं।

4. ***भूमि सुधार की उपेक्षा (Negligence of Land Reforms)*** – कई राज्यों में उर्वर भूमि होने के बावजूद भूमि सुधार न होने के कारण कृषि पिछड़ी हुई है तथा वे राज्य पिछड़े राज्यों में गिने जा रहे हैं, जैसे-बिहार।

5. ***अवसंरचनाओं का आभाव (lack of Infrastructures)*** – जिन राज्यों में अवसंरचना की कमी है वहाँ कोई भी उत्पादक कार्य सही से नहीं हो सकता। वहाँ कोई उद्योग भी नहीं चलाए जा सकते, क्योंकि बिजली, पानी, सड़क जैसी सुविधाओं के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता।

क्षेत्रीय विषमता को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Regional Disparity)

1. पिछड़े राज्यों की समस्या को ध्यान में रखकर एक समिति का गठन होना चाहिए जो पिछड़े राज्य/क्षेत्रों की समस्या को पहचान कर उपयुक्त उपायों के साथ प्रभावित क्षेत्र को सहायता प्रदान कर सके।
2. पिछड़े राज्यों में अवसंरचना (Infrastructure) निर्माण पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। स्कूल, कॉलेजों की स्थापना तथा उसकी गुणवत्ता को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
3. पिछड़े क्षेत्रों में सार्वजनिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करवा कर जीवन स्तर को सुधारा जा सकता है।
4. रोजगार के अवसरों का सृजन इन क्षेत्रों में किया जा सकता है जिससे यहाँ आय का सृजन हो। इसके लिए स्वरोजगार को बढ़ावा देना चाहिए।
5. पिछड़े क्षेत्रों में गरीबों को उचित दर पर ऋण की व्यवस्था करवा कर उन्हें गरीबी से निकाला जा सकता है।
6. पिछड़े इलाकों के उत्थान के लिए तथा वहाँ जागरुकता (Awareness) फैलाने के लिए गैर-सरकारी संगठनों की मदद ली जा सकती है।
7. पिछड़े क्षेत्रों के उत्थान के लिए अलग से क्षेत्रीय कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं।
8. पिछड़े तथा भौगोलिक, सामाजिक रूप से अलग क्षेत्रों के लिए विशेष प्रकार की स्वायत्ता (Autonomy) के साथ विशेष विभाग या आयोग या संस्था की स्थापना की जा सकती है।
9. पंचायतों को विशेष पैकेज देकर उन्हें क्षेत्रीय विकास में ज्यादा हिस्सेदारी निभाने का मौका देना चाहिए।

विकास और शहरी-ग्रामीण विषमता (Development and Urban-Rural disparity)

भारत में लगभग 6 लाख 40 हजार गाँव हैं। यह मुख्यत: गांवों का देश कहलाता है। भारत के विकास के साथ भारत में शहरीकरण की दर भी बढ़ रही है तथा शहरों के आकार और संख्या दोनों में वृद्धि हुई है।

गाँव की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि आधारित होती है तथा शहर में औद्योगिक केन्द्र होते हैं। जिस प्रकार कृषि क्षेत्र तथा उद्योग क्षेत्र की आय में अंतर बढ़ रहा है उसी प्रकार शहरी-ग्रामीण विषमता भी बढ़ रही है। आर्थिक सुधारों के पश्चात् रोजगार के नवीन अवसरों का सृजन (Creation) हुआ है, परन्तु मुख्यत: शहरी शिक्षित वर्ग को ही अधिक अवसर उपलब्ध हुआ है, जिसने शहरी-ग्रामीण विषमता की खाई को चौड़ा कर दिया है। आज शहरों में अच्छे-अच्छे स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित हैं, वहीं कई गांवों में अभी तक स्कूल नहीं खुल पाए हैं। ग्रामीण तथा शहरी सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता जैसे-स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा आदि में भारी अंतर दिख जाता है। शिक्षा तथा उससे उपजी जागरुकता में भी शहरी-ग्रामीण परिवेश का अन्तर दिखता है।

शहरी-ग्रामीण विषमता का कारण (Causes of Urban-Rural Disparity)

1. भारत के कृषि क्षेत्र में रोजगार तथा मजदूरी दोनों 90 के दशक में थम सी गयी थीं। अगर कृषि क्षेत्र की मजदूरी तथा सार्वजनिक क्षेत्र की मजदूरी में तुलना की जाए तो हम पाते हैं कि 90 के दशक में कृषि मजदूरी जहाँ 2.5% की दर से बढ़ी थी, वहीं सार्वजनिक क्षेत्र में मजदूरी में तेजी से वृद्धि हुई।
2. कृषि क्षेत्र के रोजगार नियमित नहीं होते हैं। ये अनियमित मजदूर की तरह होते हैं तथा साल के कुछ समय बेरोजगार भी रहते हैं।
3. गाँवों में आय शहरों के मुकाबले कम होती है, अत: यहाँ के लोगों के द्वारा उपभोग भी कम किया जाता है।
4. गाँवों में शिक्षण संस्थाओं के अभाव तथा निम्न गुणवत्ता के कारण यहाँ साक्षरता दर भी शहरों की अपेक्षा बहुत कम पायी जाती है। यह अन्तर महिलाओं के मामले में और ज्यादा बढ़ जाता है।
5. 1990 के बाद कई नीतियाँ, जिसने ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन में सहयोग किया था, को बदल दिया गया। राजकोषीय खर्च को कम करने के लिए सरकार ने कृषि योजनाओं, ग्रामीण रोजगार तथा गरीबी उन्मूलन की योजनाओं में कटौती कर दी।
6. 1990 से पहले बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में साख उपलब्ध करवा रहे थे। आर्थिक सुधारों तथा बेसल नियम आने के बाद बैंक अपनी ऋण नीतियों में सख्त हो गए।

7. गाँवों में आधारभूत अवसंरचनाओं का अभाव होने के कारण उद्योग धन्धों एवं सेवा क्षेत्रक संस्थाओं की स्थापना नहीं हो पाती।
8. हमारे विकास के मॉडल में बड़े उद्योग धन्धों पर बल दिया जाता है, जबकि गाँव आधारित लघु-कुटीर उद्योग (Small Scale Cottage Industries) को उपेक्षित किया गया है।

शहरी-ग्रामीण विषमता को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Urban-Rural Disparity)

1. ग्रामीण क्षेत्रों में मानव संसाधन विकास की सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा आदि को बढ़ावा देना चाहिए।
2. आधारभूत अवसंरचनाओं जैसे-सड़क, बाजार, पुल आदि का विकास होना चाहिए।
3. रोजगार का सृजन करने के लिए बिजली, पानी इत्यादि संरचना विकास के साथ क्षेत्रानुसार प्रसंस्करण उद्योग (Processing Industry) को बढ़ावा देने से रोजगार विकास के साथ कृषि विकास भी संभव होगा तथा कृषि उत्पादों को सही मूल्य मिल पाएगा।
4. हमें ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए दीर्घावधि योजनाओं को अपनाना चाहिए।
5. कई संसाधन जो गाँवों में अनुपयोगी (Useless) होकर पड़े हैं उन्हें उपयोग के लायक बनाकर उसका समुचित लाभ गांव के लोगों तक पहुँचाना चाहिए।
6. सूचना प्रौद्योगिकी तक पहुँच देकर ग्रामीण क्षेत्रों को जागरुक बनाया जा सकता है।
7. ग्रामीण विकास के लिए सहभागी विकेन्द्रीकृत योजना का निर्माण करना चाहिए।
8. पुरा (PURA) के सुझावों को पूरी तरह से लागू करने की कोशिश की जानी चाहिए।

विकास एवं पर्यावरण (Development and Environment)

परिचय (Introduction)

विकास ऐसा सामाजिक आर्थिक परिवर्तन है जो जटिल सांस्कृतिक तथा पर्यावरणीय कारकों (Cultural and Environmental Factors) और इनके मध्य परस्पर अंत: क्रियाओं पर आधारित होता है। यह मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति करने का द्योतक है जिसका प्रत्यक्ष व सकारात्मक प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है और व्यक्ति का जीवन सुखमय होता जाता है। उदाहरण के लिए यदि मनुष्य को अच्छी शिक्षा मिले तो वह अपने आय के स्रोत बढ़ा सकता है, अच्छे बुरे का फर्क आसानी से समझ सकता है, दूसरों का तथा अपना दुख और उसका कारण समझ सकता है। इन सभी का प्रयोग वह अपने परिवार व अपने समाज की भलाई तथा बेहतरी के लिए कर सकता है। इसी प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति से व्यक्ति दीर्घायु हो सकता है तथा उन बीमारियों से दूर रह सकता है जो उसे एक अच्छा तथा सुखमय जीवन जीने से दूर करती हैं।

इन्हीं कारकों को ध्यान में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा देशों ने विकास को मापन के लिए आय, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता जैसे विषयों को मानक के रूप में अपनाया है।

इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण आय को माना गया है क्योंकि बाकी सभी सुविधाओं को इसी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

किसी जीव या जीव समूह (Group of Organisms) के आस-पास के वातावरण को पर्यावरण कहा जाता है। इस वातावरण में जैविक तथा अजैविक दोनों प्रकार के कारक होते हैं। जैविक कारक का तात्पर्य वहां बसने वाले अन्य जीवों या इनके समूह से है। जैसे एक शेर के पर्यावरण में हिरण, सांप, कीट पतंगे तथा पेड़-पौधे इत्यादि हो सकते हैं। अजैविक कारक उस वातावरण के निर्जीव घटकों को कहा जाता है, जैसे-गैस, भू-आकृति, जल इत्यादि।

ये जैविक एवं अजैविक कारक अपने पर्यावरण में जीवों पर प्रभाव डालते हैं तथा खुद भी उनसे प्रभावित होते हैं। यहाँ तक कि ये जैविक, अजैविक घटक एक दूसरे को भी प्रभावित करते रहते हैं।

जीव पर पर्यावरण का इतना प्रभाव होता है कि उन्हें पर्यावरण के हिसाब से अनुकूलित (Adapted) होना पड़ता है या वे वहां से विलुप्त हो जाते हैं। पर्यावरण में धीमा परिवर्तन हो तो जीव-जन्तु आसानी से अपने पर्यावरण के हिसाब से अनुकूलित हो जाते हैं परन्तु यदि पर्यावरण में परिवर्तन तीव्र हो तो जीव-जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है उनकी संख्या कम हो सकती है, यहाँ तक कि वे विलुप्त भी हो सकते हैं।

सभी जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण पर निर्भर करते हैं। वे अपने पर्यावरण से ही खाना, पानी, आश्रय प्राप्त करते हैं तथा अपना विकास करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने विकास के लिए अपने पर्यावरण पर निर्भर होता है। भोजन के लिए अनाज, फल, सब्जियाँ सभी पर्यावरण से प्राप्त होते हैं। शिक्षा के लिए कागज, पहनने के लिए कपड़े, स्वास्थ्य के लिए दवाईयाँ सभी चीजें पर्यावरण से प्राप्त संसाधनों पर ही निर्भर करती हैं। जिस देश के पास जितने ज्यादा संसाधनों पर नियंत्रण है, वह देश उतना ही संपन्न है तथा वही देश सबसे अधिक विकसित भी है।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया (Process) है इसलिए हमें निरंतर संसाधनों की भी आवश्यकता होती है। पर्यावरण में इन संसाधनों को प्रदान करने की क्षमता होती है, परन्तु प्रकृति भी इसे एक सीमा तक ही संभाल सकती है यदि संसाधनों का दोहन

(Exploitation of Resources) इसकी चरम सीमा से अधिक होने लगे तो पर्यावरण पर इसका प्रभाव नकारात्मक रूप में सामने आने लगता है।

औद्योगिक क्रांति के बाद विकास ने एक नया रूप ले लिया है। इसमें अधिक और तीव्र उत्पादन पर बल दिया गया है। इससे प्रकृति पर विजय पाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन हुआ तथा दूसरी ओर पर्यावरण में औद्योगिक अपशिष्ट पहुँचने लगे।

इनके अलावा मानव के विलासितापूर्ण आवश्यकताओं तथा औद्योगिक मशीनों के लिए ऊर्जा की आवश्यकता ने वन विनाश तथा जीवाश्म ईंधनों के दोहन तथा उपयोग को बढ़ावा दिया है। कृषि में प्रगति के लिए भी जंगलों का विनाश हुआ, रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों का प्रयोग किया गया।

उपरोक्त सभी कारणों से भूमि, वन, जल, नदी, तालाब, वायु सभी का दोहन तथा प्रदूषण बढ़ा और वैश्विक उष्मन, जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता की कमी, जल संकट, कई प्रकार की बीमारियों जैसे दुष्प्रभाव सामने आने लगे।

पर्यावरणीय समस्याओं का स्वरूप (Nature of Environmental Problems)

भारतीय समाज में तमाम पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा होने लगी हैं। पर्यावरणीय समस्या भारत में निम्न स्वरूपों में दिखाई दे रही हैं:-

जल प्रदूषण (Water Pollution)

भारत गंगा, यमुना, कृष्णा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी जैसी अनेक नदियों का राष्ट्र है। ये नदियां जीवन का स्रोत ही नहीं हैं अपितु भारत की जनता के लिए धार्मिक महत्त्व की भी हैं। इसके अतिरिक्त उदयपुर, नैनीताल, भीमताल, ऊटकमंड की अनेक झीलें भी यहाँ विद्यमान हैं। सम्पूर्ण उपलब्ध जल मुख्यत: नदियाँ एवं झील का 70 प्रतिशत भाग अत्यधिक दुरुपयोग से प्रदूषित हो गया है। सम्पूर्ण भारत में नदियों और झीलों का पानी प्रदूषित हुआ है क्योंकि इसमें मलमूत्र, औद्योगिक बर्हि:स्राव डाल दिया जाता है। डिटर्जेंट से निरंतर कपड़ों की धुलाई ने भी हमारे जल संसाधनों को बुरी तरह प्रदूषित किया है। पवित्रता की द्योतक गंगा और यमुना नदियों में उद्योगों से निरंतर रासायनिक बर्हि:स्राव डाला जा रहा है। नदियों के साथ देश की प्रमुख झीलें भी प्रदूषण से अछूती नहीं हैं। डल झील और नैनीताल को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

जल प्रदूषण का प्रमाण नालियों की खराब जल निकासी व्यवस्था से भी मिलता है। गंदी नालियों से पैदा होने वाली बीमारियां तथा मानवीय बस्तियों (Township) से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ प्रमुख प्रदूषक हैं। प्रदूषण का इतना व्यापक होना गंभीर चिन्ता का विषय है। यह देखने में आया है कि टाइफाइड, हैजा व पीलिया जैसी जल से फैलने वाली दो तिहाई बीमारियाँ बहुत गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार असुरक्षित पेयजल (Unsafe Drinking Water) पीने के कारण प्रति वर्ष तीस लाख से अधिक लोगों की मृत्यु होती है।

वायु प्रदूषण (Air Pollution)

भारत में वायु प्रदूषण पर्यावरणीय समस्या का एक प्रमुख स्वरूप है। वायुमंडल में विद्यमान विभिन्न गैसों के प्राकृतिक अनुपात में असंतुलन वायु प्रदूषण को इंगित करता है। शहरों में मोटर गाड़ियों से निकले धुएँ में उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड, लेड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड आदि वायुमंडल में एकत्रित होते जा रहे हैं जिससे प्राण वायु आक्सीजन की वातावरण में कमी हो गई है। दिल्ली, कानपुर, आदि शहर मुख्य रूप से वायु प्रदूषण के शिकार रहे हैं। इसके अलावा झारखण्ड, पं. बंगाल, राजस्थान, ओडिशा, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों के औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Area) वायु प्रदूषण की चपेट में हैं।

यहाँ लोहे, सीमेंट, रासायनिक खादों आदि के कारखानों में कोयले को ईंधन के रूप में प्रयोग से कार्बन मोनोआक्साईड पूरे वातावरण में विद्यमान है जिससे साँस लेना भी मुश्किल हो गया है। भारत के ग्रामीण समाज (Rural Society) में मिट्टी के बर्तनों को पकाने के लिए तथा घरों में भोजन बनाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले पशुओं के सूखे गोबर के कारण निकला धुआँ भूरे बादल के रूप में वायुमंडल में मौजूद हो गया है जिसे एशियाई भूरा बादल की संज्ञा दी गई है। भारतीय समाज में वायु प्रदूषण का एक स्वरूप धूम्रपान के रूप में भी दिखाई दे रहा है जो कि धूम्रपान करने वाले को प्रदूषित तो करता ही है साथ ही साथ उनके पास उपस्थित अन्य लोग भी अप्रत्यक्ष धूम्रपान (Indirect Smoking) द्वारा SO_2 तथा CO जैसी प्रदूषक गैसों से प्रभावित होते हैं।

मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

भारत में पर्यावरणीय समस्या का अन्य स्वरूप मृदा प्रदूषण के रूप में मौजूद है।

पृथ्वी की 15 सेमी मोटी ऊपरी परत जिस पर कृषि कार्य किया जाता है, मृदा कहते हैं। इस मृदा में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, सिलिकॉन जैसे रासायनिक तत्त्वों के अलावा सूक्ष्म जीव एवं जन्तु पाए जाते हैं जो कृषि किए जाने वाले पौधों के लिए पोषण प्रदान करते हैं। भारत में हरित क्रांति के फलस्वरूप अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव नष्ट हो गए हैं जिससे मृदा का उपजाऊपन (Fertility) खत्म होता जा रहा है। अत्यधिक सिंचाई के कारण (हरित क्रांति) तथा घरेलू अपमार्जकों के मृदा में जाने से मृदा की लवणता में वृद्धि होने से उपजाऊ मृदा अनुपजाऊ ऊसर के रूप में परिवर्तित हो रही है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive Pollution)

रेडियोधर्मी प्रदूषण भारत में पर्यावरणीय समस्या का सर्वाधिक घातक स्वरूप है। रेडियो-धर्मी तत्त्व ऐसे तत्त्व होते हैं जिनसे रेडियो एक्टिव किरणें निकलती रहती हैं जो कि मानव स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डालती हैं। भारत में रेडियोधर्मी प्रदूषण निम्न रूपों में मौजूद है:-



भारत ने अपनी परमाणु क्षमता के परीक्षण के लिए पोखरन में परमाणु विस्फोट किए जिससे रेडियो एक्टिव किरणें निकलीं जो कि काफी समय तक वहाँ मौजूद रहीं। इसके अलावा भारत में गुजरात के ओलंग क्षेत्र में अमेरिका एवं अन्य देशों से आयातित परमाणु कचरे का निपटारा किया जाता है जो कि उस क्षेत्र में नाभिकीय प्रदूषण के रूप में खतरा बना हुआ है। इसका विरोध भी समय-समय पर किया जाता रहा है। कभी-कभी भारतीय नाभिकीय अनुसंधान केन्द्रों पर असावधानी के कारण रेडियोधर्मी किरणों के विकिरण की खबरें सुनाई देती हैं।

वर्ष 2010 में दिल्ली में कचरे की दुकान में रेडियोधर्मी किरणों के विकिरण की स्थिति उत्पन्न हुई थी।

ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

भारतीय समाज में पर्यावरणीय समस्याओं का एक अन्य स्वरूप ध्वनि प्रदूषण के रूप में भी मौजूद है। जब ध्वनि की तीव्रता एक निश्चित इकाई से आगे बढ़ जाती है तो वह ध्वनि प्रदूषण कहलाता है। ध्वनि की तीव्रता डेसीबल में मापी जाती है। भारत में प्राय: धार्मिक जुलूसों, त्योहारों आदि के समय ध्वनि विस्तारक (Loud Speakers) यंत्रों का प्रयोग किया जाता है जो कि पास-पड़ोस के लोगों को प्रभावित करते हैं, इसके अलावा महानगरों में मोटर गाड़ियों से भी ध्वनि प्रदूषण होता है। शहरों के चौराहों पर कभी-कभी ध्वनि की तीव्रता अत्यधिक हो जाती है। इसके अलावा डिस्कोथेक, संगीत केन्द्रों में अत्यधिक आवृत्ति की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं जोकि वहाँ उपस्थित लोगों को दुष्प्रभावित करती है। रॉकेटों, वायुयानों से उत्पन्न अत्यधिक डेसीबल की ध्वनियाँ ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करती हैं।

पर्यावरण पर पड़ रहे इन दुष्प्रभावों (Side Effects) के प्रति मानव काफी देर से जागरुक हुआ तथा इसके लिए संगठित प्रयास 20वी सदी के उत्तरार्द्ध में ही शुरू हो पाए। यह महसूस किया गया कि पर्यावरणीय संसाधन अनंत नहीं हैं। पर्यावरण एक सीमा तक ही संसाधनों का पुनर्चक्रण कर सकती है। अत: 1987 में वर्ल्ड कमीशन ऑन इनवायरमेंट (ब्रंटलैंड आयोग) ने सतत् विकास की अवधारणा रखी। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगठनों, मानकों, नियमों द्वारा इसका सार्वजनीकरण करके इसे विश्व स्तर पर प्रसारित करने का प्रयास किया गया।

भारत सरकार ने भी पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए कई कार्य किए हैं। भारत ने प्रदूषण तथा पर्यावरण क्षरण (Environmental Degradation) रोकने के लिए कई नियम तथा नीतियाँ बनायी हैं। जैसे केन्द्रीय वन नीति, वायु प्रदूषण अधिनियम, 1981 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 आदि। भारत में भी विकास के लिए धारणीय विकास की अवधारणा को अपनाया गया है ताकि विकास यात्रा में पर्यावरण को कम से कम नुकसान पहुँचे।

पर्यावरणीय जागरुकता का विकास पर प्रभाव (Effect of Environmental Awareness on Development)

राष्ट्रीय पर्यावरण जागरुकता अभियान के माध्यम से भारत सरकार पर्यावरण के मुद्दों के बारे में जागरुकता पैदा करने के कार्यक्रम शुरू करने के लिए गैरसरकारी संगठनों और संस्थाओं को प्रोत्साहित करती है।

इन सभी प्रयासों तथा सूचना क्रांति (Information Revolution) के सहयोग से जन साधारण तक पर्यावरण जागरुकता बढ़ाने में सहायता मिली है तथा लोग अब अपने आस-पास के पर्यावरण के प्रति सचेत हो रहे हैं।

उपरोक्त प्रयासों से पर्यावरण के अतिशय दोहन पर अंकुश लगा है। कई जगहों पर पर्यावरण को बचाने में ये प्रयास कामयाब हुए हैं तथा जन आंदोलनों तथा न्यायपालिका की मदद से पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कार्यों पर रोक लगाई जा सकी है। इसी प्रकार का एक उदाहरण पॉलीथीन बैग्स पर रोक है। सख्त सरकारी नियमों के कारण ही जंगल तथा जंगलों में बसी जैव-विविधता (Bio-diversity) अभी तक संरक्षण पा रही है तथा अवैध वनोन्मूलन और शिकार पर भी अंकुश लग पाया है।

हालांकि ये नियम या प्रयास निश्चित रूप से पर्यावरण संरक्षण कर रहे हैं लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में ज्यादा सख्त नियम तथा आन्दोलन इसके विकास के मार्ग में बाधा बनकर भी सामने आ रहे हैं। इसे समझने के लिए चर्चित वेदांता एल्युमीनियम लिमिटेड के प्रकरण को देख सकते हैं।

वेदांता ने 2003 में 'उड़ीसा माइनिंग कॉरपोरेशन' के साथ ज्वाइंट वेंचर में लांजीगढ, कालाहांडी (ओडिशा) में एक एल्युमीनियम रिफाइनरी की स्थापना की। इस रिफाइनरी के लिए बॉक्साइड का खनन पास के नियमगिरि पहाड़ी से होना था जिसका वायदा ओडिशा सरकार द्वारा कम्पनी को किया गया था। पहले चरण की पर्यावरण अनुमति के बाद वेदांता द्वारा भारी निवेश करके इस रिफाइनरी की स्थापना की गयी, जिसकी क्षमता एक मिलियन टन प्रतिवर्ष है। इसे बढ़ाकर छ: मिलियन टन प्रतिवर्ष की क्षमता पर लाने की योजना वेदांता की है। परन्तु दूसरे चरण की पर्यावरणीय अनुमति केन्द्र

सरकार से नहीं मिल पाई तथा खनन (Mining) के लिए आवश्यक भूमि वेदांता को नहीं मिल पायी, बॉक्साइड की कमी के कारण इस रिफाइनरी को कुछ महीने बंद भी रखना पड़ा और अभी भी यह रिफाइनरी अपनी स्थापित क्षमता के 60% पर ही चल पा रही है। इसे अपनी रिफाइनरी के लिए बॉक्साइड दूसरे राज्यों से माँगना पड़ रहा है जबकि ओडिशा बॉक्साइड खनिज के मामले में धनी राज्य है।

वेदांता की इस परियोजना का विरोध नियमगिरि के मूल निवासियों, पर्यावरणविदों तथा केन्द्र सरकार ने भी किया है। मूल निवासी डोंगरिया, कोंध तथा कुटिया कोंध का कहना है कि उनकी आजीविका के स्रोत पवित्र जंगल हैं जिन्हें वे पूजते हैं, खनन कार्य के कारण नष्ट हो जाएंगे। पर्यावरणविदों का कहना है कि यहाँ परियोजना पूर्व पर्यावरण प्रभाव आंकलन (Environmental Impact Assessment) सही से नहीं किया गया है। खनन कार्य के कारण जंगल कटने से वर्षा की मात्रा में कमी आएगी और खनन के कारण भूमिगत जल स्रोत भी या तो समाप्त हो जाएंगे या दूषित हो जाएंगे जिससे यहाँ की दो बड़ी नदियों तथा कई अन्य छोटी-छोटी धाराओं के प्रवाह पर असर पड़ेगा तथा ये सूख भी सकती हैं। केन्द्र सरकार ने भी पर्यावरण संबंधी नियमों का सही से पालन नहीं करने को ही आधार बनाकर दूसरे चरण की मंजूरी को रोक दिया है।

इसी प्रकार की समस्या का सामना दक्षिण कोरिया की स्टील कंपनी पोस्को को भी अपनी परियोजना के लिए जमीन अधिग्रहण में करना पड़ा आर्सेलर मित्तल ने तो 50,000 करोड़ के स्टील संयंत्र की स्थापना की योजना को ही रद्द कर दिया।

दिल्ली में न्यायालय के आदेश से सैकड़ों प्रदूषणकारी उद्योगों को बंद करवाया गया। लोगों को प्रदूषण से कुछ राहत तो अवश्य मिली परन्तु साथ ही निम्नवर्गीय मजदूरों के रोजगार भी छिन गए। के. कस्तूरीरंगन ने पश्चिमी घाट में पर्यावरणीय दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र घोषित करने की अनुसंशा की है जिसमें ऐसी कोई भी गतिविधियाँ संचालित नहीं की जा सकेंगी जो प्रदूषण, वन विनाश तथा जैव-विविधता के लिए खतरे का कारण बनें। इससे पर्यावरण मित्र काफी खुश हुए परन्तु साथ ही यह भी ध्यान देना होगा कि इन क्षेत्रों में विकास की कोई भी गतिविधि नहीं चलाई जा सकेगी।

भारत को अपने विकास की दर बनाए रखने के लिए भारी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता है और भविष्य में इस मांग का और भी बढ़ना तय है। इसके लिए भारत को जल विद्युत तथा नाभिकीय विद्युत की ओर कदम बढ़ाना है परन्तु आजकल सभी बड़ी पनबिजली योजना का विरोध हो रहा है। एक भी नई बड़ी योजना नहीं बन पायी है। नाभिकीय ऊर्जा के लिए कुडनकुलम में स्थापित नाभिकीय संयंत्र को भी पार्यावरण संरक्षण (Environment Protection) के नाम पर भारी विरोध झेलना पड़ा जबकि नाभिकीय ऊर्जा एक स्वच्छ ऊर्जा स्रोत है।

इसी तरह भारत के पश्चिमी तट तथा पूर्वी तट के बीच संपर्क तीव्र करने तथा यात्रा समय और ईंधन खपत घटाने के लिए जब 'सेतुसमुद्रम' परियोजना की संकल्पना लायी गयी तो समुद्री पर्यावरण के नष्ट होने तथा जैव-विविधता पर बुरा असर पड़ने की बात पर्यावरण के हितैषियों ने रखी।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं जहाँ पर्यावरण तथा विकास के बीच टकराव देखने को मिल जाता है। कई विकास परियोजनाएँ इसी टकराव के कारण अधर में लटकी हैं। यह सिर्फ भारत में नहीं हो रहा है, यह समस्या विश्व के सभी विकासशील देशों में मौजूद है। यही नहीं विश्व के विकसित देशों को भी अपने विकास के क्रम में इस समस्या को झेलना पड़ा था।

पोस्को

भारत की सबसे बड़ी विदेशी निवेश परियोजना के रूप में जानी जाने वाली परियोजना है। इसमें कैप्टीव लौह अयस्क खान, इस्पात संयंत्र और एक निजी बन्दरगाह शामिल है।

22 जून, 2005

ओडिशा सरकार तथा पोस्को-इंडिया, दक्षिण कोरिया की पोस्को कॉरपोरेशन की सहायक, के बीच एक समझौता हुआ। समझौता एक एकीकृत लौह-अयस्क खान-स्टील संयंत्र एवं एक निजी बंदरगाह के लिए हुआ।

समझौते के अन्दर 4004 एकड़ की जमीन स्टील प्लांट (जगतसिंहपुर जिला) के लिए आवंटित की गयी है। इसमें से 1,253 हेक्टेयर (लगभग 3000 एकड़) वन भूमि आधिकारिक रूप से वन भूमि है। हालांकि यह वन भूमि अधिकांशत: जोत भूमि में बदल चुकी है जिस पर पान, काजू तथा अन्य नकदी फसलों की खेती होती है और कुछ लोग मत्स्यपालन भी करते हैं। इनमें से कुछ परिवार सदियों से तो कुछ दशकों से यहाँ रह रहे हैं। इस क्षेत्र में वनोरोपण (Forestation) की माँग के कारण इसे वन भूमि घोषित कर दिया गया था।

यहाँ वास्तविक मुख्य वन मैंग्रोव है जो काफी कम है। स्वामित्व अभिलेख के अभाव में जो 4,000 परिवार भौतिक रूप से विस्थापित होंगे उनमें सिर्फ 270 ही अधिकारिक रूप से क्षतिपूर्ति पाने के अधिकारी होंगे।

अगस्त / सितम्बर, 2005

पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति का गठन पोस्को परियोजना के विरोध के लिए हुआ।

उपरोक्त टकराव के कारण पोस्को को 12 मिलियन टन प्रतिवर्ष के संयंत्र की स्थापना के लिए अनुमति लेने में लगभग 9 साल का समय लग गया।

वेदांता

- ***2003–*** स्टरलाइट, जो अब वेदान्ता एल्युमीनियम लिमिटेड कहलाती है, ने नियमगिरी पहाड़ी में बॉक्साइट के खनन के लिए उड़ीसा खनन निगम (Odisa Mining Corporation) के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किया।
- ***2007–*** नियमगिरि से बाक्साइट मिलने की आशा से वेदान्त एल्युमीनियम लिमिटेड ने लानजीगढ़ में 1 मिलियन टन की क्षमता वाली एल्युमीनियम रिफाइनरी की शुरूआत की।

- ***जुलाई, 2010–*** केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय तथा उड़ीसा के मुख्य सचिव ने अलग-अलग जाँच के आदेश दिए कि क्या खनन से नियमगिरि में रह रहे डोंगरिया आदिवासियों के अधिकारों का अतिक्रमण होगा?
- ***16 अगस्त, 2010–*** केन्द्र के द्वारा स्थापित 4 सदस्यीय दल ने पाया कि वेदान्ता एल्युमीनियम लिमिटेड (वीएएल) ने राज्य के अधिकारियों के साथ मिलकर वन तथा पर्यावरण कानूनों का उल्लंघन किया है।
- ***अगस्त, 2010–*** केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने इस ज्वाइंट वेंचर को पहले दिए गए अनापत्ति को रद्द कर दिया।
- ***18 अप्रैल, 2013–*** उच्चतम न्यायालय ने जंगल वासियों का दृष्टिकोण जानने के लिए उस क्षेत्र के 12 ग्राम सभाओं के आयोजन का आदेश दिया।
- ***15 जुलाई, 2013–*** वेदांता रिफाइनरी जो दिसंबर, 2012 से बॉक्साइट की कमी के कारण बंद थी उसे फिर से दूसरे राज्यों से बॉक्साइट मंगाकर चालू किया गया।
- ***18 जुलाई, 2013–*** सरकापाड़ी गाँव (जिला रायगढ़) में आयोजित पहली ग्राम सभा ने खनन प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।
- ***19 अगस्त, 2013–*** पहले की सभी ग्राम सभाओं की तरह जरपा गाँव में आयोजित 12वीं ग्राम सभा ने भी इस खनन प्रस्ताव को खारिज कर दिया।

कुछ का मानना है कि पहले विकास होना चाहिए तभी हम पर्यावरण पर ध्यान दे पाएंगे तथा उसकी रक्षा कर सकेंगे तो वहीं दूसरों का मानना है कि यदि पर्यावरण समाप्त हो जाएगा तो मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा अर्थात् ऐसे विकास का कोई फायदा नहीं है जो मानव के अस्तित्व को ही मिटा दे।

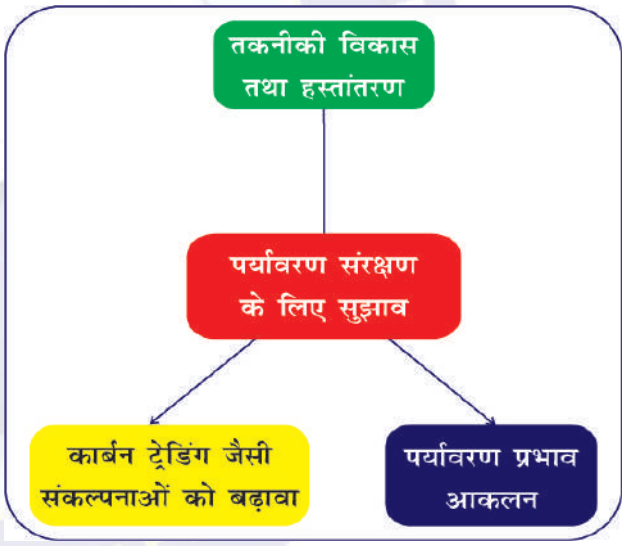
कुछ विचारकों का यह भी मानना है कि पर्यावरण पर जोर विकसित देशों की सोची समझी रणनीति है ताकि विकासशील देश उनकी बराबरी नहीं कर सकें और वे अपनी पर्यावरण अनुकूल तकनीक को मंहगे उत्पाद की तरह बेच सकें, वह भी तब जब सबसे ज्यादा प्रदूषण विकसित देशों ने ही अपने विकास के क्रम में फैलाया है। आज भी विकसित देशों का कार्बन फुटप्रिंट विकासशील देशों से ज्यादा है।

पर्यावरण तथा विकास का द्वंद्व (Conflict of Development) हमेशा चलता रहता है। कुछ लोगों को पर्यावरण ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगता है तो कुछ को विकास। यह ध्यान देने योग्य है कि हम न तो विकास में पिछड़ना चाहते हैं और ना ही पर्यावरण को नष्ट करके विकास प्राप्त करना चाहते हैं। हमें विकास की वह प्रक्रिया अपनानी होगी जहाँ विकास तथा पर्यावरण एक-दूसरे के विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक (Supplementary) का कार्य करें अर्थात् एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना आवश्यक है जिसमें पर्यावरण तथा विकास संतुलित रूप से साथ-साथ विद्यमान रहे। ऐसी ही संकल्पना सतत् धारणीय विकास की है, जिसमें विकास के लिए उन माध्यमों को अपनाया जाता है जिससे पर्यावरण को कम से कम क्षति पहुँचे। यह अवधारणा है तो काफी अच्छी पर एक विकासशील देश में जहाँ तकनीकी विकास कम है, जनसंख्या अत्यधिक है, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या जड़ें जमाए है और आंतरिक तथा बाह्य सुरक्षा पर खतरा मंडरा रहा है, इसे लागू कर पाना काफी मुश्किल हो जाता है। भ्रष्टाचार की मौजूदगी में यह समस्या और भी दुष्कर हो जाती है। भ्रष्टाचार के कारण कई परियोजनाएँ सही होने पर भी अटका दी जाती हैं जबकि कई ऐसी परियोजनाएँ, जो पर्यावरणीय दृष्टि से हानिकर होती हैं, पास कर दी जाती हैं।

भारत को अपनी गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी समस्याओं के लिए विकास की अत्यंत आवश्यकता है तो पर्यावरणीय मुद्दों को सुलझाने की आवश्यकता भी है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए सुझाव (Suggestions for Environmental Protection in India)

पर्यावरण तथा विकास में संतुलन स्थापित करके ही सही मायने में विकास किया जा सकता है। इनमें संतुलन स्थापित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:–



1. ***तकनीकी विकास तथा हस्तांतरण (Technological Development and Transfer)–*** विकास के लिए स्वच्छ तकनीकों की खोज तथा उसके उपयोग पर विशेष बल देना चाहिए, जिससे पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम से कम किया जा सके। इन स्वच्छ तकनीकों के विकास के साथ-साथ इन तकनीकों का हस्तांतरण (Transfer of Technologies) भी तीव्र गति से व मुफ्त या बहुत कम कीमत पर होना चाहिए क्योंकि प्रदूषण से सिर्फ प्रदूषणकारी ही प्रभावित नहीं होता बल्कि अन्य भी प्रभावित होते हैं। अतः इस प्रकार के प्रावधान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू होने चाहिए और इसके लिए सभी राष्ट्रों को मिलकर प्रयत्न करने चाहिए।

2. ***पर्यावरण प्रभाव आकलन (Environment Impact Assessment)*** – यह किसी मानवीय गतिविधि का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की पहचान, माप, उसके महत्त्व की व्याख्या, मूल्यांकन करना तथा इन परिणामों के आधार पर प्रतिकूल प्रभावों (Adverse Effect) को समाप्त या न्यूनतम करने के लिए उपाय करना और इसके लिए निगरानी व्यवस्था करने की प्रक्रिया है।

सभी परियोजनाओं का पर्यावरण प्रभाव आकलन सही तरीके से किया जाना चाहिए जिससे बाद में इस पर कोई विवाद न हो।

3. ***कार्बन ट्रेडिंग जैसी संकल्पनाओं को बढ़ावा (Promote to Concept like Carbon Trading)*** – कार्बन ट्रेडिंग जैसी संकल्पनाएँ पर्यावरण संरक्षण तथा इसके लिए पर्यावरण हितैषी तकनीकों (Environment Friendly Technologies) के प्रयोग को प्रोत्साहित करती हैं क्योंकि इसमें पर्यावरण की रक्षा में योगदान देने के लिए योगदानकर्त्ता को आर्थिक लाभ मिलता है।

4. ***कर छूट (Tax Rebate)*** – पर्यावरण हितैषी तकनीकों के प्रयोग तथा उसके आविष्कार के लिए सरकार की तरफ से कर में छूट या सहायिकी प्रदान की जानी चाहिए।

5. ***सार्वजनिक परिवहन (Public Transportation)*** – सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करके विकास तथा पर्यावरण में संतुलन लाया जा सकता है। यदि सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को स्वच्छ ईंधन पर चलाया जाये तथा इसकी कीमत कम रखी जाए तो पर्यावरण को हानि पहुँचाए बिना विकास के लिए जरूरी गतिशीलता को बनाए रखा जा सकता है।

6. ***स्थानीय लोगों की राय तथा लाभ में साझेदारी (Local People's Opinion and Share in benifits)*** – किसी परियोजना में स्थानीय लोगों की राय को शामिल कर तथा परियोजना के लाभ में उन्हें हिस्सा देकर और पर्यावरण पर प्रभाव (Effect on Environment) के बारे में उन्हें सही जानकारी प्रदान करके विकास कार्य के विरोध को कम किया जा सकता है। स्थानीय लोगों की राय से इसे पर्यावरण के अनुकूल भी बनाया जा सकता है।

7. ***सरकार की तरफ से सही जानकारी (Correct information from the Government)*** – सरकार को भी किसी परियोजना से पहले कम्पनी तथा स्थानीय जनता दोनों को सही जानकारी देनी चाहिए। सरकार को अपनी ओर से झूठे वायदे नहीं करने चाहिए जैसा कि वेदांता मामले में राज्य सरकार ने एल्युमीनियम के लिए बॉक्साइड की आपूर्ति का वायदा किया लेकिन उसे पूरा नहीं कर पायी। इसी प्रकार केन्द्र सरकार को पहले चरण की मंजूरी से पहले ही अन्वेषण कर लेना चाहिए था।

8. ***पर्यावरण की आड़ में राजनीति न हो (There Should be no Politics under the guise of Environment)*** – कई बार पर्यावरण का सहारा लेकर मुद्दों पर राजनीति की जाती है तथा जानबूझकर विकास कार्य में रोड़े अटकाए जाते हैं। इससे सभी दलों तथा नेतृत्व को बचना चाहिए। उन्हें अपने लाभ के लिए पर्यावरण का सहारा नहीं लेना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण में रेलवे की पहल (Railway's Initiative in the Environmental Protection)

पर्यावरण संरक्षण में भारतीय रेल की भूमिका की व्यापक रूप से सराहना की गयी है। रेल परिवहन में ऊर्जा की किफायत के अलावा नवीकरण योग्य ऊर्जा का इस्तेमाल और स्वच्छ ऊर्जा परियोजनाओं को बढ़ावा देना रेलवे की प्राथमिकता है। रेलवे ऊर्जा प्रबंधन कंपनी ने कार्य शुरू कर दिया है और वह पन-चक्की, सौर ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना की दिशा में कार्य कर रही है, जिसमें नवीन और नवीकरणीय (Renewable) ऊर्जा मंत्रालय से लगभग 40% सब्सिडी प्राप्त हुई है। शुरूआत में 200 रेलवे स्टेशनों, 26 इमारतों की छतों और 2,000 समपार फाटकों को इसमें शामिल किया गया।

स्टेशनों के पहुँच मार्ग के निकट रेल-पथ के आस-पास सौंदर्यपूर्ण परिवेश बनाने के उद्देश्य से आगरा और जयपुर स्टेशनों पर पायलट आधार पर 'ग्रीन कर्टेन' का निर्माण किया जा रहा है। इसमें एक उपयुक्त दूरी तक रेलवे बाउंडरी के साथ-साथ समुचित ऊँचाई की आर.सी.सी. बाउंडरी वाल का निर्माण, रेलपथ से चारदीवारी और स्टेशन के परिचालन क्षेत्र में लैंडस्केपिंग और खुले में मलत्याग और कूड़ा-करकट फैलाने पर नियंत्रण रखने के लिए समुचित निगरानी की व्यवस्था शामिल है। इस पायलट परियोजना के सफल होने पर रेलवे नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायों का समर्थन प्राप्त करने के अलावा कॉरपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी सम्बन्धी उपायों के जरिए कम्पनियों को इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए आमंत्रित करने के इच्छुक हैं।

सवारी डिब्बों के भीतर और रेलवे लाइनों पर साफ-सफाई की ओर विशेष ध्यान देने के लिए रेलवे द्वारा बायो-टॉयलेट डिजाइन अपनाया गया है और यह टेक्नोलॉजी लगभग 2,500 सवारी डिब्बों में शुरू की गयी है। इस टेक्नोलॉजी का उतरोत्तर विस्तार करने का प्रस्ताव है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति-2006 के उद्देश्य (Objectives of National Environmental Policy-2006)

इस नीति के मुख्य उद्देश्यों का विवरण नीचे दिया गया है। ये उद्देश्य प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों की वर्तमान अवधारणाओं से सम्बन्धित हैं। तदनुसार ये समय के साथ क्रमिक रूप से निर्धारित किए जा सकते हैं:-

1. ***महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Important Environmental Resources)*** – उन महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रणालियों, संसाधनों तथा प्राकृतिक व मानव निर्मित मूल्यवान धरोहरों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना, जो जीवन रक्षक आजीविका/आर्थिक तथा मानव कल्याण की व्यापक संकल्पना के लिए अनिवार्य हैं।

2. ***गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा (Livelihood Security for the Poor)*** – समाज के सभी तबकों के लिए पर्यावरणीय संसाधनों तक पहुँच तथा गुणवत्ता की समानता सुनिश्चित करना तथा विशेष तौर पर यह सुनिश्चित करना कि निर्धन समुदाय जो आजीविका के लिए सर्वाधिक रूप से पर्यावरणीय संसाधनों पर निर्भर हैं, उन्हें ये संसाधन अवश्य मिलें।
3. ***पीढ़ियों में समता (Equity Across Generations)*** – वर्तमान और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए पर्यावरणीय संसाधनों का न्यायोचित प्रयोग सुनिश्चित करना।
4. ***आर्थिक तथा सामाजिक विकास में पर्यावरणीय सरोकारों का एकीकरण (Integration of Environmental Concerns into Economic and Social Development)*** – आर्थिक तथा सामाजिक विकास के उद्देश्य से पर्यावरणीय सरोकारों को योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के रूप में एकीकृत करना।
5. ***पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में दक्षता (Efficiency in use of Environmental Resources)*** – प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों के न्यूनीकरण के लिए आर्थिक उत्पादन की प्रति इकाई में प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग में कमी करके उनका सही प्रयोग सुनिश्चित करना।
6. ***पर्यावरणीय संचालन (Environmental of Operations)*** – पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के प्रबंधन तथा विनियमन के संबंध में बेहतर संचालन (पारदर्शिता, न्यायोचितता, जवाबदेही, समय तथा लागतों में कमी, सहभागिता तथा नियंत्रण की स्वतंत्रता) के सिद्धांत को लागू करना।
7. ***पर्यावरण संरक्षण के लिए संसाधनों में बढ़ोत्तरी (Increase in Resources for Environmental Protection)*** – स्थानीय समुदायों, सार्वजनिक एजेंसियों, शैक्षणिक और अनुसंधान समुदाय, निवेशकों और बहुपक्षीय और द्वि-पक्षीय विकास पार्टनरों के मध्य परस्पर लाभकारी बहु हितधारक सहभागिताओं के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन कौशल, पारंपरिक ज्ञान तथा सामाजिक पूंजी आदि को शामिल करते हुए अधिक संसाधन प्राप्ति सुनिश्चित करना।

उपरोक्त कुछ उपायों से पर्यावरण व विकास में टकराव से बचा जा सकता है।

मानव को विकास की उस स्थिति तक जाना होगा जहाँ पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। यदि क्षति हो भी तो सिर्फ इतनी जिसे प्रकृति आसानी से पूर्ति कर ले।

विकास एवं विस्थापन (Development and displacement)

विकास और विस्थापन दो विरोधाभाषी शब्द लग सकते हैं लेकिन यह हमारे राष्ट्रीय जीवन के तथ्य हैं और हमारी किसी भी कल्पना से अधिक आश्चर्यजनक रहे हैं। भारत में पिछले 50 सालों में 5 करोड़ से भी ज्यादा लोग विस्थापित हुए हैं। इनके घरों, झोपड़ियों, खेतों, जंगलों, नदी, तालाबों, कुँओं, चारागाहों आदि की राष्ट्रीय हित की वेदी पर बलि ले ली गयी। ये लाखों लोग अपने जीवन, आजीविका जीवन शैली के विनाश के गवाह स्वयं हैं। फिर भी नीति नियोजकों, राजनेताओं और सरकारों के लिए, इन वर्षों में, यह कोई मुद्दा नहीं रहा है इससे स्पष्ट है कि विभिन्न विकास परियोजनाओं जैसे पनबिजली, सिंचाई परियोजना, खान (विशेषकर खुली खदान), वृहद ताप तथा आण्विक बिजली परियोजना, औद्योगिक परिसरों आदि के परिणाम के रूप में विस्थापित हुए लोगों के बारे में सरकार के पास कोई वास्तविक आंकड़े नहीं हैं।

विकास परियोजनाओं (Development Projects) में अक्सर उस जमीन का नियंत्रण विकासकर्त्ता (डेवलपर) के हाथों में चला जाता है, जो पहले किसी दूसरे के हाथों में था। प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण, शहरी नवीकरण या विकास कार्यक्रम, औद्योगिक पार्क और बुनियादी ढाँचा (जैसे-राजमार्ग, पुल, सिंचाई, नहर, बांध) परियोजनाओं में अक्सर बड़ी मात्रा में भूमि की आवश्यकता होती है। व्यक्तियों तथा समुदायों का विस्थापन या उथल-पुथल इसका एक आम परिणाम है। विस्थापन तथा पुनर्वास (Rehabilitation) पर लिखे गए लेखों में सिर्फ उन्हीं भौतिक विकास परियोजनाओं को विस्थापन का कारण माना जाता है, जिनमें भूमि जब्ती की आवश्यकता होती है, जबकि सिर्फ इसी प्रकार की परियोजनाएँ विस्थापन का कारण नहीं हैं, संरक्षण परियोजनाएँ (Conservation Projects) जैसे वन्य जीवन की पुनः शुरूआत, खेल पार्क तथा जैव-विविधता क्षेत्र आदि का निर्माण भी अक्सर विस्थापन का कारण बनते हैं। हालांकि और भी तरह के विस्थापन होते हैं, जैसे काम की तलाश हेतु प्रवास आदि। परन्तु हमारी चर्चा का विषय यहाँ आज्ञप्ति/आदेश द्वारा भौतिक विस्थापन से है।

विस्थापन के कारणों में विकास परियोजनाओं के कई प्रकार हैं। सुविधा के लिए हम इन्हें तीन प्रकारों में बांट सकते हैं। ये हैं-बांध, शहरी नवीकरण और विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों का निष्कर्षण।

विकासजनित विस्थापन का स्वरूप (Nature of developmental displacement)

बांध से विस्थापन (Displacement from Dam)

अन्य विकास परियोजनाओं की तरह बांध से विस्थापित हुए लोगों की संख्या पर भी काफी विवाद है।

हीराकुंड बांध से विस्थापित लोगों की संख्या आधिकारिक रूप से एक लाख बताई गयी परन्तु शोधकर्ताओं ने आंकड़े 1.80 लाख बताए हैं। फरक्का सुपर थर्मल पावर प्लांट से प्रभावितों की संख्या अधिकारिक रूप से शून्य बतायी गयी, लेकिन विश्व बैंक ने 63,325 का आंकड़ा प्रदर्शित किया है।

भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा बांध निर्माता देश है। जहाँ 3600 बड़े बांध हैं तथा 700 बांध निर्माण प्रक्रिया में हैं।

यह भी स्पष्ट है कि परियोजना अधिकारी विस्थापन और पुनर्वास की समस्या का परियोजना (Problem of Displacement and Rehabilitation) के महत्त्वपूर्ण भागों के रूप में विचार नहीं करते हैं। उनकी प्राथमिकता इंजीनियरिंग, बिजली तथा सिंचाई के लाभों को देखना तथा उन पर विचार करना होता है। वे जनसंख्या के विस्तृत तथा व्यवस्थित सर्वेक्षण पर कम ही ध्यान देते हैं। इससे वास्तविक प्रभावितों का पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

अच्छी तरह से ज्ञात है कि परियोजना अधिकारी अक्सर उससे कम विस्थापन आँकड़े दिखाते हैं, जितना कि वास्तविकता में हो सकता है ताकि अनुकूल लागत (Favorable Cost) लाभ दिखाकर परियोजना के लिए मंजूरी ली जा सके।

विश्व बैंक द्वारा विस्थापन और पुनर्वास के स्थिति की समीक्षा से पता चला है कि 192 परियोजनाओं में लगभग 6 करोड़ लोगों को परियोजना नियोजन में गिना ही नहीं गया। एक उदाहरण में परियोजना से विस्थापित वास्तविक लोगों की संख्या परियोजना दस्तावेज में अंकित संख्या का 7 गुना थी।

1979 में सरदार सरोवर जलाशय से विस्थापित होने वाले परिवारों की संख्या 6000 से थोड़ा ऊपर होने का अनुमान किया गया था। 1987 में यह बढ़कर 12000 हो गयी। 1991 में यह 27,000 हो गयी। 1992 में सरकार ने प्रभावित परिवार 40,000 होने की घोषणा की, आज यह 40,000 से 41,500 के बीच घूम रही है। परन्तु नर्मदा बचाओं आन्दोलन के अनुसार वास्तविक संख्या 85,000 है।

जबलपुर के पास नर्मदा पर पूरा होने वाला यह पहला बांध था। 1990 के बजट में तय राशि का दस गुणा खर्च आया तथा तय भूमि से 3 गुना ज्यादा भूमि डूब गयी। जब जलाशय में पानी भरा गया तो अनुमानित 101 गाँव की जगह 162 गांव डूब गए।

शहरी नवीकरण और विकास से उत्पन्न विस्थापन (Displacement Resulting from Urban Renewal and Development)

शहरी बुनियादी ढाँचे और परिवहन परियोजनाएँ जो विस्थापन का कारण बनती है उनमें झुग्गी झोपड़ी सफाई तथा उन्नयन, सीवरेज सिस्टम निर्माण तथा उन्नयन, स्कूल, हॉस्पिटल, बंदरगाह तथा संचार और यातायात नेटवर्क का निर्माण शामिल है, जो विभिन्न शहरी केन्द्रों को जोड़ती हैं। इसके अलावा औद्योगिक और वाणिज्यिक संपदा की स्थापना से भी विस्थापन हो सकता है।

विश्व बैंक पर्यावरण विभाग के अनुमान के अनुसार विकास जनित विस्थापन का 60% (लगभग 60 लाख), प्रत्येक वर्ष, शहरी अवसंरचना और परिवहन परियोजना का परिणाम होता है।

1980 में जहाँ विश्व की जनसंख्या का 15.8% (लगभग 40 लाख) निवासी शहरों में निवास करते थे वहीं जनसांख्यिक 2025 तक इसके 24.5% तक हो जाने का अनुमान करते हैं। यह अनुमान विकासशील देशों के लिए 28.2% है। ग्रामीण विकास परियोजनाओं (Rural Development Projects) ने भी इसके बढ़ने में अपना योगदान दिया है क्योंकि विस्थापितों में से ज्यादातर को शहरों में पुनर्वासित किया गया है या वे अपने खराब पुनर्वास स्थल से काम की तलाश में शहरों की ओर चले गए।

प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से विस्थापन (Displacement form Extraction of Natural Resources)

इस श्रेणी के विस्थापन में मुख्यत: खनिज और तेल निष्कर्षण परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन शामिल हैं। समानता के बावजूद वानिकी निकास परियोजनाओं (Forestry extraction projects) को अनुसंधानों में संरक्षण प्रेरित विस्थापन माना गया है। प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से विस्थापितों के कोई प्रमाणिक आँकड़े (संचयी या वार्षिक) उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु विश्व बैंक परियोजनाओं के आंकड़ों के अनुसार इसके द्वारा विस्थापन बांध तथा शहरी नवीकरण परियोजनाओं के द्वारा विस्थापन से काफी कम है।

विकास जनित विस्थापन तथा पुनर्वास सम्बन्धी आंकड़ों में प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से होने वाले विस्थापन के कम मामले के होने के मुख्यत: दो कारण हो सकते हैं। पहला, खनन तथा तेल परियोजनाएँ बड़ी अवसंरचनात्मक परियोजनाओं (Infrastructure Projects) के मुकाबले कम/सीमित संख्या में विस्थापन करते हैं।

दूसरा, निष्कर्षण परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन अक्सर अप्रत्यक्ष होते हैं। उदाहरण के लिए एक तेल पाइपलाइन से रिसाव के कारण पीने का पानी दूषित हो सकता है तथा खेत बंजर हो सकते हैं, इससे वहां रहने वाले परिवार को अपना घर, जमीन छोड़कर एक सुरक्षित जगह जाना पड़ सकता है। इस प्रकार के विस्थापन अस्पष्ट होते हैं तथा शायद ही कभी इसके लिए पुनर्वास किया जाता है।

विस्थापन से उत्पन्न समस्याएँ (Problems Resulting from Displacement)

1. बहुत सारे विस्थापितों को बार-बार विस्थापन से गुजरना पड़ता है। इसका एक उदाहरण सिंगरौली में विस्थापित लोग हैं जिसमें से 2 लाख लोग वे हैं जो रिहन्द बांध से 1964 में विस्थापित हुए थे। भारत के प्रसिद्ध पर्यावरणविद् तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता स्मितु कोठारी कहते हैं कि हजारों लोग पुनर्वास के अभाव में जलाशय के किनारे बस गए। वे गर्मियों में जलाशय का जल सूखने से बाहर आई भूमि पर खेती करके जीवन-यापन करने लगे। वे बाद में ताप विद्युत संयंत्र, कोयला खान, रेलों, उद्योगों एवं शहरीकरण द्वारा फिर से बार-बार विस्थापित हुए क्योंकि

उनकी अस्थाई बस्तियों को परिवहन तथा वनोरोपण के कारण फिर से बार-बार खाली कराया गया।

2. व्यक्ति जहाँ रहता है वहां उसका एक सामाजिक संबंधों का ताना-बाना बुना रहता है। एक गांव या शहर में जो लोग लम्बे समय से एक ही जगह रह रहे होते हैं वहां उनका आस पड़ोस के लोगों तथा वातावरण से एक मानसिक लगाव उत्पन्न हो जाता है और चाचा, भैया, दादा आदि जैसे मुंहबोले सम्बन्ध बन जाते हैं तथा एक पारिवारिक ढांचा सा तैयार हो जाता है।

   नई जगह पर विस्थापित होने से व्यक्ति के ये सारे संबंध तथा लगाव को एक बड़ा झटका लगता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व में विखराव आने लगता है। जब यह विखराव अधिक हो तो व्यक्ति अवसाद में जा सकता है तथा अवसाद के गहराने से व्यक्ति आत्महत्या कर सकता है।

3. व्यक्ति जहाँ होता है वहीं वह अपने जीवन-यापन तथा अन्य साधनों का विकास करता है, जैसे-व्यवसाय सम्पर्कों का निर्माण। जब व्यक्ति विस्थापित होता है तो उसके ये संपर्क, जो काफी मेहनत से लंबे समय में बने होते हैं, टूट जाते हैं तथा फिर से नए सिरे से मेहनत करनी पड़ती है।

4. विस्थापितों में जमीन से बेदखली (Eviction) (भूमिहीनता), बेरोजगारी, खाद्य असुरक्षा, आम / सामुदायिक संपत्तियों तक पहुँच में कमी, बेघरी आदि के कारण गरीबी आ जाती है। इससे ये अपने न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में भी सक्षम नहीं हो पाते हैं।

5. विस्थापियों का पुनर्वासन अधिकांशतः सही तरीके से नहीं हो पाता है। पुनर्वास स्थल पर सार्वजनिक सुविधाओं का आभाव होता है, नागरिक तथा मानव अधिकारों का हनन होता है।

6. पुनर्वासित स्थलों पर कानून व्यवस्था की समस्या काफी ज्यादा आती है तथा अपराधों की संख्या बढ़ जाती है। इससे न सिर्फ विस्थापित प्रभावित होते हैं बल्कि जहाँ विस्थापन किया गया है वहां के लोग भी प्रभावित होते हैं। जनसंख्या बढ़ने से संसाधनों को हासिल करने की होड़ सी लग जाती है तथा कई बार पुनर्वासितों और स्थानीय लोगों के बीच संघर्ष भी होने लगते हैं।

7. ज्यादातर विस्थापित बेहतर माहौल तथा रोजगार के लिए शहर में चले जाते हैं। इससे शहरों में भी भीड़ बढ़ती है तथा झुग्गी झोपड़ियों जैसे अस्वास्थ्यकर (Unhealthy) एवं जन सुविधा रहित केन्द्रों का शहर में विस्तार होता चला जाता है।

8. विस्थापन के समय विस्थापित जनसंख्या की स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच भी सीमित हो जाती है। पुनर्वास स्थलों पर आधारभूत संरचना का विकास तुरंत नहीं हो पाता इस कारण स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास भी जल्दी नहीं होता। यह देखा गया है कि विस्थापन के समय विस्थापित जनसंख्या में रुग्णता तथा मृत्युदर बढ़ जाती है।

9. विस्थापन की समस्या तथा इसका विरोध होने के कारण कई परियोजनाएँ बीच में ही अटक जाती हैं। इससे कई परियोजनाओं का खर्च अनुमान से कई गुणा ज्यादा हो जाता है।

इस तथ्य के बावजूद कि विकास परियोजनाओं द्वारा विस्थापित लोगों की संख्या भारत के विभाजन से विस्थापित लोगों की संख्या का तीन गुना है, यह हमारी राष्ट्रीय चेतना में प्रवेश नहीं कर पाया है। इस कठोर रवैया का कारण, विद्वानों के अनुसार यह है कि विस्थापितों में ज्यादातर संपत्तिविहीन (Propertyless) ग्रामीण गरीब हैं जैसे भूमिहीन श्रमिक तथा छोटे सीमांत कृषक/जनजातियाँ जो भारत की जनसंख्या का लगभग 8.08% हैं वे विस्थापितों में लगभग 55% हैं। दलित विस्थापितों में 20% हैं तथा अन्य विस्थापितों में ग्रामीण गरीब हैं। यह स्पष्ट है कि ज्यादातर शक्तिहीन तथा मूक लोगों को विस्थापित किया गया तथा राष्ट्रीय विकास का मूल्य चुकाने के लिए बाध्य किया गया।

भूमि अधिग्रहण तथा पुनर्वास और पुनर्स्थापन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों का समाधान करने के लिए भूमि संसाधन विभाग ने एक राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति, 2007 तैयार की। नई नीति को राजपत्र में अधिसूचित किया गया। यह 31 अक्टूबर, 2007 से प्रभावी हो गयी। इसके आधार पर कई राज्य सरकारों ने अपनी स्वयं की पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन नीतियाँ बनायीं हैं।

राष्ट्रीय पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन नीति (NRRP), 2007 उन सभी विकास परियोजनाओं के लिए लागू है जिनसे लोगों का अनैच्छिक विस्थान हो।

नीति का उद्देश्य विस्थापन को कम करना तथा जब तक संभव हो विस्थापन न करने वाले या कम से कम विस्थापन करने वाले विकल्पों को बढ़ावा देना है।

नीति में पर्याप्त पुनर्वास पैकेज और प्रभावित लोगों की सक्रिय भागीदारी के साथ पुनर्वास प्रक्रिया का शीघ्र कार्यान्वयन (Implementation) सुनिश्चित करना है।

नीति समाज के कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की रक्षा की जरूरत की पहचान करती है।

विकासजनित विस्थापन तथा जनजातीय समूह
(Development Induced Displacement and Tribal Groups)

विकासजनित विस्थापन का सबसे अधिक दुष्प्रभाव जनजातीय समूहों पर पड़ता है। भारत की कुल जनसंख्या में जनजातीय समूह की भागीदारी सिर्फ 8.1% है, जबकि विस्थापन से प्रभावित लोगों के आंकड़ों पर नजर डालें तो विस्थापितों में जनजातीय समूह की संख्या का अनुपात 55.16% अर्थात् आधे से भी अधिक है।

विकास के लिए भूमि अधिग्रहण के कारण आदिवासियों का बड़े पैमाने पर विस्थापन एक चुनौती है। –कृष्णा तीरथ, महिला एवं बाल विकास मंत्री (मई, 2011)

उपरोक्त टिप्पणी गम्भीरता से यह गवाही देती है कि आदिम जाति कल्याण कानून जैसे-पेसा (PESA), वन अधिकार नियम, 2006 तथा यहाँ तक कि संविधान की पांचवी अनुसूची भी भारत के आदिवासी समुदायों को सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह विफल रही है।

हाल के दिनों में विकास के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण, निजीकरण और भू-मंडलीकरण की प्रक्रियाओं को अपनाया गया। यह आदिवासियों के लिए एक बड़ा खतरा बनकर उभरा है। विडंबना यह है कि आधुनिक तथा सभ्य (Civilized) कहा जाने वाला समाज उनकी पुरानी, पर्यावरण अनुकूल, शांतिपूर्ण तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन शैली का शिकारी बन गया है।

खनिज तथा अन्य संसाधनों के लिए राज्य तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रायोजित विकास परियोजनाओं के कारण आदिवासी उनकी भूमि तथा अन्य संसाधन बाजार की शोषणकारी शक्तियों (Exploitive Powers) के सामने आ गए हैं। शक्तिशाली संस्थाओं द्वारा आदिवासियों की भूमि का हस्तांतरण आम हो गया है। यह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण है कि उनको संविधान द्वारा 'अपने परम्परागत तरीके से जीने की' दी गयी गारंटी का उल्लंघन संविधान को ज्यादा अच्छे से समझने वाले ही कर रहे हैं।

परियोजना प्रबंधकों को राज्य स्वामित्व वाली आदिवासी सामुदायिक भूमि (जिसका स्वामित्व सरकार के पास होता है तथा इसके लिए कोई मुआवजा (Compensation) नहीं दिया जाता है।) अपनी परियोजना के लिए आसान प्रविष्ट बिन्दु (Entry point) प्रदान करता है। परियोजना लागत को कम करने के लिए वे जान-बूझकर उच्च सामुदायिक भूमि तथा प्रशासकीय दृष्टि से पिछड़े क्षेत्र का चयन अपनी परियोजनाओं के लिए करते हैं, जहाँ कानूनी मुआवजा कम होता है।

ये तथाकथित विकास परियोजनाएँ आदिवासियों को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं पहुँचाती हैं तथा उन्हें भूमिहीन और संसाधन रहित कर देती है। मौद्रिक लाभ उस समय कोई मायने नहीं रखता जब पीढ़ियों की जीवन शैली ही अप्रतिकार्य (जिसे सुधारा नहीं जा सके) रूप से बदल जाय। अपनी पारंपरिक बस्तियों से विस्थापन उन्हें तीव्र आघात तथा अनिश्चितता में छोड़ देता है।

आदिवासियों ने राष्ट्रीय विकास की उच्चतम कीमत चुकाई है क्योंकि उनके क्षेत्र संसाधन समृद्ध हैं। कोयला का 90% तथा अन्य खनिजों का लगभग 50% इनके ही क्षेत्र में हैं। इसके अलावा जंगल, पानी तथा अन्य स्रोत भी उनके निवास में बहुतायत में हैं। जनजातीय मामलों के मंत्रालय के अनुसार 1990 तक 85 लाख जनजातीय लोग विस्थापित हुए जो कुल विस्थापितों का लगभग 50% है, जबकि 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में जनजातियों का अनुपात सिर्फ 8.1% है। लाखों आदिवासी 1990 के बाद बिना किसी उचित पुनर्वास के विस्थापित हुए हैं। (पश्चिमी ऋणदाताओं के दबाव में केन्द्र की उदारीकरण की नीति के कारण) फिर भी इसके अध्ययन के लिए अभी तक कोई उचित प्रयास नहीं हुए हैं।

संविधान का अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के हितों को बढ़ावा देने और सामाजिक अन्याय और शोषण के सभी रूपों से उन्हें बचाने के लिए राज्य का दायित्व सुनिश्चित करता है। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि आदिवासियों का उनकी जमीन से विस्थापन संविधान की पांचवी अनुसूची का उल्लंघन है क्योंकि यह जमीन तथा प्राकृतिक संसाधन के उनके मालिकाना हक, जो उनके जीवन के लिए आवश्यक है, से उन्हें वंचित (Deprived) कर देता है।

आदिवासी प्रकृति के बेहद नजदीक, जंगल तथा पहाड़ी क्षेत्रों में रहते आए हैं। आदिवासियों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से शिकार, कंदमूल की खोज तथा झूम खेती रही है। 90% से ज्यादा जनजाति अपनी आजीविका (Livelihood) के लिए बहुत हद तक जंगल तथा जंगली संसाधनों पर निर्भर होते हैं। आधुनिक समाज में प्रचलित मानसिकता के विपरीत जनजातियाँ जमीन और जंगल को केवल एक आर्थिक वस्तु के रूप में नहीं देखती हैं उनके लिए ये उनकी संस्कृति तथा पहचान के केन्द्र भी हैं। परम्परागत रूप से इन्होंने अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था तथा सतत् प्रबंधन प्रणाली इन्हीं के आस-पास विकसित की है। इनकी संस्कृति का मूल समता (Equality) है अर्थात् यह सुनिश्चित करना कि हर परिवार को अपनी जरूरतें पूरा करने के लिए पर्याप्त अवसर मिलें। दूसरे, संसाधनों को अक्षय बनाए रखा जाता है अर्थात् जरूरत के हिसाब से इस्तेमाल तथा भविष्य के लिए बनाए रखना। तीसरा, सामुदायिक स्वामित्व वाली भूमि तथा जंगल में काम कर परिवार के एक उत्पादक सदस्य के रूप में ये अपेक्षाकृत एक उच्च स्तर / दर्जे का आनंद लेती हैं।

विस्थापन के कारण जनजातियों की समस्याएँ
(Problems of Tribes due to Displacement)

1. जनजातीय समूह ज्यादातर अशिक्षित होते हैं तथा उन्हें कानूनों तथा अपने अधिकारों की ज्यादा जानकारी नहीं होती है। अत: वे विस्थापन के समय अपने लिए अच्छी तरह से नहीं सोच पाते हैं तथा वे अपने अधिकारों की मांग में कमजोर पड़ जाते हैं। इसका फायदा कॉरपोरेट जगत को मिलता है तथा वे आसानी से अपनी परियोजना के लिए अधिग्रहण (Acquisition) कर लेते हैं।
2. आदिवासियों की ज्यादातर संपत्तियाँ सामुदायिक होती हैं जिनका मालिकाना हक किसी व्यक्ति के पास नहीं होता है। अत: ये सरकारी संपत्ति मानी जाती हैं। सरकार इस संपत्ति/भूमि के अधिग्रहण के लिए मुआवजा नहीं देती है। (इससे परियोजना का खर्च कम करने में कंपनियों को सहायता मिलती है और वे जानबूझकर ऐसी भूमि को परियोजना के लिए चुनते हैं)
3. परियोजना के लिए भू-खण्ड पर लगे वनों को काट दिया जाता है तथा उस क्षेत्र में जनजातियों का आना मना कर दिया जाता है। इस प्रकार वे जंगल के कई उत्पादों के उपभोग में असमर्थ

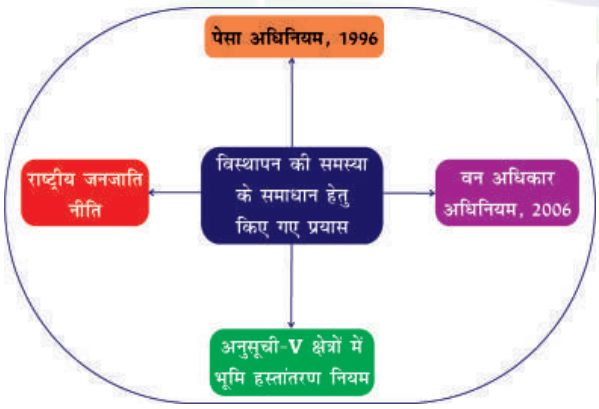
हो जाते हैं तथा अपनी आजीविका चलाना उनके लिए मुश्किल हो जाती है। अपने मूल स्थान (Place of Origin) से दूसरी जगह विस्थापित किए जाने पर भी इसी प्रकार की समस्याएँ उन्हें झेलनी पड़ती हैं।

4. यह देखा गया है कि जनजातियों को जो कुछ मुआवजा मिलता भी है तो उसे ये उपभोग वस्तुओं की खरीद पर खर्च कर देते हैं क्योंकि मुद्रा के रूप में बचत का प्रचलन उनमें नहीं होता है। अंतत: वे और भी गरीबी की ओर बढ़ जाते हैं।
5. विकास परियोजनाओं का जरा भी लाभ जनजातीय समुदायों को नहीं मिल पाता है। उन्हें न तो कोई सुविधा मिलती है (जैसे- बिजली, पानी) न ही लाभ में कोई हिस्सा मिलता है। जनजातियों के कल्याण के लिए भी उस लाभ से, जो उन्हें विस्थापित करके लिया गया है, कोई मदद नहीं दी जाती है।
6. विकास परियोजनाओं से उत्पन्न रोजगार में भी जनजातियों को कोई भागीदारी नहीं मिल पाती है क्योंकि वे नई तकनीकों तथा मशीनों से अनभिज्ञ होते हैं।
7. उनके जमीनों तथा सामुदायिक भूमि (Community Land) या संसाधनों का लाभ बाहरी लोग लेने लगते हैं। इसी तथ्य को आधार बनाकर नक्सलवादी भी क्षेत्रों में अपने पैर जमा लेते हैं।
8. विस्थापन के कारण जनजातियों के लिए चलाए जा रहे कल्याण कार्यक्रमों का लाभ भी उन्हें नहीं मिल पाता है क्योंकि नई जगह पर फिर कल्याण कार्यक्रम शुरू करने में काफी देर होती है।

इनके अलावा अन्य समस्याएँ भी हैं, जैसे–

- जनजातीय पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव उत्पन्न हुआ है।
- पैतृक स्थान के परित्याग (Abandonment) की पीड़ा से पीड़ित हुए हैं।
- उनकी अपनी बाजार एवं व्यापार व्यवस्था का ह्रास हुआ है।
- अनेक पवित्र एवं सांस्कृतिक स्थलों का विनाश हुआ है।
- नए क्षेत्र में अनुकूलन में कठिनाई उत्पन्न हुई है।

विस्थापन की समस्या के समाधान हेतु किए गए प्रयास (Efforts made to Resolve Displacement Problem)



विकास योजनाओं की अनिवार्यता के कारण विस्थापन एक आवश्यकता बन गई है। अत: इसके दुष्परिणामों से बचने हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किए गए हैं।

1. ***पेसा अधिनियम, 1996 (PESA Act, 1996) –*** इस अधिनियम को आदिवासी समाज को प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण का अपना परंपरागत अधिकार प्राप्त करने के लिए पारित किया गया। यह राज्यों को केन्द्र सरकार से असंगत नियमों (Inconsistent Rules) को बदलने की आवश्यकता पर जोर देता है।
2. ***वन अधिकार अधिनियम, 2006 (Forest Rights Act, 2006) –*** यह अधिनियम वन भूमि और उससे जुड़े व्यवसाय की पहचान जनजातियों तथा अन्य परम्परागत वनवासियों के लिए करता है तथा उन्हें उस व्यवसाय का अधिकार देता है। इन अधिकारों में लघु वन उपजों को इकट्ठा करना, उन्हें बेचना, रहने तथा खेती के लिए वन भूमि का उपयोग आदि शामिल हैं।
3. ***अनुसूची-V क्षेत्रों में भूमि हस्तांतरण नियम (Land Transfer Rules in Schedule - V Areas) –*** इसके द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी व्यक्तियों द्वारा भूमि की खरीद पर रोक लगायी गयी है, ताकि इनके अधिकारों की सुरक्षा हो सके।
4. ***राष्ट्रीय जनजाति नीति (National Tribal Policy) –*** जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने एक राष्ट्रीय जनजाति नीति बनाई है जिसमें जनजातियों से संबंधित मामलों में अतिरिक्त सावधानी बरतने की बात कही गयी है।
5. ***भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 2014 (Land Acquisition Act, 2014) –*** इस अधिनियम के अंतर्गत जनजातियों के कल्याण को भी ध्यान में रखा गया।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम-2014 की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of Land Acquisition Act - 2014)

- जमीन का मुआवजा सर्किल रेट पर नहीं, बाजार मूल्य पर तय होगा। इस विधेयक में यह प्रावधान किया गया है कि प्रभावितों को ग्रामीण क्षेत्र में चार गुना और शहरी क्षेत्रों में दो गुना मुआवजा मिलेगा।
- यह पहला कानून है, जिसमें पुनर्वास और पुनर्स्थापन की बात कही गयी है। एकमुश्त नकद मुआवजे के साथ इसमें जमीन के बदले जमीन, आवास और रोजगार जैसे विकल्प दिए गए हैं।
- यह पुराने मामलों पर भी लागू होगा। विधेयक में यह प्रावधान है कि अगर जमीन पांच वर्ष पहले अधिग्रहित की जा चुकी है, लेकिन प्रभावितों को अब तक मुआवजा नहीं मिला है या जमीन पर कब्जा नहीं किया गया है, तो भूमि अधिग्रहण की पूरी प्रक्रिया नए तरीके से नए कानून के तहत होगी।

- इस विधेयक को व्यापक सहभागी और अर्थपूर्ण बताया जा रहा है। इसकी वजह यह है कि भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में अब स्थानीय लोगों की सहमति जरूरी होगी और स्थानीय पंचायतों की भी इसमें भागीदारी होगी। इतना ही नहीं, पुनर्वास और पुनर्स्थापन की निगरानी के लिए केन्द्र, राज्य और जिला स्तर पर कमेटियों का गठन किया जाएगा।
- आदिवासी समुदायों और अन्य वंचित वर्गों को लेकर इसमें विशेष प्रावधान किए गए हैं। आदिवासी/अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्रों में ग्राम सभा की अनुमति के बिना जमीन का अधिग्रहण नहीं हो सकेगा। इसके तहत पंचायत कानून, 1996 और वन अधिकार कानून, 2006 के तहत मिले अधिकार की सुरक्षा भी सुनिश्चित की जाएगी।
- विस्थापितों के हितों की रक्षा करते हुए प्रस्तावित कानून में यह प्रावधान किया गया है कि जब तक विस्थापितों का पूरा भुगतान नहीं हो जाता और उनके पुनर्वास और पुनर्स्थापन की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक उन्हें जमीन से बेदखल (Evict) नहीं किया जाएगा।
- निजी परियोजनाओं के लिए जमीन तभी अधिग्रहित की जाएगी, जब 80 फीसदी भू-स्वामी इसके लिए अनुमति देंगे। पीपीपी (सार्वजनिक निजी भागीदारी) के लिए 70 फीसदी भू-स्वामियों की सहमति जरूरी होगी।
- नए कानून के तहत मुआवजा राशि पर आयकर नहीं लगेगा। स्टांप शुल्क से भी छूट रहेगी।
- इस विधेयक में किसानों के लिए उचित और न्यायसंगत हर्जाना और कोई भी जमीन बलपूर्वक अधिग्रहित नहीं किए जाने का भी प्रावधान है।
- जमीन देने वाले और आजीविका गंवाने वाले के लिए मुआवजा पाँच लाख रुपये या एक नौकरी और एक वर्ष तक मासिक तीन हजार रुपये भत्ता आदि के रूप में हो सकता है।
- बहुफसल खेती वाली जमीन का अधिग्रहण नहीं किया जाएगा और यदि इसकी जरूरत हुई, तो संबंधित राज्य सरकार इस संबंध में निर्णय लेगी।
- सिंचाई परियोजनओं के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं, जिसके तहत सिंचाई परियोजना की समयावधि में छूट होगी। ऐसी परियोजनाओं में भू-स्वामी को सिर्फ जमीन का मुआवजा मिलेगा। पुनर्वास और पुनर्स्थापन का प्रावधान हटा लिया गया है। इसके अतिरिक्त सिंचाई परियोजना के लिए सामाजिक प्रभाव के आकलन का प्रावधान भी नहीं होगा।
- प्रस्तावित कानून के तहत भूमि के बढ़े हुए मूल्य में मूल स्वामी को भी हिस्सा दिया जाएगा। अधिग्रहण के पांच साल के भीतर यदि जमीन किसी तीसरी पार्टी को बढ़ी कीमतों पर दी जाती है, तो बढ़े मूल्य का 40 प्रतिशत हिस्सा मूल स्वामी (Original Owner) को दिया जाएगा।
- अर्जेंसी क्लॉज की परिभाषा को राष्ट्रीय सुरक्षा और प्राकृतिक आपदा तक सीमित किया गया है। इन दोनों परिस्थितियों में ही अर्जेंसी क्लॉज का इस्तेमाल किया जा सकेगा।
- नया कानून तीन महत्त्वपूर्ण बदलाव लाता है।
  - मुआवजे को बहुत बढ़ाया जाना है-शहरी क्षेत्रों में बाजार मूल्य का दोगुना और ग्रामीण क्षेत्रों में चार गुना तक।
  - जमीन मालिकों के साथ ही 'आजीविका गंवाने वाले (विशेष रूप से बटाईदार और जमीन से आजीविका चलाने वाले मजदूर) अब राहत और पुनर्वास पैकेज के हकदार हैं।
  - प्रक्रियात्मक बाधाओं को उठाया गया है-निजी कंपनियों के मामले में अधिग्रहण को अब ज्यादा समितियों से और अधिक मंजूरी की जरूरत है और इससे प्रभावित होने वाली आबादी का कम से कम 70 फीसदी की सहमति होनी आवश्यक है।

6. परियोजना निर्माण, उसे लागू करना, पुनर्वास सम्बन्धी नियम इत्यादि बनाने में सभी स्तरों पर गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी भी आवश्यक है।
7. विस्थापन तथा पुनर्वास के समय मानवीय गरिमा, मानवाधिकार और स्थानीय लोगों की संस्कृति को पूरा सम्मान देना चाहिए।
8. पुनर्स्थापना स्थलों पर आधारभूत संरचनाओं जैसे-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य सरकारी सुविधाओं जैसे-पोस्ट ऑफिस, पुलिस स्टेशन आदि की स्थापना होनी चाहिए।

पुनर्वास की व्यवस्था इन जनजातीय समूह के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए करनी चाहिए। चूंकि उनके सांस्कृतिक लक्षण और संरचनात्मक विशेषताएँ (Structural Features) अन्य जातीय समूह की तुलना में भिन्न हैं, वे अपने सांस्कृतिक प्रतीकों के प्रति कठोर हैं तथा परिवर्तन को प्रेरित करने वाले कारकों के प्रति कम उत्साह रखते हैं। दूसरी ओर विकास तथा आधुनिकीकरण के लिए परियोजनाओं की स्थापना भी अपरिहार्य है, परन्तु ऐसा जनजातीय समुदाय की कीमत पर नहीं होना चाहिए। अतः इनकी समस्याओं का उपयुक्त समाधान/निदान करते हुए विकास और आधुनिकीकरण के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जनजातियों के विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं के बावजूद आर्थिक विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए प्रारम्भ किए गए विभिन्न परियोजनाओं की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

विस्थापितों की समस्या को ध्यान में रखते हुए बनायी गयी विधियाँ तथा अन्य प्रयास उनकी समस्या के आघात को कम तो करती हैं पर इनसे भी उनके असंतोष को कम नहीं किया जा सका है। कई स्थानों पर कई परियोजनाओं का विरोध इसके स्पष्ट संकेत देते हैं। इस असंतोष को कम करने के लिए कुछ अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता है।

जनजातीय विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने हेतु सुझाव (Suggestions to Overcome the Problems Arising From Tribals Displacement)

1. परियोजना से संबंधित सभी जानकारियाँ स्पष्ट की जानी चाहिए। जैसे- परियोजना की प्रकृति क्या है? इससे किन्हें लाभ मिलेगा? कितने लोग प्रभावित होंगे इत्यादि।

2. परियोजना निर्माण के समय प्रभावितों की भी भागीदारी (Participation) सुनिश्चित होनी चाहिए। इससे परियोजना के सफल होने की संभाविता में वृद्धि हो जाती है।
3. विस्थापन के तुरंत बाद पुनर्वास की व्यवस्था होनी चाहिए। पुनर्वास स्थलों तक सार्वजनिक सुविधा जैसे-सड़क, बिजली, पानी इत्यादि का उत्तम प्रबंध होना चाहिए।
4. विस्थापन के समय ही मुआवजे का भुगतान उचित तरीके से होना चाहिए। मुआवजे की राशि भी उचित होनी चाहिए।
5. सभी राज्यों में पुनर्वास अधिनियम का निर्माण होना चाहिए तथा इसे लागू किया जाना चाहिए। अभी तक बहुत ही कम राज्यों (महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक) में पुनर्वास अधिनियम बन पाए हैं।

किसान आत्महत्या (Farmers Suicides)

भारत की लगभग 2/3 जनता कृषि से अपना जीवन यापन करती है। लगभग 1.2 अरब की जनसंख्या वाले इस देश में सबसे ज्यादा रोजगार कृषि से ही मिलता है। भारत में सबसे अधिक छोटे कृषक हैं। ये कृषक अपनी छोटी भूमि पर कृषि कार्य करते हैं तथा अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं।

हालांकि 90-91 अर्थात् उदारीकरण (Liberalization) के बाद खेती को पृथ्वी, मिट्टी, जैव-विविधता तथा पर्यावरण से अलग कर वैश्विक कंपनियों तथा भू-मंडलीकरण से जोड़ दिया गया। भूमि की उदारता को कम्पनियों के मुनाफे के लालच से जोड़ दिया गया। बड़ी-बड़ी कम्पनियों के आने से तथा कृषि को वैश्विक बाजार से जोड़ दिए जाने के कारण कृषि वस्तुओं के मूल्य में भारी प्रतिस्पर्धा आयी, वहीं कृषि की लागत भी बढ़ी। इस प्रक्रिया ने छोटे-छोटे कृषि कार्यों (जोतों) की उपयोगिता (Utility) पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। ये छोटे किसान न तो इतने सक्षम हैं कि अपनी छोटी सी भूमि में निवेश करें और ना ही इतने संगठित कि बाहरी बड़ी ताकतों का मिलकर मुकाबला कर सकें। कृषि उपजों की घटती कीमतों तथा कृषि में बढ़ती लागतों के कारण छोटे किसान ऋणजाल में फंसने के लिए मजबूर हो रहे हैं। यह ऋणजाल इन्हें अनंत गरीबी की ओर ढ़केल रहा है और अंततः व्यक्ति के व्यक्तित्व में विघटन कर उसे आत्महत्या के लिए मजबूर कर रहा है।

किसान आत्महत्या का स्वरूप (Nature of Farmers Suicide)

जनगणना रिपोर्ट, 2011 के अनुसार भारत में किसानों की आत्महत्या दर कुल आत्महत्या दर से 47% ज्यादा है। कुछ राज्यों में जहाँ कृषि संकट सर्वाधिक है यह दर 100% से भी ज्यादा है। यह हालात तब है जब जनगणना 2011 भारत में किसानों के कुल संख्या में कमी बता रही है।

नई जनगणना (New Census) के कुल मात्रा को राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों से मिलाने पर चौंकाने वाले नतीजे सामने आते हैं। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश के एक किसान के आत्महत्या करने की संभावना देश के किसी अन्य नागरिक (किसानों को छोड़कर) की अपेक्षा तीन गुना है।

किसान आत्महत्या की तीव्रता में कोई गिरावट नहीं दिख रही है और ना ही आत्महत्याओं की संख्या में कोई भारी गिरावट दिख रही है। दरअसल 2011 की किसान आत्महत्या दर (16.3 किसान प्रति 1,00,000 किसान) 2001 की किसान आत्महत्या दर (15.8 किसान प्रति 1,00,000) से थोड़ी ही ज्यादा है।

इन आत्महत्याओं की संकेन्द्रण (Concentration) 5 राज्यों के कृषि क्षेत्र में अधिकतम है। वे 5 राज्य हैं:– महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा कर्नाटक। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि देश में कुल किसान आत्महत्या का 2/3 (दो तिहाई) इन्हीं 5 राज्यों में होता है। वह भी तब जब जनगणना आँकड़ों के अनुसार इनमें से 4 राज्यों में किसानों की संख्या में कमी आयी है। सिर्फ महाराष्ट्र में इनकी संख्या में बढ़ोतरी हुई है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में किसान आत्महत्या दर 29.1 प्रति 1,00,000 किसान है जो राष्ट्रीय किसान आत्महत्या औसत 16.3 से कहीं ज्यादा है।

लगभग 22 बड़े राज्यों में से 16 राज्यों में किसान आत्महत्या की दर बांकी जनसंख्या की आत्महत्या दर (11.1 प्रति 1,00,000) से ज्यादा है।

यह भयावह स्थिति (Terrible Situation) तब दिख रही है जब राज्य स्तर पर आंकड़ों से छेड़-छाड़ हो रही है, जैसे छत्तीसगढ़ ने साल 2011 के लिए शून्य किसान आत्महत्या रिपोर्ट दर्ज किया है, जबकि इससे पहले के तीन सालों में 4,700 किसान आत्महत्या दर्ज की गयी थी। अन्य राज्यों तथा क्षेत्रों में भी इसी तरह के तरीके अपनाने की आशंकाओं को नकारा नहीं जा सकता। (पुदुचेरी ने भी 2011 में शून्य किसान आत्महत्या दिखायी है।)

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के दस्तावेजों में दर्ज रिपोर्टों की भी आलोचना कई बार हुई है। दरअसल अधिकांश घटनाओं में किसान अपने परिवार के सदस्यों की हत्या कर खुद आत्महत्या कर लेते हैं। इस प्रकार की घटनाओं में किसान आत्महत्या एक दर्ज की जाती है और अन्य मौतों को हत्या में गिन लिया जाता है जबकि किसान आत्महत्या की सही स्थिति के आकलन के लिए इन सभी मौतों को किसान आत्महत्या में गिना जाना चाहिए।

किसान आत्महत्या के कारण (Causes of Farmers Suicide)

1. ***उदारीकरण (Liberalization)*** – 1998 में भारत को विश्व बैंक के दबाव में अपना बीज बाजार कारगिल, मॉनसान्टो, सि-जेन्टा जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोलना पड़ा। इन

कम्पनियों ने कृषि की लागत व्यवस्था (Cost System) को रातों-रात परिवर्तित कर दिया। परम्परागत बीजों का स्थान इनके रूपांतरित बीजों ने ले लिया जिसने कृषि लागत बढ़ा दी।

दूसरी ओर कृषि बाजार के खुलने तथा कृषि जनित वस्तुओं के सस्ते आयात से कृषि उपजों की कीमतों में कमी आयी इस कारण से किसान को लागत तथा कीमत दोनों स्तरों पर हानि उठानी पड़ी, जिसने गरीब किसानों को ऋणजाल (Debt trap) की तरफ ढ़केल दिया। इन किसानों को सिर्फ आर्थिक हानि ही नहीं हुई, इनकी आय इतनी कम हो गयी कि ये भुखमरी के शिकार होने लगे। इस प्रकार के संकट ने किसानों को आत्महत्या के लिए प्रेरित किया।

2. ***वाणिज्यीकरण (Commercialization)*** – भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण ने काफी जोर पकड़ा खासकर वैश्वीकरण, उदारीकरण के बाद। इसके बाद भारत में नकदी फसलें खासकर कपास का उत्पादन जोड़ पकड़ने लगा कपास क्षेत्रों के किसान मोटा अनाज तथा अन्य खाद्यान्न फसलों की जगह कपास उगाने लगे। इससे किसानों को खाद्यान्न की उपलब्धता कम हो गयी। इधर नकदी फसल का ज्यादातर लाभ बिचौलियों और साहूकारों को हुआ इससे किसानों की क्रयशक्ति (Purchasing Power) में कमी आ गयी और किसान खाद्यान्न नहीं खरीद पाने के कारण भुखमरी के शिकार होने लगे। ऋणग्रस्तता तथा भुखमरी से परेशान किसानों की आत्महत्या दर इन कपास क्षेत्रों में ज्यादा है।

3. ***विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीज (Seeds of Foreign Multinational Companies)*** – बीज बाजार के खुलने पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जब बीज बाजार में अपने रूपांतरित बीज (Modified Seeds) लेकर आयीं तो इन बीजों के महंगे होने के साथ-साथ इनमें कई खामियाँ भी थीं। इन बीजों में अधिक खाद, अधिक पानी तथा अधिक कीटनाशी की आवश्यकता होती है, जो कृषि कार्य की लागत को और बढ़ाती है।

इसके अलावा ये बीज बौद्धिक संपदा अधिकार के तहत इस प्रकार रूपांतरित होते हैं कि इनका प्रयोग सिर्फ एक बार ही हो पाता है। उपज का प्रयोग फिर बीज के रूप में नहीं हो पाता या होता भी है तो कम उपज देता है। इस प्रकार किसानों को हर बार बाजार से नए बीज खरीदने पड़ते हैं जो किसानों के लिए पहले लगभग मुफ्त उपलब्ध होता था।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने इन तरीकों से बीज बाजार पर एकाधिकार कर लिया है। रिपोर्टों के अनुसार जब से बीज बाजार अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोला गया है (1997) तब से लगभग 25,000 से ज्यादा किसान आत्महत्या कर चुके हैं।

कम्पनियाँ अपने बीजों को कई बार बिना परीक्षण तथा अनुकूलित बीजों को भी बाजार में उतार देती हैं। कम्पनी बीजों को बेचने के लिए कई बार गलत वायदे भी करती हैं। उदाहरण के लिए 2002 में जब मॉनसान्टो ने पहली बार बीटी कपास बाजार में उतारा था तो किसानों को 1,500 किलोग्राम/एकड़ की उपज का वायदा किया गया था, परन्तु वास्तविक उपज करीब 200 किग्रा/एकड़ तक ही रही। इससे किसानों को 10,000 रुपये प्रति एकड़ के अतिरिक्त लाभ की जगह 6,400 रुपये प्रति एकड़ की हानि हो गयी। अगर किसानों की पूरी हानि को मिला दिया जाय तो यह हानि लगभग एक अरब करोड़ की थी।

इस प्रकार की हानि को निजी दलाल नकली बीज बेच कर और ज्यादा बढ़ा रहे हैं।

4. ***नई प्रौद्योगिकी तथा उच्च उत्पादन विधियों की जानकारी का अभाव (Lake of Knowledge of New Technology and High Production Methods)*** – भारत में अभी भी अधिकतर कृषि में परम्परागत तरीकों (Traditional Method) तथा उपकरणों का ही प्रयोग हो रहा है। अधिकतर किसान छोटी भूमि के स्वामी हैं उनके पास नई प्रौद्योगिकी या उपकरण लगाने के लिए या तो धन की कमी होती है या जोतें इतनी छोटी होती हैं कि वहां निवेश करना नुकसानदायक होता है। ये छोटे किसान ज्यादातर अशिक्षित भी होते हैं इन्हें वैज्ञानिक कृषि की कोई जानकारी नहीं होती है। ये अपने खेतों की मिट्टी की जाँच कराए बिना ही यूरिया, नाइट्रोजन तथा पोटाश का उपयोग गलत अनुपात में तथा अधिक मात्रा में करते हैं। इससे इनकी लागत तो बढ़ती ही है उपज भी सही नहीं होती ऊपर से पानी की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

5. ***पानी की कमी / मानसून आधारित कृषि (Water Deficiency / Monsoon based Agriculture)*** – भारत में अभी भी 60% से ज्यादा कृषि मानसून वर्षा पर निर्भर है। ज्यादातर खेतों तक सिंचाई सुविधा का नितांत अभाव है। भू-जल स्तर लगातार नीचे जा रहा है इस कारण किसानों को सिंचाई के लिए मंहगे पम्प तथा गहरे बोरिंगों की आवश्यकता पड़ रही है जिससे कृषि लागत बढ़ रही है।

वैश्विक भू-तापन तथा जलवायु परिवर्तन (Climate Change) के कारण मौसम में भी अनियमित बदलाव आ रहे हैं। इस बदलाव के कारण तथा वर्षा की अनियमितता के कारण फसलों को बारम्बार नुकसान पहुँच रहा है। लगातार फसलों के नुकसान को गरीब किसान झेल नहीं पाते और ज्यादा निर्धनता से ग्रसित हो जाते हैं।

6. ***साख की उचित दर पर अनुपलब्धता (Non-Availability of Credit at Reasonable Rates)*** – भारत में किसान आत्महत्या का सबसे बड़ा कारण ऋणग्रस्तता है। किसान ज्यादातर अनौपचारिक क्षेत्र से ऋण लेते हैं जिनकी ब्याजदर 36% से 120% तक होती है। इतने उच्च ब्याजदर पर ऋण लेने से किसानों पर ऋणजाल में फंसने का एक बड़ा खतरा मंडराता रहता है। कृषि की लागतों के लिए दिए गए ऋण को चुकाने के लिए किसान

खड़ी फसल (Standing Crop) को बेचने के लिए तैयार रहते हैं। उनके ऊपर जल्द से जल्द ऋण चुकाने का दबाव बना रहता है। इससे फसल के उत्पादन के तुरन्त बाद किसान अपनी फसल सस्ते मूल्य पर बेचने के लिए बाध्य होते हैं। इस कारण किसान अपने उत्पादन का सही लाभ नहीं ले पाते। इनके उत्पादन का लाभ मंडी व्यापारी बिचौलिए तथा साहूकारों को मिलता है। इन किसानों को औपचारिक क्षेत्र से काफी कम या नहीं के बराबर ऋण मिल पाता है क्योंकि बैंक से ऋण के लिए कई कागजी कामों तथा कई बार जमानत/गिरवी रखने की जरूरत पड़ती है, जो इन निर्धन किसानों के बस की बात नहीं होती है। बैंकों को अपने ऋण के डूबने का अंदेशा होता है इसलिए बैंक इन्हें कर्ज देने से कतराती है।

7. ***उपयुक्त बाजार का अभाव (Lock of Suitable Market) –*** बाजार के अभाव के कारण किसानों को अपना उत्पाद सस्ते दरों पर बेचना पड़ता है। सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा करती है, खाद्यान्न खरीद केन्द्रों की घोषणा करती है, परन्तु इन केन्द्रों पर भ्रष्टाचार आदि के कारण किसानों को सही मूल्य नहीं मिल पाता है। ये केन्द्र भी काफी दूरी पर खुले होते हैं। यहाँ तक कि स्थानीय बाजारों की भी ग्रामीण क्षेत्रों में काफी कमी है, अतः किसानों को अपना उत्पाद बिचौलियों को बेचना पड़ता है जो इनके उत्पादों की सही कीमत नहीं देते हैं।

8. ***आधारभूत संरचना का अभाव (Lack of Infrastructure) –*** भारत में कृषि क्षेत्र में आधारभूत संरचना का बड़ा अभाव है। ज्यादातर खेतों तक बिजली की पहुँच नहीं है तथा ईंधनों के दाम बढ़ते जा रहे हैं। उपज के बाद उत्पादों को बाजार तक पहुँचाने वाली सड़कें खराब स्थिति में हैं। उत्पादों को कुछ समय तक बचाए रखने के लिए कोल्ड स्टोरेजों की कमी भी काफी ज्यादा है।

कई गाँवों में तो बिजली के कारण तथा निवेश की समस्या के कारण कोल्ड स्टोरेज हैं हीं नहीं। जो शीतगृह (कोल्ड स्टोरेज) हैं भी वहाँ काफी भीड़ है तथा उनका किराया भी मनमाना रखा जाता है जबकि शीतगृहों को सहायिकी भी उपलब्ध करायी जाती है।

उपरोक्त कारणों से किसान के सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति में गिरावट आयी है। किसान एक उत्पादक की जगह एक बीज खरीदने वाला उपभोक्ता बनकर रह गया है, जो ऋणजाल में फंसकर अपना सर्वस्व गवाँ चुका है और उसके पास आत्महत्या के सिवाय कोई विकल्प नहीं रह जाता है।

किसान आत्महत्या को दूर करने के लिए किए गए प्रयास (Efforts Made to Eliminate Farmer Suicides)

सरकारी स्तर पर किसान आत्महत्या को रोकने के कई उपाय किए गए हैं। भारत सरकार ने विदेशी सस्ते आयात की प्रतिस्पर्धा (Competition of Import) से किसानों को बचाने के लिए सभी विकासशील देशों के साथ मिलकर यह मुद्दा विश्व व्यापार संगठन में उठाया है कि जहाँ एक ओर विकसित देशों द्वारा कृषि व्यापार पर सहायिकी (Subsidy) देने को बढ़ावा दिया जा रहा है। वहीं एक विकासशील देश को अपने किसानों की, कृत्रिम रूप से सस्ती की गई वस्तुओं से रक्षा करने से रोका जा रहा है। कृषि वस्तुओं की वैश्विक कीमतें भारी मात्रा में घटी हैं। जहाँ विकसित देश लगातार अपने किसानों को गलत तरीके से सहायिकी दे रहे हैं वहीं विकासशील देशों को अपने किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी को कम करने को कहा जा रहा है। उदाहरण के लिए अमेरिका अपने सोया किसानों को 193 डॉलर प्रति टन की सहायता प्रदान करता है।

विश्व स्तर पर इसके समाधान के लिए भारत अन्य विकासशील देशों के साथ मिलकर विश्व व्यापार संगठन में आन्दोलन चला रहा है। भारत में सरकार ने कृषि क्षेत्र में कई सुधार भी किए हैं तथा ग्रामीण क्षेत्र में अवसंरचना के विकास के कार्य भी चलाए जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत पक्की सड़कें बनवाई जा रही हैं, राजीव गांधी विद्युतीकरण योजना के तहत बिजली पहुँचाई जा रही है, नलकूपों के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है।

सरकार किसानों के हितों के लिए विभिन्न सहायिकी कार्यक्रम भी चला रही है। खाद्य, बीज, कृषि उपकरणों आदि की खरीद पर सरकार से काफी सहायता दी जाती है जिससे किसानों की कृषि लागत में कमी आती है। वहीं दूसरी तरफ ज्यादा फसल उत्पादन के बाद किसानों को उनका उचित मूल्य मिल पाए इसके लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है, जिस पर सरकार खाद्यान्नों की खरीद करती है।

किसान आत्महत्या के पीछे मुख्य कारण ऋणग्रस्तता को माना गया है। इसके लिए सरकार रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को प्राथमिक क्षेत्रक में ऋण वितरण के निर्देश देती है। इस ऋण पर सरकार द्वारा ब्याज सहायिकी भी प्रदान की जाती है जिससे किसानों को कम ब्याजदर पर ऋण उपलब्ध होता है जिसे किसान आसानी से लौटा पाते हैं। इसके अलावा उन्हें अनौपचारिक क्षेत्र (Informal Sector) से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आसान पहुँच तथा बार-बार के बैंक के चक्करों से किसानों को बचाने के लिए किसान क्रेडिट कार्ड जैसी योजनाएँ चलाई गयी हैं। बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खोलने के लिए प्रोत्साहित भी किया जा रहा है।

इनके साथ किसानों के ऋणों को कई बार माफ भी किया गया है। किसानों को फसलों की अनिश्चितता से बचाने तथा संकट के समय जोखिम को कम करने के लिए कई प्रकार के बीमा योजनाओं को सरकार के निर्देश से लाया गया है। जैसे–बागवानी, वृक्षारोपण, पुष्प खेती बीमा योजना, कृषि पम्प बीमा, पशुओं के लिए बीमा, कुक्कुटों के लिए बीमा, बैलगाड़ी बीमा और सबसे प्रमुख राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना जो 1999-2000 की रबी फसलों से केन्द्र सरकार

द्वारा लागू किया गया। इस योजना का उद्देश्य किसानों को फसलों के नुकसान (प्राकृतिक आपदा, कीट आक्रमण से) से बचाने तथा नई प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना है।

किसान क्रेडिट कार्ड पर भी व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा प्रदान किया जाता है। इसके अलावा आम जनजीवन की आकस्मिकताओं से बचाने के लिए भी सरकार की कई बीमा योजनाएँ हैं, जो किसानों को भी मदद करती है, जैसे–जननी सुरक्षा योजना, आंगनबाड़ी द्वारा पोषाहार, स्कूलों में मिड-डे मील (मध्याह्न भोजन)।

सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सभी निर्धनों को रियायती दर (Discounted Rate) पर खाद्यान्न वितरण की व्यवस्था की है। अब इसे खाद्य सुरक्षा अधिनियम द्वारा और अधिक विस्तृत किया गया है तथा प्रभावी बनाया गया है। इसके द्वारा सभी निर्धनों, जिसमें किसान भी शामिल हैं, को भुखमरी से बचाने के लिए कदम उठाए गए हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए खाद्यान्नों की खरीद न्यूनतम समर्थन मूल्य पर की जाती है, जो किसानों को लाभ पहुँचाता है। किसानों को अपने कृषि वस्तुओं की उचित कीमत मिले इसके लिए कई जगह कृषि बाजारों की भी व्यवस्था की गयी है।

मनरेगा जैसे कार्यक्रमों द्वारा किसानों तथा अन्य निर्धनों को अतिरिक्त रोजगार के साधन उपलब्ध कराए गए हैं जिससे संकट के समय भी वे संसाधन विहीन न हों। किसानों को कृषि में प्रयुक्त होने वाली नवीनतम तकनीकों (New Technologies) की जानकारी तथा विधियों के प्रयोग के लिए सूचना तंत्र का जाल बिछाया जा रहा है। हरेक ग्राम पंचायत को ब्रॉडबैंड से जोड़ने की योजना है। हरेक जिले में मिट्टी के परीक्षण के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना की गयी है। किसानों की सुविधा के लिए 24 घण्टे सूचना सेवा स्थापित की जा रही है। ई-चौपालों की मदद से किसानों में जागरुकता बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। प्रखण्ड स्तर पर किसानों को प्रशिक्षण देने के लिए कई कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

अपने किसानों को सस्ते आयातों से बचाने के लिए सरकार संघर्षरत तो है, परन्तु वहीं विकसित देशों तथा विश्व व्यापार संगठन के दबाव के कारण सीमा शुल्कों (Custom Duties) में कमी, बाजार तक पहुँच आदि छूट बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दी जा रही है। अभी तक विकासशील देश कुछ भी हासिल नहीं कर पाए हैं।

भारत सरकार ने आधारभूत संरचना निर्माण में बिजली सड़क पर तो ध्यान दिया है, परन्तु शीतगृह, वातानुकूलित परिवहन सेवा, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग इत्यादि की स्थापना के प्रयास बहुत कम हुए हैं। इस क्षेत्र में निजी निवेश को भी सरकार ज्यादा आकर्षित नहीं कर पायी है। सरकार की तरफ से सहायिकी का ज्यादातर अंश उत्पादकों को दिया जाता है। इससे कृषकों तथा अन्य उपभोक्ताओं को काफी कम लाभ मिल पाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा होती है पर खाद्यान्न मंडियाँ ज्यादातर समय बन्द ही रहती हैं। जिस समय खाद्यान्न खरीद होती है वहाँ भी गरदा, भूसा, लदान आदि के नाम पर तथा गुणवत्ता के नाम पर काफी बट्टा काट (Discount) लिया जाता है। वहाँ की लम्बी कतार, दूरी तथा परेशानियों से बचने के लिए किसान न्यूनतम मूल्य से भी कम पर बिचौलियों के हाथों अपनी उपज बेचने के लिए मजबूर होते हैं।

सरकार तथा भारतीय रिर्जव बैंक के निर्देशों के बावजूद बैंक प्राथमिक क्षेत्र में ऋण देने में आनाकानी करते हैं। छोटे किसानों के पास गारंटी के नाम पर कुछ भी नहीं होता है। छोटे किसान अपनी ऋण जरूरतों का 90% से ज्यादा अनौपचारिक क्षेत्र से लेते हैं। इस कारण ऋण माफी आदि जैसे-उपाय भी इनके काम नहीं आते तथा ये लगातार शोषण के शिकार होते रहते हैं।

बीमा कंपनियाँ भी बीमा की अदायगी समय पर नहीं करती या अदा न करने के बहाने ढूंढती रहती हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भ्रष्टाचार की वजह से गरीबों को निर्धारित मात्रा से कम तथा निम्न गुणवत्ता (Low Quality) के खाद्यान्नों का वितरण किया जाता है।

भ्रष्टाचार के कारण मनरेगा जैसे अतिरिक्त आय के साधन भी इनके लिए कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। मनरेगा में ठेकेदार अपने जानकारों को काम देना, समय पर मजदूरी नहीं देना तथा मशीनों से काम करवाना जैसे भ्रष्ट आचरण करते हैं।

कृषि वस्तुओं की विपणन व्यवस्था (Marketing System) भी सही हालात में नहीं है। कृषि बाजार कई किलोमीटर के फासले पर होते हैं और इन बाजारों में स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा अन्य इंतजामों की अनदेखी होती रहती है। कुल मिलाकर उपरोक्त प्रयास किसान आत्महत्या को रोकने में नाकाफी सिद्ध हुए हैं क्योंकि किसानों की आत्महत्या की दर एक दशक में बढ़ी ही है, कम नहीं हुई।

किसान आत्महत्या की समस्या दूर करने हेतु उपाय (Measures to Solve the Problem of Farmer Suicide)

किसानों की आत्महत्या को रोकने के लिए किए जाने वाले उपायों को दो भागों में बांटा जा सकता है:–



त्वरित उपाय (Quick Measures)

1. किसान आत्महत्या के बाद परिवार के बाकी सदस्यों को तुरन्त राहत पहुँचाना चाहिए। मुआवजे को जल्द से जल्द परिवार तक पहुँचाना चाहिए।

2. इन घटनाओं के घटित होने पर क्षेत्र के हालात का जल्द से जल्द जायजा लेना चाहिए तथा अन्य किसानों की हालत सुधारने के लिए समुचित उपाय करने चाहिए।
3. घटनाओं के बाद परिवार के सदस्यों तथा आसपास के लोगों के मानसिक तनाव को दूर करने की कोशिश होनी चाहिए। यह कार्य मनोचिकित्सकों की देख-रेख में होना चाहिए।
4. एक सुरक्षा तंत्र जाल का निर्माण करना चाहिए, जो कृषकों तथा उसके उत्पादों को सुरक्षा प्रदान करे।
5. एक सूचना तंत्र का विकास करना चाहिए, जिसमें 24 घंटे कृषि सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था हो।

दीर्घकालिक उपाय (Long Term Measures)

1. कृषकों से सम्बन्धित नीतियों तथा प्रावधानों की पुनर्संरचना (Restructuring) की आवश्यकता है, जैसे–कृषकों की आसान साख तक पहुँच उपलब्ध कराना, बाजार तक पहुँच सुनिश्चित करना, न्यूनतम समर्थन मूल्य को सही तरीके से लागू करना इत्यादि।
2. आधारभूत संरचना का विकास तथा इसमें निजी निवेश को प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे किसान अपनी फसलों की पैदावार बढ़ा सकेंगे तथा उत्पाद को सुरक्षित जमा रख सकेंगे, जिससे बाद में लाभ उठाया जा सके।
3. वाणिज्यिक कृषि के लिए किसानों को अग्रिम राशि (Advance Amount) की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे उन्हें ऋण लेकर खेती नहीं करनी पड़े।
4. अनुपूरक कृषि गतिविधियों जैसे- पशुपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्यपालन आदि को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे अतिरिक्त आय का सृजन हो।
5. फसल के विविधिकरण को प्रोत्साहन के साथ फसल के पैटर्न को भी निर्देशित किया जाना चाहिए, जिससे जोखिम में कमी आए।
6. किसानों को 'रेन वाटर हार्वेस्टिंग' (वर्षा जल संचय) तकनीकों की जानकारी देनी चाहिए। इसके साथ-साथ जल के कम उपयोग वाली तकनीकों तथा उपकरणों जैसे ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकल आदि के प्रयोग से जल संरक्षण करना चाहिए।
7. ऑर्गेनिक खेती को बढ़ावा देना चाहिए। इससे खाद तथा कीटनाशकों पर खर्च को कम या बंद किया जा सकता है।
8. बाजार तथा जलवायु की अनिश्चितता से बचने के लिए फसलों के विविधिकरण पर ध्यान देना चाहिए।
9. नकली खाद, बीज तथा कीटनाशकों के निर्माता तथा विक्रेताओं के लिए सख्त सजा के प्रावधान होने चाहिए।
10. जो साहूकार किसानों से ज्यादा ऋण वसूलते हैं उनके खिलाफ भी सख्त कार्यवाही की जानी चाहिए।
11. ग्राम पंचायतों को ऐसी व्यवस्था विकसित करनी चाहिए जिससे वे ऋणग्रस्त तथा आत्महत्या संभावित वाले किसानों की पहचान कर सकें और उन्हें संकट से निकाल सकें।
12. कमीशन एजेंटों, व्यापरियों तथा बिचौलियों (Middlemen) की भूमिका को कम करना चाहिए ताकि कृषक अपने उत्पाद पर अधिकतम कीमत पा सकें।
13. एक समग्र कृषि बीमा योजना लागू होनी चाहिए। नकदी फसलों जैसे–कपास, गन्ना, खाद्य तेल आदि पर खास ध्यान देना चाहिए।

विकास सम्बन्धी मुद्दें : संभावित प्रश्न

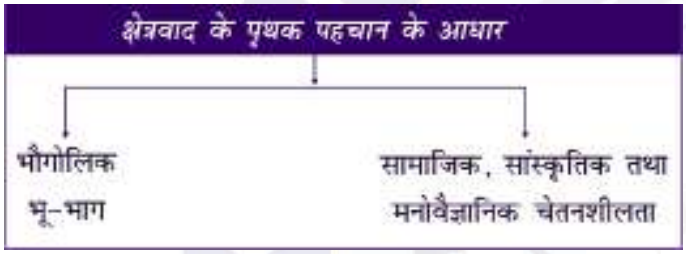
1. भारत में बढ़ती हुई विषमता ने आर्थिक सुधारों के विकास सम्बन्धी दावों पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इस सम्बन्ध में अपन मत प्रस्तुत करें।
2. भारत में बढ़ती हुई विषमता को दूर करने हेतु हमें अपने विकास सम्बन्धी नीति में किस प्रकार के बदलावों की आवश्यकता है? स्पष्ट करें।
3. भारत में विभिन्न प्रकार की विषमताओं में वृद्धि के दुष्परिणामों की चर्चा करें।
4. पर्यावरण संरक्षण के प्रति अति जागरुकता ने भारत के विकास मार्ग में किस प्रकार नवीन बाधाएँ उत्पन्न की हैं? स्पष्ट करें।
5. पर्यावरण संरक्षण व विकास दोनों ही आवश्यक है। दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु अपना सुझाव प्रस्तुत करें।
6. भारत में उस वर्ग को विकास की सर्वाधिक कीमत चुकानी पड़ रही है, जो विकास के लाभों से सर्वाधिक वंचित है। स्पष्ट करें।
7. विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं की चर्चा करें तथा इन समस्याओं के बेहतर समाधान हेतु उपाय सुझाएं।
8. किसान आत्महत्या हेतु उत्तरदायी कारणों की चर्चा करें तथा इसके समाधान हेतु समुचित उपाए सुझाएँ।
9. किसान आत्महत्या हमारी कृषि विकास सम्बन्धी नीति का दुष्परिणाम है। किसान आत्महत्या रोकने हेतु हमें अपनी कृषि विकास नीति में किस प्रकार के परिवर्तन लाने चाहिए।
10. एक बेहतर भारत के निर्माण हेतु विकास एवं पर्यावरण के मध्य पूरक सम्बन्ध की आवश्यकता है। स्पष्ट करें।

✪✪✪✪✪

15 भारत में क्षेत्रवाद (Regionalism in India)

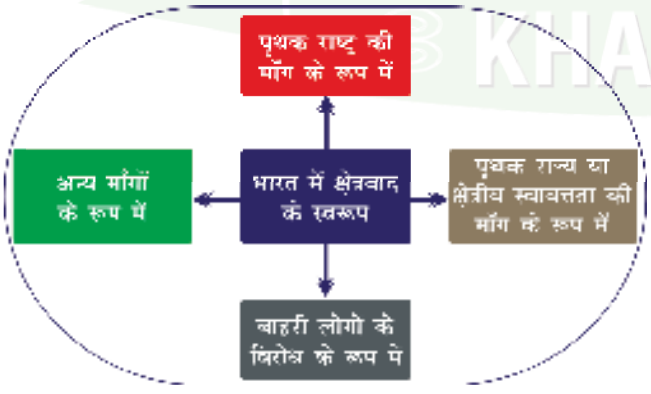
परिचय (Introduction)

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार क्षेत्र भूतल का वह समरूपीय (Similar) भाग है जो अपनी भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर पड़ोसी भू-भाग से पृथक होता है। राष्ट्रीय भू-भाग के रूप में एक क्षेत्र में अपनी प्रथाओं एवं आदर्शों के प्रति चेतना पायी जाती है जो एक क्षेत्र के सदस्यों को राष्ट्र के दूसरे भू-भागों में पृथक पहचान (Separate Identity) प्रदान करती है। इस आधार पर एक क्षेत्र की दो विशेषताएँ होती हैं:-



एक क्षेत्र विशेष के लोगों का कुछ सामान्य आधारों पर उस क्षेत्र के साथ लगाव की भावना ही क्षेत्रवाद है। जब यह भावना प्रबल हो जाती है तो व्यक्ति क्षेत्रीय हितों के समक्ष राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा कर देता है और ऐसी स्थिति में क्षेत्रवाद एक समस्या का रूप धारण कर लेता है।

वर्तमान भारत में क्षेत्रवाद एक प्रमुख समस्या है जिसको राष्ट्रीय एकता (National Unity) के समक्ष एक चुनौती के रूप में देखा जा रहा है। हाल में महाराष्ट्र में अन्य राज्यों के छात्रों के प्रति उग्र व्यवहार और 'महाराष्ट्र मराठियों के लिए' का नारा तथा असम में अन्य राज्य के लोगों के प्रति किया गया बर्ताव या 'असम माता पहले भारत माता बाद में' जैसी क्षेत्रवादी गतिविधियाँ संप्रति (Present) राष्ट्रीयता के समक्ष एक प्रमुख खतरे को परिलक्षित करती हैं।



1. ***पृथक राष्ट्र की माँग के रूप में (As a demand for Separate Nation)*** – यह क्षेत्रवाद का सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण स्वरूप है। यह लोगों में कुछ प्रदेशों और क्षेत्रों को भारतीय संघ से अलग करने की माँग के रूप में उभरा है। ऐसी माँगे स्वतंत्रता के बाद शीघ्र ही उठने लगीं, परंतु अब वे कमजोर हो गयी हैं। 1963 के पूर्व तक द्रविडनाड गणतंत्र की स्थापना के लिए किया जाने वाला आंदोलन, जनरल फिजो के नेतृत्व में स्वतंत्र नागालैंड का आंदोलन, लालडेंगा के नेतृत्व में फिजो समझौता से पूर्व तक का मिजो आंदोलन, आजाद कश्मीर के लिए किया जाने वाला आंदोलन तथा खालिस्तान आंदोलन पृथक राष्ट्र की स्थापना के उद्देश्यों पर आधारित क्षेत्रीयता के उदाहरण हैं।

2. ***पृथक राज्य या क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग के रूप में (As a Demand for Separate States or Regional Autonomy)*** – इस प्रकार का क्षेत्रवाद एक प्रदेश के किसी भाग की अस्मिता और विकास की भावना में निहित होता है। यह प्रदेश के एक भाग का दूसरे भाग पर शोषण व वंचन को भी दिखाता है। इस प्रकार क्षेत्रवाद का उद्भव मुख्यत: क्षेत्रीय विषमता व राजनीतिक सहभागिता (Political Participation) के अभाव आदि के कारण होता है।

   केंद्रीकरण (Centralization) की प्रवृत्तियों से असंतुष्ट होने पर प्रांतों के द्वारा अपने आर्थिक एवं राजनीतिक हित में अधिक स्वायत्ता (Autonomy) दिए जाने की माँग समय-समय पर की जाती है। केंद्र के द्वारा इन माँगों को राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक कहकर दबाए जाने की प्रवृत्ति क्षेत्रीय आंदोलन की स्थिति उत्पन्न करती है।

   पृथक राज्य कायम करने की माँग को लेकर भारत में कई आंदोलन चलाए गए हैं एवं उनके परिणामस्वरूप बंबई का विभाजन करके गुजरात राज्य, पंजाब का विभाजन करके हरियाणा राज्य, असम का विभाजन करके मेघालय राज्य, उत्तर प्रदेश का विभाजन करके उत्तरांचल राज्य, मध्य प्रदेश का विभाजन करके छत्तीसगढ़ राज्य बनाए गए। अभी भी गोरखालैंड, बोडोलैंड आदि कई आंदोलन जारी हैं।

3. ***बाहरियों के विरोध के रूप में (As a Opposed to Out Siders)*** – इस प्रकार के क्षेत्रवाद के उदाहरण असम में बाहरियों का विरोध, महाराष्ट्र में उत्तर प्रदेश, बिहार के लोगों का विरोध, झारखंड में दिकुओं के विरोध के रूप में देखा जा सकता है। इस तरह के क्षेत्रवाद का उद्भव स्थानीय संसाधनों पर स्थानीय लोगों के एकाधिकार (Monopoly) की भावना के कारण होता

है। क्षेत्रीय दलों (शिव सेना, एमएनएस, असमगण परिषद्) द्वारा राजनीतिक लाभ लेने हेतु ऐसे मुद्दों को हवा दी जाती है। क्षेत्रवाद के इस स्वरूप में बाहरी लोगों की हत्या (असम में बिहारी मजदूरों की हत्या) मारपीट (महाराष्ट्र में उत्तर प्रदेश एवं बिहार के परीक्षार्थियों के साथ मारपीट), धमकी आदि घटनाएँ देखी जाती हैं।

इस प्रकार के क्षेत्रवाद में भूमि पुत्र (सन ऑफ द स्वायल) की वैचारिकी कार्य करती है जो मुख्यत: आर्थिक असुरक्षा के कारण विकसित हुई है।

असम में सीमित नियोजन (रोजगार) के अवसरों पर पड़ोसी राज्य के प्रवासी बंगालियों एवं बिहारियों से उत्पन्न असुरक्षा के कारण असमी मूल के निवासियों ने आंतरिक उपनिवेशवाद (Colonialism) विरोधी उग्र क्षेत्रीय आंदोलन चलाया। झारखंड राज्य सरकार द्वारा जारी मूल स्थायी आवासी (डोमिसाइल) नीति के आधार पर नौकरियों में आरक्षण देने की नीति के परिणामस्वरूप उभरे आदिवासी समूहों एवं दिकू (बाहर से आकर झारखंड में बसे गैर आदिवासी) समूहों में संघर्ष का दौर इस श्रेणी की क्षेत्रीयता का तात्कालिक उदाहरण हैं।

4. ***अन्य माँगों के रूप में (As Other Demand)–*** भारत में क्षेत्रवाद के उपरोक्त वर्णित स्वरूपों के अतिरिक्त अन्य कई स्वरूप भी प्रचलित रहे हैं, जैसे-भाषा की मांग को लेकर, नदी जल बंटवारे, राज्य की सीमा विवाद संबंधी आदि।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के राजभाषा के विषय को लेकर प्रमुख मतभेद उत्पन्न हुआ। संविधान में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को सरकारी कामकाज के लिए संघ की राजभाषा और प्रदेशों के बीच और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश के बीच संप्रेषण (Communication) की भाषा बनाने की बात कही गई। राजभाषा से संबंधित निर्देश को लागू करने के प्रयत्न ने एकता के स्थान पर अधिक गहरी भाषाई प्रतिद्वंद्विता (Linguistic Rivalry) उत्पन्न कर दी। दक्षिण प्रदेशों में हिंदी का विरोध प्रबल राजनीतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया। इन प्रदेशों के अधिकांश लोगों के साथ-साथ पूर्वी भारत के गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के लोगों ने भी हिंदी को थोपने का विरोध किया।

दक्षिण भारत में हिंदी के प्रति बढ़ते हुए विरोध को देखते हुए 1959 में जवाहरलाल नेहरू ने दक्षिण भारत के लोगों को यह आश्वासन दिया कि (क) उन पर हिंदी को नहीं थोपा जाएगा और (ख) अंग्रेजी को सहायक क्षेत्रीय भाषा के रूप में सरकारी उद्देश्यों के लिए तब तक प्रयोग में लाया जाएगा जब तक लोग इसे चाहेंगे। इसका निर्णय हिंदी भाषी लोगों की अपेक्षा गैर-हिंदी भाषी लोगों पर छोड़ दिया जाएगा।

भारत सरकार की राजभाषा नीति प्रस्ताव ने हिंदी, अंग्रेजी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषा को भी सरकारी मान्यता दे दी। नीति प्रस्ताव में यह संकेत दिए गए कि हिंदी के विकास के लिए उचित कदम उठाने चाहिए तथा अंग्रेजी को एक महत्त्वपूर्ण संबद्ध भाषा के रूप में जारी रखा जाए।

भारत में प्रदेश सीमाओं से संबंधित क्षेत्रवाद भी प्रचलित रहा है। इसमें एक या अधिक प्रदेशों की अस्मिताएँ (Identities) एक दूसरे को आच्छादित करने लगती हैं। इससे उनके हितों को खतरा भी पैदा हो जाता है। सामान्यत: नदी जल विवादों और दूसरे मुद्दों, विशेषतया महाराष्ट्र, कर्नाटक सीमा विवाद को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

क्षेत्रवाद का महत्त्व (Importance of Regionalism)

क्षेत्रवाद का महत्त्व केवल विघटनकारी शक्ति (Disruptive Power) के रूप में ही नहीं है, यह राष्ट्रीय एकीकरण का विरोधी मात्र नहीं है। क्षेत्रवाद एवं राष्ट्रीय एकीकरण दोनों सृजनात्मक (Creative) साझेदारी के रूप में रह सकते हैं और दोनों ही विकास के पक्ष में हैं। क्षेत्रवाद, क्षेत्र के विकास पर जोर देता है और राष्ट्रीय एकीकरण पूरे राष्ट्र के विकास के लिए जोर देता है। यदि हमें क्षेत्रवाद और राष्ट्रीय एकीकरण (National Integration) के अंतर्विरोधी मुद्दों का समाधान चाहिए तो देश की राजनीतिक प्रणाली को संघीय और प्रजातांत्रिक ही बने रहना आवश्यक है।

क्षेत्रवाद, राष्ट्रीय एकात्मकता का विघटन नहीं करता है। राष्ट्रीय, एकात्मकता के लिए महत्त्वपूर्ण शर्त है कि राष्ट्रवाद विभिन्न प्रकार की क्षेत्रीय उप-राष्ट्रीयताओं पर अपना नियंत्रण रख सके। दूसरे शब्दों में क्षेत्रवाद और राष्ट्रीयतावाद के बीच संतुलन होना आवश्यक है।

क्षेत्रवाद संघवाद को अधिक सफल बना सकता है। इस तरह से क्षेत्रीय अस्मिताओं की बढ़ोत्तरी समस्या नहीं बन पाएगी। यह स्वाभाविक है कि अपनी विशिष्ट संस्कृति के प्रति सचेत क्षेत्रीय समुदाय को संघीय सरकार के साथ अधिक समान साझेदारी के आधार पर व्यवहार करना चाहिए। इससे राष्ट्र में केंद्रीय प्रवृत्तियाँ कम होंगी और सत्ता केंद्र से प्रदेशों की तरफ परिवर्तित हो जाएगी।

वास्तव में किसी भी रूप में देखा जाए परंतु भारत जैसे विशाल व विविधतापूर्ण देश में क्षेत्रवाद और उप-क्षेत्रीयतावाद (Sub-Regionalism) से बचा नहीं जा सकता। इन दोनों क्षेत्रवादों का अस्तित्व न केवल मूल राष्ट्रीय मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण है, अपितु राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के कारण यह अस्तित्व तर्क पूर्वक पैदा होता है। अत: संघवाद की अवधारणा के लिए क्षेत्रवाद और उपक्षेत्रवाद से बढ़कर कुछ भी हो, मौलिक नहीं है।

भारत में क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम (Consequence of Regionalism in India)

क्षेत्रवाद के महत्त्व के संदर्भ में उपरोक्त विश्लेषण के बावजूद भारत में क्षेत्रवाद की उभरती प्रवृत्ति ने कई तरह के दुष्परिणामों को उत्पन्न किया है, जैसे:-

1. विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के बीच संघर्ष एवं तनाव (असम एवं गैर-असमियों के बीच, झारखंडी एवं दिकुओं के बीच) से जहाँ एक ओर कानून एवं व्यवस्था की समस्या उत्पन्न होती है वहीं संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिक स्वतंत्रता का भी हनन होता है।
2. राज्य तथा केंद्र सरकार के बीच तनाव बढ़ जाता है क्योंकि जहाँ राज्य सरकार क्षेत्रीय हितों से निर्देशित होती है वहीं केंद्र सरकार को व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखना पड़ता है।
3. क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में बाधा पहुँचाता है। यह क्षेत्रीय मुद्दों को उभारकर वहाँ के लोगों को राष्ट्रीय मुद्दों के प्रति उदासीन बना देता है।
4. यह आर्थिक विकास में बाधक बन जाता है क्योंकि क्षेत्रीय हितों में ही उलझे रहने के कारण लोग राष्ट्रीय आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण (Modernization) की प्रक्रिया से कट जाते हैं साथ ही, संघर्षों में संसाधनों का अपव्यय करते हैं।
5. क्षेत्रवाद के कारण लोग राष्ट्र की शक्ति को चुनौती देते हैं, जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी खतरा पैदा हो जाता है।

भारत में क्षेत्रवाद के कारण (Causes of Regionalism in India)

भारत एक बहुलक समाज है तथा भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता (Geographical and Cultural Diversity) इसका आवश्यक पक्ष है जो अन्य तत्वों के साथ जुड़कर क्षेत्रवाद की समस्या को उत्पन्न करता रहा है। वे अन्य तत्त्व ही मूलतः क्षेत्रवाद के कारण हैं जिन्हें निम्न बिंदुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है:-

1. क्षेत्रीय आर्थिक विषमता, जो भौगोलिक विविधता या त्रुटिपूर्ण नीतियों का परिणाम रही है, पिछड़े एवं गरीब क्षेत्र के लोगों में क्षेत्रीय वंचन (Regional Deprivation) को उत्पन्न किया है।
2. विरोधी आर्थिक एवं राजनीतिक हितों के चलते जो आर्थिक एवं राजनीतिक विषमता के बोध उत्पन्न हुए हैं, ने भी लोगों में क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है।
3. मुख्यतः केंद्र सरकार द्वारा विकास कार्यक्रमों में अपनाई गई नीतियों के कारण असमान विकास से प्रभावित लोगों में असंतोष उभरा है।
4. भारतीय राजनीति में कुछ राजनीतिक दलों या संगठनों या नेतृत्व के निहित स्वार्थ भी नृजातीय समूह को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करने के लिए क्षेत्रवाद को बढ़ावा देते रहे हैं।
5. अनेक समूहों द्वारा राज्य की कुछ नीतियों को अपने सांस्कृतिक क्षरण एवं अपने नृजातीय छवि के प्रतिकूल मानते हुए क्षेत्रीयता के आधार पर संगठित रूप से उसका विरोध किया जाता है।
6. विदेशों द्वारा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए भी क्षेत्रवाद को उद्वेलित किया जाता है। (उत्तर-पूर्व के राज्यों में)
7. वैश्वीकरण (Globalization) के कारण उत्पन्न पहचान के संकट ने भी विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को अपनी नृजातीय विशेषताओं (Racial Characteristics) के आधार पर संगठित होने के लिए उत्प्रेरित किया है, जिसका दुष्परिणाम क्षेत्रवाद के रूप में सामने आया है।
8. इसके अलावा अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी आदि तत्त्व भी उपरोक्त तत्त्वों के साथ जुड़कर भारत में क्षेत्रवाद को जन्म देने में सहायक रहे हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है कि क्षेत्रवाद एक सीमा तक भारत जैसे बहुलक समाज में राष्ट्रीय एकता एवं संतुलित विकास हेतु अपरिहार्य हैं क्योंकि इसके द्वारा न केवल संतुलित विकास संभव होता है बल्कि राष्ट्र में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति भी कम होती है और सत्ता केंद्र से प्रदेशों की तरफ विकेंद्रित हो जाती है। परंतु जब क्षेत्रवाद अपने नकारात्मक संदर्भ में प्रकट होने लगता है तो यह कई रूपों में राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के समक्ष चुनौती को प्रस्तुत करता है, जिसे समकालीन भारतीय समाज (Contemporary Indian Society) में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अतः जरूरत है इस समस्या के पूर्ण उन्मूलन की जिसको कुछेक सुझावों पर अमल करके संभव बनाया जा सकता है, ताकि क्षेत्रवाद की समस्याओं को दूर कर विविधता में एकता को सुरक्षित रखा जा सके और भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित किया जा सके:-

क्षेत्रवाद की समस्या की रोकथाम हेतु सुझाव (Suggestion to Prevent the Problem of Regionalism)

1. राष्ट्रवाद या हम सब एक है-की भावना को विकसित किया जाए।
2. वैयक्तिक एवं क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर आर्थिक असमानता को दूर किया जाये।
3. आर्थिक विकास को सुदृढ़ किया जाये तथा गरीबी और बेरोजगारी का उन्मूलन किया जाये।
4. शिक्षा का अधिक से अधिक प्रसार किया जाये।
5. स्वार्थी राजनीतिक दलों एवं संगठनों एवं व्यक्तियों पर प्रतिबंध लगाया जाये।
6. वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों के मध्य पारस्परिक आदान-प्रदान (Mutual Exchange) को तेज करके एक सामान्य भारतीय संस्कृति का निर्माण किया जाए, जिसमें भारत के सभी क्षेत्रों एवं विशिष्ट सांस्कृतिक तत्त्वों का समावेश हो ताकि सभी क्षेत्र एवं संस्कृति के लोगों में इस सांस्कृतिक समानता के आधार पर सामुदायिक भावना विकसित हो सके।
7. संचार साधनों (मीडिया) की भूमिका को इस दिशा में सकारात्मक रूप से सुनिश्चित किया जाए।

✪✪✪✪✪

16 भारत में धर्मनिरपेक्षता (Secularism in India)

परिचय (Introduction)

धर्मनिरपेक्षता आधुनिक समाज की एक केंद्रीय विचारधारा (Ideology) है जो सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को तर्क एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर धर्म के अवैज्ञानिक प्रभाव के उन्मूलन पर बल देती है। विचारधारा पर आधारित इस परिवर्तन की प्रक्रिया को धर्मनिरपेक्षीकरण के रूप में जाना जाता है। ब्रायन आर. विल्सन के अनुसार धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया को इंगित करती है जिसके अंतर्गत विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ धार्मिक अवधारणाओं की पकड़ या प्रभाव से बहुत हद तक मुक्त हो जाती हैं। इस तरह धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत प्रतिदिन के जीवन पर धार्मिक नियंत्रण का कम होना, धार्मिक विश्वासों के प्रति विरोधात्मक स्थितियों (Adversarial Situation) का विकास और कर्मकाण्डीय प्रक्रिया (Ritualistic Process) का तर्क द्वारा स्थानापन्न किया जाना, शामिल किया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के निम्नलिखित लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:–

1. धर्म निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया में विचार स्वतंत्रता एवं तर्कयुक्त चिंतन पर जोर दिया जाता है।
2. इस प्रक्रिया के अंतर्गत अलौकिक एवं अधिप्राकृतिक सत्ता का विरोध तथा इहलौकिकता में विश्वास बढ़ता जाता है और लोग भौतिक जीवन की प्रगति में अधिक विश्वास करने लगते हैं।
3. इस प्रक्रिया के तहत जगत के अध्ययन एवं जीवन की समस्याओं के समाधान में धर्म के प्रति उदासीनता और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर निर्भरता बढ़ती जाती है तथा मानव जीवन के अध्ययन एवं उनकी समस्याओं के समाधान हेतु तार्किक एवं वैज्ञानिक सिद्धांतों में विश्वास धार्मिक विश्वासों पर आच्छादित हो जाता है।
4. इस प्रक्रिया का एक प्रमुख पहलू धर्म का धर्मनिरपेक्षीकरण है जिसके अंतर्गत सभी धर्म अपने सिद्धांतों व व्यावहारिक प्रक्रियाओं को अपने सदस्यों की बदलती आवश्यकताओं एवं समाज की बदलती स्थिति के अनुरूप ढाल लेते हैं। यूरोप में प्रोटेस्टेंटवाद का विकास या फिर आधुनिक धार्मिक संस्थाओं द्वारा आधुनिक अस्पतालों, धर्मनिरपेक्ष शिक्षण संस्थानों आदि का संचालन इस प्रक्रिया को परिलक्षित करते हैं।

धर्मनिरपेक्षता का उद्भव (Emergence of Secularism)

धर्मनिरपेक्षता का उद्भव यूरोप के दैनिक जीवन में प्रभावी धर्म या चर्च के प्रभाव के उन्मूलन के रूप में हुआ माना जाता है। मध्यकाल का यूरोपीय समाज एक धर्म प्रधान समाज था और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म का प्रभाव प्रबल था। 13वीं - 14वीं सदी तक आते-आते धर्म और राज्य के बीच गठबंधन ने धर्म के अंतर्गत अनेक रूढ़ियों एवं कुरीतियों (Stereotypes and Vices) को विकसित किया जो राज्य और धर्म द्वारा किए जाने वाले शोषण को वैधता प्रदान करती थीं।

यूरोप के सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म के इसी प्रभाव के उन्मूलन के रूप में धर्मनिरपेक्षता एवं धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया का उद्भव हुआ, जिसके लिए निम्नलिखित घटनाओं को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है:–

1. पुनर्जागरण (Renaissance) आंदोलन ने तर्कसंगत ज्ञान के महत्त्व में वृद्धि को संभव बनाया। फलत: कला एवं ज्ञान के प्रति रुचि व तर्कसंगत खोज के साथ ही ज्ञान के क्षेत्र में पुनर्व्याख्या एवं आलोचना का दौर आरम्भ हुआ। छापेखाने के आविष्कार के कारण इन विचारों की जन सामान्य के लिए सरलता से उपलब्धता संभव हो सकी और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बल मिला।
2. यूरोप की वैज्ञानिक क्रांति ने तर्कसंगत, पद्धतिबद्ध तथा प्रयोगसिद्ध ज्ञान के महत्त्व में वृद्धि को संभव बनाया। फलत: इस ज्ञान के आधार पर विश्व संबंधी पूर्व पारलौकिक व्याख्याओं एवं धारणाओं को चुनौती मिली, जिससे धर्म के प्रभाव में कमी आयी। इस क्रांति से मनुष्य का विश्व और प्राकृतिक जगत के बारे में वस्तुनिष्ठ एवं तर्कसंगत ज्ञान में वृद्धि हुई और इस संदर्भ में धर्म पर निर्भरता में कमी आई।
3. सोलहवीं सदी में ईसाई धर्म के अंतर्गत सुधार आंदोलन द्वारा ईसाई धर्म में विद्यमान मध्ययुगीन कुरीतियों को समाप्त करने व बाइबिल के अनुरूप सिद्धांतों तथा रीतियों (Rituals) के पुनर्स्थापना पर बल दिया गया तथा इन सिद्धांतों एवं रीतियों को प्रोटेस्टेंटवाद नाम दिया गया। प्रोटेस्टेंटवाद ने ईश्वर को व्यक्तिगत बना दिया और व्यक्तिगत सांसारिक क्रिया को ईश्वर की आस्था के प्रतीक के रूप में प्रोत्साहित करके धर्म को अधिकाधिक व्यावहारिक एवं तर्कसंगत बनाने का प्रयास किया।
4. यूरोप में होने वाले व्यापार एवं वाणिज्य के विकास तथा औद्योगिक क्रांति के कारण मध्यम वर्ग का विकास संभव हुआ। इस मध्यम वर्ग ने अपने अस्तित्व को स्थापित करने की प्रक्रिया में धर्म आधारित परंपरागत विचारधारा एवं व्यवस्था का विरोध किया। साथ ही, औद्योगीकरण ने व्यक्ति को विवेकसम्मत आर्थिक क्रियाओं की ओर प्रेरित कर समाज को अधिकाधिक तर्कसंगत बनाने का प्रयास किया।

5. ब्रायन विल्सन ने अपनी पुस्तक में साम्यवाद जैसी विचारधारा और ट्रेड यूनियन जैसे संगठनों के विकास को भी धर्मनिरपेक्षीकरण के उद्भव के कारण के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने यह दर्शाया है कि इस विचारधारा और ऐसे संगठनों के विकास ने धार्मिक व्याख्याओं को चुनौती दी और समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करके तर्कसंगत विचार और विश्व दृष्टि के विकास में सहायता पहुंचायी है।

स्पष्ट है यूरोप में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया एक लंबी, जटिल एवं ऐतिहासिक घटना है जो कई तत्त्वों का संयुक्त परिणाम रही है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता (Secularism in India)

धर्मनिरपेक्षीकरण से तात्पर्य सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म के प्रभाव की उन्मूलन की प्रक्रिया से है और इस अर्थ में धर्मनिरपेक्षीकरण का उद्भव यूरोप में संभव हुआ जो धीरे-धीरे आधुनिकीकरण (Modernization) के एक घटक के रूप में आज दुनिया के सभी समाजों में क्रियाशील है, परंतु भारत में धर्मनिरपेक्षता एक गतिशील अवधारणा रही है। भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता को एक जीवनशैली के रूप में स्वीकार किया गया है जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग स्वतंत्रता समानता एवं सहिष्णुता की भावना के आधार पर बिना एक दूसरे के परंपरागत विश्वासों में बाधा उत्पन्न किए, ऐसे कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना करे, जिसमें राज्य का अपना कोई धर्म न हो और उसके लिए सभी धर्म समान हों।

इस रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया, जिसके तहत संवैधानिक रूप से राज्य किसी विशिष्ट धर्म से संबंधित नहीं है और राज्य तथा धर्म के बीच पृथकता विद्यमान है। भारत में एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में धर्मनिरपेक्षता के लक्षणों को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है:–

भारत में धर्मनिरपेक्षता के लक्षण (Characteristics of Secularism in India)

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत के लिए पंथनिरपेक्ष / धर्मनिरपेक्ष राज्य की घोषणा की गयी है।
2. राज्य किसी धार्मिक समुदाय पर अपनी संस्कृति नहीं थोपेगा और कोई भी धर्म या समुदाय स्वेच्छापूर्वक अपने शिक्षण संस्थान को स्थापित करने में स्वतंत्र होंगे (अनुच्छेद 30)।
3. राज्य द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान से धर्म पृथक होगा (अनुच्छेद 28)।
4. राज्य किसी के धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेगा (अनुच्छेद 26, 27)।
5. सभी को अपने धर्म के पालन की स्वतंत्रता है (अनुच्छेद 25)।
6. संविधान के समक्ष सभी समान है और राज्य बिना किसी भेदभाव के सभी को अवसर की समानता उपलब्ध करता है (अनुच्छेद 14 से 18)।
7. भारत का अपना कोई राज्य धर्म नहीं है और संवैधानिक रूप से भारत राज्य किसी विशिष्ट धर्म से संबंधित नहीं है।

एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत (India as a Secular State)

एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत की प्रकृति को दो स्वरूपों के संदर्भ में समझा जा सकता है।

सैद्धांतिक स्वरूप

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया, जिसका तात्पर्य है कि सैद्धांतिक रूप से भारतीय राज्य किसी विशिष्ट धर्म से संबंधित नहीं है और राज्य तथा धर्म के बीच पृथकता, भारतीय संविधान की प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष राष्ट्र की घोषणा और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 25, 26, 27, 28, 30 में निहित प्रावधान इस बात की पुष्टि करते हैं।

व्यवहारिक स्वरूप

सैद्धांतिक रूप से धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के बावजूद भारत में धर्मनिरपेक्षता का व्यवहारिक स्वरूप सैद्धांतिक स्वरूप से भिन्न प्रतीत होता है, जैसे:–

1. सरकार द्वारा अल्पसंख्यक धर्म की शिक्षण संस्थाओं को अनुदान दिया जाता है।
2. अल्पसंख्यकों द्वारा धर्म के आधार पर विशेष सुविधाओं की माँग की जा रही है और कुछ राज्यों द्वारा इन्हें प्रदान भी किया जा रहा है।
3. आज तुष्टीकरण (Appeasement) की नीति के तहत चुनावी लाभ प्राप्त करने के लिए कुछ धार्मिक समूहों को धर्म के नाम पर विशेष सुविधा प्रदान की जा रही है।
4. राजनीतिक दलों द्वारा धर्म को आधार बनाकर मतों को लामबंद करने का प्रयास किया जा रहा है।
5. आज भारत में समान नागरिक संहिता का अभाव और अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों का प्रावधान किया गया है।
6. राज्य और धर्म में वैधानिक पृथकता के बावजूद सरकार या राज्य द्वारा किसी धार्मिक समुदाय विशेष पर समाज कल्याण के नाम पर धन खर्च किया जाता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारत में धर्मनिरपेक्षता के सैद्धांतिक व व्यवहारिक स्वरूप में कुछ ऐसे विरोधाभास परिलक्षित होते हैं, जो भारत की धर्मनिरपेक्ष राज्य की प्रकृति पर प्रश्न उठाते हैं और इसी आधार पर भारतीय धर्म-निरपेक्षता की आलोचना की जाती है और कुछ विद्वानों द्वारा यहाँ तक कहा जाता है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य नहीं है। परंतु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कोई भी धर्मनिरपेक्ष राज्य या समाज एक आदर्श-प्रारूपी (Ideal - Model) अवस्था है जिसकी प्राप्ति किसी भी आधुनिक राज्य या समाज का प्रमुख लक्ष्य होता है। चूंकि राज्य समाज के अनुरूप होता है और जब तक भारत के संपूर्ण समाज में धर्म का प्रभाव व्याप्त है तब तक भारतीय राज्य

से पूर्ण धर्मनिरपेक्षता की अपेक्षा करना तर्क संगत नहीं हैं। भारत एक बहुलक समाज (Puluralistic Society) है जहाँ विभिन्न धर्म, संप्रदाय, भाषा, नृजातीयता आदि को मानने वाले लोग रहते हैं। एक संघ के रूप में भारत का निर्माण अमेरिका की तरह इकाईयों की इच्छा का परिणाम नहीं है, बल्कि यहाँ भारतीय संघ द्वारा इसकी इकाईयों को संगठित किया गया है। इसलिए भारत सरकार द्वारा विविधता में एकता के आदर्श को अपनाते हुए सभी धार्मिक एवं नृजातीय समुदाय (Ethnic Community) को उनकी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखते हुए राष्ट्र की मुख्य धारा में एकीकृत करने का आश्वासन दिया गया है और यह बात भारत सरकार द्वारा अपनाए गए धर्मनिरपेक्षता के स्वरूपों से भी परिलक्षित होती है जो यूरोपीय प्रतिरूप से भिन्न है। इसलिए भारत व्यवहारिक क्रिया-कलापों में धर्मनिरपेक्षता के सैद्धांतिक आदर्शों से कहीं-कहीं विचलित प्रतीत होता है। अत: निष्कर्ष है कि भारत को एक पूर्णत: धर्मनिरपेक्ष राज्य भले न कहा जाय, परंतु इसे एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष राज्य की संज्ञा अवश्य दी जा सकती है जो राज्य रूपी संस्थागत साधनों की मदद से लोगों की धार्मिक भावनाओं को महत्त्व देते हुए एक धर्मनिरपेक्ष समाज के आदर्श प्रारूप के स्वरूप की प्राप्ति की ओर निरंतर अग्रसर है, साथ-साथ इस प्रक्रिया में वह अपने बहुलक चरित्र को भी बनाए रखना चाहता है। इसी कारण वैधानिक रूप से धर्मनिरपेक्ष राज्य होते हुए भी इसकी गतिविधियाँ कुछ मामलों में धर्म से जुड़ी प्रतीत होती हैं।

भारत में धर्मनिरपेक्षीकरण का सामाजिक प्रभाव
Social Consequences of Secularism in India

ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज एक धार्मिक समाज रहा है जहाँ सामाजिक जीवन के सभी पक्ष धर्म के इर्द-गिर्द संगठित थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिक समाज के लक्ष्य को स्वीकार किया गया और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के तहत राज्य द्वारा अपने आप को धर्म से पृथक करते हुए आधुनिक शिक्षा, संवैधानिक प्रावधान आदि के माध्यम से भारतीय समाज को एक धर्मनिरपेक्ष आधुनिक समाज के रूप में बदलने का प्रयास किया गया है। पिछले 63 वर्षों से भारत में क्रियाशील धर्मनिरपेक्षीकरण की इस प्रक्रिया ने धर्म प्रधान भारतीय समाज के सभी पक्षों में कई परिवर्तनों को संभव बनाया है, जैसे:-

1. भारतीय समाज में विश्व एवं समाज के बारे में प्रचलित धार्मिक दृष्टिकोण कमजोर हुआ है तथा तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं के निर्माण के साथ धर्म का प्रभाव क्षेत्र सीमित हुआ है। आज लोगों में पवित्रता और अपवित्रता (Purity and Pollution) की धारणा कमजोर हुई है और भारतीय लोग अपनी सोच व गतिविधियों में अधिकाधिक लौकिक हुए हैं।
2. धर्म आधारित परंपरागत समाज के दार्शनिक आधार जैसे पुरुषार्थ, आश्रम व्यवस्था, कर्म व पुनर्जन्म का सिद्धांत, संस्कार, यज्ञ एवं ऋण की धारणा आदि आज महत्त्वहीन होते जा रहे हैं।
3. आज जाति व्यवस्था का धार्मिक आधार कमजोर हुआ है फलत: जाति व्यवस्था में निहित अस्पृश्यता, निर्योग्यता एवं विशेषाधिकार, जन्मजात पेशा, प्रदत्त प्रस्थिति, (Ascribed Status) खान-पान संबंधी प्रतिबंध, सांस्कारिक सोपान आदि का महत्त्व घटा है और आज जाति व्यवस्था मुख्यत: लौकिक आधार पर अपनी निरंतरता बनाए हुए है।
4. आज भारतीय स्तरीकरण व्यवस्था धार्मिक आधार पर निर्मित जाति स्तरीकरण से लौकिक आधार पर निर्मित वर्ग स्तरीकरण के रूप में परिवर्तित हो रही है फलत: जहाँ सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि और निम्न जातियों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है, वहीं जाति प्रतिस्पर्धा, तनाव एवं संघर्ष में भी वृद्धि हुई है।
5. धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया ने परंपरागत शक्ति संरचना में उच्च जातियों के महत्त्व को कमजोर करके और निम्न व मध्यम जातियों को राजनीतिक व आर्थिक शक्ति प्रदान करके शक्ति संरचना (Power Structure) में उन्हें उभरने का मौका दिया है, फलत: ये जातियाँ अनेक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक एवं प्रशासनिक पदों पर काबिज होकर अपने प्रस्थिति उन्नयन (Status Upgrade) में सफल हुई हैं।
6. आज भारत में विवाह का सांस्कारिक पक्ष कमजोर हुआ है और आज लोग विवाह धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए नहीं कर रहे हैं। नातेदारी संबंधों में भी पति-पत्नी, माता-पिता, पिता-पुत्र, पुत्र-पुत्री आदि एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन धार्मिक कर्त्तव्यों के रूप में न करके लौकिक आधार पर करते हैं। आज भारतीय स्त्रियों में अपने पति को परमेश्वर मानने की धारणा कमजोर हुई है फलत: जहाँ एक ओर महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार हुआ है तो दूसरी तरफ परिवारिक तनाव एवं विघटन में भी वृद्धि हुई है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज में विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया है और आधुनिकता की दिशा में सामाजिक परिवर्तनों को संभव बनाया है, परंतु अभी भी हम अपेक्षित लक्ष्य से दूर हैं। हाल के वर्षों में वैश्वीकरण जनित पहचान के संकट से उत्पन्न प्रतिक्रियात्मक चेतना, (Reactive Consciousness) धार्मिक रूढ़िवाद एवं सांप्रदायिक तनाव, धर्म का बाजारीकरण, कुछ व्यक्तियों या समूहों द्वारा अपने स्वार्थों को सिद्ध करने हेतु धर्म का प्रयोग आदि के परिणामस्वरूप भारत में धर्मनिरपेक्षीकरण की यह प्रक्रिया कमजोर हुई है फलत: सामाजिक जीवन के कई क्षेत्रों में धर्म का अवैज्ञानिक प्रभाव पुन: दृष्टिगत होने लगा है। अत: इन नवीन प्रवृत्तियों एवं समस्याओं के समाधान द्वारा ही धर्मनिरपेक्षीकरण की इस प्रक्रिया को क्रियाशील रखा जा सकता है और इसके माध्यम से आधुनिक समाज के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

धर्मनिरपेक्षीकरण की समकालीन चुनौतियाँ
Contemporary Challenges of Secularization

हालांकि धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कभी भी निर्बाध नहीं रही है परंतु हाल के वर्षों में देखा जाए तो यह प्रक्रिया लगभग सभी देशों में कई चुनौतियों का सामना कर रही है। भारत के संदर्भ में देखा जाए तो निम्न चुनौतियों की चर्चा करना प्रासंगिक होगा–

1. धार्मिक रूढ़िवाद और धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद (Religious Fundamentalism and Religious Revivalism) समकालीन विश्व की प्रमुख घटनाएँ हैं जो भारत में भी धर्मनिरपेक्षीकरण की वर्तमान प्रक्रिया के सामने प्रमुख चुनौती प्रस्तुत कर रही है। इन दोनों प्रक्रियाओं के तहत व्यक्ति अपने धर्म के प्रति अधिकाधिक केंद्रित हुआ है और अपने मूल धार्मिक विश्वासों को पुनः स्थापित करने का प्रयास कर रहा है।
2. वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट ने लोगों को पहचान की तलाश में अपने धर्म की ओर उन्मुख किया है परिणामतः धार्मिक रूढ़िवाद और धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद निरंतर मजबूत हो रहा है और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कमजोर हुई है।
3. धर्म के आधार पर होने वाले सांप्रदायिक तनाव, संघर्ष एवं दंगे भी धार्मिक भावना को भड़काकर अपने धर्म के प्रति लोगों को और अधिक रूढ़िवादी बना रहे हैं। गुजरात दंगे तथा हाल ही में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुए दंगे जैसी सांप्रदायिक घटनाओं ने धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित किया है।
4. भारत में राजनैतिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु अपने पक्ष में मतों को लामबंद करने हेतु धर्म का प्रयोग, अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण आदि घटनाओं ने धर्म के महत्त्व को बढ़ाकर धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित किया है।
5. भारत में विभिन्न धार्मिक संगठनों द्वारा सामाजिक क्षेत्र यथा शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में किए गए प्रयासों ने धर्म के महत्त्व और धार्मिक विश्वासों को मजबूत बनाकर धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित किया है।

   वैश्वीकरण और इससे उत्पन्न प्रतिस्पर्धा से वर्तमान समय में उत्पन्न तनावों से मुक्ति प्रदान करने हेतु धर्म की भूमिका और पहचान के संकट के समाधान में धर्म का महत्त्व, धर्म के समकालीन प्रकार्यों को दर्शाता है जो धर्म की निरंतरता बनाए रखने और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित करने की दिशा में उल्लेखनीय घटनाएँ हैं।
6. वर्तमान में बाजार की शक्तियों द्वारा धार्मिक विश्वासों व मान्यताओं का बाजारीकरण, धार्मिक चैनलों की भरमार (आस्था, साधना, संस्कार) आदि ने भी धर्म के प्रभाव में वृद्धि करके धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित किया है।

मूल्यांकन एवं निष्कर्ष / Evaluation and Conclusion

उपरोक्त समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन भारत में धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया कई चुनौतियों का सामना कर रही है, इसके बावजूद यह प्रक्रिया सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म के अवैज्ञानिक प्रभावों के उन्मूलन और धर्म को अधिकाधिक वैयक्तिक घटना के रूप में स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण रही है और इस रूप में इसने आधुनिक समाज के निर्माण को संपोषित किया है। आज राज्य के दैवीय अधिकार के सिद्धांतों को मान्यता प्राप्त नहीं है। विवाह एवं परिवार के निर्माण का उद्देश्य धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन नहीं रह गया है। स्तरीकरण की व्यवस्था के रूप में भारत में जाति व्यवस्था को वैधता प्रदान करने वाला धार्मिक आधार कमजोर हो गया है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में रूढ़िवादी मान्यताओं एवं कुरीतियों का उन्मूलन संभव हो पाया है।

स्पष्ट है कि समकालीन समाज पर धर्म का वैसा नियंत्रण नहीं रह गया है जैसा प्राचीन भारतीय समाज में विद्यमान था। आज हम संसार को रहस्यमयी धार्मिक विचारों के आधार पर परिभाषित नहीं करते और प्रकृति व जीवन के बारे में तथा उससे संबंधित समस्याओं के समाधान के बारे में वैज्ञानिक दृष्टि व तर्कयुक्त चिंतन पर जोर देते हैं। परंतु इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि आज भी हम भारत को एक धर्मनिरपेक्ष आधुनिक समाज के रूप में पूर्णतः स्थापित नहीं कर पाये हैं। अनगिनत नए धार्मिक आंदोलन, अध्यात्मिक जीवन के नए स्वरूप तथा नए धार्मिक विचार (एस्कॉन, साई बाबा, निरंकारी बाबा, डेरा सच्चा सौदा आदि) जो पिछले कुछ दशकों में उभरे हैं; धार्मिक आधार पर होने वाला संघर्ष जो दुनिया के सभी देशों में कमोवेश मात्रा में एक महत्त्वपूर्ण समकालीन घटना बना हुआ है, धार्मिक आतंकवाद जो अब विश्व के समक्ष एक ज्वलंत समस्या (Burning Issues) के रूप में विद्यमान है आदि इस तथ्य को परिलक्षित करते हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि धर्मनिरपेक्षीकरण जो समकालीन आधुनिक समाज के निर्माण की एक प्रमुख प्रक्रिया है अभी भी अपेक्षित लक्ष्य से दूर है और जब तक इसको एक आंदोलन का रूप नहीं प्रदान किया जाएगा और इसके मार्ग में आने वाली चुनौतियों का तर्कयुक्त निदान नहीं होगा तब तक एक धर्मनिरपेक्ष आधुनिक भारत की परिकल्पना साकार नहीं हो पाएगी।

✪✪✪✪✪

17 भारत में सांप्रदायिकता (Communalism in India)

सांप्रदायिकता का अर्थ (Meaning of Communalism)

सांप्रदायिकता मस्तिष्क की वह प्रवृत्ति है, जिसके अंतर्गत एक धार्मिक समूह के समर्थक अपने आपको एक पृथक सामाजिक राजनीतिक इकाई मानते हुए दूसरे समूह को अपने विरोधी हितों वाला समूह मानते हैं।

किसी धर्म के प्रति आस्था या धार्मिक व्यवस्था का अनुगमन सांप्रदायिकता नहीं कहा जा सकता बल्कि धर्म का शोषण करना सांप्रदायिकता है। एक धार्मिक समुदाय को दूसरे समुदाय के विरुद्ध तथा राष्ट्र की संयुक्तता के विरुद्ध उपयोग किया जाना सांप्रदायिकता है। सांप्रदायिकता वस्तुत: धार्मिकता को राजनीतिक शत्रुता में बदलने की प्रक्रिया है जो प्रगति, प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्ष संस्कृति, तार्किकता एवं वैज्ञानिकता का विरोधी है। साम्प्रदायिक व्यक्ति के लिए राजनीति एवं राज्य के मामलों में धार्मिक समुदाय ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार है। इस आधार पर सांप्रदायिकता राष्ट्रवाद की विरोधी प्रक्रिया है जिसमें बहुल नृजातीय, धार्मिक एवं भाषायी समुदायों को एकीकृत करने की बजाय विखंडित करने की रणनीति अपनायी जाती है। इसमें सामाजिक- सांस्कृतिक सहअस्तित्व एवं राजनीतिक समन्वय की विचारधारा का विरोध सन्निहित है।

सांप्रदायिकता धर्म और राजनीति का एक अपवित्र समझौता है जिसकी अभिव्यक्ति दो रूपों में परिलक्षित होती है-

1. धार्मिक उद्देश्यों के लिए राजनीतिक शक्ति का उपयोग किया जाना तथा
2. राजनीतिक लाभ के लिए धर्म का उपयोग किया जाना।

सांप्रदायिकता की प्रक्रिया में धर्म का उपयोग आत्म परिपूर्णता के लिए नहीं वरन् एक विशेषाधिकारयुक्त अस्त्र के रूप में राजनीतिक शक्ति हासिल करने के लिए किया जाता है।

इन परिभाषाओं के आधार पर सांप्रदायिकता की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं:-

सांप्रदायिकता की विशेषताएँ (Characteristics of Communalism)

1. सांप्रदायिकता एक मन:स्थिति अथवा मन की प्रवृत्ति है। सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति में प्रत्येक धार्मिक समूह को एक पृथक सामाजिक राजनीतिक इकाई के रूप में देखा जाता है।
2. इसके अंतर्गत प्रत्येक धार्मिक समूह दूसरे समूहों के प्रति प्रतिद्वंद्विता एवं वैर का भाव रखता है।
3. सांप्रदायिकता में धर्म का शोषण किया जाता है अर्थात् एक धार्मिक समुदाय को दूसरे धार्मिक समुदाय के विरुद्ध उपयोग किया जाता है।
4. सांप्रदायिकता में राजनीतिक आकांक्षा (Political Aspiration) एवं क्रिया हेतु धार्मिक समुदाय को ही समग्र के रूप में स्वीकारा जाता है।
5. सांप्रदायिकता विभिन्न समूहों को जोड़ने एवं तोड़ने की एक राजनीतिक रणनीति है।
6. सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता एवं प्रजातंत्र के आधार पर राष्ट्रीय एकीकरण एवं राजनीतिक व्यवस्था की विरोधी प्रक्रिया है।
7. सांप्रदायिकता एक विशेषाधिकार युक्त अस्त्र है जिसमें राजनीति एवं धर्म के अपवित्र गठबंधन के आधार पर शक्ति हासिल की जाती है। वस्तुत: यह नृजातीय अस्मिता (Ethnic Identity) एवं आधुनिक हितों (स्वार्थों) का एक विलक्षण संयोजन है।

भारत में सांप्रदायिकता (Communalism in India)

दो समुदायों के मध्य भाषा, जाति व अन्य नृजातीय तत्त्वों के आधार पर व्याप्त घृणा, विद्वेष या संघर्ष की मनोवृत्ति को सांप्रदायिकता कहते हैं, जिसको भारत में मुख्यत: धर्म के संदर्भ में देखा जाता है।

नई आर्थिक नीति व वैश्वीकरण की छाया में सांप्रदायिकता का विस्फोट भारत में वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य का एक प्रमुख अभिलक्षण (Characteristics) बन गया है। बाबरी मस्जिद विध्वंस कांड, गोधरा कांड के परिणामस्वरूप संपूर्ण भारत व गुजरात में फैला दंगा तथा पंजाब में अकाली दल और डेरा सच्चा सौदा के मध्य तनाव तथा मुजफ्फरनगर दंगा ने साम्प्रदायिक तनाव को ज्वलंत मुद्दा बना दिया है।

राष्ट्रपति के अभिभाषण में सांप्रदायिकता उन्मूलन को दी गई प्राथमिकता राष्ट्र के समक्ष सांप्रदायिकता की गंभीरता को परिलक्षित करती है।

भारत में सांप्रदायिकता के कारण (Causes of Communalism in India)

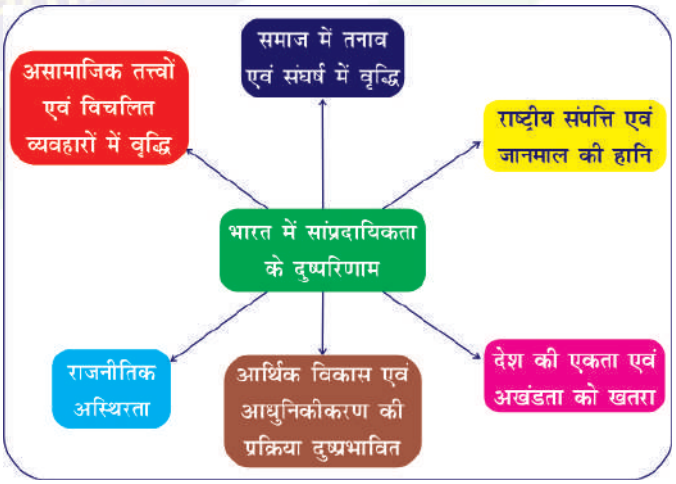
भारत में साम्प्रदायिक तनाव का बीजारोपण मुस्लिम आक्रमणों और मुस्लिम शासनकाल में ही हो गया था परंतु इसे सम्पुष्ट (Solid) करने वाले कारकों को निम्न रूप में देखा जा सकता है:-

1. अँग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों के मध्य विद्वेष को तीव्र कर दिया, जिसका परिणाम भारत का विभाजन और 1946-48 के दंगों में लगभग 2 लाख लोगों की मौत के रूप में सामने आया।
2. 1947 के बँटवारे के बाद भारतीय मुस्लिमों में पाकिस्तान के प्रति सहानुभूति (जो कि स्वाभाविक थी) से भारत के हिन्दू जनमानस में भ्रामक संदेश गया, जिसने उनके मन में मुस्लिमों के प्रति अविश्वास को पुष्ट किया।
3. शाहबानो प्रकरण ने दोनों समुदायों में परस्पर अविश्वास एवं विद्वेष को और बढ़ा दिया। शाहबानों के मामले में राजीव गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को नहीं माना तथा साम्प्रदायिक दबाव के कारण मुस्लिम महिला विधेयक पारित करवाया। परिणामस्वरूप हिन्दू कट्टरपंथी संस्थाओं ने भी राम जन्म भूमि विवाद पर न्यायालय के नकारात्मक फैसला आने की स्थिति में मानने से मना कर दिया।
4. स्वार्थी राजनीतिक दलों, नेताओं एवं असामाजिक तत्त्वों ने अपने स्वार्थों की सिद्धि हेतु इसको कम करने के बजाए इसे बढ़ाने का प्रयास किया (मुज्जफरनगर दंगों, केरल, कर्नाटक के 2004 के दंगे, गोधरा दंगा, मुबई दंगे)। श्री कृष्ण आयोग की रिपोर्ट भी इस बात की पुष्टि करती है।
5. धार्मिक कट्टरपंथियों (Religious Fundamentalist) द्वारा अपने-अपने समुदायों को धर्म रक्षा के नाम पर एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काया जा रहा है। कट्टरपंथियों द्वारा अपने समुदाय में हिन्दू खतरे में, इस्लाम खतरे में जैसे-नारों के द्वारा डर फैलाया जाता है। इससे दूसरे समुदाय के प्रति विरोध एवं कटुता तीव्र होती है।
6. मुस्लिमों द्वारा परिवार नियोजन नहीं अपनाया जाना भी हिन्दुओं में उनके प्रति संदेह और द्वेष को बढ़ाया है। हिन्दू कट्टरपंथियों द्वारा इसको मुस्लिमों की जनसंख्या बढ़ाकर भारत को एक मुस्लिम राष्ट्र बनाने की रणनीति के रूप में प्रचारित किया जाता है।
7. सरकार की तुष्टीकरण की नीति ने भी विभिन्न समुदायों को उद्वेलित किया है। वोट बैंक की राजनीति के तहत विभिन्न राजनीतिक दल द्वारा एक विशेष समुदाय हेतु योजनाएँ एवं कार्यक्रम का लाया जाना अन्य समुदाय में विद्वेष की भावना पैदा करती है।
8. कानून लागू करने वाली एंजेसियों के सम्प्रदायीकरण (वी.एन. राय का परसेप्सन ऑफ पोलिस न्यूट्रालिटी इन कम्यूनल राइट्स) ने स्थिति को और गम्भीर बनाया है।
9. वैश्वीकरणजनित पहचाना संकट के समाधान के क्रम में धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद एवं धार्मिक रूढ़िवाद में वृद्धि हुई है। इस प्रक्रिया ने भी धार्मिक समुदायों के मध्य संदेह एवं विद्वेष की भावना में वृद्धि की है। 2002 में गुजरात में हुए दंगों के दौरान असमाजिक तत्त्वों द्वारा लूटपाट एवं बलात्कार की वीभत्स घटनाओं में असमाजिक तत्त्वों की भूमिका देखी जा सकती है। इसी तरह 2013 के मुजफ्फरनगर दंगों में भी असमाजिक तत्त्वों की व्यापक भूमिका देखी जा सकती है।
10. वोट बैंक की राजनीति के अंतर्गत धार्मिक समुदायों के मतों का ध्रुवीकरण (Vote Polarization) हेतु भी दंगे एवं तनाव का वातावरण पैदा किया जाता है। हाल ही में हुए मुजफ्फरनगर दंगों को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।
11. धर्मांतरण एवं पुनः धर्मांतरण के मुद्दे के राजनीतिकरण ने भी संप्रदायवाद की उत्पत्ति एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। ओडिशा के कंधमाल के हुए दंगों को इसके उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है।
12. सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षणिक विसंगतियाँ भी ऐसे परिवेश का निर्माण करती हैं जो कि सम्प्रदायवाद के लिए उत्तरदायी होते हैं। कृषि मंत्रालय के एक शोध रिपोर्ट के अनुसार हिन्दी भाषी क्षेत्र में 50% प्रतिशत अतिरिक्त भूमि का सही वितरण न हो पाना साम्प्रदायिकता में बढ़ोतरी का एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

इनके अतिरिक्त कई अन्य कारक, यथा-गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, मीडिया की नकारात्मक भूमिका, हाल में उभर रहे धार्मिक कट्टरवाद, पड़ोसी देशों द्वारा प्रोत्साहन, संस्कृति तथा रीति-रिवाजों में भिन्नता आदि भी सांप्रदायिकता के पोषक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत में सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम (Consequences of Communalism in India)

भारत एक बहुलवादी समाज (Pluralistic Society) है जहाँ विभिन्न धर्मावलम्बी रहते हैं। समाज में अपने अस्तित्व एवं स्वतंत्र पहचान कायम रखते हुए भी एक-दूसरे के साथ इनकी सामाजिक अंत:क्रिया (Social Interaction) होती रही है जो कि प्राय: समाज के संदर्भ में सकारात्मक रही है, जिसके कारण ही भारतीय समाज एक बहुरंगी धार्मिक एवं सांस्कृतिक छवि वाले समाज के रूप में देखा एवं समझा जाता रहा है।



किंतु वर्तमान में विविध कारणों के परिणामस्वरूप भारत के इन विविध धर्मावलम्बियों के अंत:क्रिया का स्वरूप नकारात्मक हो रहा है, जिसके कारण विभिन्न प्रकार के दुष्प्रभाव समाज में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उन दुष्प्रभावों की चर्चा निम्न रूप में की जा सकती हैं:–

1. ***समाज में तनाव एवं संघर्ष में वृद्धि (Increase tension and Conflict in Society)–*** भारत में विविध साम्प्रदायिक समूह एक-दूसरे के साथ सामाजिक संबंध बनाने से बचते ही नहीं बल्कि एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से भी देखते हैं। विभिन्न सम्प्रदाय के लोग सभाओं एवं समाचार पत्रों के माध्यम से एक-दूसरे का छिन्द्रान्वेषण (Hole exploration) करते हैं तथा उनके व्यक्तिगत विचारों एवं व्यवहारों को नकारात्मक रूप से प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसके कारण इनमें तनाव एवं संघर्ष पैदा होता है, भारत में विविध हिन्दू एवं मुस्लिम त्यौहारों के समय ऐसा अक्सर देखा जाता है, ताजिया निकालते समय अथवा होली एवं दशहरे के त्यौहारों पर अंतर्सामुदायिक (Inter community) संघर्ष अक्सर देखे जा सकते हैं।
2. ***राष्ट्रीय संपत्ति एवं जानमाल की हानि (Loss of National Property and Life)–*** साम्प्रदायिक संघर्ष के दौरान भारत में अक्सर जान माल का नुकसान होता है, चाहे भारत-पाक बंटवारे के समय हो अथवा विविध त्यौहारों के समय, जब भी साम्प्रदायिक तनाव होते हैं। वे संघर्ष में बदल जाते हैं। पहले तो एक-दूसरे की जान लेने की कोशिश की जाती है उसमें सफल न होने पर लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाया जाता है। तनाव एवं संघर्ष के अधिक बढ़ जाने पर सारा दोष सरकार पर थोप दिया जाता है और सरकारी संपत्ति को हानि पहुंचायी जाती है। साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान अक्सर सरकारी वाहनों, रेलगाड़ियों में तोड़-फोड़ एवं जलाने की घटना देखी जाती है।
3. ***देश की एकता एवं अखंडता को खतरा (Challenges of Unity and Integrity of the Country)–*** साम्प्रदायिक तनाव एवं संघर्ष के दौरान विविध समुदायों के बीच हिंसक घटनाएं जन्म लेती हैं जिससे देश की एकता एवं अखंडता भी प्रभावित होती है। साम्प्रदायिक गतिविधियों (Communal Activities) के तहत कुछ लोग देश विरोधी गतिविधियों में भी शामिल हो जाते हैं। भारत में आतंकी घटनाएं भी अप्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिकता के कारण उत्पन्न हो रही हैं जोकि देश की एकता एवं अखंडता को तोड़ने का प्रयास कर रही है। भारत में संसद पर हमला, विभिन्न राष्ट्रीय संस्थाओं पर आतंकी कार्यवाही देश की संप्रभुता-एकता एवं अखंडता को चुनौती दे रही है।

   पंजाब में खालिस्तान की माँग हो अथवा आजाद कश्मीर का मुद्दा हो। मुख्यत: यह धर्म आधारित मांग थी। इसी तरह नागालैंड में ईसाईयों द्वारा पृथक राज्य की स्थापना की माँग भी मुख्यत: धार्मिक निष्ठा पर ही आधारित थी।
4. ***आर्थिक विकास, धर्मनिरपेक्षीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया दुष्प्रभावित–*** साम्प्रदायिक संघर्ष के दौरान प्रभावित क्षेत्र की सामान्य गतिविधियां प्रभावित होती हैं साथ ही, सरकार द्वारा चलाए जाने वाले आर्थिक विकास संबंधी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी सामान्य रूप से नहीं हो पाता है। वस्तुत: साम्प्रदायिक संघर्ष के दौरान लोग सरकारी तंत्र पर हमला बोल देते हैं तथा भौतिक संसाधनों एवं मशीनरी को तो नष्ट करने का प्रयास करते हैं साथ ही, सरकारी संस्थाओं में कार्यरत लोगों के प्रति भी हिंसक व्यवहार करते हैं जिसके कारण हिंसा प्रभावित क्षेत्र में कोई कर्मचारी एवं अधिकारी जाना नहीं चाहता। विकास कार्यक्रम (Development Programme) के क्रियान्वयन के अभाव के परिणाम स्वरूप उस समाज का तो आर्थिक विकास रुकता ही है, राष्ट्र की आर्थिक विकास (Economic Development) की गतिविधियों पर भी चोट पहुंचती है। परिणामत: देश का आर्थिक विकास रुक जाता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया रुकने के पश्चात् भारतीय समाज में आधुनिकीकरण (Modernization) की प्रक्रिया पर भी प्रश्नचिह्न लग जाता है क्योंकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आर्थिक विकास का परिणाम होती है इसके अलावा सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधार संबंधी कानूनों के निर्माण एवं क्रियान्वयन को भी साम्प्रदायिक भावना के कारण अवरुद्ध किया जाता है, जिससे आधुनिक समाज के निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है। शाहबानों प्रकरण एवं समान आचार संहिता के भारत में न लागू हो पाने के साम्प्रदायिक कारणों को आधुनिकीकरण एवं महिला विकास में बाधा के रूप में स्पष्टत: समझा जा सकता है।
5. ***राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability)–*** भारतीय समाज में साम्प्रदायिक समस्या के परिणामस्वरूप उपजे सामाजिक एवं सामुदायिक संघर्ष के बाद सामान्य सामाजिक जीवन में कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। कभी-कभी संवैधानिक तंत्र भी फेल हो जाता है जिसके कारण राजनीतिक प्रक्रिया में भी बाधा उत्पन्न हो जाती है। हिंसा ग्रस्त क्षेत्र में अक्सर चुनाव कराना कठिन हो जाता है (जम्मू-कश्मीर) और लोकतांत्रिक प्रणाली को चोट पहुंचती है। कभी- कभी सरकारें भी साम्प्रदायिक ताकतों को परोक्ष रूप से सहयोग देती हैं और साम्प्रदायिक संघर्ष (Communal Conflict) को बढ़ावा देती हैं जिसके कारण वहां राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ता है। इन सभी उदाहरणों को भारतीय समाज में अक्सर देखा जाता है जिससे राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न होती है।
6. ***असामाजिक तत्त्वों एवं विचलित व्यवहारों में वृद्धि (Increase of Anti Social Elements and Deviant behaviours)–*** भारतीय समाज में साम्प्रदायिक संघर्ष के दौरान

अक्सर हिंसक घटनाएँ बढ़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में असामाजिक तत्त्वों को भी अपनी गतिविधि संचालित करने का मौका मिल जाता है। मौके का फायदा उठाकर अपराधी लोग समाज में अपने क्रिया-कलापों को अंजाम देते रहते हैं। इसके अलावा संघर्ष एवं हिंसा की स्थिति में महिलाओं एवं बच्चों के प्रति अपराध की संख्या बढ़ जाती है सामान्य व्यक्ति भी कभी-कभी परिस्थितिवश विचलित व्यवहार करने लगते हैं। हिंसा के दौरान लोग इसी बहाने अपनी दुश्मनी निकालने लगते हैं जिससे हिंसा और बढ़ जाती है।

भारत में सांप्रदायिकता निवारण हेतु किए गए प्रयास (Efforts made to Prevent Communalism in India)

भारतीय समाज में सांप्रदायिकता निवारण हेतु सर्व-धर्म-समभाव की प्रवृत्ति विचारकों में पहले से ही रही है, जिसके लिए विभिन्न समाज सुधारक समय-समय पर प्रयास करते रहे हैं। आजादी के आंदोलन के समय गांधी जी एवं अन्य राष्ट्रीय नेताओं द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर सांप्रदायिकता के उन्मूलनार्थ प्रयास किए जाते रहे हैं, जिसे आजादी के बाद सरकारी स्तर पर किया जाने लगा। स्वतंत्रता के पश्चात् किए गए प्रमुख प्रयासों को निम्नवत समझा जा सकता है:-

1. अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए 1978 में अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की गई। आगे चलकर 1992 में इसे संवैधानिक दर्जा देते हुए इसका नामकरण राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग कर दिया गया।

   राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग पांच समुदायों, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, सिख के कल्याण हेतु उपाय सुझाता है तथा उनके संवैधानिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व इस आयोग को दिया गया है (केन्द्र सरकार द्वारा 2014 में जैन समुदाय को छठे अल्पसंख्यक के रूप में नामित किया गया)।

2. साम्प्रदायिक समस्याओं पर विचार करने तथा विविध अल्पसंख्यकों को राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित रखने एवं सामाजिक सौहार्द (Social Harmony) बनाए रखने को उत्प्रेरित करने के लिए 1962 में राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थापना की गई है, जिसे समय-समय पर सक्रिय किया जाता रहा है।
3. 1976 में ब्रह्मानंद रेड्डी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकीकरण पर गठित कार्यदल द्वारा साम्प्रदायिक सौहार्द का कार्यक्रम बनाया गया है।
4. भारत सरकार में भाषायी एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों के सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के कल्याण की आवश्यकता पर जोर दिया है।
5. धार्मिक एवं भाषायी अल्प संख्यकों को अपनी पसंद की शिक्षण संस्थाओं को खोलने एवं अपनी भाषा एवं संस्कृति को सुरक्षित करने का अधिकार दिया है।
6. विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं जैसे शांति, अखंड भारत आदि द्वारा साम्प्रदायिक सौहार्द (Communal Harmony) के लिए विभिन्न क्रिया-कलाप किए जा रहे हैं।
7. देश के विभिन्न राज्यों में साम्प्रदायिक सौहार्द्र के लिए विविध अभियान चलाए जा रहे हैं।
8. भाषायी अल्पसंख्यकों (Linguistic Minority) के हितों के सुरक्षार्थ भाषायी अल्पसंख्यक आयुक्त के पद का सृजन किया गया है। यह भाषायी अल्पसंख्यकों से जुड़ी राष्ट्रीय एवं वैधानिक योजनाओं के लागू न किए जाने संबंधी शिकायतों का निबटारा करता है।
9. समाज के शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों में शिक्षा का प्रसार करने के उद्देश्य से मौलाना आजाद एजूकेशन फाउंडेशन की स्थापना की गई है जिसनें अल्पसंख्यकों के बीच सद्भावना बढ़ाने का कार्य किया है, प्रतिभावान छात्राओं को छात्रवृत्तियां देता है और साक्षरता में वृद्धि के लिए साक्षरता कार्यक्रम चलाता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

बहुलवादी भारतीय समाज (Pluralistic Indian Society) में विविध समुदायों के बीच सकारात्मक प्रतिक्रिया के साथ-साथ नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ भी चलती रही हैं, जिनके विविध कारण एवं संयुक्त परिणाम रहे हैं। इस नकारात्मक प्रतिक्रिया (सांप्रदायिकता) के समाधान हेतु सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर विविध प्रयास किए गए हैं और उन प्रयासों का कुछ हद तक सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक संघर्ष में कुछ कमी की संभावनाएँ बढ़ी हैं। स्वतंत्रता पूर्व एवं भारत के बँटवारे के समय गांधी जी एवं अन्य राष्ट्रीय नेताओं द्वारा किए गए प्रयास साम्प्रदायिक समस्या को रोकने में काफी हद तक सफल रहे, जिसके कारण दंगे एवं हिंसा में कमी आई थी।

राष्ट्रीय एकीकरण पर गठित कार्यदल द्वारा साम्प्रदायिक सौहार्द्र के लिए किया गया प्रयास काफी हद तक सराहनीय रहा है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना से अल्पसंख्यकों की समस्याओं एवं उनके असंतोष काफी हद तक स्पष्ट हो गए हैं जिनको दूर करने के लिए प्रयास भी किए जाने लगे हैं। विभिन्न स्वयं सेवी संगठनों द्वारा किए गए साम्प्रदायिक सौहार्द्र संबंधी गतिविधियां भी विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच समझ बढ़ाने एवं उनको एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करने के लिए प्रेरित किया है। मौलाना आजाद एजूकेशन फाउन्डेशन द्वारा साम्प्रदायिक सौहार्द्र बढ़ाने के लिए किए गए प्रयासों का तो सकारात्मक प्रभाव पड़ा ही है, साथ ही अल्पसंख्यकों में पिछड़ों में छात्रवृत्तियाँ देने एवं साक्षरता अभियान चलाने से विशेषकर मुस्लिम अल्पसंख्यकों की आधुनिक शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ी है

(जबकि परंपरागत मुस्लिम मदरसा शिक्षा को महत्त्व देते रहे हैं जो कि विविध धर्मावलाम्बियों के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा से प्रेरित रही है) जिसके परिणाम स्वरूप आधुनिक विचार के पोषण एवं राष्ट्रीय भावना के जागरण से इनके बीच अन्य धर्म के लिए शंका एवं वैमनस्य में कमी आने की संभावना बढ़ी है।

उपरोक्त प्रयासों से यद्यपि साम्प्रदायिक समस्या में कमी आने की संभावना बढ़ी है किन्तु इन्हें पूरी तरह सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन प्रयासों के बावजूद भी आज सांप्रदायिकता भारतीय समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या बनी हुई है।

मुजफ्फरनगर दंगा, बाबरी मस्जिद कांड, गोधरा कांड की प्रतिक्रिया में गुजरात में हुए दंगे, मऊ का दंगा या इलाहाबाद में 'कुरान' फाड़ने पर उभरा साम्प्रदायिक तनाव ऐसे उदारहरण हैं जो उपरोक्त प्रयासों की अपर्याप्तता को परिलक्षित करते हैं। उपरोक्त कमियों के आलोक में निम्न कारक जिम्मेदार रहे हैं:–

1. आज भी मुस्लिम समुदाय एवं हिन्दू समाज में आधुनिक शिक्षा की भावना विकसित नहीं हो पायी है और वह अन्य समुदायों के प्रति शंका से प्रेरित रहती है जो राजनीतिक लाभ के कारण वास्तविक समस्याओं की ओर कम महत्त्व देती है जिससे उनके भीतर आधुनिक दृष्टिकोण एवं अन्य धर्म के प्रति संकीर्ण नजरिया अपनाते हैं।
2. अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना एवं उसमें नियुक्तियाँ राजनीतिक होने के कारण वह अपने वास्तविक उद्देश्यों पर ध्यान नहीं दे पाते है।
3. विभिन्न स्वयं सेवी संगठन आर्थिक लाभ के लिए कार्य करते हैं तथा वास्तविक समस्या पर ध्यान नहीं देते हैं।
4. गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, असमानता आदि कारक आज भी साम्प्रदायिक समस्या को बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। धर्मस्थ राजनीति ने भारत में साम्प्रदायिक समस्या को और उत्प्रेरित किया है।

अतः इसके लिए कुछ एक अन्य उपायों / सुझावों पर विचार किया जा सकता है:–

1. साम्प्रदायिक मानसिकता वाले राजनीतिज्ञों, दलों तथा व्यक्तियों पर प्रतिबंध लगाया जाएँ और उनके विरुद्ध सख्त कार्यवाही की जानी चाहिए।
2. ऐसे धार्मिक संस्थाओं की पहचान की जाए जो साम्प्रदायिक गतिविधियों में संलग्न हैं, उन्हें प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।
3. धर्मनिरपेक्षता को सशक्त विचारात्मक स्तर पर जन आंदोलन का रूप दिया जाए और इसके पक्ष में जनचेतना और जनमत निर्मित किये जाने का प्रबल प्रयास करना चाहिए।
4. राष्ट्रीयता या हम सब एक हैं की भावना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
5. ईमानदार शैक्षिक एवं सांस्कृतिक नीति का अनुपालन (Compliance) किया जाए, जिससे साम्प्रदायिक वर्गों के मध्य परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान संभव हो सके।
6. परस्पर अविश्वास एवं विद्वेष की भावना को समाप्त करने के लिए अल्पसंख्यकों के मन से असुरक्षा की भावना को कम किये जाने का प्रयास किया जाय।
7. मुस्लिमों की वास्तविक समस्याओं (रोजगार, गरीबी, साक्षरता आदि) का समुचित समाधान किया जाय (सच्चर समिति की रिपोर्ट)।
8. दोष निवारक उपायों, पुलिस व न्याय व्यवस्था को दुरुस्त तथा अधिक सक्रिय बनाया जाय।
9. दंगों से पीड़ितों को तत्काल सहायता पहुँचाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था निर्मित की जाय।
10. मीडिया की भूमिका को सकारात्मक स्वरूप प्रदान किये जाने का प्रयास भी एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा।

स्पष्ट है कि सांप्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक हिंसा भारतीय समाज की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम है। धर्म से अधिक साम्प्रदायिक दुष्प्रचार, अफवाह तथा साम्प्रदायिक लामबंदी इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। हाल के वर्षों में भूमंडलीकरण से उत्पन्न पहचान का संकट, धार्मिक कट्टरवाद और धर्म का बाजारीकरण भी सांप्रदायिकता हेतु सहयोगी रहे हैं। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की सफलता तभी साकार हो सकती है जब इस समस्या का उन्मूलन कर दिया जाए, जो कि उपरोक्त सुझावों पर अमल करके तथा मीडिया, आधुनिक शिक्षा और गैर-सरकारी संगठनों (NGO) के सहयोग से सांप्रदायिकता के विरुद्ध एक जन आंदोलन के द्वारा ही संभव है।

भारत में सांप्रदायिकता : संभावित प्रश्न

1. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने क्षेत्रवादी भावना के उभार को किस प्रकार प्रोत्साहित किया है? स्पष्ट करें।
2. क्षेत्रवाद की समस्या लोकतंत्र की असफलता को सिद्ध करती है तथा इसका बेहतर समाधान लोकतंत्र के विस्तार द्वारा ही संभव है। स्पष्ट करें।
3. छोटे राज्यों का गठन क्षेत्रीय विषमता को दूर करने में कहाँ तक प्रासंगिक है? समीक्षा करें।
4. भारत में आधुनिकता के विस्तार ने धर्मनिरपेक्षता के समक्ष किन नवीन चुनौतियों को पेश किया है? चर्चा करें।

5. भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा इसके सामाजिक विशेषताओं को प्रतिबिंबित करती है। स्पष्ट करें।
6. प्रस्तावित साम्प्रदायिक हिंसा विरोधी विधेयक के प्रमुख प्रावधानों की चर्चा करें। साम्प्रदायिक हिंसा रोकने हेतु इसके उपादेयता की समीक्षा करें।
7. सांप्रदायिकता से आप क्या समझते है? क्या आप इस मत से सहमत हैं कि भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों की उपस्थिति सांप्रदायिकता का प्रमुख कारण है?
8. सांप्रदायिकता राजनीति एवं धर्म का एक अवैध गठबंधन है। समीक्षा करें।
9. सांप्रदायिकता लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया में किस तरह के अवरोध पैदा करता है? सांप्रदायिकता की समस्या के हल हेतु अपने सुझाव दें।
10. राष्ट्रीय एकीकरण हेतु क्षेत्रवाद एवं राष्ट्रवाद का संतुलन आवश्यक है, चर्चा करें।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

18 भारत में महिलाएँ (Women in India)

परिचय (Introduction)

भारतीय महिलाएँ समाज की कुल आबादी का लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं, परन्तु ऐतिहासिक रूप से इनकी प्रास्थिति पुरुषों के अपेक्षा निम्न रही है। अनेक जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारकों (Social Factors) के चलते महिलाओं के अधिकारों में कटौती होती रही और वह घर की चारदीवारी में घरेलू कार्यों तक ही सिमट कर रह गयी। परिणामतः उनकी भूमिका माँ और पत्नी के रूप में ही सीमित रह गयी। भारतीय पितृसत्तात्मक (Patriarchal) सामाजिक संरचना और पुरुष केन्द्रित समाज में भी महिलाओं की स्थिति अत्यंत निम्न थी और लिंग असमानता व्यापक रूप से फैली थी। आधुनिकता के विकास के साथ ही महिला अधिकारों के समर्थन व पुरुष सत्ता के विरोध में अनेक आन्दोलनों का विकास हुआ, जिससे आज महिलाओं को समानता सम्बंधी कई अधिकार मिले हैं और आज उनकी अपनी पहचान स्थापित हो रही है।

महिलाओं का जनसंख्यात्मक विवरण (Demographic Distribution of Women)

महिलाएँ भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग हैं जिनके अध्ययन के बिना भारतीय समाज का अध्ययन अधूरा है। भारत में जनगणना के आँकड़े महिलाओं का जनसंख्यात्मक विवरण प्रस्तुत करते हैं।

वर्ष	लिंगानुपात	साक्षरता दर	पुरुष एवं महिला साक्षरता में अंतर
1951	946	8.86	18.30
1971	930	21.97	23.98
1991	929	39.29	24.84
2001	933	53.67	21.59
2011	943	65.46	16.68

उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि 20वीं सदी के प्रारम्भ में लिंगानुपात (Sex Ratio) बेहतर था परन्तु, 1990 के दशक तक इसमें ह्रास की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। पिछले दो दशकों से सरकारी प्रयासों की वजह से लिंगानुपात बेहतर हुआ है। किन्तु अभी भी भारत विश्व के सबसे प्रतिकूल शिशु लिंगानुपात वाले देशों में से एक है। 2011 की जनगणना में शिशु लिंगानुपात में गिरावट आई है, 2001 में प्रति 1000 लड़कों पर 927 लड़कियाँ थी जबकि 2011 में यह सिर्फ 919 लड़कियाँ ही रह गयी अतः इनमें सुधार के प्रयत्न आपेक्षित हैं। इसी तरह से साक्षरता दर में भी सुधार हुआ है, परन्तु बाल लिंगानुपात तेजी से गिर रहा है। उत्तरी राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान इत्यादि में अभी भी स्थिति ठीक नहीं है। इन राज्यों में विशेष नीति तथा कार्यक्रमों की आवश्यकता है, जिससे महिलाएँ मुख्यधारा में बराबरी कर सकें।

विश्व आर्थिक फोरम रिपोर्ट (Report of World Economic Forum)

विश्व आर्थिक फोरम की 2022 की रिपोर्ट के अनुसार लैंगिक अंतराल रिपोर्ट में काफी प्रगति करते हुए भारत को इस रिपोर्ट में 0.629 औसत अंकों के साथ 146वें देशों में 135वां स्थान हासिल हुआ है, जो महिलाओं के अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि के कारण हुआ है।

भारत में महिलाओं की स्थिति (Status of Women in India)

भारत में महिलाओं की स्थिति पर विचार किया जाए तो वैदिक और उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की स्थिति तुलनात्मक रूप से अच्छी थी। सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में इन्हें लगभग पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे तथा इस रूप में उन्हें पुरुषों के अधीन न मानकर पुरुषों के समान माना जाता था। परन्तु आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में उनके अधिकारों का परिसीमन इस काल में भी दृष्टिगत होता है।

पौराणिक काल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई क्योंकि इस समय यौन परिपक्वता पूर्व विवाह, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि का प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु, बौद्ध काल में महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। इन्हें धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त था, परन्तु आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मध्यकाल में आकर महिलाओं की स्थिति पुनः बहुत निम्न हो गई क्योंकि इस काल में पर्दा प्रथा और कठोर हो गई, शिक्षण सुविधा पूर्णरूपेण समाप्त हो गई, बाल विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियों का प्रचलन काफी बढ़ गया।

ब्रिटिश काल में औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण (Modernization), शिक्षा के विस्तार, सुधार आंदोलनों, महिला आंदोलन और सामाजिक विधानों (Social Laws) ने संयुक्त रूप से स्त्रियों की स्थिति में सुधार किया, परिणामस्वरूप लिंग असमानता में कमी आई।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु संवैधानिक प्रावधानों, विकास कार्यक्रमों और महिला आंदोलनों के द्वारा प्रयास किए गए और संप्रतिकाल (Present time) तक देखें तो महिलाओं

की स्थिति में काफी सुधार भी हुआ है। परन्तु, आज भी लिंग समानता के लक्ष्य से हम दूर हैं और महिलाओं से जुड़ी अनेक समस्याएँ उनकी निम्न स्थिति को परिलक्षित (Reflected) कर रहीं हैं।

आर्थिक क्षेत्र में अभी भी महिलाएँ पुरुषों पर निर्भर हैं और उनके घरेलू कार्य को मान्यता नहीं मिल पाई है। आज भी महिलाओं को शिक्षिका, नर्स, एयर होस्टेस, सेल्स गर्ल जैसी नौकरियों हेतु ही उपयुक्त माना जाता है। संगठित क्षेत्र में नौकरी करने वाली महिलाओं की संख्या मात्र 13% प्रतिशत है, जिन्हें किसी तरह की सुविधा प्राप्त नहीं होती है। I.I.T. में पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या मात्र 10% है।

दहेज प्रथा, महिलाओं के साथ एक रोग की तरह जुड़ी है। ग्रामीण भारत में विधवा विवाह को अभी भी पूर्णत: सामाजिक मान्यता (Social Recognition) नहीं मिल पाई है। गाँवों में बालविवाह, पर्दा प्रथा, लड़कियों के जीवन साथी के चयन में माता-पिता की प्रबल भूमिका जैसे तत्त्व महिलाओं के साथ जुड़े हुए हैं। आज अंतर्जातीय विवाह (Inter Caste Marriage) करने वालों की हत्या तक कर दी जाती है (पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि क्षेत्रों में)। हाल के वर्षों में दिल्ली में और अन्य जगहों पर बलात्कार, छेड़-छाड़, यौन शोषण व हिंसा की घटनाओं में वृद्धि हुई है तथा इस तरह के कई मामले सामने आए हैं। वर्तमान समय में शहरों या गाँवों में मादा भ्रूण हत्या, कन्या शिशु हत्या, पोषण में भेदभाव जैसी घटनाएँ विद्यमान हैं।

भारत में महिलाओं के सीमान्तीकरण के कारण (Causes of Marginalization of Women in India)

भारत में महिलाओं के सीमान्तीकरण के लिए अनेक कारक उत्तरदायी रहे हैं, जिन्हें परम्परागत एवं आधुनिक दो भागों में बाँटकर देखा जा सकता है:-

1. ***परंपरागत कारण (Traditional Causes)*** – भारतीय समाज में महिलाओं के अपवर्जन के ऐतिहासिक कारण रहे हैं जिन्हें हम निम्न परम्पराओं के संदर्भ में देख सकते हैं-

   (i) समाज में पुरुषों का वर्चस्व (Males Dominance in Society) – प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के अंतर्गत पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम अधिकार प्राप्त थे तथा इन पर कई सामाजिक प्रतिबंध आरोपित थे।

   (ii) निम्न शैक्षिक अधिकार (Lower Educational Rights) – महिलाओं को ब्राह्मचर्य आश्रम में प्रवेश और शिक्षा की अनुमति नहीं दी गयी, जिससे शैक्षिक आधार पर उनकी प्रास्थिति निम्न हो गयी।

   (iii) कर्मकाण्डीय संस्कारों की अनुमति का अभाव (Lack of Permission for Ritual Rites) – ब्राह्मणीय कर्मकाण्डीय व्यवस्था में महिलाओं को विवाह के अलावा किसी संस्कारों की अनुमति नहीं मिली, जिससे उनकी कर्मकाण्डीय प्रास्थिति भी निम्न बन गयी।

   (iv) सत्ता संरचना में निम्न भागीदारी (Low Participation in Power Structure) – पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के कारण महिलाओं की सत्ता संरचना में भागीदारी सीमित हो गयी जो उनकी निम्न राजनैतिक प्रस्थिति का कारण बनी।

   (v) विवाह संबंधी निर्योग्यताएँ (Marriage Related Disabilities) – अनुलोम एवं कुलीन विवाह की मान्यताएँ उच्च कुल के वर के सापेक्ष महिलाओं की स्थिति को निम्न बनाने में उत्तरदायी रहे।

   (vi) संयुक्त परिवार व जाति व्यवस्था के नियम (Rules of Joint Family and Caste System) – संयुक्त परिवार व्यवस्था के मूल्य एवं जाति व्यवस्था के नियमों ने भी महिलाओं की स्थिति निम्न करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

   (vii) घरेलू कार्यों तक सीमित भूमिका (Limited Role to Domestic Works) – महिलाओं की भूमिका को घरेलू कार्यों एवं मां व पत्नी की भूमिकाओं तक ही सीमित कर देने के कारण भी महिलाओं की प्रस्थिति निम्न होती गयी।

   (viii) विभिन्न सामाजिक प्रतिबंध (Different Social Restriction) – विधवा विवाह प्रतिबंध, पर्दा प्रथा, कौमार्य के प्रति सशक्त मूल्यों जैसी परम्पराएँ भी महिलाओं की स्थिति निम्न बनाने में उत्तरदायी रहे हैं।

2. ***आधुनिक कारण (Modern Reason)*** – भारतीय समाज में महिलाओं के अपवर्जन हेतु परम्परागत कारणों के साथ ही कई आधुनिक कारण भी उत्तरदायी रहे हैं, जिनको निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है:-

   (i) पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता (Economic Dependency on Men) – आधुनिक समय में भी आर्थिक अवसरों पर पुरुषों का अधिकार बढ़ने से महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता बढ़ी है, जिससे उनकी स्थिति निम्न हुई है।

   (ii) आधुनिक शिक्षा से वंचित होना (Deprived from of Modern Education) – आज भी अधिकांश स्त्रियां आधुनिक शिक्षा से वंचित हैं। यद्यपि उनमें साक्षरता दर बढ़ी है, परन्तु आज भी वे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित हैं, जिससे उनकी स्थिति निम्न बनी हुई है।

   (iii) राज्य के प्रयासों में कमी (Lack of States Efforts) – लोक कल्याणकारी राज्य द्वारा महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयासों में कमी भी महिलाओं की निम्न स्थिति हेतु उत्तरदायी है।

(iv) विभिन्न वैयक्तिक कानून (Various Personal Laws) – वैयक्तिक कानून यथा मुस्लिम वैयक्तिक कानून, हिन्दू वैयक्तिक कानून आदि के कारण महिलाएं कानूनों के समक्ष समानता के अधिकार से वंचित हैं और इस असमानता के कारण भी उनकी स्थिति निम्न है।

(v) उपभोग की वस्तु के रूप में स्थिति (Status as Commodity) – उदारीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने आज महिलाओं को एक उपभोग के रूप में प्रचारित किया है और अपने उत्पादों के प्रचार में महिला कामुकता को एक साधन बनाया है, जिससे उनकी प्रस्थिति निम्न हुई है।

(vi) महिला आंदोलनों के विरुद्ध पितृतंत्र की प्रतिक्रिया (Patriarchy's Reaction Against Women's Movements) – समानता के अधिकार के मुद्दे पर महिला आन्दोलनों के विरुद्ध पितृतंत्र की प्रतिक्रिया ने भी महिलाओं पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध आरोपित कर उनकी प्रस्थिति को निम्न करने का प्रयास किया है।

महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रयास (Efforts Made to Improve the Status of Women)

औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के बाद भारत का पुनर्निर्माण करने के लिए महिलाओं की परिस्थिति में सुधार लाना भी आवश्यक था।

भारत में महिलाओं की परिस्थिति में सुधार हेतु राज्य द्वारा किए गए प्रयासों को दो रूपों में देखा जा सकता है:–

1. संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास
2. नीतिगत एवं योजनागत प्रयास

संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास (Constitutional and Legislative Efforts)

संविधान निर्माताओं ने महिलाओं की दशा में सुधार की आवश्यकता को महसूस किया था, अत: संविधान में न केवल उनको कुछ विशेषाधिकार दिए गए बल्कि राज्य के नीति-निदेशक तत्त्वों में भी इसको जोड़ा गया। अनुच्छेद 14 के माध्यम से उन्हें 'विधि के समक्ष समानता' और 'विधियों का समान संरक्षण' प्रदान किया गया और अनुच्छेद 15(1) में लिंग के आधार पर भेदभाव (Discrimination) को प्रतिबंधित किया गया। महिलाओं की स्थिति सुधार हेतु विशेष प्रावधान करने का अधिकार अनुच्छेद 15(3) के माध्यम से दिया गया। साथ ही, सरकारी नियोजन (Government Planning) में लिंग के आधार पर भेद-भाव का विरोध अनुच्छेद 16(1) के अंतर्गत किया गया। भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या मानव के दुर्व्यापार की रही है, जिस पर नियंत्रण लगाने के लिये अनुच्छेद 23 में इसको प्रतिबंधित किया गया है।

संविधान ने नीति-निदेशक तत्त्वों के तहत समान कार्य के लिए समान वेतन अनुच्छेद 39(घ), महिला कामगारों के स्वास्थ्य का दुरुपयोग रोकने और कार्य उनकी शक्ति के अनुकूल होने के लिए अनुच्छेद 39(ङ), उनके लिए प्रसूति सहायता का उपबंध अनुच्छेद 42 के अंतर्गत किया गया। समान आचार संहिता अनुच्छेद 44 तथा मौलिक कर्त्तव्य 51(क) आदि का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 51 प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक दायित्व निर्दिष्ट करता है कि ऐसी प्रथाओं (Customs) का परित्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो।

समय-समय पर विभिन्न कानून बनाकर भी महिलाओं की स्थिति उन्नयन के प्रयास किए जाते रहे हैं, जैसे:–

1. *सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property)* – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के तहत हिन्दू महिलाओं को उत्तराधिकार संबंधी अधिकार प्रदान किए गए, किन्तु इस अधिनियम के प्रावधान 'पुरुष श्रेष्ठता की धारणा' से प्रभावित रहे। अत: 2005 के संशोधन अधिनियम द्वारा महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में पुरुषों के समकक्ष सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्रदान करने का विधिक प्रयास किया गया है। 3 फरवरी, 2018 उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह अधिनियम, 2005 से पहले दायर विवादों पर भी लागू होगा।
2. *वैवाहिक कानून (Metrimonial Law)* – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के माध्यम से महिलाओं को विवाह के क्षेत्र में कई तरह की समानता प्रदान की गई, जिसने इसकी परिस्थिति-सुधार को संभव बनाया।
3. *संरक्षण संबंधी विधान (Protection Related Legislation)* – बच्चों के संरक्षक के रूप में माता के अधिकार को हिन्दू आवश्यकता और संरक्षण अधिनियम, 1956 और अविभावक तथा आश्रित अधिनियम, 1990 के द्वारा स्थापित करने का प्रयास किया गया है, परन्तु माँ का अधिकार अभी भी पिता से कम है।
4. *रोजगार संबंधी विधान (Employment Related Legislation)* – संविधान के द्वारा इस अधिकार को एक विधिक अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है और इसके लिए शोषण रहित उचित वातावरण प्रदान करना राज्य का कर्त्तव्य माना है। विभिन्न कारखाना अधिनियमों के माध्यम से महिला कामगारों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, काम के घंटे तथा अल्प-वयस्कों को नियोजित (Planning) करने के सम्बन्ध में कानून बनाए गए हैं। साथ ही, उनके सुरक्षा उपायों व सुविधाओं को भी ध्यान में रखा गया है।
5. *सामाजिक और घरेलू उत्पीड़न संबंधी विधान (Social and Domestic Harassment Related Legislation)* – समाज में महिलाओं के घरेलू उत्पीड़न को रोकने तथा प्रस्थिति (Status)

उन्नयन (Upgrade) के लिए दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961, 1986 पारित किए गए। 2003 में दहेज लेना एवं देना दोनों को दण्डनीय और गैर-जमानती अपराध माना गया।

2006 में घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम लागू किया गया, जिसके तहत घरेलू हिंसा को स्पष्ट करते हुए, उससे महिलाओं के बचाव के प्रावधान को कानूनी रूप दिया गया।

नीतिगत एवं योजनागत प्रयास (Policy and Planning Efforts)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की नीतियों, कल्याणकारी कार्यक्रमों (Welfare Programmes) एवं योजनाओं के माध्यम से महिला उत्थान की दिशा में प्रयास किए गए। इन प्रयासों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है:–

(i) कल्याणोन्मुखी विकास की नीति (1950-75)

(ii) एकीकरण की नीति (1975-85)

(iii) महिला सशक्तिकरण की नीति (1985 के बाद)

प्रारम्भ में सरकार द्वारा महिलाओं के कल्याण हेतु विभिन्न प्रकार के प्रयास किए गए। इन प्रयासों का उद्देश्य महिलाओं को परंपरागत एवं पारिवारिक भूमिका में कुशलता प्रदान कर क्षमतावान बनाना था। इसके अंतर्गत महिलाओं को पुरुषों पर निर्भर मानते हुए उन्हें आधुनिकीकरण तथा तकनीकी विकास की प्रक्रिया से दूर रखा गया।

1975 के बाद विभिन्न महिला आंदोलनों तथा विकास में महिलाओं की अनिवार्य भूमिका की महत्ता पर वैश्विक बहस ने सरकार को अपनी नीति पर पुनर्विचार करने हेतु विवश किया। इसी समय महिलाओं को समानता प्रदान करने तथा विकास प्रक्रिया में महिलाओं को सहभागी बनाने पर विचार किया गया। महिलाओं को विभिन्न प्रशिक्षण एवं कौशल प्रदान कर सामाजिक आर्थिक विकास (Social Economic Development) में सहभागी बनाने का प्रयास किया गया। इसके लिए IRDP, TRYSEM, DWACRA आदि कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया।

देश में पहली बार 'महिला उत्थान नीति' बनाई गई ताकि महिलाओं के सामाजिक- आर्थिक उत्थान एवं समुचित विकास के लिए आधारभूत व्यवस्थाएँ निर्धारित की जा सकें। इस नीति के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं:–

- देश में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा में सहभागिता सुनिश्चित करना।
- महिलाओं हेतु ऐसा वातावरण सुनिश्चित करना कि वे स्वयं सामाजिक और आर्थिक नीतियाँ बना सकें।
- भेदभाव को दूर करने हेतु सामाजिक प्रक्रिया विकसित करना।
- मानवाधिकार के उपयोग में उन्हें सक्षम बनाना।
- समाज में समान भागीदारी हेतु उन्हें प्रोत्साहित करना।
- बालिकाओं और महिलाओं के प्रति विविध अपराधों के रूप में व्याप्त असमानता को खत्म करना।

1985 में 'महिला सशक्तिकरण' (Women Empowerment) की अवधारणा के विकास के पश्चात् महिलाओं को कानूनी, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने पर विशेष बल दिया। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए महिला विकास कार्यक्रम (1984), चेतना जागरण कार्यक्रम (1986), महिला सामाख्या कार्यक्रम (1989) आदि चलाए गए। इन कार्यक्रमों में मुख्यत: तीन बातों पर बल दिया गया:–

(i) लिंग आधारित भेदभाव को सामने लाना,

(ii) लिंग आधारित भेदभाव को चुनौती देना तथा

(iii) महिलाओं की भागीदारी द्वारा महिलाओं के पक्ष में सामाजिक संबंधों को परिवर्तित करना।

वर्तमान में सशक्तिकरण के उद्देश्य को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा निम्न कार्यक्रमों और योजनाओं का संचालन किया जा रहा है; जैसे– स्वावलंबन योजना, STEP, स्वयंसिद्ध योजना, स्वाधार योजना उज्जवला योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना आदि। वर्तमान में स्वावलंबन एवं स्वयंसिद्ध योजना बंद हो चुकी है। महिला सशक्तिकरण का एक अहम पहलू महिलाओं का राजनीतिक रूप से सशक्तिकरण भी है। इस तथ्य की महत्ता को समझते हुए महिला आरक्षण विधयेक का प्रस्ताव बनाया गया है, जिसके तहत निम्न प्रावधान शामिल हैं:–

(i) अनुच्छेद 330 के तहत लोक सभा के कुल स्थानों में से 1/3 भाग यथासंभव महिलाओं के लिए आरक्षित करना।

(ii) अनुच्छेद 332 के तहत राज्य विधान सभाओं में महिलाओं हेतु स्थान आरक्षित करना।

(iii) अनुच्छेद 333 खण्ड (a) के तहत लोक सभा में महिलाओं हेतु स्थान आरक्षित करना।

मूल्यांकन (Evaluation)

संवैधानिक स्तर पर महिला उन्नयन (Upgrade) हेतु अनेक प्रयास किए गए हैं और मूल संविधान के तत्वों के साथ-साथ व्यक्तिगत कानूनों को भी वैध माना गया है जो परस्पर विरोधाभासी हैं। स्वतंत्रता के समय भारत में सामाजिक असमानता (Social Inequality) अपने चरम पर थी और विभिन्न धर्मों में महिलाओं की स्थिति अत्यंत नाजुक थी। तत्कालीन विधिवेत्ताओं ने व्यक्तिगत कानून को स्वीकार कर लिया परन्तु शोषण एवं महिला को दोयम दर्जे की स्थिति प्रदान करने वाले ये कानून आज के उदारीकृत समाज में विषमता को स्वीकारने जैसे लगते हैं। अत: सरकार के द्वारा किए जा रहे वैधानिक प्रयासों के साथ समान नागरिक संहिता (अनुच्छेद 44) जो संविधान में भी वर्णित है को लागू करने का प्रयास किया जाना चाहिए। हालांकि सरकार इसके लिए हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम, 2005, घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2006 आदि विधानों एवं महिला आयोग जैसे संवैधानिक निकाय के माध्यम से प्रयासरत है, परन्तु

विकास के साथ उभरती विषमता और शोषण पूर्णत: खत्म करने हेतु गति बढ़ाने एवं व्यक्तियों में जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है, जिससे महिला सहभागिता (Women Participation) को बढ़ाकर समाज और देश को अधिक सशक्त बनाया जाए।

अत: जरूरत है कि कुछ सुझावों और सुधारों की, जिससे महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करके आधी दुनियाँ को पुरुषों के समकक्ष लाया जा सके। ये सुझाव निम्न हैं:–

1. महिलाओं के संदर्भ में परिवर्तन के लिए प्रारंभिक चरण अभी भी परिवार एवं समाज हैं और इसलिए पुरुष प्रधान सोच को बदलना होगा तथा पुरुषों के साथ ही महिलाओं की निर्भरता की भावना को उनके मानसिक स्तर से निकालना होगा।
2. निचले स्तर पर शिक्षा को प्रसारित करके अशिक्षा रूपी बाधा को खत्म करने के साथ ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित हो सके।
3. राष्ट्रीय महिला आयोग की सदस्य सुजाता मनोहर का सुझाव भी व्यावहारिक है कि "सम्मानपूर्ण जीवन के लिए महिला नेतृत्व को आगे आना होगा।" महिलाओं को अपनी मानसिक निर्भरता (Mental Dependence) को त्यागकर स्वयं अवसरों का लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए।
4. महिला वर्ग को मिल रही स्वतंत्रता, सुविधा एवं भागीदारी को सार्थक सिद्ध करने हेतु कदम उठाने होंगे और इसके लिए पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण बंद (Blind Imitation) करना होगा क्योंकि छेड़छाड़, बलात्कार आदि का यह भी एक कारण है।
5. 73वें, 74वें संविधान संशोधन से ग्रामीण महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण (Political Empowerment) अवश्य हुआ है। परन्तु, इन्हें प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन देकर वास्तविक नेतृत्व ग्रहण करने में सक्षम बनाना अभी बाकी है, जिसको अन्य वैकल्पिक उपायों यथा जागरुकता कार्यक्रमों आदि द्वारा व्यापक बनाया जा सकता है।
6. राजनीतिकरण, प्रतिबद्धता और विभिन्न दलों के बीच इस मुद्दे पर आपसी तालमेल भी आवश्यक है, तभी लोक सभा व विधानसभाओं में आरक्षण के प्रस्तावों को आगे बढ़ाया जा सकता है।

शहरी एवं ग्रामीण समाज में महिलाओं का भूमिका संघर्ष (Role Conflict of Women in Urban and Rural Society)

परम्परागत भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका घरेलू कार्यों तक सीमित थी। उत्पादन कार्यों में उसकी भूमिका या तो नहीं थी अथवा बहुत कम थी। अत: भूमिका संघर्ष जैसी स्थिति का सामना महिलाओं को प्राय: नहीं करना पड़ता था। भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया लोकतांत्रिक, राजनीतिक प्रणाली की स्थापना, स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के मूल्यों के प्रति जागरूकता के कारण महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका में परिवर्तन आया है। इस परिस्थिति में महिलाओं को घरेलू एवं बाहरी, परंपरागत एवं आधुनिक मूल्य व्यवस्था (Modern Value System) से सम्बन्धित कार्यों को करना पड़ता है। इस संक्रमणकालीन सामाजिक वातावरण में परिवार के सदस्य बाहरी कार्यों के साथ-साथ महिलाओं से घरेलू कार्यों के सम्पादन की भी अपेक्षा करते हैं। अत: महिलाओं को दोहरी भूमिका, जो कि परस्पर विरोधी होती है, निभानी पड़ती है जिससे भूमिका संघर्ष की स्थिति पैदा होती है। आरम्भ में, यह केवल नगरीय एवं औद्योगिक समाज में व्याप्त थी, किन्तु धीरे-धीरे भारतीय ग्रामीण समाज की महिलाओं को भी इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

बालिका को विद्यालयी शिक्षा के आरम्भ करने के साथ ही विपरीत भूमिकाओं को एक साथ निभाना पड़ता है उसे स्कूल जाने के साथ-साथ घर के कामों में भी हाथ बटाना होता है, क्योंकि परिवार के अन्य सदस्यों को इसकी अपेक्षा होती है।

शहरी परिवेश में नौकरी करने वाली महिलाओं को घरेलू कार्यों को भी पूरा करना पड़ता है। घर में पति के लिए खाना बनाने से लेकर अन्य सभी कार्य वह करती है चाहे पति घर पर ही क्यों न रहता हो। इसके अतिरिक्त बच्चों की देखभाल की भी जिम्मेदारी अलग से उसे निभानी होती है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralization) की प्रक्रिया के तहत महिलाओं को ग्रामीण समुदाय की राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु आगे चलकर यह अवसर भी उनकी भूमिका संघर्ष के अवसर में परिवर्तित हो गया, क्योंकि पंच या प्रधान महिलाओं को विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने के अलावा घर का भी काम करना पड़ता है।

भूमिका संघर्ष का महिलाओं पर प्रभाव (Effect of Role Conflict on Women)

भूमिका संघर्ष का महिलाओं पर निम्न प्रकार से प्रभाव दिखाई देता है–

1. महिलाओं द्वारा दोहरी भूमिकाओं के सम्पादन के कारण उनके भीतर परस्पर विरोधी भूमिकाओं के प्रति अरूचि पैदा हो जाती है।
2. वे दोनों ही भूमिकाएँ ठीक से नहीं निभा पाती हैं।
3. भूमिका द्वन्द्व (Role Conflict) की स्थिति में महिलाएँ यह निश्चित नहीं कर पाती हैं कि कौन सी भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है तथा कौन कम, ऐसी स्थिति में उन्हें तमाम मानसिक तनावों से गुजरना पड़ता है।
4. ग्रामीण या शहरी समाज में प्राय: महिलाओं से घरेलू कामों जैसे स्वेटर बुनना, समय-समय पर पति व बच्चों को चाय बनाकर देना आदि कार्य करना पड़ता है। यदि महिला ऑफिस के व्यस्त कार्यों के कारण ऐसा नहीं कर पाती तो उसे निन्दा तथा उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है और कभी-कभी तो तलाक की भी नौबत आ जाती है।

महिलाओं में भूमिका संघर्ष रोकने के उपाय
(Ways to Prevent Role Conflict Among Women)

महिलाओं की भूमिका द्वन्द्व की स्थिति टालने के लिए आवश्यक है कि भूमिकाओं का तार्किकीकरण किया जाए। भूमिका संघर्ष की प्रक्रिया मूलतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक है। महिला को यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि वर्तमान सन्दर्भ में कौन सी भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है तथा उसी का चुनाव करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि उसका बच्चा बीमार है उसे डाक्टर को दिखाना है किन्तु समय पर ऑफिस भी पहुँचना है। ऐसी स्थिति में बच्चे की बीमारी अधिक महत्त्वपूर्ण है तथा ऑफिस का काम बाद में करना चाहिए। कुछ महिलाओं को एक से अधिक औपचारिक पदों पर काम करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में महिला अपनी मुख्य भूमिका का चुनाव करके गौण भूमिका को छोड़कर भूमिका संघर्ष से छुटकारा पा सकती है।

उपर्युक्त उपायों के साथ ही, पितृसत्तात्मक मूल्य व्यवस्था को आधुनिक समतावादी मूल्य के साथ प्रतिस्थापित (Replaced) करने का प्रयास करना चाहिए, तभी तनाव एवं विघटन से बचकर एक स्वस्थ्य समाज की रचना की जा सकती है।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

19 दहेज प्रथा : महिलाओं की प्रमुख समस्या (Dowry System : Main Problems of Women)

महिलाओं की एक प्रमुख समस्या के रूप में दहेज (Dowry as a Major Problem of Women)

आधुनिक भारत में दहेज को एक गंभीर सामाजिक बुराई के रूप में देखा जा रहा है, जिसकी जड़ें समाज में गहरी हो रही हैं। दहेज का देना-लेना प्रत्येक क्षेत्र की सांस्कृतिक मान्यताओं (Cultural Beliefs) के अनुसार अलग-अलग ढंग से होता है और इसी कारण इसका अर्थ भी लोगों के लिए भिन्न-भिन्न होता है।

विवाह के समय अथवा इसके पश्चात् लड़की को जो उपहार दिए जाते हैं उन्हें कहीं-कहीं 'महिलाधन' माना जाता है। महिलाधन (Women's Wealth) की अवधारणा में नारी का संपत्ति-अधिकार परिलक्षित होता है। इसे संकट के समय और आवश्यकता पड़ने पर विवाहित लड़की के लिए एक सहारे के रूप में समझा जाता है। भारत के कई क्षेत्रों में लड़की को दिए गए उपहार, आभूषण, बर्तन विशेष रूप से उसके ही होते हैं और उसे यह अधिकार है कि वह जैसे चाहे इनका प्रयोग कर सकती है। उसके सास-ससुर सामान्यत: इन पर अपना अधिकार नहीं जताते हैं।

दहेज के कारण (Causes of Dowry)

हिन्दू विवाह में दहेज प्रथा की उपस्थिति के प्रेरक तत्त्वों या कारकों को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है:-

1. सामाजिक मान्यता तथा दहेज के सम्बन्ध में सामाजिक रूढ़ियाँ (Social Conservatives)।
2. वधू के पिता द्वारा ऊँचे कुल में अपनी पुत्री के विवाह की इच्छा।
3. जाति के अन्तर्विवाही नियम।
4. अनुलोम विवाह के नियम।
5. सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रदर्शन।
6. दहेज लेन-देन की चक्रीय व्यवस्था।
7. सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय।
8. महँगी उच्च शिक्षा पर खर्च की वापसी की धारणा।
9. संपत्ति में लड़की को हिस्सा न देने की प्रथा।

दहेज प्रथा के दुष्परिणाम (Bad Effects of Dowry)

दहेज प्रथा के प्रमुख दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं-

1. अधिक दहेज की माँग के फलस्वरूप निर्धन माता-पिता प्राय: अपनी पुत्रियों का विवाह करने में अपने को असमर्थ महसूस करते हैं।
2. दहेज संबंधी माँग पूरी न होने की स्थिति में महिलाओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता है तथा इसकी परिणति (Culmination) दहेज-हत्या के रूप में सामने आती है।
3. अविवाहित लड़कियां विवाह न हो पाने की स्थिति में माता-पिता पर पड़ने वाले समाजिक दबाव की चिंता व अपराध बोध के कारण आत्महत्या जैसे विकल्प को भी चुन लेती हैं जो दहेज की बढ़ती भयंकरता का सूचक है।
4. विवाह की आयु में वृद्धि हो रही है, जो समाज में यौन अनैतिकता को जन्म देती है।
5. दहेज प्रथा के कारण ही लड़कियों को भार स्वरूप समझा जाता है और लोग पुत्री संतान नहीं उत्पन्न करना चाहते, जिससे आज कन्या भ्रूण हत्या जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन बढ़ रहा है।

दहेज प्रथा के उन्मूलन हेतु किए गए उपाय (Efforts Made to Abolish Dowry System)

1. ***वैधानिक प्रयास (Legal Efforts) –*** 1961 के दहेज कानून के अंतर्गत दहेज देना और लेना दोनों को अपराध घोषित किया गया है तथा इसके लिए न्यूनतम 5 वर्षों तक कारावास और जुर्माने का भी प्रावधान किया गया है। 1986 में संशोधन के माध्यम से सजा को बढ़ाकर अधिकतम 10 वर्ष एवं 10 हजार या दहेज की रकम जो अधिक हो जुर्माने के रूप में वसूला जाएगा। इसी के साथ ही भारतीय दण्डसंहिता की धारा 498(A) में पति या उसके रिश्तेदारों के द्वारा महिला को दहेज के लिए उत्पीड़ित करने के लिए 3 वर्ष तक की सजा का प्रावधान किया गया है। साथ ही साथ भारतीय दण्डसंहिता की धारा 304(B) को जोड़कर दहेज मृत्यु को परिभाषित किया गया कि अगर किसी भी शादीशुदा महिला की मृत्यु सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है तो उसे दहेज मृत्यु समझा जायेगा। महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए वैधानिक स्तर (Legal Level) पर विवाह का पंजीकरण करवाना अनिवार्य बना दिया गया।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय में यह कहा गया है कि यदि किसी महिला की मृत्यु दहेज के कारण होती है तो ऐसे मामलों में राज्य को मुकदमा दहेज मृत्यु के साथ-साथ

हत्या की धारा में भी दर्ज करना चाहिए ताकि ऐसे लोगों को न्यायालय मृत्युदण्ड की सजा दे सके।

वैधानिक स्तर पर महिलाओं की समस्याओं पर त्वरित सुनवाई, उनकी शिकायतों पर विचार करने तथा महिलाओं की स्थिति पर अनुसंधान कार्य करने के लिए वर्ष 1990 में 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन किया गया। महिला आयोग आजकल इस क्षेत्र में बेहतर भूमिका निभा रहा है।

इनके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने विवाह के समय प्राप्त सभी उपहार को महिला धन माना है जिस पर वधू का हक होता है और गर्भवती बहू की हत्या में पति व सास के लिए फांसी की सजा का प्रावधान किया गया है।

2. ***योजनागत प्रयास (Planned Efforts) –*** योजनागत् प्रयासों के अंतर्गत सरकार ने महिला सशक्तिकरण के लिए विभिन्न योजनाओं की शुरूआत की है, ताकि महिलाओं को स्वावलम्बी (Self-Reliant) तथा सशक्त किया जा सके। इसके लिए एक राष्ट्रीय महिला कोष का भी गठन किया गया है। इसी क्रम में सरकार द्वारा बजट में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा आयकर की सीमा में छूट दी जाती है तथा विभिन्न राज्यों में महिलाओं द्वारा सम्पत्ति के क्रय करने पर स्टाम्प शुल्क में छूट प्रदान की जाती है। राज्य की सेवाओं में महिलाओं के लिए स्थानों का आरक्षण भी किया जा रहा है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

दहेज प्रथा को रोकने के लिए उठाए गये सरकारी एवं गैरसरकारी प्रयास प्रशंसनीय अवश्य हैं, किन्तु पर्याप्त नहीं हैं। किसी भी समस्या का समाधान सिर्फ कानून बना देने से नहीं हो जाता, बल्कि इसे लागू कराने के लिए बेहतर प्रयासों की आवश्यकता होती है।

दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए बने कानूनों के बावजूद आज भी बिना दहेज के विवाह अपवाद स्वरूप ही होते हैं। कुछ ऐसे प्रगतिशील युवा महिला-पुरुष अवश्य हैं जो दहेज के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते हैं और दहेज के बिना ही विवाह करते हैं। दूसरी तरफ, अधिकांश पढ़े-लिखे नवयुवक यह कहकर दहेज लेते हैं कि ऐसा करने में कोई बुराई नहीं है। कुछ यह कहकर छुटकारा पा लेते हैं कि उनके माता-पिता ऐसा चाहते हैं और वे उनकी आज्ञा की अवज्ञा नहीं करना चाहते हैं। आज दहेज की यह कुप्रथा (Malpractice) दूसरे समुदायों, जैसे-मुसलमानों और ईसाइयों में भी व्याप्त हो गयी है और वे भी दहेज मांगने लगे हैं। अक्सर विवाह के बाद भी दहेज की लगातार मांग के कारण वैवाहिक जीवन में तनाव की स्थिति हो जाती है। यहाँ तक कि इसके कारण तलाक की संख्या में वृद्धि हुई है, जिसे विघटित परिवारों में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है।

वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि कानूनों की प्रक्रिया को सरल बनाया जाए, ताकि आम व्यक्ति की पहुँच इन तक हो सके तथा समाज में जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्यक्रमों का संचालन किया जाना चाहिए। महिला सशक्तिकरण (Women Empowerment) व महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ महिलाओं के लिए कामकाज के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

स्पष्ट है कि इस सामाजिक प्रथा के उन्मूलन हेतु किए गए सभी प्रयास बहुत प्रभावी नहीं हैं। अतः इसको समाप्त करने के लिए कानूनों के साथ इसकी सामाजिक वैधता (Social Validity) पर भी प्रहार करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में शिक्षा के विकास के साथ दहेज प्रथा के विरुद्ध व्यापक जनजागरुकता कार्यक्रमों की आवश्यकता है जिसके लिए सरकारी, गैर सरकारी संगठन व नागरिक संगठनों को एक साथ प्रयास करना होगा। साथ ही, महिलाओं को अधिकाधिक सशक्त व आत्मनिर्भर बनाना होगा, जिससे उनकी पुरुषों पर निर्भरता समाप्त हो सके और वे दहेज के विरोध में एक सशक्त आन्दोलन चला सकें।

✪✪✪✪✪

KHAN SIR

20 भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा (Violence Against Women in India)

परिचय (Introduction)

महिलाओं के संदर्भ में हिंसा के अनेक रूप देखे जा सकते हैं, जो महिलाओं के स्वतंत्र व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा को स्थापित करने में सैद्धांतिक चुनौती के रूप में काम करते हैं। महिलाओं पर हिंसा के निम्नलिखित स्वरूपों को पहचाना जा सकता है:–

1. बलात्कार, यौन शोषण और दुर्व्यवहार,
2. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न,
3. पारिवारिक उत्पीड़न और दहेज मृत्यु/हत्या,
4. वेश्यावृत्ति,
5. अश्लील साहित्य और
6. कन्या भ्रूण हत्या आदि

बलात्कार, यौन शोषण और दुर्व्यवहार (Rape Sexual Exploitation and Abuse)

पुरुषों द्वारा महिलाओं एवं युवतियों के साथ बलात्कार, उत्पीड़न, छेड़-छाड़ और दुर्व्यवहार महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करते हैं और इस धारणा को कायम रखते हैं कि महिलाओं को जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में पुरुषों के संरक्षण की आवश्यकता है। भारत में महिलाओं पर अत्याचार और अपराध बढ़ रहे हैं और बलात्कार की घटनाएँ भी इसी प्रकार बढ़ रही हैं। आँकड़ों से यह अनुमान लगता है कि प्रति दो घंटे में देश में कहीं न कहीं बलात्कार होता है। देश के कई भागों में महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार के मामले और युवतियों को कुरूप बनाने के लिए तेजाब फेंकने की घटनाएँ होती रहती हैं। भारतीय समाज में विरोधाभास यह है कि बलात्कार की शिकार हुई महिला को हेय दृष्टि से देखा जाता है। जिस महिला के साथ बलात्कार होता है उस पर दोष लगाया जाता है कि महिला ने ही उसे आमंत्रित किया होगा या उसने कुछ भड़कीले वस्त्र पहने होंगे आदि। काम के स्थानों पर महिलाओं के उत्पीड़न और उनके साथ दुर्व्यवहार (Abuse) के प्रति मुश्किल से आवाज उठाई जाती है या रिपोर्ट की जाती है क्योंकि उन्हें रोजगार से वंचित होने का और निंदा का भय होता है। महाविद्यालयों, सार्वजनिक परिवहनों और अन्य सार्वजनिक स्थानों में छेड़खानी आम बात हो गयी है।

भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 376 के अनुसार बलात्कार एक दण्डनीय अपराध है, जिसमें अपराधी को आजीवन कारावास तक हो सकता है। इस धारा के अनुसार जब कोई पुरुष किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध या सहमति के बिना या मृत्यु का भय दिखाकर उससे संभोग करता है तो वह बलात्कारी कहलाता है। बलात्कार की समस्या सभी समाजों में पायी जाती है, किन्तु भारत की तुलना में पाश्चात्य देशों में ऐसी घटनाएँ अधिक होती हैं। बलात्कार के सभी मामलों की जानकारी सम्भव नहीं हो पाती है, क्योंकि कुछ मामले ही पुलिस में दर्ज करवाए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि सरकारी आंकड़ों की तुलना में वास्तविक बलात्कार की संख्या पाँच गुना से भी अधिक है।

राजस्थान में आंगनबाड़ी में काम करने वाली महिला भंवरी बाई के साथ कुछ लोगों ने बलात्कार किया, किन्तु प्रमाणों के अभाव में बलात्कारियों के प्रति कोई ठोस कार्यवाही नहीं की जा सकी। इसी प्रकार से उत्तराखंड की स्थापना की मांग को लेकर दिल्ली में प्रदर्शन करने जाने वाली महिलाओं के साथ भी पुलिस द्वारा बलात्कार किया गया, किन्तु दोषी पुलिस कर्मियों के प्रति कोई कठोर कार्यवाही नहीं की गयी। बलात्कार किया गया है इसका प्रमाण जुटाना, बलात्कारी को पहचानना और यह सिद्ध करना कि बिना स्त्री के सहमति के यह घटना घटी है, एक कठिन कार्य है। निर्जन एवं रात्रि में अंधेरे स्थानों पर किए गए बलात्कार के प्रमाण जुटाना तो और भी कठिन हो जाता है।

पति द्वारा पत्नी के प्रति किए गए बलात्कार को कानूनी रूप से बलात्कार नहीं माना जाता है क्योंकि यह विवाह का एक प्रतिफल माना जाता था। लेकिन 2013 में अपराध कानून संशोधन अधिनियम के अंतर्गत किसी महिला की इच्छा के विपरीत पति द्वारा किया गया संसर्ग बलात्कार माना गया।

बलात्कार की पीड़ित महिला द्वारा झेली गयी शारीरिक एवं मानसिक चोट का मुआवजा वित्तीय सहायता द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता, फिर भी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय में उसे झेले गये आघात से उबरने में सक्षम बनाने तथा उसकी तात्कालिक और दीर्घावधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 'बलात्कार के पीड़ितों को वित्तीय सहायता और समर्थन सेवाएँ' नामक एक स्कीम तैयार की गयी है। यह 'पुनरुद्धारक न्याय के सिद्धांत' पर आधारित है तथा इसमें प्रभावित महिला को एक सम्मानजनक स्थान तथा आत्मविश्वास को दोबारा लौटाने का प्रयास किया जाता है। स्कीम में बलात्कार की पीड़ित महिलाओं और छोटी बालिकाओं को भी शामिल किया गया।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का मानना है कि 'महिलाओं के खिलाफ अपराधों के सर्वाधिक हिंसक रूपों में बलात्कार एक ऐसा अपराध है, जो न केवल उसके शरीर की अखंडता को प्रभावित करता है बल्कि लम्बे समय में उसके सार्थक व्यक्तिगत और सामाजिक

संबंधों को विकसित करने की क्षमता को भी क्षति पहुँचाता है और उसके जीवन व जीविका को प्रभावित करता है। बलात्कार की पीड़ित महिला मानसिक और मनोवैज्ञानिक आघात (Psychological Shock) से पीड़ित रहती है, इसका समाधान इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह एक सम्मानजनक और सार्थक जीवन जी सके।

यौन अपराधियों का पंजीकरण (Registration of Sex Offenders)

अमेरिका और ब्रिटेन की तरह अब भारत सरकार भी दोषी यौन अपराधियों का पंजीकरण करने की योजना बना चुका है।

पंजीकरण की मुख्य बातें

1. वे यौन अपराधी जिनके विरुद्ध चार्जशीट दाखिल की जा चुकी हैं, (जिनमें 18 वर्ष से कम उम्र के दोषी भी शामिल होंगे) डेटाबेस में शामिल किए जाएँगे तथा इसको राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की वेबसाइट पर प्रदर्शित किया जाएगा।
2. यह डेटाबेस नागरिकों के लिए बन रहे क्राइम एंड क्रिमिनल ट्रैकिंग नेटवर्क एंड सिस्टम (CCTNS) पोर्टल के जरिए देखा जा सकेगा।
3. सरकार अपराधियों की तस्वीर, नाम, पता, पैन कार्ड नंबर, आधार कार्ड नंबर, फिंगरप्रिंट और डीएनए के नमूनों की जानकारी को प्रकाशित करने की योजना बना रही है।
4. मसौदे में उल्लिखित दिशा-निर्देशों में यह विचार रखा गया है कि अपराधी की विस्तृत जानकारी (जिसमें उपनाम, फोन नंबर, अस्थायी आवास के बारे में जानकारी, यात्रा और आव्रजन सम्बन्धी दस्तावेज शामिल हैं) उपलब्ध करायी जाएगी।
5. इसके अतिरिक्त उनके रोजगार से संबंधित जानकारी, स्कूली शिक्षा, कॉलेज, आपराधिक इतिहास, वाहन आदि का विवरण भी उपलब्ध कराया जाएगा।
6. इस परियोजना को ई-अदालत और ई-जेल अनुप्रयोगों के साथ एकीकृत करने का प्रस्ताव है, जिससे आपराधिक न्याय प्रणाली की दक्षता में सुधार किया जा सके।

जे.एस. वर्मा समिति

आपराधिक कानून में संभावित संशोधनों के बारे में सुझाव देने के लिए भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यीय समिति ने भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट 23 जनवरी, 2013 को सौंपी।

समिति की प्रमुख सिफारिशें (Main Recommendations of the Committee)

- न्यायालय के संज्ञान लेते ही अपराधी के चुनाव लड़ने पर रोक लगे।
- चुनाव के दौरान प्रत्याशियों के हलफनामें की कैग से जाँच होनी चाहिए।
- दुष्कर्म के आरोपी को सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (AFSPA) के तहत सुरक्षा नहीं मिले।
- आरोपी के खिलाफ कार्रवाई के लिए सरकार से पूर्व अनुमति जरूरी नहीं हो।
- अपराध कानून संशोधन विधेयक, 2012 में यौन उत्पीड़न (सेक्सुअल असॉल्ट) की जगह पहले से मौजूद दुष्कर्म (रेप) शब्द का प्रयोग किया जाए।
- आत्मरक्षा कानून में संशोधन कर तेजाब हमले को भी शामिल किया जाए।
- छेड़खानी व दुष्कर्म के मामले में एफ.आई.आर. नहीं दर्ज करने वाले अधिकारी को पाँच वर्ष की सजा का प्रावधान किया जाए।
- तेजाब हमले के दोषी को दस वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक की सजा हो।
- अश्लील हरकत पर एक वर्ष की सजा हो।
- शारीरिक छेड़छाड़ पर 5 वर्ष की सजा।
- महिला के कपड़े जबरन उतारने पर तीन वर्ष से सात वर्ष की सजा।
- महिला का पीछा करने वाले को एक से तीन वर्ष की सजा।
- छेड़खानी करने पर 1 से 7 वर्ष की सजा।
- मानव तस्करी की सजा 7 से 10 वर्ष।
- एक से अधिक लड़कियों की तस्करी पर 10 वर्ष से उम्रकैद तक की सजा।
- नाबालिग की तस्करी में भी 10 वर्ष से उम्रकैद तक की सजा।
- एक से अधिक नाबालिग की तस्करी पर 14 वर्ष से उम्रकैद तक की सजा।
- एक से अधिक बार मानव तस्करी में पकड़े जाने पर जीवित रहने तक जेल की सजा।
- तस्करी (Smuggling) कर लाए गए बाल श्रमिक को काम देने वाले नियोक्ता को भी पांच वर्ष की सजा, ऐसे बालिग को नौकरी पर रखने वाले की तीन से पांच वर्ष की सजा।
- दुष्कर्म की परिभाषा में संशोधन कर अप्राकृतिक यौनाचार (Unnatural Sex) को भी शामिल किया जाए।
- दुष्कर्म की सजा सात वर्ष से बढ़ाकर उम्रकैद की जाए तथा पीड़िता को मुआवजा मिले।
- संरक्षण में दुष्कर्म की स्थिति में सजा 10 वर्ष से उम्रकैद तक।
- दुष्कर्म से मौत या मौत की स्थिति तक पहुंचने पर कम से कम 20 वर्ष की सजा या उम्रकैद।
- नाबालिग से दुष्कर्म की स्थिति में 10 वर्ष से उम्रकैद तक की सजा।
- सामूहिक दुष्कर्म की नई धारा बनाकर 20 वर्ष से जीवनपर्यंत कैद की सजा और मुआवजा।

- सामूहिक दुष्कर्म से मौत या मौत की स्थिति में पहुँचने पर जीवनपर्यंत कैद की सजा।
- दोबारा दुष्कर्म के आरोपी को जीवनपर्यंत जेल की सजा।
- सुरक्षा का दायित्व निभाने में नाकामी की वजह से दुष्कर्म की स्थिति में जिम्मेदार अधिकारी को सात से 10 वर्ष की सजा।

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (Sexual Harassment of Women at Work Place)

भारत के श्रम बाजार का अधिकांश भाग (लगभग 90 प्रतिशत) असंगठित क्षेत्र की परिधि में आता है। इस असंगठित क्षेत्र में भी कार्य करने वालों की संख्या की दृष्टि से महिलाओं का एक बड़ा अनुपात है। सस्ते श्रमिक के रूप में इन महिलाओं को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वास्थ्यप्रद वातावरण में कार्य करने की सुविधाओं का अभाव रहा है और इन्हें नियुक्त करने वाले नियोक्ताओं द्वारा महिलाओं के यौन उत्पीड़न की घटनाएँ भारी मात्रा में प्रकाश में आयी हैं। इस स्थिति ने महिलाओं के यौन सुरक्षा के मुद्दे को गंभीर बनाया व वैधानिक संरक्षणों (Legal Protection) के पहल की पृष्ठभूमि निर्मित की। यह पहल पहली बार सर्वाधिक संगठित रूप में तब नजर आयी जब राजस्थान राज्य में एक सामाजिक महिला कार्यकर्ता के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना प्रकाश में आयी।

यौन सुरक्षा का औचित्य (Propriety of Sexual Security)

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने विशाखा बनाम राजस्थान राज्य वाद (1997) में स्त्रियों की यौन सुरक्षा का औचित्य स्पष्ट करते हुए कहा कि 'किसी वृत्ति, व्यापार या पेशा को चलाने के लिए सुरक्षित काम का वातावारण होना चाहिए। 'जीवन के अधिकार' का तात्पर्य मानव गरिमा से जीवन जीना है। ऐसी सुरक्षा और गरिमा की सुरक्षा को समुचित कानूनों द्वारा सुनिश्चित कराने तथा लागू करने का प्रमुख दायित्व विधानमंडल और कार्यपालिका का है, किन्तु जब कभी न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के अधीन महिलाओं के यौन उत्पीड़न का मामला लाया जाता है, तो उनके मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत (Guided Principles) विहित करना, जब तक कि समुचित विधान नहीं बनाये जाते, उच्चतम न्यायालय का संवैधानिक कर्त्तव्य है। यह निर्णय निश्चित रूप से श्रमजीवी महिलाओं को उनके कार्य स्थल पर प्रभावी संरक्षण प्रदान करने में सहायक होगा।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश (Instructions of the Supreme Court Regarding Sexual Harassment at Work Place)

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने विशाखा बनाम राजस्थान मामले की सुनवाई करते हुए स्पष्ट रूप में कहा कि, देश की वर्तमान सिविल विधियाँ या आपराधिक विधियाँ कार्य स्थल पर महिलाओं को यौन शोषण से बचाने के लिए पर्याप्त संरक्षण प्रदान नहीं करती हैं। उल्लेखनीय है कि इस मामले में महिलाओं को अनु॰ 14, 19 व 21 में प्रदत्त मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए विशाखा नामक एक गैर सरकारी संस्था ने जनहित वाद (P.I.L.) न्यायालय में दायर किया था। इस पर न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि:–

1. सभी नियोक्ता या अन्य व्यक्ति जो कार्य स्थल पर प्रभारी (Incharge) है, चाहे वह निजी क्षेत्र में हो या पब्लिक क्षेत्र में महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए समुचित कदम उठाना चाहिए।
2. सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के निकायों के आचरणों और अनुशासन संबंधी नियम या विनियमों में यौन उत्पीड़न रोकने संबंधी नियम शामिल किया जाना चाहिए और दोषी व्यक्तियों के लिए समुचित दण्ड का प्रावधान किया जाना चाहिए।
3. प्राइवेट क्षेत्र के नियोक्ताओं के सम्बन्ध में औद्योगिक नियोजन (स्टैडिंग आर्डर) अधिनियम, 1946 के अधीन स्टैडिंग आर्डर में ऐसे निषेधों को शामिल किया जाना चाहिए।
4. महिलाओं को काम, आराम, स्वास्थ्य के सम्बन्ध में समुचित परिस्थितियों का प्रावधान होना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि महिलाओं के कार्य स्थल पर कोई विद्वेषपूर्ण वातावरण न हो।
5. जहाँ ऐसा आचरण भारतीय दण्ड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन विशिष्ट अपराध होता हो तो नियोक्ता को विधि के अनुसार उसके विरूद्ध समुचित प्राधिकारी को शिकायत करके समुचित कार्यवाही प्रारम्भ करनी चाहिए।
6. यौन उत्पीड़न की शिकार महिला को अपना या उत्पीड़नकर्ता का स्थानान्तरण करवाने का विकल्प होना चाहिए।

मोबाइल में आपात बटन

1. सरकार मोबाइल फोन में आपात बटन लगाने की संभावनाएं तलाश रही है।
2. इसे जीपीएस से जोड़ा जाएगा।
3. आपत बटन दबाने से कुछ निश्चित मोबाइल फोन पर एसएमएस जाएगा और जीपीएस के द्वारा स्थान की जानकारी मिलेगी।
4. वर्तमान मोबाइल में जो आपातकालीन प्रतिक्रिया एप रहती हैं उन्हें जरूरत पड़ने पर तुरंत उपयोग करना कठिन होता है जबकि फोन पर मौजूद बटन का उपयोग बहुत सरल होता है और तुरन्त उपयोग किया जा सकता है।
5. अन्य उपकरणों की सीमाएँ एसओएस सुविधाओं वाले विशेष कंगन, अंगूठी, हार आदि की पहुँच और सामर्थ्य जैसी कुछ सीमाएं होती हैं। साथ ही, महिलाओं को इन उपकरणों को हमेशा साथ रखना असुविधाजनक होता है।

यौन उत्पीड़न (रोकथाम, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) कानून, 2013 (Sexual Harassment (Prevention, Prohibition and Redressal) Law, 2013

भारत में महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न व शोषण व अन्य प्रकार की प्रताड़ना (Torture) से सुरक्षा प्रदान करने व स्वस्थ वातावरण में कार्य करने का अवसर देने के लिए विशाखा दिशा निर्देश के स्थान पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) कानून, 2013 लाया गया।

यह 9 दिसम्बर, 2013 से लागू हो गया, 1997 के विशाखा बनाम राजस्थान सरकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देश को ध्यान में रखते हुए यह कानून लाया गया था। कानून में यह प्रावधान किया गया था कि शिकायतों की 90 दिनों की समय सीमा के अन्दर जांच करनी होगी और प्रावधानों का उल्लंघन करने पर नियोक्ताओं पर 50 हजार रुपये तक का जुर्माना लगाया जाएगा। इस कानून का उद्देश्य संगठित एवं असंगठित दोनों क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं को कार्यस्थल पर सुरक्षित माहौल प्रदान करना था। कृषि एवं घरेलू कार्य में लगी महिलाओं को भी इस कानून के दायरे में लाया गया। इसके कार्यान्वयन की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होगी। नियोक्ताओं को समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए 60 दिनों का समय दिया जाएगा। संगठित क्षेत्र में शिकायातों की जांच के लिए आंतरिक समिति गठित की जाएगी, जबकि असंगठित क्षेत्र के लिए स्थानीय स्तर पर समितियाँ बनाई गयीं।

भारत में नाबालिग एवं महिलाओं से बलात्कार (Rape of Minors and Women in India)

महिलाओं और बच्चियों से रेप की वारदात को रोकने और दोषियों को कड़ी सजा देने के मकसद से केंद्रीय कैबिनेट ने क्रिमिनल कैबिनेट लॉ अमेंडमेंट अध्यादेश-2018 को मंजूरी दे दी है। इसके तहत् 12 साल से कम उम्र की मासूमों से रेप के दोषियों को मौत की सजा का प्रावधान किया गया है।

1. महिलाओं के साथ बलात्कार की सात साल की सजा को बढ़ाकर 10 साल तक के कठोर कारावास की सजा का प्रावधान किया गया, इसको आजीवन कारावास तक भी बढ़ाया जा सकता है।
2. 12 साल से अधिक और 16 साल की लड़कियों से रेप के मामले में सजा को 10 साल से बढ़ाकर 20 साल किया गया है। इसको आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है।
3. 12 साल से अधिक और 16 साल से कम उम्र की लड़की से गैंगरेप के मामले में दोषियों को आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान किया गया है।
4. 12 साल से कम उम्र की बच्ची से रेप के दोषी को कम से कम 20 साल की सजा या आजीवन कारावास या मृत्यु होने तक उसको जेल में रखा जाएगा।
5. 12 साल से कम उम्र की बच्ची से गैंग रेप के दोषी को आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान है।

पारिवारिक उत्पीड़न और दहेज से मौतें (Death Due to Family harassment and Dowry)

परिवार में महिलाओं से मारपीट, दुर्व्यवहार, भावनात्मक अत्याचार (Emotional Abuse) और इसी प्रकार के अन्य व्यवहार को न केवल पारिवारिक समस्या माना जाता है वरन् इन्हें महिलाओं के विरुद्ध अपराध के रूप में प्रावधानित किया गया है। यह भी देखा गया है कि समाज के सभी वर्गों में पारिवारिक अत्याचार होते रहते हैं। नव-विवाहितों पर अत्याचार के चरम रूप को 'दहेज हत्या' या 'बहू को जलाने की घटना' के रूप में देखा जा सकता है। अधिकांश बहुओं को जलाने की घटनाएँ या दहेज हत्याएँ लड़की के ससुराल वालों की अतृप्त माँगों (Unsatisfied Demands) के कारण होती है जिन्हें लड़की के माता-पिता पूरी नहीं कर पाते हैं। बहू को अधिक दहेज लाने के लिए तंग किया जाता है और सुसराल वाले बहू को खत्म करने की कोशिश करते हैं ताकि वे अपने लड़के की शादी एक बार फिर कर सकें और नई वधू के माता-पिता से अधिक दहेज ले सकें। वधू द्वारा की गई आत्महत्या की घटनाओं के पीछे अधिकतर या तो ससुराल वालों अथवा पति द्वारा किए गए अत्याचार होते हैं। कभी-कभी कुछ अन्य कारण भी होते हैं जैसे-बेटी को अकेले अथवा बच्चों सहित रखने में माता-पिता को अतिरिक्त खर्च उठाना पड़ता है। इसके अलावा माता-पिता की इज्जत का सवाल भी उठता है, जिसमें शादी के बाद यदि लड़की अपने माता-पिता के घर में रहती है, तो समाज में उनके परिवार की प्रतिष्ठा और स्थिति कलंकित (Tranished) हो जाती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और नारीवादियों ने माता-पिता की पैतृक और स्व-अर्जित (Self Earned) दोनों प्रकार की सम्पत्ति में लड़की के अधिकार की माँग की है। यह महसूस किया गया है कि इससे दहेज मौतों या दहेज हत्या की दुर्घटनाएँ रुकेंगी। वधू की आर्थिक सुरक्षा उसके माता-पिता, रिश्तेदारों की भावनात्मक और नैतिक सहायता की तरह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

विवाह के समय दहेज के भावी भुगतान से मुक्ति पाने के लिए अमीनोसेंटेसिस (लिंग पहचान परीक्षण) की सहायता से उत्तरी और पश्चिमी भारत में जानबूझकर मादा भ्रूण की हत्याएँ हो रही हैं। यह देखा गया है कि दहेज प्रथा का प्रचलन अनुलोम विवाह अर्थात् उच्च जाति के पुरुष और निम्न जाति की महिला के बीच विवाह से शुरू हुआ। 'महिला धन' की अवधारणा का स्थान धीरे-धीरे दहेज ने ले लिया है। दहेज के बारे में अन्य प्रचलित धारणा है कि यह महिला के निर्वाह का उत्तरदायित्व लेने के लिए वर के परिवार को क्षतिपूर्ति दी जाती है। यह धारणा इस संकल्पना पर बनी है कि महिला 'कामकाजी' व्यक्ति नहीं है और विवाह वर के परिवार पर वधू के परिवार से 'गैर-कामकाजी' व्यक्ति के निर्वाह के इस 'भार' को डालता है।

दहेज प्रथा को रोकने हेतु माता-पिता और समाज द्वारा विवाह को असाधारण महत्त्व दिए जाने तथा किसी भी कीमत पर विवाह के लिए दबाव डालने की मानसिकता का विरोध करने की जरूरत है। दहेज प्रथा का स्थायित्व महिलाओं की महत्ता को कम करता है और लड़कियों के पैदा होने को अवांछित बनाता है। अविवाहित रहने के विकल्प को सम्मान और महत्त्व दिया जाना चाहिए। अकेले रहने वाली अविवाहित महिला या पैतृक परिवार के साथ रहने वाली महिला को 'विचलन' (Deviation) के बदले एक 'प्रतिमान' (Norms) के रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाने तथा उन्हें राहत व आपातकाल में संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005 लागू किया गया। यह अधिनियम एवं घरेलू हिंसा से संरक्षण नियम, 2005 पूरे देश में एक साथ 14 सितंबर, 2005 से लागू किए गए। इस अधिनियम के अंतर्गत पहली बार घरेलू संबंधों और घरेलू हिंसा को स्पष्ट एवं परिभाषित किया गया। बहन, विधवा, माँ, बेटी, अकेली अविवाहित महिला आदि को भी इस अधिनियम के अंतर्गत राहत हेतु घरेलू संबंधों में शामिल किया गया। इस अधिनियम के तहत घरेलू हिंसा का व्यापक अर्थ लिया गया।

यह भारत में पहला ऐसे कानून के रूप में लाया गया, जो महिलाओं को अपने घर में रहने का अधिकार देता है। यह कानून घरेलू हिंसा को रोकने के लिए केन्द्र व राज्य सरकार को जवाबदेह एवं जिम्मेदार ठहराता है। इस कानून के अनुसार घरेलू हिंसा के तहत वैसे सभी व्यवहार जो महिला के शरीर या स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो, दर्द या चोट पहुँचाएँ, शामिल किए गए हैं। ऐसा कोई भी अपत्तिजनक व अनचाहा यौन व्यवहार व हरकत जो महिला को शारीरिक कष्ट दे या अपमानित करे या उसके मान-सम्मान को चोट पहुँचाए, घरेलू हिंसा की श्रेणी में रखे गए हैं। इस कानून के तहत् महिला के साथ हुई हिंसा के साक्ष्य प्रमाणित किया जाना जरूरी नहीं है। महिला के द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों को आधार माने जाने का प्रावधान किया गया है। इस सन्दर्भ में अदालत का यह मानना है कि घर के अन्दर होने वाली हिंसा का साक्ष्य मिलना मुश्किल है।

घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005 के तहत घरेलू हिंसा की रोकथाम के लिए अदालत को तीन दिन के अन्दर बचावकारी आदेश व गिरफ्तारी के वारंट जारी करेंगे। घरेलू हिंसा से पीड़ित कोई भी महिला अदालत में जज के समक्ष स्वयं या किसी वकील अथवा सेवा प्रदान करने वाली संस्था या संरक्षण अधिकारी की मदद से अपनी सुरक्षा के लिए बचावकारी आदेश ले सकती है। घरेलू घटना रिपोर्ट (डोमेस्टिक इंसिडेंट रिपोर्ट) एक कार्यालयी प्रारूप है, जिसमें घरेलू हिंसा (Domestic Violence) की रिपोर्ट दर्ज करायी जाती है। इस कानून के तहत मिलने वाली राहत में बचावकारी आदेश, काउंसिलिंग, क्षतिपूर्ति, भरण-पोषण भी दिया जाता है।

अगर पीड़ित की रिपोर्ट से अदालत को लगे कि महिला को हिंसाकर्ता से आगे भी खतरा हो सकता है तो न्यायाधीश हिंसाकर्ता को घर से बाहर रहने का आदेश दे सकते हैं। इस कानून के अंतर्गत नियुक्त संरक्षण अधिकारी (प्रोटेक्शन ऑफिसर) को यह जिम्मेदारी दी गयी है कि पीड़ित महिला को आवेदन लिखने, आवेदन अदालत तक पहुँचाने तथा कोर्ट से राहत दिलाने में मदद करें।

इसके लागू होने के बाद भी महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा में कोई विशेष कमी नहीं आई है। घरेलू हिंसा की शिकार कई महिलाएँ लोक-लाज या डर के मारे शिकायत ही दर्ज नहीं कराती हैं। कानून के मुताबिक एक केस तीन महीने के अन्दर खत्म हो जाना चाहिए, परन्तु 2005 से लेकर अब तक हजारों में से केवल कुछ केस ही ऐसे रहे जो तीन महीने के अन्दर सुलझाए गए। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं में केवल एक चौथाई ही रिपोर्ट दर्ज कराती हैं। महिलाओं के मुद्दों पर काम कर रहे संगठनों को भी कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि आश्रय गृह की व्यवस्था न होना, संरक्षण अधिकारियों का न मिलना, केस को गंभीरता से न लिया जाना आदि। ऐसे में यह कानून अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूरी तरह से सफल नहीं हो पा रहा है।

2016 में सुप्रीम कोर्ट ने 2005 के अधिनियम में संशोधन कर अब वयस्क पुरुष शब्द को समाप्त कर दिया है तथा महिलाएं भी घरेलू हिंसा के लिए जिम्मेंदार मानी जाएंगी।

घरेलू हिंसा अधिनियम में परिवर्तन (Changes in Domestic Violence Act)

इसके संबंध में

सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान में से 'वयस्क पुरुष' शब्द समाप्त कर दिया है, ताकि एक महिला किसी दूसरी महिला पर घरेलू हिंसा का आरोप लगाते हुए उसके विरूद्ध भी शिकायत (परिवाद) दर्ज करा सके।

न्यायालय द्वारा दिए गए कारण

1. घरेलू हिंसा की अपराधकर्त्ता और दुष्प्रेरक, महिलाएं भी हो सकती हैं, इसलिए उन्हें न्याय प्रक्रिया से अलग रखने से अधिनियम का प्रयोजन निष्फल हो जाएगा। इस उन्मुक्ति के अंतर्गत महिलाएं एवं छोटे बच्चे घरेलू हिंसा करना जारी रख सकते हैं।
2. यह समान स्थिति वाले व्यक्तियों के बीच भेदभाव करता है एवं इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

परिवर्तन का महत्व

1. यह घरेलू हिंसा को लिंग निरपेक्ष बना देता है, जो कुछ विशेषज्ञों (न्यायपीठ सहित) के अनुसार न्याय के प्रयोजन को बेहतर रूप से पूर्ण करने में सहायता करेगा।
2. हालांकि इससे संबंधित कुछ चिंताएं भी व्यक्त की गयी हैं कि यह पतियों को अपनी माताओं या बहनों के माध्यम से अपनी पत्नियों के विरूद्ध प्रतिवाद (Counter Argument) दर्ज कराने के लिए भी प्रोत्साहित करेगा।

3. इस अधिनियम के अंतर्गत किशोरों को भी रखे जाने से संबंधित शंकाएं भी हैं। घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत कोई आपराधिक प्रावधान नहीं है, इसलिए किशोर अपराध बोर्ड के संबंध में कोई प्रश्न नहीं है।
4. घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत प्रदान की जाने वाली राहत लगभग सदैव वित्तीय भरण-पोषण, क्षतिपूर्ति एवं वैकल्पिक आवास व्यवस्था होती है-जिसका दावा किसी वयस्क व्यक्ति के विरूद्ध ही किया जा सकता है।

नवीन शोध : घरेलू हिंसा
(New Research : Domestic Violence)

सांख्यिकी एवं योजना कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा हाल ही में जारी प्रतिवेदन के अनुसार महिलाओं के विरूद्ध अपराध में घरेलू हिंसा का हिस्सा सर्वाधिक है। इस प्रतिवेदन का शीर्षक 'भारत में महिला एवं पुरुष -2015' था।

1. महिलाएं अभी भी अपने परिवारों से ही सर्वाधिक खतरे का सामना करती हैं।
2. महिलाओं के विरूद्ध संगीन अपराधों के दर्ज सभी मामलों में सर्वाधिक हिस्सा (36%) परिवार एवं सगे संबंधियों द्वारा की गयी क्रूरता का था।
3. दूसरा सर्वाधिक भाग (24%) महिलाओं की शीलता को क्षति पहुचाने के आशय से उन पर हमला करना था।
4. पिछले कुछ समय में बलात्कार, अपहरण तथा महिलाओं पर होने वाले हिंसक हमलों में वृद्धि हुई है।
5. 2014 में सामने आये बलात्कार के मामलों में पीड़ितों में लगभग 44 प्रतिशत 18-30 वर्ष के आयु समूह के थे जबकि प्रत्येक 100 पीड़ितों में से एक छः वर्ष से कम उम्र का था।

वेश्यावृत्ति तथा अनैतिक व्यापार
(Prostitution and Immoral Trade)

वेश्यावृत्ति महिलाओं की एक अन्य समस्या है जो उनकी मानवीय प्रतिष्ठा का अवमूल्यन करती है और उन्हें समाज में 'पतिता' के रूप में चित्रित करती है। 1986 में वेश्यावृत्ति के अवैध कार्य को रोकने के लिए अनैतिक देह-व्यापार निषेध अधिनियम संशोधित किया गया। अधिनियम के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों और गरीब परिवारों से अवयस्क लड़कियाँ और महिलाएँ वेश्यावृत्ति के लिए विवश की जाती हैं, उनका अपने शरीर और अपनी कमाई पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। यह मुख्य रूप से परिस्थितिजन्य (Circumstantial) विवशता है जिससे वेश्यावृत्ति की समस्या खड़ी होती है। इन विवशताओं में दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं-प्रथम, सामाजिक परित्याग तथा द्वितीय, गरीबी। पहली स्थिति में, बहुत-सी ऐसी महिलाएँ हैं जिनका सामाजिक दृष्टि से परित्याग किया गया है, जैसे-विधवाएँ, निराश्रय और परित्यक्त महिलाएँ, धोखे और ठगी की शिकार जिन्हें विवाह का वचन दिया गया था अथवा विवाह किया गया था और फिर उन्हें दलाल या वेश्यालय के मालिक को बेच दिया गया। सामाजिक परित्यक्तों में भी कई ऐसी महिलाएँ होती हैं जिन्हें उनके परिवार, माता-पिता या पति ने बलात्कार का शिकार होने के बाद छोड़ दिया है। दूसरी स्थिति में, गरीबी वह मुख्य कारण है जिससे विवश होकर अपनी क्षुधापूर्ति तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महिलाओं को देह व्यापार के नरक में जाना पड़ता है।

स्पष्टतः भारत में वेश्यावृत्ति की समस्या न केवल सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से एक गम्भीर समस्या है वरन् यह सामाजिक स्वास्थ्य, नारी अस्तित्व के साथ ही मानवतावादी दृष्टि से भी कलंक तुल्य (Stigma) है। यद्यपि वेश्यावृत्ति को दूर करने तथा वेश्याओं के पुनर्वास के लिए कई सरकारी कार्यक्रम व कानून लागू हैं किन्तु हम इस कलंक को तब तक नहीं धो सकते जब तक दृढ़ इच्छा से इन कार्यक्रमों व कानूनों के साथ ही इन्हें लागू करने वाली मशीनरी को दुरुस्त न कर लिया जाए।

अश्लील साहित्य (Obscene Literature)

आज अश्लील साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ, चित्र, विज्ञापन और फिल्में बनाई जाती हैं, जिन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के रूप में देखा जाता है। इससे वास्तव में महिलाओं के सम्मान का उल्लंघन होता है। ऐसी स्थिति में एक ओर तो बलवान, आक्रमणशील और उग्र लक्षणों के साथ पुरुषों की पितृसत्तात्मक (Patriarchal) छवि बनी रहती है और दूसरी ओर सेक्स की वस्तु के रूप में दुर्बल, विनयशील, संवेदनशील महिला की छवि बनती है। इन छवियों का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों, वस्त्रों, घरेलू उपयोग के उपकरणों और कई अन्य वस्तुओं के विज्ञापनों में वाणिज्यिक लाभ के लिए किया जाता है। महिला को कामुक और सम्मोहक रूप में चित्रित किया जाता है, पुरुष को उग्र और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया जाता है। फिल्मों में भी इसी प्रकार के फार्मूले का उपयोग किया जाता है। संचार-माध्यमों में महिलाओं की छवि के अश्लील और गलत चित्रण के विरुद्ध समय-समय पर दबाव पड़ते रहे हैं और विरोध भी होता रहा है।

महिला अशिष्ट रूपण प्रतिषेध अधिनियम, 1986 विज्ञापनों या प्रकाशनों, लेखों, चित्रों, आकृति में या किसी अन्य तरीके से और इससे सम्बद्ध मामलों के लिए अथवा उनके प्रयोग के लिए महिलाओं के अशिष्ट प्रतिरुपण (Impersonation) का प्रतिषेध करता है, फिर भी अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हुई।

महिला अशिष्ट रुपण (प्रतिषेध) अधिनियम
(Indecent Representation of Women (Prohibition) Act)

सरकार ने महिला अशिष्ट रुपण प्रतिषेध अधिनियम-1986 (Indecent Representation of Women Prohibition Act) में संशोधन किया। संशोधनों के अनुसार कानून का कार्य क्षेत्र बढ़ा दिया गया है। अब इसके अंतर्गत टेलीविजन (टी.वी) कार्यक्रम और इलेक्ट्रॉनिक फॉर्म में भी सामग्री आएगी। संशोधनों का उद्देश्य इंटरनेट, मैसेजिंग आदि के जरिए महिलाओं के खिलाफ समाचारों

में अश्लील छवि प्रस्तुत करने को रोकना है। जब यह कानून बनाया गया था तो इसके अंतर्गत सिर्फ प्रिंट मीडिया की सामग्री ही आती थी। मगर इंटरनेट, एमएमएस, ईमेल, केवल टीवी आदि नए संचार माध्यमों के आ जाने के बाद कानून में संशोधन की जरूरत महसूस की जा रही थी। इससे महिलाओं की आपत्तिजनक छवि पेश करने से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान हो सकेगा, जिससे उनकी गरिमा बनाए रखी जा सकेगी। संशोधित कानून के तहत इसके लिए पहली बार दोषी ठहराए जाने पर तीन वर्ष की कैद तथा 50,000 से एक लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है। दूसरी बार दोषी ठहराए जाने पर इस कानून के तहत कम से कम दो साल कैद की सजा हो सकती है, जो सात वर्षों तक बढ़ाई जा सकती है और दोषी व्यक्ति पर एक लाख से पांच लाख रुपए तक जुर्माना लगाया जा सकता है। कानून के तहत राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा अधिकार प्राप्त अधिकारियों के अतिरिक्त केवल इंस्पेक्टर तथा इससे ऊपर के अधिकारियों को ही तलाशी लेने व जब्ती का अधिकार होगा।

2000 में बनाए गए इन्फॉर्मेशन एंड टेक्नोलॉजी एक्ट की धारा 66 के सेक्शन ए के तहत मोबाइल या इंटरनेट के माध्यम से किसी भी स्त्री को अश्लील एसएमएस, ई-मेल या तस्वीरें भेजना, धमकी देना या फोन पर अश्लील बातें करना संज्ञेय अपराध माना गया है अर्थात् केवल स्त्री द्वारा दर्ज कराए गए एक एफआईआर के आधार पर पुलिस आरोपी को बिना वारंट जारी किए पूछताछ के लिए अपनी हिरासत में 24 घंटे तक रख सकती है। इसके लिए पुलिस को किसी से अनुमति लेने की भी आवश्यकता नहीं होती है। इसके अलावा आईपीसी को धारा 499 के तहत ऐसा करने वाले व्यक्ति पर मानहानि का भी मुकदमा दर्ज किया जा सकता है और आरोप सिद्ध हो जाने पर उसे तीन साल के लिए कारावास की भी सजा हो सकती है।

कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णय के तहत इन सभी प्रावधानों को सख्त करते हुए इसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को भी शामिल किया गया है।

कन्या भ्रूण हत्या (Female Foeticide)

भारत में कन्या भ्रूण हत्या में क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर काफी विभिन्नता देखने को मिलती है। एक ओर जहाँ पूर्वी और उत्तरी-पश्चिमी राज्यों में इस तरह की घटनाएँ ज्यादा दिखायी पड़ती हैं वहीं पश्चिमोत्तर, उत्तर-पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यों में इस तरह की घटनाएँ कम देखने में आती हैं।

वर्ष 2001 में देश में 0-6 वर्ष के बच्चों का लिंगानुपात (Sex Ratio) जहाँ प्रति 1000 पर 927 था वहीं 2011 की जनगणना में यह गिरकर 919 पर जा पहुँचा। यह भारत की स्वतंत्रता के बाद सर्वाधिक कम बाल लिंगानुपात है। हालांकि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, मिजोरम तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह में वर्ष 2001 के मुकाबले 2011 में बाल लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गयी है। शेष 27 राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में यह 2001 के मुकाबले नीचे आ गया है। सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में मिजोरम बाल लिंगानुपात के मामले में प्रथम स्थान पर है। 2011 की जनगणना की अंतरिम रिपोर्ट के अनुसार, यहाँ 0-6 वर्ष के बच्चों में प्रति 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या 971 है। दूसरे स्थान पर मेघालय है जहाँ यह अनुपात 970 है। कम लिंगानुपात वाले पंजाब और हरियाणा जैसे परंपरागत राज्यों में यद्यपि 2001 के मुकाबले 2011 में बाल लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गयी है लेकिन अभी वह इस मामले में निचले पायदान पर है। हरियाणा में यह अनुपात 834 तथा पंजाब में 846 है तथा ये दोनों राज्य बाल लिंगानुपात में निचले दो स्थान पर हैं।

हरियाणा के झज्जर (774) तथा महेन्द्रगढ़ (778) जिले देश के सबसे कम बाल लिंगानुपात वाले जिले हैं। वहीं हिमाचल प्रदेश के लाहौल व स्पीति जिले का बाल लिंगानुपात 1013 है जो पूरे देश में सर्वाधिक है। चंड़ीगढ़, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, मिजोरम और आंध्रप्रदेश में वर्ष 2001 के मुकाबले 2011 में शिशु लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गयी है। शेष सभी राज्यों या केन्द्र शासित प्रदेशों में इसमें गिरावट दर्ज की गयी है, जिसमें केरल जैसा राज्य भी शामिल है जहाँ पूरे देश में स्त्री-पुरुष अनुपात सर्वाधिक है। पुदुचेरी, जहां सभी केन्द्र शासित प्रदेशों के मुकाबले स्त्री-पुरुष अनुपात सर्वाधिक है, में भी बाल लिंगानुपात में 2001 के मुकाबले 2011 में शिशु लिंगानुपात में कमी दर्ज की गयी है जो कि भविष्य में आने वाले खतरे का संकेत है। समय रहते यदि इस पर गंभीरतापूर्वक नहीं सोचा गया तो इसके परिणाम काफी भयानक होंगे।

वर्ष 2012 में कन्या भ्रूण हत्या के संदर्भ में बेबी फलक और आफरीन ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इन दोनों ने ही कन्या होने का मूल्य अपनी जान देकर चुकाया। भारत में लड़कियों के साथ दोयम दर्जे के व्यवहार का एक अहम उदाहरण कन्या भ्रूण हत्या के रूप में देखने को मिलता है। इसके तहत उन्हे माँ के गर्भ में ही जीवन के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। अनेक वैधानिक प्रावधानों (Legal Provision) के होते हुए भी इस स्थिति से मुक्ति की संभावना कम एवं चुनौतियाँ ज्यादा दिखती हैं। देश की जनगणना रिपोर्ट 2011 इस बारे में और चिंताजनक तथ्य प्रस्तुत करती है। राजधानी दिल्ली और इससे लगे हरियाणा, पंजाब, राजस्थान सहित कई राज्यों में बाल लिंगानुपात चिंताजनक स्थिति तक पहुँच गया है। शहरी व शिक्षित वर्ग में मादा भ्रूण हत्या (Female Feticide) की बढ़ी दर यह बताती है कि शिक्षा के बावजूद वंश परंपरा और दहेज को लेकर लोगों की मानसिकता बदली नहीं है।

हाल ही में प्रकाशित केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2001-2005 के दौरान करीब 6,82,000 कन्या भ्रूण हत्याएँ हुईं। इस लिहाज से देखें तो इन चार सालों में रोजाना 1800 से 1900 कन्याओं को जन्म लेने से पहले ही दफन कर दिया गया। समाज की रुढ़िवादिता में जीने की सही तस्वीर दिखाने के लिए सीएसओ की यह तस्वीर पर्याप्त है। सरकार की लाख कोशिशों के बावजूद समाज में कन्या भ्रूण हत्या की घटनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं। गैर कानूनी और छुपे तौर पर कुछ इलाकों में तो जिस तादाद

में कन्या भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं उस पर सीएसओ की रिपोर्ट केन्द्र सरकार के दावों को सिरे से खारिज करती है। सरकारी तर्क में कहा गया है कि 0-6 साल के बच्चों का लिंगानुपात सिर्फ कन्या भ्रूण के गर्भपात के कारण ही प्रभावित नहीं हुआ है, बल्कि इसकी वजह कन्या मृत्यु दर का अधिक होना भी है। उल्लेखनीय है कि 1981 में 0-6 साल के बच्चों का लिंगानुपात 962 था जो 1991 में घटकर 945 हो गया और 2001 में 927 रह गया। 1995 में बने 'जन्म पूर्व नैदानिक अधिनियम के मुताबिक गर्भ में पल रहे बच्चे का लिंग परीक्षण गैर-कानूनी है। इसके बावजूद इसका उल्लंघन सबसे अधिक होता है। सरकार ने 2016-17 तक बच्चों का लिंगानुपात बढ़ाकर 950 करने का लक्ष्य रखा है। देश में 648 में से 328 जिलों में बच्चों का लिंगानुपात 950 से कम है। यह स्थिति देश के बाल लिंगानुपात में क्षेत्रीय असमानता (Regional Inequality) को दर्शाती है। यूनिसेफ के अनुसार 10 प्रतिशत महिलाएँ विश्व की जनसंख्या से लुप्त हो गयी हैं, जो गहन चिंता का विषय है। स्त्रियों के इस विलोपन के पीछे कन्या भ्रूण हत्या मुख्य कारण है।

मूल्यांकन (Evaluation)

वर्तमान में भारत में महिलाओं को विभिन्न प्रकार के तथा विभिन्न स्तरों पर सामाजिक-पारिवारिक हिंसा का सामना करना पड़ रहा है। भारत में महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अपराधों एवं हिंसा की जानकारी गृह मंत्रालय, पुलिस अन्वेषण विभाग तथा नेशनल इन्स्टीटयूट ऑफ सोशेल डिफेन्स विभाग द्वारा प्रसारित आंकड़ों से होती है। दहेज सम्बन्धी हत्या में वृद्धि हुई है जो वर्ष 2002 में 6,822 थी वह 2004 में बढ़कर 7,026 के स्तर पर पहुँच गयी। वर्ष 2005 में सर्वाधिक दहेज हत्या (Dowry Death) के मामले उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य प्रदेश में पाये गये हैं। भारत में प्रत्येक 33 मिनट में महिलाओं के साथ किए जाने वाले अपराधों में से दो तिहाई अपराध भारत के पांच राज्यों-मध्य प्रदेश (17.6), उत्तर प्रदेश (15.7), महाराष्ट्र (13.9%), आन्ध्र प्रदेश (7.9%) तथा राजस्थान (7.5%) में होते हैं। 37.4% महिला अपराध शेष भारत के सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में होते हैं। महिलाओं के बारे में प्रदर्शित किए गए ये आँकड़े अपूर्ण हैं क्योंकि उनके प्रति किए गए सभी अपराधों को पुलिस में दर्ज नहीं कराया जाता है तथा नारी के प्रति घर में ही किए जाने वाले अपराधों को घरेलू मामला समझ कर पुलिस उनमें हस्तक्षेप नहीं करती और स्त्रियाँ भी उन्हें बाहर उजागर करना उचित नहीं मानती। बहुत से नारीवादी संगठन (Feminist Organization) तथा मानवाधिकारवादी भी समय-समय पर सरकार एवं समाज का ध्यान महिलाओं के प्रति हिंसा की ओर आकर्षित करते हैं। महिलाओं के कल्याणार्थ सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से तमाम कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। सरकार ने महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को सभी स्तरों पर तथा सभी प्रारूपों में अपराध घोषित कर रखा है तथा उनके निवारण के लिए सभी दाण्डिक, निवारक तथा प्रतिकारात्मक कानून बनाए हैं। इन सबके बावजूद नारियों के प्रति हिंसा के मामलों में आंशिक सफलता ही प्राप्त हो सकी है। स्पष्ट है कि इसमें हमारी दूषित कार्यनीति ही जिम्मेवार है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि सभी संबंधित कार्यक्रमों को ईमानदारी पूर्वक लागू करवाया जाए, जन चेतना को जागृत किया जाए तथा इस सम्बन्ध में न्याय परिदान प्रणाली में भी समुचित सुधार किया जाए ताकि न केवल शीघ्र न्याय परिदान (Justice Delivery) सुनिश्चित हो, बल्कि संबंधित कानूनी प्रावधानों के दुरूपयोग को भी रोका जा सके।

भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा : समसामयिक मुद्दे एवं आँकड़े (Violence Against Women in India - Contemporary Issues and Datas)

पीएनडीटी एक्ट-1994 (PNDT Act - 1994)

कन्या भ्रूण हत्या के निदान के लिए केन्द्र सरकार द्वारा पीएनडीटी अधिनियम (प्री नेटल डायग्नोस्टिक टेस्ट) अधिनियम, 1994 पारित किया गया। इसे 1 जनवरी, 1996 से जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में लागू किया गया। यह कानून गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग को पता लगाने से रोकता है। यद्यपि जन्म से पूर्व शिशु के आंशिक या उपापचयी संबंधी बीमारियों का पता लगाने या लिंग से संबंधित किसी अनियमितता की पहचान के लिए इस परीक्षण को छूट प्रदान की गयी है। इसके तहत् निम्नांकित प्रावधान किये गये हैं:-

1. जन्म पूर्व लिंग परीक्षण को अवैध घोषित किया गया है।
2. इस अधिनियम के तहत् अनुवांशिक (Genetic) एवं लिंग संबंधी अनियमितता की जांच के लिए किसी पंजीकृत चिकित्सा संस्थान द्वारा-एमनियोंसेंटेसिस एवं अल्ट्रासोनोग्राफी परीक्षण को रियायत दी गयी है।
3. इस अधिनियम के अंतर्गत गैर पंजीकृत व्यक्ति द्वारा अल्ट्रासाउंड मशीन बेचने पर प्रतिबंध लगाया गया है।
4. इसमें प्रसव के पूर्व लिंग के बारे में पता लगाने संबंधी विज्ञापन पर रोक लगायी गयी है।
5. इस कानून का उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान किया गया है। दोषी व्यक्ति को 5 साल तक का कारावास और एक लाख रुपये तक का जुर्माना देने का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा प्रावधान यह भी है कि कानून के उल्लंघन की स्थिति में दोषी व्यक्ति अथवा संस्था का पंजीकरण एवं लाइसेंस भी रद्द हो जाएगा।

इस अधिनियम के क्रियान्वयन में आ रही बाधाओं को दूर करने और जन्म से पहले लिंग निर्धारण पर प्रतिबंध लगाने के लिए तथा उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को ध्यान में रखते हुए इसके नियमों और कानूनों में संशोधन किये गये हैं जो 14 फरवरी, 2003 से लागू हैं। इस अधिनियम का क्रियान्वयन जिला स्तर पर उपयुक्त प्राधिकृत अधिकारी करता है। राष्ट्रीय स्तर पर एक निगरानी समिति गठित की गयी है जो समस्या वाले राज्यों का दौरा कर जमीनी हकीकत का पता लगाती है।

देश में अधिनियम के क्रियान्वयन को मजबूत बनाने के लिए एक 'नेशनल सपोर्ट एंड मॉनीटरिंग सेल' (NSMC) का भी गठन किया गया है। उल्लेखनीय है कि गर्भधारण और जन्म पूर्व निदानात्मक (Diagnostic) तकनीकी अधिनियम और तत्संबंधी नियमों को और प्रभावी बनाने के लिए सरकार इसमें संशोधन का विचार कर रही है।

पीएनडीटी एक्ट - 1994 में संशोधन
(Amendment in the PNDT Act - 1994)

हाल ही में प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण अधिनियम, 1994 को प्रभावी तौर पर लागू करने में सफल न होने के कारण सरकार ने इसमें संशोधन किया है।

पीएनडीटी एक्ट-1994 का उद्देश्य
(Objective of the PNDT Act - 1994)

1. देश में लिंगानुपात की कमी को रोकना (जम्मू-कश्मीर अपवाद)।
2. किसी व्यक्ति द्वारा अपनी गर्भवती महिला के भ्रूण की प्रसव-पूर्व जाँच पर रोक।
3. उल्लंघन पर दण्ड-प्रथम अपराध-3 साल तथा 10 हजार या दोनों का प्रावधान, द्वितीय अपराध-5 साल तथा 50 हजार या दोनों।
4. रजिस्टर्ड मेडिकल संस्थानों पर भी भ्रूण जाँच पर रोक, उल्लंघन पर रजिस्ट्रेशन सस्पेंड, जब तक कोर्ट में मामला समाप्त न हो जाए अर्थात् यह एक केवल दण्डात्मक एक्ट बनकर रह गया था।

संशोधित पीएनडीटी एक्ट-1994 का उद्देश्य
(Objective of the Amended PNDT Act - 1994)

1. संशोधन के अनुसार बेटियों के सुरक्षित जन्म के अब अनेक विकल्प दिए जायेंगे।
2. आंगनबाड़ी सेविका व स्वयं सेवी संस्थाओं के सहयोग से माता-पिता को पहले बेटी के सुरक्षित जन्म के लिए प्रेरित किया जाएगा।
3. इसके तहत वैसे माता-पिता जो बेटियों को पालने में असमर्थ हैं, उनके लिए सरकार परिजनों की मर्जी से बेटियों को गोद लेगी।
4. इसके लिए सरकार 'एडॉप्ट ए फीमेल' अभियान चलाएगी।
5. पीएनडीटी एक्ट-1994 के तहत सरकार ने भ्रूण परीक्षण को अपराध की श्रेणी में रखा था, किन्तु इस संशोधन के तहत अब ऐसी कोई पाबंदी नहीं रहेगी बल्कि शिशु के जन्म की राह भी आसान होगी।

भ्रूण का लिंग परीक्षण
(Sex Test of Fetal)

1. महिला एवं बाल विकास मंत्री ने हाल ही में सुझाव दिया है कि गर्भावस्था के दौरान बच्चे के लिंग परीक्षण को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए और बच्चे के लिंग का उसी क्षण में पंजीकरण होना चाहिए। इस तरह से बच्चे के जन्म पर नजर रखी जा सकेगी।
2. लिंग-निर्धारण के बाद भ्रूण पर नजर रखना और संस्थागत प्रसव की जुड़वां रणनीति से यह सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी कि कन्या भ्रूण का गर्भपात न किया जाए और जन्म के बाद बच्चे को मारा न जाए।

मंत्री का प्रस्ताव-पूर्व रणनीति में परिवर्तन

1. लिंग निर्धारण के मामले में अल्ट्रासाउंड विशेषज्ञ को दंडित करने के वर्तमान कानून को कार्यान्वित करना बहुत कठिन है। इसलिए इस कानून के उद्देश्यों, जिसमें लिंग चयन को रोकना तथा लिंग अनुपात में सुधार को हासिल करना कठिन हो गया है।
2. जैसे ही महिला गर्भवती हो, भ्रूण का लिंग परीक्षण किया जाना चाहिए और उसे सार्वजनिक रिकॉर्ड में रखा जाना चाहिए।
3. गर्भधारण पर नजर रखी जानी चाहिए और ट्रैकिंग प्रणाली के माध्यम से बच्चे का जन्म सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
4. सुनिश्चित करें कि केवल संस्थागत प्रसव ही हों, घर पर प्रसव न हों।
5. लिंग की पूर्व पहचान के कारण तथा कानून के डर से परिवार गर्भावस्था को जारी रखने के लिए मजबूर होंगे, खासकर जब भ्रूण मादा हो।

आगे की राह

1. मुद्दा यह है कि इस तरह के उपायों को निराशाजनक आँकड़ों के साथ प्रस्तावित किया जा रहा है जो कन्या भ्रूण हत्या की समस्या का समाधान करने में भारत की असमर्थता को प्रदर्शित करता है तथा यह भारतीय समाज में सामाजिक बुराइयों की निरंतरता को दर्शाता है।
2. गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम को मजबूत बनाने की जरूरत है और कन्या के प्रति लोगों की प्रवृत्ति को बदलने की दिशा में काम करने की जरूरत है। इसमें स्थानीय आशा और आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं की अधिक भागीदारी की जरूरत है।

कन्या भ्रूण हत्या पर उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देश

1. सुप्रीम कोर्ट ने नवजात के लिंग और संख्या पर नजर रखने के लिए एक अखिल भारतीय डेटाबेस के साथ-साथ कन्या भ्रूण हत्या के अपराध को नियंत्रित करने के लिए दिशा-निर्देशों की एकशृंखला जारी की है।
2. एक केंद्रीकृत डेटाबेस बनाना-सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को पंजीकरण इकाइयों से प्राप्त नागरिक पंजीकरण रिकॉर्ड का एक केन्द्रीकृत डेटाबेस बनाए रखना होगा, जिससे नवजात बालक और बालिकाओं की संख्या की जानकारी वेबसाइट के माध्यम से उपलब्ध कराई जा सके।
3. फास्ट ट्रैक कोर्ट जो न्यायालय इस अधिनियम के तहत शिकायतों की सुनवाई से जुड़े हैं, उन्हें फास्ट ट्रैक कर दिया जाए एवं संबंधित उच्च न्यायालय इस संबंध में उचित निर्देश जारी करेंगे।
4. समय-समय पर इन मामलों की प्रगति की निगरानी करने के लिए उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों से बनी एक समिति का गठन।
5. गर्भाधान पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन का प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 (The Pre-conception and Prenatal Diagnostic Techniques (Prohibition of Sex Selection) Act, 1994) का प्रभावी कार्यान्वयन किया जाए।

6. अधिनियम के प्रावधानों से संबंद्धित जागरूकता अभियानों के साथ ही साथ सामाजिक जागरूकता (Social Awareness) बढ़ाने का भी प्रयत्न किया जाए।
7. विभिन्न राज्यों में कार्यरत ऑल इंडिया रेडियो और दूरदर्शन द्वारा कन्या शिशुओं की सुरक्षा और समाज को कन्या भ्रूण हत्या से होने वाले गंभीर खतरे के प्रति व्यापक प्रचार किया जाए।
8. प्रोत्साहन योजना जिन राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में, कन्या शिशुओं के लिए कोई प्रोत्साहन योजना नहीं है, वहां ऐसी योजना बनाई जाएँ।

समीक्षा (Review)

बालिका भ्रूण हत्या एक गंभीर एवं अमानवीय घटना है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यद्यपि लिंगानुपात पूर्व के 933 से बढ़कर 943 पर पहुँच गया है, परन्तु यह आँकड़ा संतोषजनक नहीं कहा जा सकता क्योंकि शिशु लिंगानुपात गिरकर 919 पर पहुंच गया है। कन्या भ्रूण हत्या के पीछे उत्तरदायी कारणों में रूढ़िवादिता, दहेज की चिंता, गरीबी, अशिक्षा आदि प्रमुख हैं। परन्तु वर्ष 2011 की जनगणना में विकसित एवं शैक्षिक परिवारों द्वारा कन्या भ्रूण हत्या की पुष्टि ने आश्चर्यचकित किया है।

उपरोक्त संदर्भों के मद्देनजर पीएनडीटी एक्ट (PNDT Act) में संशोधन किया जाना एक महत्त्वपूर्ण कदम है। पूर्व से क्रियान्वित पीएनडीटी एक्ट में निहित खामियों ने इसे अपेक्षित सफलता से दूर रखा है। संशोधन के बाद के प्रावधानों के तहत भ्रूण परीक्षण को अपराध की श्रेणी से हटा दिया गया है तथा बेटियों के प्रति समाज में जागरूकता के प्रसार पर विशेष बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कार्यक्रमों एवं अभियान के माध्यम से बेटियों को गोद लेने का प्रावधान किया गया है।

निश्चित रूप से संशोधित कानून भारत में भ्रूण हत्या को रोकने का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है, लेकिन केवल कानून के द्वारा इस सामाजिक कुरीति (Social Mischief) को समाप्त नहीं किया जा सकता। अतः आवश्यकता है कि सरकार कानून के अतिरिक्त अन्य प्रयासों द्वारा समाज में गरीबी, अशिक्षा आदि को दूर करने के साथ-साथ बेटियों के प्रति जागरूकता हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार करें।

कन्या-शिशु हत्या निवारण विधेयक, 2013 (Female Infanticide Prevention Bill - 2013)

कन्या शिशु हत्या प्रथा के उन्मूलन के लिए 'कन्या-शिशु हत्या निवारण विधेयक-2013' 22 फरवरी, 2013 को लोकसभा में पेश किया गया।

प्रमुख विशेषताएँ (Main Features)

1. इस विधेयक में कन्या से अभिप्राय है, दस वर्ष की आयु तक की बालिका।
2. इस विधेयक के तहत कोई भी व्यक्ति जो बालिका की हत्या करता है या इस प्रकार की मंशा के अधीन कोई कार्य करता है या किसी बीमार बालिका को जानबूझकर समय पर और समुचित चिकित्सा सहायता प्रदान न कर उसे मरने देता है या बालिका की देख-रेख की उपेक्षा करता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो सकती है, वह कन्या-शिशु हत्या का अपराधी होगा।
3. जब भी बालिका का जन्म होता है या दस वर्ष से कम आयु की बालिका की मृत्यु हो जाती है, तो बालिका के माता-पिता या संरक्षक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह बालिका के जन्म अथवा मृत्यु के बारे में सरकार या ऐसे प्राधिकारी, जो इस प्रयोजन (Purpose) के लिए विहित किए गए हों, द्वारा चलाए जा रहे निकटतम स्वास्थ्य केन्द्र को सूचित करें।
4. किसी बालिका की मृत्यु की दशा में, बालिका का दाह संस्कार तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक स्वास्थ्य केन्द्र या सम्बन्धित प्राधिकारी द्वारा इसकी अनुमति नहीं दी जाती है।
5. यदि बालिका की मृत्यु का कारण संदेहास्पद हैं तो सम्बन्धित प्राधिकारी इसकी जाँच करेगा एवं 24 घंटे के भीतर अपनी रिपोर्ट देगा।
6. यदि कोई व्यक्ति प्रथम दृष्टया कन्या-शिशु हत्या (Female Infanticide) का दोषी प्रतीत होता है, तो उसे तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा। इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध गैर-जमानती होगा।
7. कन्या-शिशु हत्या की जाँच अथवा अन्वेषण और न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करने का कार्य बालिका की मृत्यु की तारीख के तीन माह की अवधि के भीतर पूरा कर लिया जाएगा।
8. कन्या-शिशु हत्या का दोषी पाए जाने पर 10 वर्ष कारावास एवं एक लाख रुपये जुर्माने का प्रावधान किया गया है।
9. इस अधिनियम के उपबंध और इसके अधीन बनाए गए नियम भारतीय दण्ड-संहिता, 1860 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित किसी बात के प्रतिकूल होते हुए भी प्रभावी होंगे।

भारत में तेजाब हमला (Acid Attack in India)

भारत में तेजाब हमला महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के एक नए प्रारूप के रूप में सामने आया है। इससे संबंधित मामलों एवं इसे रोकने संबंधी उपायों पर विभिन्न संगठनों, एन.जी.ओ. आदि के बीच खासी चर्चा रही है। यह एक अति संवेदनशील (Sensitive) मुद्दा है क्योंकि महिलाओं के प्रति हिंसा के अन्य रूपों के साथ संयुक्त होकर यह इस समस्या को अत्यधिक गंभीर बना देता है। भारत में मुख्य रूप से इस समस्या का कारण महिलाओं द्वारा पुरुषों की बात मानने से इन्कार करने पर प्रतिक्रियात्मक प्रतिरोध (Reactive Resistance) है। आसानी से तेजाब की उपलब्धता ने इस समस्या को तीव्रता प्रदान करने में सहायता की है।

सर्वोच्च न्यायालय ने तेजाब हमले पर गहरी चिंता जाहिर करते हुए संसद में इसे रोकने हेतु मजबूत कानून बनाने का निर्देश दिया है। न्यायालय द्वारा तेजाब की विक्री के नियमन हेतु सरकार को निर्देश

दिया गया था, परन्तु सरकार द्वारा तेजाब की बिक्री को नियंत्रित नहीं किए जाने पर न्यायालय ने रोष प्रकट करते हुए बड़े निर्देश जारी किए। सर्वोच्च न्यायालय ने तेजाब हमले से पीड़ित व्यक्ति को राहत स्वरूप दिए जाने वाले वित्तीय सहायता को बढ़ाकर 3 लाख रुपये कर दिया है। साथ ही, न्यायालय द्वारा तेजाब को जहर की तरह मानते हुए इसकी बिक्री को प्रतिबंधित करने का आदेश दिया गया है।

तेजाब हमले के कारण पीड़ित व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाले शारीरिक व मानसिक दुष्प्रभावों (Physical and Mental Side Effects) के मद्देनजर इस पर अंकुश लगाने हेतु निम्न प्रकार के उपायों की आवश्यकता प्रतीत होती हैं:–

1. इस सम्बन्ध में स्पष्ट व कड़े कानूनी प्रावधान किया जाना चाहिए।
2. तेजाब की विक्री हेतु दुकानों को लाइसेंस लेना अनिवार्य किया जाना चाहिए। साथ ही, तेजाब के खरीददार को बिना पहचान पत्र व तेजाब के उपयोग की लिखित जानकारी के बिना तेजाब की बिक्री नहीं की जानी चाहिए।
3. कानून का उल्लंघन किए जाने पर कड़ी कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिए।
4. पीड़ित व्यक्ति को उचित देखरेख तथा क्षतिपूर्ति राशि का स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए।

भारत में लिव-इन-रिलेशनशिप : सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय (Live-in-Relationship in India : Supreme Court's Decision)

सुप्रीम कोर्ट ने यौन आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र के लिए लिव-इन-रिलेशनशिप में रहने वाले युगलों को विवाह के लाभ हेतु पात्र नहीं माना है। निर्वहन भत्ता की प्राप्ति हेतु महिलाओं द्वारा निम्न मानदण्डों का पूरा किया जाना आवश्यक है:–

1. युगल को स्वयं को समाज में जीवन साथी के समान सिद्ध करना आवश्यक है।
2. वे विवाह हेतु आवश्यक आयु के हों।
3. वे वैधानिक शादी के योग्य हों।
4. वे एक अवधि के लिए स्वेच्छा से जीवन साथी के रूप में सहवास कर रहे हों।

संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी (UNHCR) द्वारा शरणार्थी महिलाओं के लिए पहल (Initiative for Refugee Women by UNHCR)

सन् 2011 में यूएनएचसीआर ने शरणार्थी और शरण माँगने वाली महिलाओं और लड़कियों के साथ यौन तथा लिंग आधारित हिंसा (एचजीबीवी) से संघर्ष के लिए बहुमुखी नीति अपनाई। यूएनएचसीआर ने शरणार्थी और शरण माँगने वाली महिलाओं को सशक्त करने के लिए प्रयास के रूप में 'महिला संरक्षण क्लीनिक' दिसम्बर 2005 में शुरू किया, जिसे शरणार्थी समुदाय (Refugee Community) 'डब्ल्यूपीसी' के नाम से जाना जाता है। पश्चिमी दिल्ली की एक तंग गली में ये 'डब्ल्यूपीसी' उस इलाके में खोला गया, जहाँ लगभग सभी शरणार्थी म्यामांर से आए हैं। इस क्लीनिक में शरणार्थी और शरण मांगने वाली महिलाएं तथा अब पुरुष भी (सप्ताह में एक दिन) आकर सुरक्षित रूप से अपनी समस्याएँ सीधे और गोपनीय ढंग से यूएनएचसीआर के कर्मचारियों को बता सकते हैं। डब्ल्यूपीसी का यह मॉडल दिल्ली के दूसरे इलाकों में भी अपनाया जा रहा है, जहाँ शरणार्थी रहते हैं। यूएनएचसीआर के समर्थन से आमदनी पैदा करने वाली परियोजनाओं में बड़ी संख्या में महिलाएँ काम कर सकती हैं। यूएनएचसीआर अपने सहयोगियों की मदद से पांच वर्ष से छोटे बच्चों के लिए दिन में देख-भाल के आठ केन्द्र चलाता है ताकि उनके माता-पिता काम कर सकें या पढ़ सकें अथवा प्रशिक्षण ले सकें।

सभी शरणार्थियों में महिलाओं और लड़कियों का अनुपात करीब 50% है। भारत में शरणार्थियों और शरण मांगने वालों में से करीब आधी महिलाएँ हैं। संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी (यूएनएचसीआर) ने अपनी प्रक्रियाओं में महिलाओं सहित लाचार शरणार्थियों और शरण मांगने वालों पर विशेष ध्यान देने की व्यवस्था कर रखी है। उदाहरण के लिए अगर महिला अकेली है और या उसके पास छोटे बच्चे हैं तो शरण मांगने के दावों का आकलन करने के लिए साक्षात्कार की तिथि जल्दी दे दी जाती है। यूएनएचसीआर ने महिलाओं को पुरुषों के बराबर लाने को अपने काम का मुख्य हिस्सा बना लिया है और शरणार्थी महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन की तरफ अधिकाधिक प्रयास किए जा रहे हैं।

लैंगिक समानता को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय संगठन 'यूएन वीमेन' (International Organization Dedicated to Gender Equality)

चिली की भूतपूर्व राष्ट्रपति और यूएन विमेन की भूतपूर्व अपर महासचिव तथा कार्यकारी निदेशक मिशेल बैसले का कहना है कि 'स्त्री-पुरुष को समानता देने की भावना को मूर्त रूप देना जरूरी है।' इस वास्तविकता को बढ़ावा देने तथा महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा देने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा ने जुलाई 2010 को 'यूएन विमेन' की स्थापना की थी। यूएन विमेन में संयुक्त राष्ट्र के चार अभिकरण शामिल हैं:–

1. डिवीजन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ विमेन (डीएडब्ल्यू) अर्थात् महिलाओं की समुन्नति का प्रभाग।
2. इंटरनेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट फॉर द एडवांसमेंट ऑफ विमेन।
3. ऑफिस ऑफ द स्पेशल एडवाइजर ऑन जेंडर इशूज एंड एडवांस्मेंट ऑफ विमेन।
4. यूनाईटेड नेशंस डेवलपमेंट फॉर विमेन।

दक्षिण एशिया में विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने की स्थिति को ध्यान में रखते हुए स्त्रियों की प्रगति इस क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण

है, इसलिए दक्षिण एशिया में "यूएन विमेन" की भूमिका अधिक संगत है। यूएन विमेन पांच क्षेत्रों में कार्यरत है, नेतृत्व तथा भागीदारी, आर्थिक सबलीकरण (Economic Empowerment), स्त्रियों पर हिंसक कार्रवाइयों का अंत, शांति एवं सुरक्षा तथा राष्ट्रीय योजना और बजट निर्माण।

पहले तो 'यूएन विमेन' के कार्य दक्षिण एशिया में महिलाओं को प्रवीणता प्रदान करके उन्हें दृढ नेता बनने में सहायता देगा ताकि राजनीति में महिलाएँ आगे आकर अपने देशों की राजनीति में भाग ले सकें और शासन में उनकी भागीदारी बढ़ सके। दूसरे 'यूएन विमेन' महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का प्रयास करेगा और बाजारों तथा सेवाओं में उनकी पहुँच को बढ़ाने में सहायक होगा। तीसरे, नीति संबंधी मुद्दों पर सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं (Voluntary Organizations) के साथ जमीन स्तर पर काम करते हुए 'यूएन विमेन' स्त्रियों के साथ होने वाली हिंसाओं को मिटाने के लिए काम करेगा। चौथे, 'यूएन विमेन' यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा कि शांति की प्रक्रियाएँ तथा संघर्षों के बाद पुनर्निर्माण के कार्य महिलाओं के हित में साबित हों। अंततः 'यूएन विमेन' राष्ट्रीय आयोग तथा बजट निर्माण को स्त्रियों की जरूरतों और चुनौतियों के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाने के लिए काम करेगा।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा महिला हिंसा विरोध घोषणा-पत्र (Manifesto Against Violence Against Women by United Nations)

वैश्विक स्तर पर महिला हिंसा के खिलाफ हुए संस्थागत एवं समूहगत आंदोलनों, दबाव समूहों, नारीवादी संगठनों (Feminist Organization) और गैर सरकारी संगठनों, सिविल सोसाइटी की सक्रियता के चलते संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 'महिला हिंसा विरोधी घोषणापत्र' पारित किया गया है। इस घोषणपत्र में दुष्कर्म पीड़िता के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। आयरलैंड में समय पर गर्भपात नहीं किए जाने के कारण मृत भारतीय महिला सविता हलप्पनवार जैसी दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिए इस घोषणापत्र में आवश्यकता पड़ने पर महिलाओं को आपात गर्भ निरोधक दिए जाने और आपातस्थिति में उन्हें गर्भपात का विकल्प उपलब्ध कराये जाने की व्यवस्था की गयी है।

एक तरफ जहाँ मानवाधिकार, लैंगिक न्याय (Gender Justice), महिला सशक्तिकरण के नाम पर इस घोषणापत्र को विश्व भर में नैतिक समर्थन मिला है तो वहीं दूसरी तरफ इस दस्तावेज में महिलाओं की आबादी और गर्भपात का समर्थन किए जाने पर ईरान, मिस्र, सउदी अरब, कतर, लीबिया, नाइजीरिया, होंडुरास और वेटिकन जैसे देशों द्वारा इस घोषणापत्र का विरोध किया गया है।

✪✪✪✪✪

KHAN SIR Most Trusted Learning Platform

21 भारत में वेश्यावृत्ति (Prostitution in India)

भारत में वेश्यावृत्ति की समस्या (Problem of Prostitution in India)

जब एक महिला बिना किसी भावनात्मक लगाव (Emotional Attachment) के या किसी अन्य सम्बन्ध के अभाव में भी मात्र कुछ रुपये, पैसे या अन्य लाभ के लिए एक या अधिक पुरुषों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करती हो तो उसे वेश्यावृत्ति कहते हैं। यह संस्थागत तथा व्यक्तिगत दोनों ही स्तरों पर हमारे समाज में पाया जाता है।

वेश्यावृत्ति को भारत में वैयक्तिक एवं सामाजिक विघटन (Individual and Social Dissolution) के लिए जिम्मेदार एक प्रमुख सामाजिक समस्या माना जाता है। भारतीय समाज में यह अनेक दुष्परिणामों के लिए उत्तरदायी है। आज भारत की विभिन्न समस्याओं में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। देह व्यापार की यह प्रथा यद्यपि सभी देशों में प्राचीनकाल से है। किन्तु आधुनिक उपभोक्तावादी समाज (Consumerist Society) में लैंगिक मनोरंजन की पूर्ति के साधन के रूप में यह नए-नए रूपों में अधिक प्रभाव के साथ भारतीय समाज में अपना जाल फैला रही है।

भारत में वेश्यावृत्ति का स्वरूप (Nature of Prostitution in India)

वेश्यावृत्ति को भारतीय समाज का सर्वाधिक प्राचीन पेशा भी कहा जाता है। भारत में यह इतना प्रचलित था कि कभी-कभी इसे धर्म के एक अंग के रूप में भी स्वीकार किया गया। वर्तमान भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति के कई रूप दिखाई दे रहे हैं, जैसे कोठे पर बैठी शहर के विशेष लाल बत्ती क्षेत्र की वेश्या, घर-घर- जाकर यौन व्यापार करने वाली वेश्याएँ, क्लबों में यौन सेवा देने वाली हाईप्रोफाइल कॉलगर्ल आदि।

उपरोक्त के अतिरिक्त वेश्याओं का अन्य स्वरूप (Form) भी समाज में मौजूद हैं, जैसे- वासना पीड़ित वेश्याएँ, परिस्थिति जन्य वेश्याएँ, गुप्त वेश्याएँ, रखैल वेश्याएँ, धार्मिक वेश्याएँ (देवदासियाँ) आदि।

देवदासी और जोगिन प्रथा

भारत में देवदासी एवं जोगिन प्रथा प्रचीन काल से ही चली आ रही है। आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में कानूनी प्रतिबंध के बाद भी देवदासी तथा जोगिन प्रथा आज भी विद्यमान है।

हालांकि यह समस्या स्थानीय स्वरूप की है, पर इसकी आड़ में सैकड़ों बालिकाओं का जीवन बर्बाद हो गया है या हो रहा है। समस्या से निपटने के लिए आंध्र प्रदेश देवदासी (समर्पण का निषेध) अधिनियम, 1988, कर्नाटक देवदासी (समर्पण निषेध) अधिनियम, 1982, बंबई देवदासी संरक्षण अधिनियम, 2001 बनाए गए हैं, जिसमें देवदासी प्रथा पर प्रतिबंध है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के साझा प्रयासों में पुनर्वास की नीति भी बनी है और बच्चों का रिहायशी स्कूलों और हॉस्टलों में दाखिल भी करावाया जा रहा है। लेकिन कुछ समय पूर्व राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट ने इस समस्या पर सबका ध्यान फिर से खींचा।

इस रिपोर्ट के अनुसार तमाम अभियानों का असर यह पड़ा कि नामी-गिरामी मंदिरों में यह प्रथा समाप्त हो गयी, पर छोटे मंदिरों में यह अब भी विद्यमान है। देवदासी प्रथा के पीछे गरीबी खास तौर पर जिम्मेदार है। गरीब लोग अपनी बच्चियों को दान दे देते हैं ताकि उनकों मंदिर से खाने-पीने की वस्तुएँ मिलती रहें। बिना प्रचार या ताम-झाम के देवदासी बनाने के आयोजन अब छोटे मंदिरों व पुजारियों के घरों पर किए जाते हैं। इसी नाते यह परम्परा जारी है तथा पहले से कहीं अधिक व्यावसायिक रूप ले चुकी है। कानून इतना कमजोर है कि अनेक शिकायतों के बाद भी कर्नाटक देवदासी अधिनियम के तहत एक भी मामला दर्ज नहीं किया गया। विभिन्न रिपोर्टों के मुताबिक पुनर्वास के प्रयास अपर्याप्त हैं।

वेश्यावृत्ति का भारतीय समाज पर प्रभाव (Effects of Prostitution on Indian Society)

आधुनिक भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति कई संयुक्त कारकों (Joint Factors) का परिणाम रही है तथा समाज को विभिन्न रूपों से यह दुष्प्रभावित भी कर रही है। भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति का सर्वाधिक दुष्परिणाम विभिन्न प्रकार के यौन रोगों के रूप में दिखाई दे रहा है, इसमें सिफलिस, सूजाक, अतिश्राव तथा AIDS आदि भयंकर रोग हैं। सामान्यतः वेश्यावृत्ति के सामाजिक प्रभावों (Social Effects) को निम्न रूप में देखा जा सकता है:-

1. भारत के अधिकांश वेश्यालयों में मद्यपान, जुआ एवं आपराधिक योजनाओं के निर्माण की घटनाएँ आम हो गई हैं, जिसने समाज में अपराधों की दर को बढ़ा दिया है।
2. भारत में वेश्यावृत्ति महिलाओं एवं लड़कियों को नैतिक एवं सामाजिक पतन की ओर ले जा रही है तथा ये वेश्याएँ जीवन भर के लिए कलंक, अपमान, तिरस्कार एवं घृणा का शिकार हो गई हैं।
3. भारत में वेश्यावृत्ति वेश्याओं एवं ग्राहकों दोनों के लिए वैयक्तिक विघटन को उत्पन्न कर रही हैं। कभी-कभी वैयक्तिक विघटन भारत में वेश्यावृत्ति का कारण भी बनता है।

4. भारत में वेश्यावृत्ति करने वाली महिला (सफेदपोश / White Collar) एवं वेश्यागामी पुरुषों के कुकृत्यों का प्रभाव परिवार पर पड़ रहा है। इसके कारण तलाक की नौबत आ रही है तथा परिवार टूट रहा है। वेश्यावृत्ति या वेश्यागमन से संक्रमित होने पर उसका दुष्प्रभाव निर्दोष बच्चों एवं जीवन साथी पर भी पड़ता है।
5. भारत में वेश्यावृत्ति वर्तमान में बड़े व्यापार का रूप धारण कर रही है। वेश्यावृत्ति के लिए लोगों को आकर्षित करने के लिए तमाम हथकंडे अपनाए जा रहे हैं तथा लड़कियों को इसमें फँसाया जा रहा है। वेश्यावृत्ति के कारण सामाजिक मूल्यों (Social Values) में टूटन उत्पन्न होने लगी है। धार्मिक संस्थाएँ रीति-रिवाज, सामाजिक सम्बन्ध कलुषित (Defective) हो रहे हैं एवं विघटित हो रहे हैं।
6. वेश्यावृत्ति के कारण समाज में यौन रोग तथा एड्स और हेपेटाइटिस बी जैसे संक्रामक रोगों का प्रसार हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग 15% ट्रक ड्राइवर एड्स जैसे रोगों से पीड़ित हैं तथा मुंबई और मद्रास जैसे शहरों में 10% से अधिक यौन कर्मी इस रोग से पीड़ित हैं।

वेश्यावृत्ति का कारण (Causes of Prostitution)

भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति की समस्या कई कारणों का संयुक्त परिणाम रही है उनमें से प्रमुख कारण निम्न रहे हैं:-

1. कुछ महिलाओं में कामेच्छा इतनी प्रबल होती है कि वे उसका दमन नहीं कर पाती हैं। जब वे अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति समान्य ढंग से नहीं कर पाती, तो भिन्न-भिन्न पुरूषों से यौन सम्बन्ध स्थापित करती है और अंतत: वेश्यावृत्ति को अपना लेती हैं।
2. भारतीय समाज में कुछ महिलाएँ असहाय एवं असुरक्षा की मनोवृत्ति से ग्रसित रहती है। जब पेशेवर लोग इन्हें सुरक्षा एवं सहायता का लालच दिखाकर मनोवैज्ञानिक रूप से संतुष्ट कर देते हैं तब ये वेश्या बन जाती हैं किन्तु बाद में वहाँ से निकलना इनके लिए मुश्किल हो जाता है।
3. भारत में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या है ऐसी स्थिति में कुछ महिलाएँ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य श्रोतों से पर्याप्त धन नहीं प्राप्त कर पाती, तो वे वेश्यावृत्ति को अपनाती हैं।
4. भारत में अधिकांश महिलाएँ पारिवारिक यातनाओं, पति के विश्वासघात तथा पारिवारिक विघटन (Family Dissolution) के उपरान्त वेश्यावृत्ति का मार्ग पकड़ती हैं।
5. भारत में वेश्यावृत्ति के लिए प्रथाएँ, परंपराए और कुरीतियाँ भी उत्तरदायी हैं। कुछ धार्मिक प्रथाओं से वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। कुलीन विवाह के कारण कुछ लोग अपनी कम उम्र की लड़कियों का विवाह अधिक उम्र के व्यक्ति से कर देते हैं। इसके अतिरिक्त विधवा विवाह वर्जित होने के कारण वे वेश्यावृत्ति की ओर आकर्षित होती हैं।
6. भारतीय समाज में कुछ लड़कियाँ कम उम्र में दोषपूर्ण साहचर्य के कारण यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं और सामाजिक बहिष्कार (Social Exclusion) के उपरांत वेश्यावृत्ति की ओर उन्मुख हो जाती हैं।
7. भारतीय समाज में अश्लील साहित्य एवं सिनेमा का प्रचलन इस समय जोरों पर है, इससे प्रभावित लड़कियाँ कामोत्तेजना के कारण वेश्यावृत्ति को अपना लेती हैं।
8. भारतीय समाज में प्राय: यौन संबंधी मानक अत्यंत कठोर हैं, इन नियमों की अवहेलना करने पर लड़कियों को शारीरिक यातना दी जाती हैं, या घर से निकाल दिया जाता है। घर से बाहर असामाजिक तत्त्व (Anti-Social Elements) उनका शोषण करके उन्हें वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर कर देते हैं।

वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए किए गए उपाय (Measures to Stop Prostitution)

विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र सरकार ने वेश्यावृत्ति रोकने के लिए कानूनी उपाय किए हैं, जिन्हें निम्न रूपों में समझा जा सकता है:-

1. भारतीय दण्ड संहिता, 1960 में यौन अपराध तथा नाबालिग लड़कियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य किए जाने पर प्रतिबंध (Restrictions) के साथ-साथ दण्ड की व्यवस्था करती है।
2. संक्रामक रोग अधिनियम, 1868 के अधीन सामान्य वेश्याओं की चिकित्सकीय जाँच अनिवार्य की गयी है तथा उन्हें स्वस्थ होने तक अस्पतालों में रखा जाना अनिवार्य किया गया है।
3. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 में न्यायालयों को वेश्यावृत्ति के लिए या अन्य किसी मामले के लिए अपहरण महिलाओं को स्वतंत्र छोड़ने का अधिकार दिया गया।
4. इसके अतिरिक्त इससे संबंधित निम्न कानूनी प्रयास किए गए हैं:-
   - कर्नाटक देवदासी (भेंट निषेध) अधिनियम-1982
   - महाराष्ट्र देवदासी उन्मूलन अधिनियम-2006
   - भारतीय दंड संहिता की धारा-372
   - महिलाओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम-1956

इन कानूनों के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के लिए कई अन्य उपाय किये जा रहे हैं। कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने रेड लाइट एरिया में वेश्यावृत्ति के खिलाफ आन्दोलन चलाते हुये, इसके खतरों के प्रति लोगों को जागरूक किया है। इसके अलावा कई गैर सरकारी संगठन वेश्याओं को पुनर्वासित करने के प्रयास में लगे हुये हैं, जिससे कि वह महिलाओं को इस दुष्चक्र से निकाल कर उनके जीविका (Living) की अन्य व्यवस्था कर उनको समाज में एक

सम्मानित नागरिक का दर्जा दिला सकें। वेश्यावृत्ति के उन्मूलन में आज इन संगठनों के साथ मीडिया और नागरिक संगठन भी रुचि ले रहे हैं जो विभिन्न प्रचारों व जनजागरूकता (Public Awareness) कार्यक्रमों के माध्यमों से वेश्यावृत्ति रोकने का प्रयास कर रहे हैं।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

भारत में वेश्यावृत्ति एक प्रमुख सामाजिक समस्या के रूप में विद्यमान है। इसको रोकने के लिए तमाम सरकारी एवं गैर-सरकारी उपाय किए गए हैं और उन उपायों का काफी हद तक सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप वेश्यावृत्ति की तीव्रता में कमी आयी है। बावजूद इसके आज भी वेश्यावृत्ति भारतीय समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या (Social Problem) बनी हुई है। यद्यपि महिलाओं के अनैतिक व्यापार के उन्मूलन में सरकारी एवं गैर-सरकारी उपाय उपयोगी साबित हुए हैं, किन्तु व्यापक परिवर्तन नहीं हुआ है और ये उपाय नाकाफी साबित हो रहे हैं इन उपायों के असरदार साबित न होने के लिए तमाम कारक उत्तरदायी रहे हैं जैसे भारतीय समाज की संरचना में निहित कमियाँ, सरकारी उपायों का ईमानदारीपूर्वक क्रियान्वयन का अभाव, कानूनों का सख्ती से पालन न होना आदि। इसके अलावा भारतीय समाज द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वेश्यावृत्ति को समर्थन देने को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन कमियों के आलोक में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:-

1. परिवार में महिलाओं एवं बालिकाओं के शोषण एवं उनके प्रति हिंसा वेश्यावृत्ति का एक प्रमुख कारण है। अत: पारिवारिक संगठन (Family Organization) पर अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, जिसके तहत महिलाओं एवं बालिकाओं के उत्पीड़न एवं परित्याग की भावना छोड़कर उनके प्रति सहिष्णुता एवं प्रेम का वातावरण तैयार किए जाने की जरूरत है।
2. अश्लील साहित्य, प्रचार माध्यमों की संवेदनशीलता पर ध्यान दिया जाये तथा सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों पर कम उम्र की लड़कियों को काम करने पर रोक लगाना आवश्यक है।
3. पुलिस विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण वेश्यालय निर्बाध रूप से चलते रहते हैं अत: वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए पुलिस की इस कार्यप्रणाली पर नियंत्रण की आवश्यकता है।
4. अनैतिक व्यापार अधिनियम के तहत पकड़ी गई वेश्याओं के मुकदमों की सुनवाई के लिए महिला न्यायधीशों की नियुक्ति की जाये क्योंकि एक महिला ही दूसरी महिला की समस्याओं को अच्छी तरह से समझ सकती है।
5. केवल कानून बना देना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि वेश्यावृत्ति के कारणों के सामाजिक-आर्थिक आयामों पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि वेश्यावृत्ति का प्रमुख कारण परिस्थितियाँ होती हैं। अत: महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार आवश्यक है।
6. लड़कियों में सामाजिक एवं नैतिक जागरूकता (Social and Moral Awareness) का प्रचार किया जाए तथा वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों के प्रति उन्हें जागरूक किया जाए।
7. मद्यपान एवं नशीली दवाओं का सेवन भी वेश्यावृति का प्रमुख कारण है। अत: इस पर नियंत्रण आवश्यक है।
8. वेश्यागामी व्यक्तियों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की जाए।

महिलाओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम-1956 (Immoral Trade of Women Act - 1956)

वर्ष 1950 में भारत सरकार ने स्त्रियों और लड़कियों के अनैतिक व्यापार के उन्मूलन से संबद्ध संयुक्त राष्ट्र के एक अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय पर हस्ताक्षर किए। इस अभिसमय में वेश्वावृत्ति और स्त्रियों के अनैतिक व्यापार के उन्मूलन, इससे आर्थिक लाभ प्राप्त करने वाले तीसरे पक्ष को दंडित करने, वेश्यावृत्ति की रोकथाम तथा अनैतिक व्यापार की शिकार स्त्रियों के पुनर्वासन (Rehabilitation) से संबद्ध महत्त्वपूर्ण उपबंध हैं। राज्यों के अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम वेश्यावृत्ति के प्रसार को नियंत्रित करने में प्रभावी नहीं थे। इस व्यापक समस्या के समाधान के लिए एक केन्द्रीय अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गयी। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1956 में स्त्री और लड़की अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम बनाये जो 1978, 1986 और 2006 में किए गए महत्त्वपूर्ण संशोधनों के साथ आज भी सारे देश में लागू हैं। इस अधिनियम का नाम अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम-1956 कर दिया गया है। अधिनियम के अंतर्गत यद्यपि व्यक्तिगत वेश्यावृत्ति को अपराध नहीं माना गया है, तथापि जीवन-यापन के संगठित साधन के रूप में अधिसूचित क्षेत्रों में वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध लगाया गया है। अधिनियम में ऐसे कई कृत्यों, व्यवहारों, आचरणों आदि को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है, जिससे वेश्यावृत्ति या अनैतिक व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। वर्ष 2006 में इस अधिनियम में संशोधन कर वेश्यावृत्ति को पुनर्परिभाषित करते हुए इसके दायरे में वाणिज्यिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्यों में 'व्यक्तियों के शोषण' को भी शामिल किया गया है। इसमें व्यक्तियों के अवैध व्यापार को भी परिभाषित किया गया है।

1956 में सामाजिक तथा नैतिक स्वास्थ्य समिति के सुझावों को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने महिलाओं एवं कन्याओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम पास किया तथा उसमें 1978 में संशोधन किया गया। इसके निम्न प्रावधान हैं:-

1. यदि कोई व्यक्ति वेश्यालय चलाता है अथवा उसकी व्यवस्था करता है या सहयोग देता है, ऐसे व्यक्ति को तीन वर्ष तक की कैद तथा 2000 रूपये तक आर्थिक दण्ड दिया जाएगा।
2. 18 वर्ष से अधिक का कोई व्यक्ति यदि जानबूझकर स्थायी या अस्थायी रूप से वेश्या के साथ रहता है अथवा उससे उपार्जित आय (Earned Income) द्वारा अपनी जीविका चलाता है अथवा वेश्यावृत्ति के उद्देश्य से किसी लड़की या महिला को अपने साथ रखता है तो उसे दो वर्ष का कारावास एवं एक हजार जुर्माना हो सकता है।

3. सार्वजनिक स्थल से दो सौ गज की परिधि के अन्दर यदि कोई वेश्या किसी पुरुष के साथ रहती है या वेश्यावृत्ति करती है तो दोनों दण्ड के भागीदार होंगे।
4. इसके लिए विशेष पुलिस की व्यवस्था तथा पकड़ी गई वेश्याओं के संरक्षण के लिए संरक्षण गृह (Care Homes) की व्यवस्था की गई है।

आरम्भ पहल

यह देश की पहली हॉटलाइन है जो बच्चों के इंटरनेट के माध्यम से यौन शोषण को रोकने के लिए और ऑनलाइन अनावृत चाइल्ड पोर्नोग्राफिक सामग्री हटाने के लिए है।

उद्देश्य

1. ऑनलाइन चाइल्ड पोर्नोग्राफी की इस बीमारी को खत्म करना और ऑनलाइन स्पेस में बाल संरक्षण के मुद्दे को आगे बढ़ाना।
2. यह देश में बाल संरक्षण पर काम कर रहे व्यक्तियों और संगठनों का एक नेटवर्क है, ब्रिटेन आधारित इंटरनेट वॉच फाउंडेशन ने इसके साथ सहयोग किया है।
3. भारत में हॉटलाइन aarambhindia.org पर होस्ट की जाएगी और यह यूजर्स को बेनाम रहते हुए और एक सुरक्षित वातावरण में बाल यौन शोषण के चित्र और वीडियो रिपोर्ट में सक्षम बनाएगी।
4. यह एक सरल, सुलभ प्रपत्र (हिन्दी और अंग्रेजी में उपलब्ध) है जिसका कोई भी जागरूक उपयोगकर्त्ता, जो सार्वजनिक इंटरनेट पर किसी बच्चे के यौन उन्मुक्त चित्र पाता है, उसे रिपोर्ट करने के लिए उपयोग कर सकता है बाद में इसे अन्य भाषाओं में भी शुरू किया जाएगा।

भारत में वेश्यावृत्ति : एक सर्वेक्षण
(Prostitution in India : A Survey)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय और महिला एवं बाल विकास विभाग के लिए 'वेश्यावृत्ति में लड़कियां' विषय पर गैर सरकारी संगठन ग्राम नियोजन (Planning) केन्द्र ने देश के सभी राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में एक सर्वेक्षण किया, इस सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार वेश्यावृत्ति में 35% लड़कियाँ ऐसी हैं जो 18 वर्ष से कम आयु की हैं और इनकी संख्या 10 लाख से भी अधिक है।

1. देह व्यापार में 90% महिलायें 15 से 35 वर्ष की हैं।
2. नाबालिग लड़कियां इस धन्धे की रीड़ बनी हुई हैं क्योंकि इनकी मांग सबसे ज्यादा है।
3. देश में लगभग 2000 स्थानों को चिन्हित किया जा चुका है, जहां से देह व्यापार के लिए लड़कियों की आपूर्ति होती है।
4. आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा उत्तर-पूर्वी राज्यों की लड़कियों की संख्या सबसे ज्यादा है, इनमें से अधिकांश को या तो खरीद फरोख्त कर लाया गया है या काम दिलाने के बहाने इस धंधे में ढकेल दिया गया है।
5. अनुमान है कि लगभग 5% लड़कियां अपनी जाति, परंपरा, रिवाज आदि के कारण वेश्यावृत्ति में आयी हैं।
6. नट, बेड़िया, गोमरा, भाट्ट, मलास आदि जातियों ने देह व्यापार को पुश्तैनी रूप में अपनाया है।
7. पहले इस पेशे में 80% महिलायें, SC, ST, OBC की होती थीं परन्तु वे घटकर 60% रह गयी हैं।
8. इस वर्ग में शामिल उच्च वर्ग की अधिकांश लड़कियाँ इसे बतौर करियर अपना रही हैं और इसे बतौर पेशा मानती हैं, जिसके लिए एक नया शब्द Sex Worker अपनाया जाने लगा है।
9. उच्च आय वर्ग के स्तर पर 'स्कर्ट सेवा' के रूप में भी गुप्त वेश्यावृत्ति का विस्तार हुआ है।

✪✪✪✪✪

KHAN SIR

22 वैश्वीकरण एवं महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन (Globalization and Changes in Women Status)

वैश्वीकरण एवं महिला स्थिति (Globalization and Status of Women)

महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन के कारकों में वैश्वीकरण का प्रमुख स्थान माना जाता है, जिसको आर्थिक, सामाजिक तथा संस्कृति सन्दर्भों में देखा जा सकता है। वैश्वीकरण का प्रभाव विश्व के अधिकांश देशों के साथ-साथ भारत पर भी पड़ा। आधुनिक संचार माध्यम तथा पश्चिमी बाजारवाद ने भारतीय महिलाओं को सबसे ज्यादा प्रभावित किया, उन्होंने पश्चिमी उदारवादी समाज तथा महिलाओं की स्थिति को देखकर इन्हें अपनी स्थितियों में सुधार की इच्छा होने लगी। इसके लिए विभिन्न नारीवादी आन्दोलन (Feminist Movement) तथा सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर महिला कल्याण एवं सशक्तीकरण पर जोर दिया जाने लगा। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर विभिन्न योजनाओं, संरक्षणों तथा शिक्षा द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन लाया जा रहा है।

वैश्वीकरण ने भारत में आर्थिक अवसरों में वृद्धि की है, जिससे आर्थिक गतिविधियाँ (Economic Activities) तेज हो गई हैं तथा नौकरियों के अवसर बढ़े हैं। बी.पी.ओ. एवं कॉल सेंटरों के माध्यम से भारत में नौकरियों में बहुत अधिक अवसर मिले हैं, आँकड़े बताते हैं कि कॉल सेंटर में काम करने वालों में 40% लड़कियाँ ही काम करती हैं। इसके अलावा भारत में लघु उद्योग एवं गृह उद्योग में अधिकांशत: महिलाएँ कार्य करती हैं। वैश्वीकरण के कारण इन उद्योगों से तैयार सामानों का निर्यात होने लगा है तथा महिलाओं की आर्थिक क्षमता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण का महिलाओं पर सकारात्मक प्रभाव (Positive Effect of Globalization on Women)

महिलाओं की क्षमता को वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में समाज भी स्वीकार करने लगा है, जिससे समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, उन्हें बराबरी का दर्जा दिया जाने लगा है। इन्दिरा नूयी, अरूंधती राय, मेधा पाटकर जैसी महिलाएँ तो समाज को दिशा देने की स्थिति में आ गई हैं।

प्रथाओं एवं परम्पराओं (Customs and Traditions) के प्रभाव में तकनीकी योग्यता से युक्त लड़कियाँ उसका लाभ नहीं उठा पाती थीं, किन्तु वैश्वीकरण ने उन्हें अपने निवास के नजदीकी शहरों में ही इसके लिए अवसर उपलब्ध करा दिए हैं, जिससे उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण ने नए अवसरों को उत्पन्न करके महिलाओं की गतिशीलता को गति प्रदान की है तथा देश के विभिन्न नगरों में इनके लिए तमाम रोजगार के साधन उपलब्ध हो गए हैं।

वैश्वीकरण ने न केवल आर्थिक क्षेत्र में, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में भी महिलाओं की स्थिति को प्रभावित किया है। विभिन्न देशों की संस्कृतियों के सम्पर्क में आने से महिलाएँ अन्य देशों में महिलाओं की स्थिति उच्च देखकर, उनकी स्वतंत्रता से प्रेरणा लेकर स्वयं भी इन मूल्यों के प्रति जागरूक हो गई हैं, परिवार एवं समाज इन मूल्यों को स्वीकार भी कर रहा है।

वैश्वीकरण का महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव (Negative Effect of Globalization on Women)

यद्यपि महिलाओं की स्थिति के उन्नयन में वैश्वीकरण की भूमिका महत्त्वपूर्ण है किन्तु किसी न किसी रूप में इसने भारतीय महिला की स्थिति एवं भूमिकाओं में अधोगामी (Downwards) परिवर्तन भी ले आया है। वैश्वीकरण के कारण सांस्कृतिक सम्पर्क के माध्यम से सांस्कृतिक प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न हुई है।

महिलाओं को अब बाजार के उत्पादों को बेचने के लिए वस्तु की भांति पेश किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यौनाचार, व्यभिचार इत्यादि विसंगतिपूर्ण प्रवृत्तियाँ (Incongruous Trends) समाज में उभर रहीं हैं जो कि समाज में महिलाओं की उच्च स्थिति को नीचे ले जा रही हैं।

वैश्वीकरण ने यद्यपि महिलाओं के लिए रोजगार के नये अवसर उपलब्ध कराए हैं, किन्तु ये अवसर अधिकांशत: तकनीकी रूप से दक्ष अथवा अंग्रेजी भाषा में कार्य करने वाली महिलाओं के लिए ही उपलब्ध हुए हैं। इसके अलावा बी.पी.ओ., रिसेप्सनिस्ट जैसी नौकरियाँ उनकी आय का केवल एक साधन मात्र बनती हैं, जबकि समाज में उनकी स्थिति को ऊँचा उठाने में उनका विशेष योगदान नहीं माना जाता है।

वैश्वीकरण ने केवल शहरी महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन किया है तथा ग्रामीण महिलाएँ इससे लगभग अछूती रही हैं। नए-नए भौतिकवादी मूल्यों, जैसे- गे फैमिली, लिव इन रिलेशनशिप आदि के सात्मीकरण (Assimilation) के कारण भारतीय महिलाओं की सांस्कृतिक छवि को नुकसान पहुँच रहा है। वैश्वीकरण का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव दाम्पत्य जीवन में देखा जा रहा है, जिसमें पति-पत्नी पेशेवर होने के कारण अपने परिवार, बच्चे, माता-पिता आदि पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते हैं। खासकर बच्चों पर इसका मानसिक

असर होता है तथा ऐसे बच्चे हिंसक प्रवृत्ति के होने लगते हैं या हीन भावना से ग्रसित होने लगते हैं तथा माता-पिता के प्रति वह स्नेह नहीं हो पाता है जो कभी संयुक्त परिवारों में हुआ करता था। विभिन्न कॉल सेंटरों में काम करने वाले नवयुवक एवं नवयुवतियों में नैतिकता के पतन के लक्षण दिखाई देने लगे हैं तथा यह परम्परागत वैवाहिक संस्था से भी विमुख होते जा रहे हैं। भविष्य में इसका व्यापक प्रभाव समाज पर पड़ेगा। वैश्वीकरण ने महिलाओं में उपभोगवादी प्रवृत्ति (Consumerist Tendencies) को बढ़ावा दिया है, जिस कारण यह कभी-कभी पारिवारिक कलह का कारण बनता है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत में महिलाओं पर निश्चित रूप से विभिन्न प्रभाव उत्पन्न किए हैं तथा इन प्रभावों को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर वैश्वीकरण के कारण महिलाओं की सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहभागिता में वृद्धि हुई है, वहीं महिलाओं पर विभिन्न पश्चिमी एवं भौतिकवादी मूल्यों (Materialistic Values) का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। साथ ही, इस प्रक्रिया का लाभ नगरीय क्षेत्र की महिलाओं पर ही अधिक प्रदर्शित होता है तथा ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ इससे अछूती रह गयी हैं। अत: उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

1. वैश्वीकरण की प्रक्रिया को इस प्रकार से भारत के सन्दर्भ में परिवर्तित किया जाए कि इससे उत्पन्न आर्थिक लाभ ग्रामीण क्षेत्र में भी पहुँच सके तथा ग्रामीण महिलाएँ भी रोजगार की प्राप्ति कर सकें।
2. भारतीय संस्कृति को प्रदूषित करने वाले तथा महिलाओं की गरिमा को कुप्रभावित करने वाले विज्ञापनों पर सेंसरसिप को कड़ाई से लागू किया जाए।
3. भौतिकवादी संस्कृति (Materialistic Culture) का आधुनिकीकरण न किया जाए।
4. महिलाओं को अंग्रेजी एवं तकनीक शिक्षा में दक्ष किया जाए, जिससे कि वैश्वीकरण का लाभ उठा सकें।
5. बहुराष्ट्रीय निगमों में ग्रामीण युवतियों के लिए कुछ स्थानों का आरक्षण किया जाना चाहिए, ताकि अति पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को भी वैश्वीकरण का लाभ दिया जा सके।
6. वैश्वीकरण (Globlization) के तहत कार्य करने वाली युवतियों के लिए कार्य स्थल पर शोषण रहित वातावरण का विकास किया जाए तथा उनके कार्यों को विनियमित किया जाए तथा कार्य स्थल से घर तक की सुरक्षा व्यवस्था का दायित्व कम्पनियों पर डाला जाए ताकि कामकाजी महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों को प्रभावी ढंग से रोका जा सके।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय महिलाओं की परम्परागत स्थिति में परिवर्तन किया है। यद्यपि यह परिवर्तन सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों संदर्भों में है किन्तु इसके सकारात्मक परिणाम अधिक हैं।

✪✪✪✪✪

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

23 भारत में महिला संगठन एवं महिला आंदोलन (Women Organization in India & Women Movement)

भारत में महिला आंदोलन (Women Movements in India)

मानवतावादी परिप्रेक्ष्य (Humanistic Perspective) में महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु और समानता के लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में महिलाओं द्वारा महिला आंदोलन के रूप में संगठित प्रयास विश्व के कमोबेश सभी देशों में और विभिन्न कालों में किये गए, भारत भी इससे अछूता नहीं था। पाश्चात्य शिक्षा और आधुनिक मूल्यों (Modern Values) के प्रसार के साथ यहाँ भी महिलाएँ अपनी स्थिति के प्रति चैतन्य और अपनी स्थिति में सुधार हेतु संगठित होकर सक्रिय हुई हैं।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अन्य समाजों के समान ही द्वितीयक श्रेणी की रही हैं। मध्यकालीन भारत की धार्मिक रूढ़िवादिता (Religious Conservatism) ने महिलाओं पर बहुत सी निर्योग्यताएँ (Disabilities) थोपी तथा विधवा विवाह निषेध, बहुपत्नी विवाह जैसी प्रथाओं ने महिलाओं की स्थिति को और भी नीचा बनाया। सती प्रथा तथा बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों (Social Malpractices) ने स्त्रियों के अधिकारों का हनन किया और उनकी दुर्दशा का कारण बनी।

अंग्रेजों के आगमन के साथ ही भारत में आधुनिक शिक्षा के साथ ही आधुनिक मूल्यों-स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता आदि का प्रसार हुआ, जिससे महिलाओं में भी इनके प्रति चेतना विकसित हुई और उन्हें अपनी स्थिति के प्रति वंचना का बोध हुआ। भारतीय समाज में महिलाओं के उन्नयन हेतु शिक्षा व संचार माध्यमों का प्रसार सर्वप्रमुख कारण रहा है। 19वीं सदी में हुए विभिन्न समाज सुधार एवं शैक्षणिक सुधारों में महिलाओं को सर्वप्रथम घरों की चारदीवारी से बाहर निकालकर बाह्य जगत से उनका सम्पर्क स्थापित किया। संचार माध्यमों के प्रसार ने उन महिलाओं को अपने अधिकारों एवं उत्तरदायित्व का बोध कराकर विभिन्न क्षेत्रों में सशक्त होने के लिए प्रेरित किया। परिणामतः समय-समय पर महिलाओं द्वारा विभिन्न आंदोलनों का संचालन एवं नेतृत्व किया गया। भारत में महिला आंदोलन को मुख्यतः चार कालखण्डों में बाँटकर देखा जा सकता है-

प्रथम काल / First Era (1930 -1932 तक)

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक महिला आंदोलन स्पष्ट रूप में उभर चुका था। इस क्षेत्र में तीन संगठनों भारतीय महिला संघ (WIA), भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद (NCIW) तथा ऑल इण्डिया वूमेन्स कांग्रेस (AIWC) का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनमें AIWC की भूमिका प्रमुख रही तथा शिक्षा द्वारा 'महिला परिवार कल्याण' केन्द्र बिंदु में रहा। इस काल में सरोजनी नायडू द्वारा वांशिक अधिकार की मांग, कम्युनल अवार्ड (1932) द्वारा विधानसभा में महिला आरक्षण (2.5%) की प्राप्ति आदि उपलब्धियाँ रहीं, परन्तु, महिला आरक्षण में धार्मिक महिला आरक्षण (Religious Women Reservation) के प्रश्न पर AIWC के विघटन ने आंदोलन को धक्का भी पहुँचाया।

इस काल के आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न थीः-

1. महिला कल्याण भत्ते के आधार पर प्रतिस्पर्धात्मक या एक दूसरे के विपरीत नहीं था।
2. प्रत्येक संगठन में महिला सहभागिता (Female Participation) की बात की गई न कि मात्र महिला सहभागिता की।
3. महिला कल्याण के लिए राजनीतिक परिवर्तन को आवश्यक शर्त के रूप में महसूस किया गया। अतः सभी महिला संगठन स्वंतत्रता संग्राम में व्यस्त हो गए।

द्वितीय काल / Second Era (1947-1970)

इस काल में महिला संगठनों का प्रयास लगभग निष्क्रिय रहा। स्वतंत्रता मिलने से इनमें थोड़ी निश्चितता आई यद्यपि तेभागा, तेलंगाना, भूदान और नक्सलबाड़ी आंदोलनों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महिलाओं की भागीदारी विद्यमान रही, लेकिन स्वतंत्र व सक्रिय रूप से इनका कोई कार्य या प्रयास नहीं रहा।

तृतीय काल / Third Era (1970-1985 तक)

1970 तक पूरे देश की महिलाओं में असंतोष और आक्रोश की लहर फैलने लगी और फिर से पुराने महिला संगठन सक्रिय हो गए और नये संघर्ष तथा नये मुद्दों को लेकर अनेक नये महिला संगठन भी बने। महिलाओं पर जारी समानता के लिए रिपोर्ट 1974, 1975 का आपातकाल, संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975-85 को अंतरराष्ट्रीय महिला दशक की घोषणा आदि तत्त्व इसके प्रमुख कारण रहे।

इस काल में पर्यावरण संबंधी संघर्ष (जैसे इकोफेमिनिज्म, चिपको आंदोलन, अप्पिको आंदोलन, कर्नाटक बांध का विरोध), बढ़ती मंहगाई के खिलाफ आंदोलन (अहिल्या-रंगेकर- मार्क्सवादी पार्टी, महाराष्ट्र द्वारा) और जमीन पर समान अधिकार (बोधगया क्षेत्र में जमीन वितरण के प्रश्न पर मणिमाला, मानसी, नीलम आदि द्वारा) आदि प्रमुख रहे।

इस काल की विशेषताएँ निम्नलिखित रहीं:–

1. महिला उत्पीड़न, दहेज हत्या, बलात्कार, व्यक्तिगत कानून, मुस्लिम महिलाओं के अधिकार के मुद्दे पर जोर दिया गया।
2. खेतिहर महिला, समान मजदूरी आदि मुद्दे उपेक्षित रहे, जबकि पश्चिमी समाजों मे लिंग समानता (Gender Equality) का यही आधार था।
3. महिला संगठनों की स्वायत्तता (Autonomy) के मुद्दे पर मतभिन्नता बनी रही।

चतुर्थ काल (1985 से आगे)
(Fourth Era (1985 - on Wards)

1970 से 2007-08 तक अनेक स्वायत्त महिला संगठनों-पुरोगामी महिला संगठन (महाराष्ट्र), फोरम अगेंस्ट रेप, फोरम अगेंस्ट ऑपरेशन ऑफ वूमेन (मुम्बई), सहेली (दिल्ली), अस्मिता (हैदराबाद), विमोचना (बेंगलुरू) आदि तथा पार्टी आधारित महिला संगठनों, जैसे-महिला कांग्रेस (कांग्रेस), दुर्गावाहिनी (भाजपा), AIDWA (माकपा), NFIW (सी पी आई) आदि का उदय हो चुका था और इन संगठनों द्वारा मुख्यत: कई क्षेत्रों में सक्रिय प्रयास किये गए।

AIDWA एवं NFIW द्वारा कामकाजी महिलाओं के मुद्दे पर कार्य किया गया। ईला भट्ट की अध्यक्षता में SEWA ने असंगठित श्रम क्षेत्र की महिलाओं को संगठित करने का प्रयास किया। नारीवादी देविका जैन व बीना मजूमदार ने अवैतनिक व घरेलू काम को काम न माने जाने का मुद्दा उठाया। साथ ही, महिलाओं के पारंपरिक हुनर व कुशलताओं का मूल्यांकन, समान वेतन पर जोर व नवीन आर्थिक नीति का विरोध प्रमुख मुद्दा बना हुआ है।

भारत में प्रमुख महिला संगठन
(Major Women's Organization in India)

ऑल इण्डिया वूमेन्स कॉन्फ्रेंस

इस संगठन की स्थापना 1927 ई. में की गयी थी, मूलत: भारत में सक्रिय यह संगठन मुख्यत: महिलाओं तथा बच्चों की बेहतरी और उनके सामाजिक-आर्थिक उन्नयन हेतु कार्यरत है। वर्तमान समय में इसके एक लाख से अधिक सदस्य एवं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में 500 शाखाएँ कार्यरत हैं। यह संस्था भारत के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर भी महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण के लिए प्रयासरत है।

इस संस्था द्वारा संचालित क्रियाकलाप एवं कार्यक्रम निम्न हैं:-

1. साक्षरता एवं शिक्षा के क्षेत्र में इस संगठन द्वारा वर्ष 1996 से विद्यालय से ड्राप आउट बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का संचालन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त महिलाओं को क्राफ्ट प्रशिक्षण के साथ-साथ साक्षरता कार्यक्रमों से जोड़ा जा रहा है।
2. यह संगठन महिलाओं को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराकर उनके क्षमता निर्माण तथा कौशल विकास हेतु प्रयत्नशील है। संगठन द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को सूक्ष्म ऋण उपलब्ध कराया जाता है, ताकि उन्हें लघु उद्योगों की स्थापना हेतु प्रोत्साहित कर गरीबी उन्मूलन किया जा सके। महिलाओं को स्वयं सहायता समूह के रूप में संगठित करने के प्रयास द्वारा यह संगठन बचत को प्रोत्साहित करने तथा ऋण प्रबंधन हेतु परामर्श देने का कार्य भी करती है।
3. संगठन द्वारा समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों में स्वास्थ्य कैंपों द्वारा जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार नियोजन से संबंधित लाभों का प्रचार-प्रसार कर देश की बढ़ती आबादी पर नियंत्रण की दिशा में सार्थक प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त संगठन द्वारा एड्स जैसी गंभीर बीमारी के कारणों एवं उसके दुष्परिणाम के साथ-साथ इससे सुरक्षा के उपायों का भी प्रचार-प्रसार किया जा रहा है।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की समस्या के समाधान तथा पर्यावरण सुरक्षा को सुनिश्चित करने की दिशा में प्रयास करते हुए संगठन द्वारा नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का प्रचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह संगठन ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को आत्मनिर्भरता प्रदान करने एवं उन्हें आधुनिक संचार प्रणाली से संबद्ध कर महिला सशक्तिकरण के प्रयासों को बल प्रदान करती है। इसके लिए संगठन द्वारा कंप्यूटर ट्रेनिंग सेन्टर की स्थापना की जाती है, जो इग्नू से संबद्ध हैं।
5. संगठन द्वारा महिलाओं को शैक्षिक सशक्तिकरण प्रदान करने तथा विश्व की तमाम सूचनाओं से अवगत कराने हेतु महिला पुस्तकालयों की भी स्थापना की जाती है।
6. संगठन द्वारा महिलाओं को कानूनी सलाह प्रदान करने हेतु कानूनी कैंपों का निर्माण किया जाता है। यह संगठन राष्ट्रीय महिला आयोग के कानूनी सलाहकार के रूप में कार्यरत हैं।

सेवा (SEWA)

इस संगठन की स्थापना सन् 1972 में इला भट्ट द्वारा की गयी थी। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को पूर्ण रोजगार प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास का विकास करना है। साथ ही, संगठन वंचित महिलाओं को अनौपचारिक क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध कराकर उनकी गरीबी दूर करने के लक्ष्य पर भी केन्द्रित है। वर्तमान में इस संस्था के 10 लाख से अधिक सदस्य हैं।

इस संस्था को गुजरात में महिलाओं द्वारा दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में सहकारिता आधारित उद्योगों के क्रांतिकारी विकास हेतु जाना जाता है। संगठन स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से अधिकाधिक महिलाओं को रोजगार प्रदान करने हेतु निरंतर प्रयासरत है। संगठन की उपलब्धियों के मद्देनजर अधिकाधिक महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु वर्ल्ड बैंक द्वारा भी सेवा को सहयोग प्रदान किया जा रहा है।

सेवा द्वारा संचालित सेवा बैंक महिलाओं को वित्तीय सहयोग उपलब्ध कराकर उन्हें रोजगार के अवसर प्रदान करता है। इसी प्रकार सेवा एकेडमी द्वारा महिलाओं को विभिन्न प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है ताकि महिलाओं का क्षमता निर्माण और कौशल विकास संभव हो सके। सेवा हाउसिंग आवासविहीन महिलाओं के आवास निर्माण हेतु संसाधन उपलब्ध कराता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं को आधुनिक संचार माध्यमों से परिचित कराकर उनकी संचार निर्माण क्षमता के विकास हेतु सेवा कम्युनिकेशन का संचालन किया जा रहा है। इसी प्रकार की विभिन्न संस्थाओं के द्वारा सेवा नायक यह संस्था महिलाओं का सामाजिक-आर्थिक विकास करने हेतु प्रयासरत है।

भारतीय ग्रामीण महिला संघ

इस संगठन की स्थापना सन् 1955 में की गयी थी। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं, बच्चों, वृद्धों एवं शारीरिक अक्षम लोगों के कल्याण से संबंधित क्रियाकलापों का संचालन करना है।

यह संस्था ग्रामीण क्षेत्रों में महिला मंडल के निर्माण हेतु विशेष रूप से प्रसिद्ध है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला मंडल के सदस्यों द्वारा वित्तीय बचत के माध्यम से लघु उद्योगों का विकास किया जाता है। इस प्रकार महिलाओं को रोजगार के साथ-साथ आर्थिक सुरक्षा भी प्राप्त होती है। संस्था द्वारा महिला मंडल के सदस्यों को विभिन्न प्रशिक्षण जैसे-सिलाई, पापड़ निर्माण आदि का प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। यह संस्था विश्व स्तर पर ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु कार्यरत सबसे बड़ी संस्था ACWW (Associated Country Women of the World) से भी संबद्ध है।

फ्रेंड्स ऑफ वुमेन वर्ल्ड बैंकिंग

इस संगठन की स्थापना सन् 1982 में इला भट्ट द्वारा की गयी थी। इस संगठन द्वारा महिलाओं को सूक्ष्म वित्त प्रदान किया जाता है, ताकि गरीब महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों में प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

गुलाबी गैंग

इस संगठन की स्थापना वर्ष 2010 में की गयी है। वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा व अन्य हिंसा के विरूद्ध तीव्र आंदोलन हेतु यह संगठन चर्चित रहा है। यह संगठन बाल विवाह एवं दहेज की रोकथाम हेतु भी व्यापक अभियान संचालित कर रहा है।

AIDWA

इस संगठन की स्थापना सन् 1981 में की गयी थी। इस संस्था द्वारा लोकतंत्र, समानता और महिला अधिकारों की प्राप्ति हेतु विभिन्न क्रियाकलापों का संचालन किया जा रहा है। विभिन्न कैंपों, नुक्कड़ नाटकों, प्रदर्शनों व अन्य प्रसार माध्यमों द्वारा यह अपने उद्देश्यों का प्रचार-प्रसार कर महिलाओं को जागरूक करने का प्रयास करती है।

NFIW

इस संगठन की स्थापना 1954 ई॰ में की गयी थी। यह भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (CPI) का महिला संगठन है। यह संगठन महिला अधिकारों, लैंगिक समानता, महिला हिंसा आदि मुद्दों पर सक्रिय आंदोलन करता है।

दुर्गावाहिनी

इस संगठन की स्थापना वर्ष 1991 में की गयी थी। यह विश्व हिन्दू परिषद् (VHP) का महिला संगठन है। यह संस्था महिलाओं के अधिकाधिक सांस्कृतिक क्रियाकलापों में सहभागिता सुनिश्चित कराने हेतु प्रयासरत है।

लाल रिक्सा क्रांति

यह एक प्रकार का आंदोलन है जिसकी स्थापना वर्ष 2013 में वोडाफोन फाउंडेशन द्वारा की गयी है। यह संगठन महिलाओं के सामाजिक विकास हेतु उनके सशक्तिकरण का प्रयास करती है।

प्रज्जवला

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट की अध्यक्ष सुनीता नारायण इस गैर सरकारी संगठन की अध्यक्ष व संस्थापक हैं। यह संस्था स्त्रियों व बालिकाओं को अनैतिक व्यापार के कृत्य से बाहर निकालने, उनका पुनर्वास और सशक्तिकरण करने का प्रयास करती है। हाल ही में, वाराणसी में इस संस्था ने ऐसे लोगों के राहत व बचाव कार्य का अभियान चलाया।

प्रेरणा

पीपुल्स हेल्थ आर्गनाइजेशन ने एड्स को लेकर वेश्याओं में जागरूकता लाने के लिए इस संस्था का गठन किया था। यह संस्था वेश्याओं के बच्चों की शिक्षा के लिए भी काम करती है। इसके संस्थापक प्रवीण पाटकर हैं।

प्रयास

मुंबई स्थित यह संस्था अनैतिक व्यापार में लिप्त स्त्रियों की समस्याओं को दूर करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।

भारत में महिला आंदोलन के कारण (Causes of Women's Movement in India)

भारत में महिलाओं की दशा प्रारम्भ से वर्तमान तक एक समान नहीं रही है। जहाँ वैदिककालीन भारत में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त था, वहीं मध्यकाल से लेकर औपनिवेशिक काल तक उनकी स्थिति में लगातार गिरावट आई। इस पृष्ठभूमि में निम्नांकित कारक महिला आंदोलनों के कारण बने:-

1. भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति से उपजा असंतोष (सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, बहु विवाह आदि)।
2. आधुनिक मूल्यों (Modern Values) (स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता) का प्रसार और वंचना के बोध।
3. आधुनिक शिक्षा के प्रसार ने महिलाओं में यह चेतना पैदा की कि संगठित आन्दोलन द्वारा वह समाज में समान हिस्सेदारी पा सकती हैं।
4. यातायात एवं संचार माध्यमों के विस्तार ने महिलावादी आंदोलन हेतु संगठन बनाने में महत्त्वपूर्ण काम किया।
5. नारीवादी वैचारिकी (Feminist Ideology) के प्रभाव ने भारतीय महिलाओं को भी अपने आंदोलन को संगठित करने के लिए प्रेरित किया।

आधुनिक मूल्यों शिक्षा, संचार तथा नारीवादी वैचारिकी से प्रेरित होकर भारत में सक्रिय नारीवादी आंदोलनों की शुरुआत हुई और आज ये महिला कल्याण, महिला सशक्तिकरण तथा नारी समानता जैसे मुद्दों के लिए सतत् संघर्षशील हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु निश्चित ही महिला आंदोलनों ने सराहनीय प्रयास किये हैं। महिला-पुरुष समानता की चेतना जागृत करने, उन्हें संगठित करने एवं एक दवाब समूह के रूप में सरकार से सामूहिक सौदेबाजी कर नारी सशक्तिकरण व महिलाओं की स्थिति में सुधार के क्षेत्र में बहुत हद तक सफलता प्राप्त की है, जिन्हें हम निम्न तरीके से देख सकते हैं:-

1. सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की प्रगति हुई और उनको परम्परागत व्यवस्था (Traditional System) से अधिक सम्मान प्राप्त होने लगा है।
2. आधुनिक समय में मिले अवसरों का लाभ उठाकर शैक्षिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी पहुंच बनायी है और अपनी स्थिति को मजबूत बनाया है।

3. आर्थिक क्षेत्र में कुछ महिलाओं ने नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं और अपनी कार्य क्षमता के बल पर संगठनों के शीर्ष स्थानों पर पहुंची हैं।
4. राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है और कुछ महिलाएँ राजनीति के उच्चतम शिखर तक पहुँची हैं।

हालाँकि अनेक उपलब्धियों के बावजूद आज लिंग समानता के लक्ष्य को अपेक्षित रूप से प्राप्त नहीं किया जा सका है।

आज महिला सशक्तिकरण हेतु महिला आंदोलनों में एकमतता (Unanimity) नहीं है। ये सभी जाति, समुदाय आदि के आधार पर बँटकर महिला उत्थान (Women Empowerment) की ओर प्रयासरत हैं। आज महिला आंदोलन का स्वरूप अस्पष्ट हो गया है तथा वे कई विचारधाराओं और उप-विचारधाराओं के साथ प्रयासरत हैं, (वंदना शिवा, शरद जोशी, शरद पाटिल) फलतः महिला आंदोलन आज बिखर गया है अतः आज जरूरत है कि ये संगठन एक मंच पर आकर लिंग समानता या महिला उत्थान हेतु संगठित प्रयास करें और महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोग करें।

भारत में महिला एवं महिला संगठन : संभावित प्रश्न

1. घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम के प्रमुख अभिलक्षणों को स्पष्ट करें। भारत में विभिन्न प्रकार से घरेलू हिंसा में हो रही वृद्धि को नियंत्रित करने में इस अधिनियम की प्रासंगिकता का परीक्षण कीजिए।
2. भारत में दहेज उन्मूलन हेतु सरकार द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों का परीक्षण करें। क्या आप इन प्रयासों में कुछ संशोधन प्रस्तुत करना चाहेंगे?
3. वेश्यावृत्ति के कारण एवं भारतीय समाज पर इसके प्रभावों को स्पष्ट करें। इस समस्या के समाधान हेतु क्या उपाय अपेक्षित हैं, तर्क सहित उत्तर दें?
4. वैश्वीकरण ने भारतीय महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को किस प्रकार प्रभावित किया है? इस संदर्भ में वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को समाप्त करने हेतु उपयुक्त सुझाव दें।
5. पीएनडीटी अधिनियम, 1994 के प्रमुख प्रावधानों को स्पष्ट करें। बालिका भ्रूण हत्या पर नियंत्रण स्थापित करने में इस कानून की भूमिका का परीक्षण करें।
6. "महिलाओं पर तेजाब हमला एक अक्षम्य अपराध है।" इस संदर्भ में हाल की घटनाओं के आलोक में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तेजाब हमला को रोकने हेतु जारी किए गए दिशा निर्देशों को स्पष्ट करें। आपके विचार में इसके अतिरिक्त कौन से उपाय अपेक्षित हैं ताकि ऐसी घटनाओं को पूर्णतः रोका जा सके।
7. उन कारणों की चर्चा करें, जिन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं को वंचना के कगार पर खड़ा कर दिया है। इन कारणों को दूर करने हेतु किए गए प्रयासों की समीक्षा करें।
8. महिलाओं के सशक्तिकरण में महिला संगठनों की भूमिका की समीक्षा करें।
9. वर्तमान महिला आन्दोलन विखराव के दौर से गुजर रहा है। इसके लिए उत्तरदायी कारणों को स्पष्ट करें।

✪✪✪✪✪

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

24 भारत में कमजोर वर्ग: महिलाएँ (Weaker Section in India : Women)

भारत में अतिसंवेदनशील वर्ग के रूप में महिलाएँ (Women as Highly Vulnerable Section in India)

आज महिलाएँ आधी दुनिया का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा भारत में भी कुल जनसंख्या में महिलाओं का प्रतिशत लगभग 48 (जनगणना 2011) है। ऐतिहासिक रूप से महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में निम्न रही है तथा सामाजिक विकास के हर क्षेत्र में महिलाएँ कई समस्याओं से ग्रसित रही हैं।

भारत की कुल जनसंख्या में लगभग 50 प्रतिशत हिस्सेदारी वाली महिला का जीवन अत्यंत कठिन व संघर्षमय है। शैक्षणिक क्षेत्र में मात्र 65% महिला साक्षरता, भारतीय संसद में मात्र 10% महिलाओं की संख्या, प्रशासकीय- प्रबंधकीय व व्यावसायिक पदों पर मात्र 2.3% उपस्थिति तथा अन्य तकनीकी क्षेत्रों में मात्र 20% का प्रतिनिधित्व (Represent) यह स्पष्ट करता है कि भारतीय समाज में पुरुषों की तुलना में महिलाएँ काफी पीछे हैं। ये आँकड़े साफ बता रहे हैं कि महिला वर्ग (Women Section) को किस तरह से समाज की विभिन्न गतिविधियों में हाशिए पर रखा जा रहा है।

देश के ग्रामीण क्षेत्र में अब भी ऐसी काफी महिलाएँ हैं जिन्हें उनके परंपरागत कार्यों तक ही सीमित करके रखा गया है, जबकि उनकी क्षमता उससे बेहतर करने की है। इसके साथ ही उनके अधिकांश महत्त्वपूर्ण कार्य अदृश्य व उपेक्षित बन कर रह गए हैं। समाज में प्रचलित मान्यताओं (Prevalent Belief) के अनुसार महिलाओं के आर्थिक क्रियाकलापों को घरेलू उद्यमों, हस्तशिल्प, कटाई, बुनाई जैसे क्रियाकलापों पर आधारित उद्यम के रूप में वर्गीकृत कर दिया जाता है। घर के अन्दर महिलाओं का कार्य विशेष रूप से पुरुष व महिला के बीच श्रम विभाजन (Work Division) पर आधारित होता है। इस तरह के घरेलू कार्यों हेतु उन्हें कोई पारिश्रमिक भी नहीं मिलता और न ही उसे उत्पादक उद्यमों में शामिल किया जाता है। ग्रामीण समाज (Rural Society) में लड़कियों के प्रति जो दृष्टिकोण है वह अब भी संकीर्ण है। इसी वजह से कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, दहेज समस्या, शोषण जैसी प्रकृतियाँ मौजूद हैं। समाज में लड़कियों के प्रति दोहरी मानसिकता भी उनके विकास को अवरूद्ध करती है, उन्हें कुंठित करती है और मनोरोगी बना देती है।

हाल के दिनों में महिलाओं से छेड़छाड़, बलात्कार, कार्य स्थल पर यौन शोषण तथा बलात्कार के पश्चात् हत्या आदि की घटनाओं ने महिलाओं की सुरक्षा के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर एक बहस को जन्म दिया है। साथ ही इस प्रकार की घटनाओं के परिणामस्वरूप हमारी प्रशासनिक तथा कानूनी व्यवस्था पर भी प्रश्न खड़े हुए हैं। आज महिलाओं का अपवर्जन (Exclusion) कई क्षेत्रों में परिलक्षित होता है।

विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं का सीमान्तीकरण

आर्थिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण (Marginalization in Economics Sector)

आज भी आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों पर महिलाओं की निर्भरता बनी हुई है। यद्यपि महिलाओं को समाज में आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। परन्तु शिक्षिका, एयर होस्टेस, नर्स, सेल्स गर्ल, कॉल सेंटर, रिसेप्शनिष्ट जैसी नौकरियों को ही महिलाओं के लिए उपयुक्त समझा जा रहा है। साथ ही कई नौकरियाँ महिलाओं की बजाए उनकी सुंदरता के आधार पर उपलब्ध करायी जाती हैं। विभिन्न महिलावादी आंदोलनों (Feminist Movement) के बावजूद अभी तक महिलाओं के घरेलू कार्यों को आर्थिक कार्य का दर्जा प्रदान नहीं किया जा सका है। आज महिलाओं को रोजगार के अधिकांश अवसर अनौपचारिक क्षेत्र में ही उपलब्ध हैं तथा औपचारिक क्षेत्र में कुल श्रम का मात्र 13% महिलाएँ कार्यरत हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण (Marginalization in Political Field)

यद्यपि भारत में महिलाओं को लम्बे समय से मतदान का अधिकार प्राप्त है, परन्तु विश्व की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक प्रणाली वाले देश में महिलाओं की राजनीतिक नीति निर्माण में वर्तमान भूमिका पर्याप्त नहीं है। हालांकि स्थानीय निकाय चुनावों में संविधान के 73वें संशोधन द्वारा महिलाओं की 50% प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें राजनीतिक रूप से सशक्तता प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया है। इस विधेयक के पारित हो जाने के पश्चात् महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों में निश्चितत: वृद्धि हुई। परन्तु हाल के कुछ शोध यह इंगित करते हैं कि पंचायती राज संस्थाओं में अधिकांश महिला प्रतिनिधियों के राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग उनके घर के पुरुष सदस्यों द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त संसद एवं राज्य विधान मंडलों में भी महिला प्रतिनिधियों की संख्या का कम होना इनके राजनीतिक सशक्तिकरण (Political Empowerment) की दिशा में प्रमुख बाधा है, कई ग्रामीण इलाकों की महिलाएँ अशिक्षा तथा जागरूकता के अभाव एवं आर्थिक कार्यों में संलग्नता के कारण अपने मताधिकार का भी प्रयोग नहीं कर पाती हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता के समक्ष वैश्विक स्तर पर कई समस्याएँ विद्यमान हैं। अत्यधिक पितृसत्तात्मक समाज (Patriarchal Society) तथा स्थानीय संरचना महिलाओं को मुकाबला करने हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान नहीं करती है। परिणामतः राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के हितों का प्रतिनिधित्व सीमित हो जाता है।

यद्यपि भारत में राजनीतिक क्षेत्र के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन महिला प्रतिनिधियों ने उक्त पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को चुनौती प्रस्तुत की है। सोनिया गांधी, मीरा कुमार, प्रतिभा पाटिल, सुषमा स्वराज, ममता बनर्जी, शीला दीक्षित, मायावती, जयललिता, जयंती नटराजन, वृंदा करात आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय निकायों में 50% से अधिक महिलाओं के विभिन्न पदों पर आसीन होना एक सुखद संकेत है। परन्तु इसके बावजूद कई ऐसे कारक हैं जिन्होंने इन उपलब्धियों को सीमित कर दिया है। कुछ महत्त्वपूर्ण पदों को छोड़ दिया जाए तो महिलाओं को विभिन्न सरकारों में निम्न महत्त्व के पदों पर आसीन कर दिया जाता है। इसके साथ यह तर्क जोड़ दिया जाता है कि ये विभाग नरम विषयों (Soft Subject) से संबंधित हैं जहां महिलाओं के लिए निर्णय लेना आसान होता है; जैसे-स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कल्याण आदि। इसके अतिरिक्त भारतीय संसद एवं विभिन्न राज्य विधानमण्डलों में महिला प्रतिनिधियों की संख्या काफी कम है। वर्तमान लोकसभा में 545 में मात्र 78 तथा राज्य सभा में कुल 244 सदस्यों में मात्र 26 महिला प्रतिनिधियों की संख्या संतोषजनक नहीं कही जा सकती। यह आँकडे स्पष्ट करते हैं कि अधिकांश महिला प्रतिनिधियों के पद एवं कार्य संबंधी निर्णय परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा ही लिया जाता है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर राजनीतिक क्षेत्र में महिलाएँ वृहद् स्तर पर अपवर्जित हैं, वहीं दूसरी ओर सीमित प्रतिनिधियों के बावजूद भी निम्न महत्त्व के पद के आवंटन तथा निर्णय प्रक्रिया में पुरुषों के हस्तक्षेप के कारण महिलाओं की राजनीतिक प्रभावकारिता (Political Effectiveness) सीमित हो जाती है।

सामाजिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण (Marginalization in Social Field)

वर्तमान भारतीय समाज में पारंपरिक मूल्यों को उच्च स्थान प्रदान किए जाने के कारण महिलाओं को कई सामाजिक क्रियाकलापों (Social Activities) से वंचित कर दिया जाता है। विधवा विवाह के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, कन्या भ्रूण हत्या, कम उम्र में लड़कियों का विवाह, बालिकाओं को शिक्षा से वंचित किया जाना आदि इसी का परिणाम है जिसने सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से महिलाओं को अपवर्जित कर दिया है।

यद्यपि वैज्ञानिकता एवं तार्किकता के प्रसार, आधुनिक मूल्यों (Modern Values) के प्रसार, शिक्षा के अवसरों की उपलब्धता तथा महिलावादी आंदोलनों आदि ने संयुक्त रूप से महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार किया है, परन्तु आज भी लिंग असमानता की स्थिति भारतीय समाज में विद्यमान है तथा सामाजिक रूढ़ियों (Social Conservative) एवं परंपरागत मान्यताओं के कारण कई महिलाओं को घरेलू कार्यों में संलग्न रहने हेतु विवश किया जाता है।

महिलाओं के सीमान्तीकरण से जुड़ी समस्याएँ (Problems Related to Marginalization of Women)

भारत में महिलाओं के समक्ष विभिन्न समस्याओं की विद्यमानता को देखा जा सकता है जिसने संयुक्त होकर महिलाओं को अपवर्जित समूह में वर्गीकृत कर दिया है:-

1. ***दहेज प्रथा (Dowry System)*** – विभिन्न प्रयासों तथा आधुनिक मूल्यों के प्रसार के बाद भी भारत में दहेज प्रथा का प्रचलन बदस्तूर जारी है। दहेज की समस्या के कारण कई महिलाओं को घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। वहीं कई बार घर की विपरीत परिस्थितियों के कारण पिता को दहेज देने में मजबूर पाने पर अविवाहित लड़कियाँ आत्महत्या तक कर ले रही हैं।
2. ***वेश्यावृत्ति (Prostitution)*** – वेश्यावृत्ति भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति का प्रमुख परिचायक है। आर्थिक समस्याओं के समक्ष विवश होकर बड़ी संख्या में महिलाएँ वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसर हो रही हैं। परिणामतः ऐसी महिलाओं को समाज में दोयम दर्जे की दृष्टि से देखा जाता है। साथ ही उनके स्वास्थ्य तथा भावी पीढ़ी पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
3. ***बाल विवाह (Child Marriage)*** – कानूनी तौर पर अवैध एवं दंडात्मक होने के बावजूद कम उम्र में बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता है। परिणामतः जहाँ ऐसी लड़कियों का भविष्य प्रभावित होता है वहीं इनके एवं इनके बच्चे के स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। भारत में मातृत्व मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate) के उच्च होने का सर्वप्रमुख कारण कम उम्र में लड़कियों का विवाह है।
4. ***कन्या भ्रूण हत्या (Female Foeticide)*** – हाल के वर्षों में भारत में कन्या भ्रूण हत्या काफी चर्चा का विषय रहा है। सामाजिक रूढ़ियों के कारण बालक की चाह हेतु निर्धन परिवारों द्वारा कन्या भ्रूण हत्या अथवा बालिका शिशु हत्या लम्बे समय से विद्यमान रही है। परन्तु 2011 की जनगणना के आँकड़ों में आर्थिक रूप से सशक्त राज्यों में बालिकाओं के गिरते अनुपात ने इन समृद्ध क्षेत्रों में कन्या भ्रूण हत्या की स्थिति को उजागर कर आश्चर्यचकित किया है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारत में बाल लिंगानुपात की दर 2001 के 927 की तुलना में कम होकर 919 रह गयी है।
5. ***विधवा विवाह की राह में बाधाएँ (Obstacles in the Path of Widow Marriage)*** – वर्तमान भारत में विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों के कारण विधवा महिलाओं को पुनर्विवाह से वंचित कर अपवंचन का जीवन जीने हेतु विवश कर दिया जाता है।
6. ***यौन शोषण एवं छेड़छाड़ (Sexual Abuse and Molestation)*** – हाल के वर्षों में भारत में छेड़छाड़ तथा यौन शोषण एवं

बलात्कार के पश्चात् हत्या की घटनाओं में तीव्र वृद्धि हुई है। हाल में असम में छेड़छाड़, हरियाणा में कई लड़कियों के साथ बलात्कार एवं हत्या आदि इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। उल्लेखनीय है कि भारत में यौन शोषण एवं छेड़छाड़ के सर्वाधिक मामले कार्यस्थलों पर ही होते हैं।

7. ***घरेलू हिंसा (Domestic Violence)*** – घरेलू हिंसा तथा प्रताड़ना वर्तमान भारत में एक ज्वलंत मुद्दा है। कानूनी दंडनीय अपराध के बावजूद दहेज तथा अन्य कारणों से घरेलू हिंसा एवं महिलाओं की प्रताड़ना की घटनाएँ सामने आती रहती हैं।

8. ***अन्य (Others)*** – इसके अतिरिक्त पर्दा प्रथा, अंतर्जातीय विवाह (Intercaste Marriage) में बाधा तथा व्यक्तिगत जीवन में स्वतंत्रता का अभाव जैसे मामले भी महिलाओं के अपवर्जन की स्थिति को इंगित करते हैं।

महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु किए गए संवैधानिक, कानूनी, संस्थागत, योजनागत एवं अन्य प्रयास (Constitutional Legal, Planning and Other Efforts Made to Improve the Status of Women)

भारतीय समाज में महिलाएँ ऐतिहासिक रूप से अपवर्जित रही हैं। भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इनकी स्थिति में सुधार हेतु विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए गए हैं। संविधान के विभिन्न उपबंधों एवं कानूनों के निर्माण तथा सरकार द्वारा विभिन्न योजनागत प्रयासों के माध्यम से उन कारणों को दूर करने का प्रयास किया गया जो महिलाओं के अपवर्जन हेतु उत्तरदायी थे। इन प्रयासों को निम्नवत देखा जा सकता है:–

संवैधानिक प्रयास (Constitutional Efforts)

1. संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत महिलाओं को 'विधि के समक्ष समानता' एवं 'विधियों का समान संरक्षण' प्रदान किया गया है।
2. अनुच्छेद 15 में लिंगाधारित भेदभाव (Gender Based Discrimination) पर प्रतिबंध आरोपित करते हुए महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु विशेष प्रावधान [15(3)] का उपबंध किया गया है।
3. अनुच्छेद 16 के अंतर्गत लोक सेवाओं में महिलाओं को अवसर की समानता का अधिकार प्रदान किया गया है।
4. अनुच्छेद 23 के द्वारा मानव के दुर्व्यापार पर प्रतिबंध आरोपित किया गया है।
5. अनुच्छेद 39(घ) के माध्यम से महिलाओं को पुरुषों के समान वेतन का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 39(क) द्वारा महिला कामगारों का दुरूपयोग रोकने तथा अपनी क्षमतानुरूप कार्य का प्रावधान किया गया है।
6. अनुच्छेद 42 के द्वारा राज्य को महिलाओं के लिए प्रसूति सहायता के उपबंध हेतु दिशा-निर्देश प्रदान किये गये हैं।
7. अनुच्छेद 44 समान नागरिक संहिता का प्रावधान करता है।
8. अनुच्छेद 51(क) के अंतर्गत सभी नागरिकों के लिए यह कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है कि वे महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध सभी आचरणों का परित्याग करें।
9. अनुच्छेद 243D(3) के अंतर्गत पंचायत चुनावों में महिलाओं के लिए 33% (110वें संविधान संशोधन द्वारा 50%) सीटों का आरक्षण किया गया है।
10. 243T(3) के अंतर्गत नगर निकाय चुनावों में महिलाओं के लिए 33% (110वें संविधान संशोधन द्वारा 50%) सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है।

कानूनी प्रयास (Legal Efforts)

1. ***संपत्ति का अधिकार (Right to Property)*** – 2005 में संपत्ति का अधिकार अधिनियम में संशोधन कर महिलाओं को पैतृक संपत्ति (Ancestral Property) में पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्रदान किया गया।

उत्तराधिकारी के रूप में बेटी (Daughter as a Successor)

दिल्ली उच्च न्यायालय ने सन् 2016 में एक फैसले में घोषणा की है कि बड़ी बेटी हिन्दू अविभाजित परिवार की संपत्ति की कर्त्ता हो सकती है।

1. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के तहत कर्त्ता हिन्दू अविभाजित परिवार की संपत्ति के वारिसों में एक सहदायिक या उनमें सबसे बड़ा होता है।
2. कर्त्ता के पास परिवार के बाकी सदस्यों की सहमति के बिना संपत्ति और कारोबार के प्रबंधन का अधिकार होता है।
3. हिन्दू अविभाजित परिवार संयुक्त परिवार से अलग है क्योंकि यह विशुद्ध रूप से पैतृक संपत्ति के राजस्व आकलन से संबंधित है।
4. इसमें संपत्ति को बेटों और बेटियों के बीच विभाजित नहीं किया जाता और इसमें ससुराल-पक्ष के लोगों को शामिल नहीं किया जाता।
5. हिन्दू अविभाजित परिवार सभी हिन्दुओं और उन सभी लोगों पर लागू होता है जो मुस्लिम, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं हैं। इसमें बौद्ध, सिख और जैन भी शामिल हैं।
6. 2005 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन के बाद बेटियों सहित परिवार में पैदा हुए सभी सदस्यों को संपत्ति में समान अधिकार प्रदान कर दिया गया।
7. दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए निर्णय के अनुसार परिवार की बड़ी बेटी कर्ता हो सकती है, जबकि दूसरे पक्ष का तर्क था कि बेटियों को केवल संपत्ति में हिस्सा मिल सकता है, संपत्ति प्रबंधन का अधिकार नहीं।
8. न्यायालय के अनुसार विवाहित बेटियां भी कर्ता की भूमिका निभा सकती हैं।
9. हिन्दू अविभाजित परिवार विवाहित और अविवाहित महिलाओं के बीच अंतर नहीं करता और हिन्दू पुरुषों और महिलाओं को उत्तराधिकार का समान अधिकार देता है।
10. चुनौती यह है कि वास्तव में बहुत कम महिलायें व्यापार और संपत्ति के प्रबंधन में कार्य करती हैं।

2. ***विवाह कानून (Marriage Law)*** – विशेष विवाह अधिनियम, 1954 तथा हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के द्वारा महिलाओं को विवाह संबंधी विभिन्न प्रकार की समानता प्रदान की गयी।

3. ***अनैतिक व्यापार (Unethical Trade)*** – अनैतिक व्यापार (संरक्षण) अधिनियम, 1956 के द्वारा महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की गयी।

4. ***रोजगार संबंधी कानून (Employment Related Law)*** – विभिन्न कारखाना अधिनियम, श्रम अधिनियम, ठेका मजदूर (नियमन एवं उन्मूलन) कानून, 1976 तथा समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1971 आदि के माध्यम से महिलाओं को रोजगार के अधिकार के साथ-साथ उचित पारिश्रमिक तथा कार्य की मानवोचित दशाएँ (Human Conditions) उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 तथा गर्भावस्था में चिकित्सीय छूट कानूनों के माध्यम से उनके मातृत्व संबंधी सुरक्षा (Maternity Protection) का प्रावधान किया गया।

सशस्त्र बलों में महिलाएँ

युद्ध भूमिका में महिलाएँ

1. रक्षा मंत्रालय द्वारा भारतीय वायुसेना के लड़ाकू वर्ग में शामिल करने को मंजूरी दी गयी।
2. भारतीय वायुसेना द्वारा इसके लिए औपचारिक अनुरोध किया गया जिसके पश्चात् जून, 2017 में महिलाओं को वायु सेना में लड़ाकू पायलेट के तौर पर शामिल किया गया।
3. वायुसेना के पहले बैच में मोहना सिंह, अवनि चतुर्वेदी और भावना कण्ठ के चयन के साथ, महिलाओं की चयन प्रक्रिया में तीव्र वृद्धि हुई।
4. हाल ही में दो नई महिला फाइटर पायलट प्रतिभा (राजस्थान) और शिवांगी सिंह (वाराणसी) के चयन के साथ अब तक 13 महिला अधिकारियों को वायुसेना में कमीशन प्रदान किया गया है।

सशस्त्र बलों में महिलाओं की वर्तमान स्थिति

1. भारतीय थल सेना, भारतीय नौसेना और भारतीय वायुसेना के विभिन्न पाठ्यक्रमों में महिलाओं को अनुमति है लेकिन अब तक युद्ध की भूमिका में उनके प्रवेश पर प्रतिबंध था।
2. इस निर्णय से महिलाओं को भारतीय वायुसेना की सभी शाखाओं में शामिल होने की पात्रता मिली।
3. भारतीय वायुसेना के बाद भारतीय नौसेना ने भी विभिन्न शाखाओं में महिलाओं के प्रवेश को अनुमति देने का निर्णय लिया, जिसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले की सुभांगी स्वरूप को नौसेना में प्रथम महिला नौसंचालक पायलट बनने का गौरव प्राप्त हुआ।
4. 10 सितंबर, 2017 से मई 2018 तक भारत के INSV तारिणी द्वारा 6 महिला अधिकारियों ने दुनिया की परिक्रमा कर नया कीर्तिमान स्थापित किया। तारिणी को वर्तिका जोशी कमांड कर रही थी। चालक दल के अन्य सदस्यों में प्रतिभा जामवाल, पी.स्वाति, लेफ्टिनेंट एस. विजया देवी, बी. ऐश्वर्या और पायल गुप्ता शामिल थीं।

5. ***दहेज उन्मूलन (Dowry Abolition)*** – दहेज निषेध अधिनियम 1961 के माध्यम से दहेज को अपराध की श्रेणी में रखकर महिलाओं को दहेज उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया।

6. ***बाल विवाह निषेध (Prohibition of Child Marriage)*** – बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 के द्वारा बाल विवाह को प्रतिबंधित कर बालिकाओं के स्वास्थ्य एवं भविष्य को सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया।

7. ***महिलाओं के अश्लील प्रयोग पर रोक (Baron Indecent use of Women)*** – 1986 में महिलाओं का अश्लील प्रतिनिधित्व (निषेध) अधिनियम लाया गया।

महिलाओं के विरूद्ध साइबर अपराध (Cyber Crime Against Women)

1. साइबर अपराध के मामलों के प्रतिवेदन एवं जांच के लिए राज्यों तथा संघशासित प्रदेशों में साइबर अपराध सेल की स्थापना की गयी है।
2. सरकार ने विधि प्रवर्तन एवं न्यायपालिका के प्रशिक्षण के लिए केरल, असम और मिजोरम आदि राज्यों में साइबर फोरेंसिक प्रशिक्षण तथा जांच प्रयोगशालाओं को स्थापित किया है।
3. साइबर अपराध से संबंधित जांच कार्यक्रम-विभिन्न विधि शिक्षण संस्थाएँ न्यायिक अधिकारियों के लिए साइबर विधियों तथा साइबर अपराधों पर विभिन्न जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित कर रही हैं।
4. सरकार द्वारा स्थापित प्रशिक्षण प्रयोगशालाओं में पुलिस एवं न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है।
5. हिंसा से प्रताड़ित सभी महिलाओं को 24 घंटे आपातकालीन तथा गैर-आपातकालीन त्वरित सहायता हेतु महिला हेल्पलाइन उपलब्ध कराने की योजना को अनुमोदित किया गया है।
6. हाल ही में केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने महिलाओं के लिए 'नारी पोर्टल' लॉन्च किया जिसमें महिलाओं से संबंधित विभिन्न सरकारी योजनाओं की जानकारी एक ही स्थान पर उपलब्ध करायी जायेगी।

8. ***घरेलू हिंसा से सुरक्षा (Protection from Domestic Violence)*** – घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2005 के द्वारा महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की गयी।

सतत् विकास लक्ष्य (SDG) और महिलाएँ (SDG and Women)

सतत् विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goal)

1. सतत् विकास लक्ष्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों द्वारा संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास शिखर सम्मेलन में अपनाए गए 17 लक्ष्य हैं। इन लक्ष्यों को वर्ष 2030 तक, यानी अगले पंद्रह वर्षों में, सभी सदस्य देशों द्वारा पूरा किया जाना है।
2. ये लक्ष्य सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों की तुलना में अधिक व्यापक हैं और इनसे सतत् विकास का लक्ष्य पूरा होगा।

भूख की समाप्ति (End of Hunger)

1. किशोरियों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं और वृद्ध व्यक्तियों की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करना।

अच्छा स्वास्थ्य और स्वस्थ जीवन (Good Health and Healthy Life)

1. वैश्विक मातृत्व मृत्यु दर को प्रति 1,00,000 जीवित जन्म पर 70 से कम करना।
2. परिवार नियोजन, जागरूकता और शिक्षा के साथ यौन और प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की सार्वभौमिक पहुँच।
3. राष्ट्रीय रणनीतियों और कार्यक्रमों में प्रजनन स्वास्थ्य को शामिल करना।

शिक्षा की गुणवत्ता (Quality of Education)

1. महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए सस्ती और गुणवत्ता पूर्ण तकनीकी, व्यावसायिक और तृतीयक शिक्षा सुनिश्चित करना।
2. ऐसी शिक्षा सुविधाओं का विकास करना जो कि सभी के लिए सुरक्षित, अहिंसक, समावेशी और प्रभावी शिक्षण वातावरण प्रदान करे।

लैंगिक समानता (Gender Equality)

1. महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव का अंत
2. मानव तस्करी (Human Trafficking), यौन शोषण और अन्य प्रकार के शोषण सहित सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा के सभी रूपों को समाप्त करना।
3. बाल विवाह, बलात विवाह और मादा जननांगच्छेदन जैसी सभी हानिकारक प्रथाओं को खत्म करना।
4. राजनीतिक, आर्थिक और सार्वजनिक जीवन में निर्णय लेने के लिए और जीवन के सभी स्तरों पर नेतृत्व के लिए महिलाओं की पूर्ण और प्रभावी भागीदारी के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना।
5. आर्थिक संसाधनों पर समान अधिकार के साथ ही जमीन और अन्य संपत्ति, वित्तीय सेवाओं, पैतृक और प्राकृतिक संसाधनों के स्वामितव और नियंत्रण के लिए समान अधिकार देना।
6. महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साथ अन्य तकनीक के उपयोग को बढ़ावा देना।
7. महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए समर्थ नीतियों और प्रवर्तनीय कानून को मजबूत बनाना।

स्वच्छ जल और साफ-सफाई (Clean Water and Sanitation)

1. महिलाओं और लड़कियों की जरूरतों पर विशेष ध्यान देते हुए सभी के लिए स्वच्छता और पानी के सतत् प्रबंधन की उपलब्धता सुनिश्चित करना और खुले में शौच करने की प्रवृत्ति को खत्म करना।

संतोषजनक काम और आर्थिक विकास (Satisfactory Work and Economic Development)

1. सभी महिलाओं और पुरुषों को पूर्ण और उत्पादक रोजगार प्रदान करना।
2. समान कार्य के लिए समान वेतन।
3. श्रम अधिकारों की रक्षा करना और सभी श्रमिकों को सुरक्षित कार्य वातावरण प्रदान करना।

असमानताओं को कम करना (Reduce in Equalities)

1. आयु, लिंग, विकलांगता, जाति, धर्म या आर्थिक या अन्य स्थिति पर ध्यान दिए बिना सभी के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समावेशी विकास को बढ़ावा देना।

सतत् शहर और समुदाय (Sustainable Cities and Communities)

1. सतत् परिवहन व्यवस्था के निर्माण में महिलाओं की आवश्यकताओं का ध्यान रखना।
2. सुरक्षित, समावेशी और सुलभ सार्वजनिक स्थलों के लिए सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना।

जलवायु परिवर्तन (Climate Change)

1. महिलाओं पर केंद्रित जलवायु परिवर्तन से संबंधित योजना और प्रबंधन के लिए क्षमता में वृद्धि।

शांतिपूर्ण और समावेशी संस्थान (Peaceful and Inclusive Institute)

1. सभी प्रकार की हिंसा और मृत्यु संबंधित दर को कम करना।
2. यातना, दुरुपयोग, शोषण तस्करी और बच्चों के खिलाफ हर प्रकार की हिंसा का अंत।

विभिन्न आयोग एवं समितियाँ

केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड (NSWB)

पूर्वोत्तर भारत के सर्वाधिक 08 पिछड़े जिलों में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं (Social-Economic Needs) की पूर्ति हेतु केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड द्वारा 'महिला सशक्तिकरण के लिए एकीकृत योजना' प्रारम्भ की गयी है। इस योजना को वर्ष 2008 में प्रारम्भ किया गया था। इस योजना के उद्देश्यों में सामुदायिक कार्यों (Community Works) को प्रोत्साहन, क्षेत्रों तक उपलब्ध सुविधाओं एवं स्रोतों की सुनिश्चितता, महिलाओं के लिए व्यावहारिक तथा टिकाऊ गतिविधियों द्वारा आय सृजन करना है।

राष्ट्रीय महिला आयोग (National Women's Commission)

राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन वर्ष 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 के अंतर्गत निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया गया है:-

- महिलाओं के लिए संवैधानिक एवं वैधानिक रक्षात्मक उपायों का परीक्षण
- महिलाओं की सुरक्षा एवं सशक्तिकरण हेतु विधायी उपाय सुझाना
- शिकायतों के निवारण को सुविधाजनक बनाना।
- महिलाओं पर प्रभाव डालने वाली नीतियों के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देना।

राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रमुख कार्य (Major Functions of N.W.C.)

- महिलाओं से संबंधित संवैधानिक व अन्य कानूनों के उल्लंघन के मामलों में उपयुक्त अधिकारियों से विचार-विमर्श करना।
- महिलाओं से संबंधित निम्न मुद्दों की शिकायतों को देखना:-
  - महिलाओं की अधिकारों से वंचितता।
  - महिलाओं की सुरक्षा हेतु लागू कानूनों के गैर-कार्यान्वयन से संबंधित मामले।

- महिलाओं हेतु समानता तथा विकास के लक्ष्य की प्राप्ति से संबंधित मुद्दे।
- नीति-निर्णय की अवज्ञा, महिलाओं के कल्याण तथा राहत हेतु कठिनाइयों को कम करना तथा उपयुक्त अधिकारियों से ऐसे मुद्दों पर विचार-विमर्श करना।

- महिलाओं के साथ भेदभाव या अत्याचार जैसी घटना स्थिति अथवा समस्या की जाँच या विशेष अध्ययन तथा इनके समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।
- महिलाओं के उत्थान (Upliftment of Women) से संबंधित कारकों की पहचान करना तथा सभी क्षेत्रों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने हेतु विभिन्न अध्ययनों के आधार पर सलाह प्रस्तुत करना।

नीतियों, योजनाओं एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों के द्वारा किए गए प्रयास (Efforts Made Through, Policies Schemes and Welfare Programmes)

महिलाओं के संदर्भ में राज्य की विकास नीति को मोटे-तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है:-

1. कल्याणोन्मुखी विकास नीति (1950-75 तक)
2. विकास में एकीकरण की नीति (1975-85 तक)
3. महिला सशक्तिकरण की नीति (1985 के बाद)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साम्यवादी (Communist) रूस से प्रेरणा प्राप्त कर पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत में सामाजिक आर्थिक विकास का आरम्भ हुआ। इस समय इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को परिवार, समुदाय तथा समाज में वैध भूमिका निभाने के लिये यथोचित सुविधाएँ उपलब्ध कराना था। इस दृष्टिकोण के अनुसार स्त्रियाँ आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर हैं और सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों का उद्देश्य औरतों को इस प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध कराना है जिससे वे परम्परागत और पारिवारिक भूमिका (Family Role) अधिक कुशलता से पूर्ण कर सकें जिसका तात्पर्य था घर को महिला कार्यक्षेत्र के रूप में स्थापित करना। औरतों को नये तकनीकी विकास और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से अवगत कराना इस कार्यक्रम का उद्देश्य नहीं था।

70 के दशक में कई राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से महिलाओं के मुद्दे सार्वजनिक बहस के केन्द्र बन गए। इसी काल में गठित एक समिति की रिपोर्ट 'समानता की ओर' ने इस भ्रम को तोड़ा कि संविधान के द्वारा समानता के अधिकार मिल जाने से विकास के लाभ भी समान रूप से प्राप्त होंगे, यह सही नहीं है। रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया कि योजना बनाने की प्रक्रिया में त्रुटि के कारण कारगर ढंग से लैंगिक मुद्दों (Gender Issues) को मुख्य धारा में नहीं जोड़ा जा सका। पूरी विकास प्रक्रिया में महिलाओं के परिप्रेक्ष्य का अभाव और नीति-निर्माताओं तथा आयोजकों की लैंगिक असंवेदनशीलता पर बहस आरंभ हो गई।

1975 के बाद कई महिला संगठन बने जिन्होंने मुख्यत: औरतों के विरुद्ध हिंसा के मुद्दों पर कार्य शुरू किया और शिक्षा में बदलाव हेतु सरकार पर दबाव डाले। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी 70 के दशक में जनसंख्या, परिवार में स्थिति, विकास का महिला पर प्रभाव आदि विषयों पर चर्चा प्रारम्भ हुई फलत: विकास में औरतों को शामिल किये जाने की धारणा का जन्म हुआ।

छठीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार 'महिला और विकास' (Women and Development) पर अलग से ध्यान दिया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि विकास और आर्थिक मुद्दों को औरतों से संबंधित नहीं मानने से महिलाएं और भी हाशिये पर चली गयी हैं। अत: महिलाओं के विकास में स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार को केन्द्रीय महत्त्व दिया जाए।

7वीं पंचवर्षीय योजना में भी इस दिशा में प्रयास किये गये और उपरोक्त के अलावा चेतना वृद्धि, कानूनी सहायता आदि सेवाएं उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया। सर्वाधिक बल प्रशिक्षण और रोजगार आदि पर रहा। IRDP, TRYSEM, NREP आदि कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। इसके अतिरिक्त कुछ महिला केन्द्रित कार्यक्रम भी प्रारंभ किये गये यथा DWACRA, STRP। इस प्रकार महिला विकास कार्यक्रम पर भी जोर दिया गया। महिलाओं के कल्याण के साथ-साथ विकास के इस परिवर्तित दृष्टिकोण के पीछे धारणा थी कि विकास से महिलाओं के एकीकरण (Integration of Women) से लिंग आधारित विकास की प्रक्रिया (Process of Development) को समाप्त किया जा सकता है लेकिन इन धारणाओं और सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के साथ-साथ विकास की प्रकृति के बारे में कोई कदम नहीं उठाये गये। इसका अर्थ था कि विकास की प्रक्रिया में कोई समस्या नहीं है। समस्या केवल यह है कि इसमें औरतों को शामिल नहीं किया गया है। इस एकीकरण की प्रक्रिया से परिवार और सामाजिक आर्थिक स्तरों पर शक्ति और अधिकार बाँटने के सार्थक प्रयत्न नहीं हुए। औरतों के विकास की जरूरत को केवल परिवार की जरूरतों के संदर्भ में देखा गया। इसी समय 1985 में नैरोबी सम्मेलन में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा का जन्म हुआ जिसने महिलाओं को मात्र कार्यक्रमों का लाभ-भोगी न बनाकर उन्हें स्वयं की छवि और आत्मनिर्भरता (Self-reliance) प्राप्त करने पर बल दिया। फलत: भारत में भी महिला विकास के साथ अब जो नया नारा उभरा, वह था महिला सशक्तिकरण।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ है (Meaning of Women Empowerment)

हीनता के ढांचे, कानूनों, संपत्ति, अधिकारों, स्वामित्व के ढांचे और अन्य संस्थाएं जो कि पुरुष प्रभुत्व को बनाये रखने या बढ़ाने में सहायक हैं, उनमें आमूल परिवर्तन (Radical Change) किया जाये। इस नई नीति के तहत सशक्तिकरण की प्रक्रिया में औरतों के संगठन निर्माण और चेतना जागरण पर जोर दिया गया जिसे और बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक सेवाएं प्रदान की जायेगी।

सरकारी दृष्टिकोण (Government Approach) में सशक्तिकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू महिलाओं के समूह को संगठित करना है जहाँ वे अपनी परिस्थितियों के बारे में बात कर सकें और संगठित होकर पुरुष सत्ता को चुनौती दे सकें और स्वयं के विकास के लिये मार्ग प्रशस्त कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनेक कार्यक्रम यथा महिला विकास कार्यक्रम (1984); चेतना जागरण कार्यक्रम (1986); महिला सामाख्या (1989); आदि चलाए गए।

इन कार्यक्रमों में मुख्य रूप से तीन बातों पर बल दिया गया:–

1. लिंग आधारित संबंधों के दमनात्मक स्वरूप को सामने लाना,
2. ऐसे संबंधों को चुनौती देना, तथा
3. महिलाओं की भागीदारी से सामाजिक संबंधों में महिलाओं के पक्ष में परिवर्तन करना।

उपरोक्त लक्ष्यों को लेकर प्रारम्भ किये गये इन कार्यक्रमों में कई कमियाँ थी:–

1. ये कार्यक्रम सामाजिक परिवर्तन की बात तो करते थे लेकिन बदलाव की प्रक्रिया के समक्ष आने वाली बाधाओं (जैसे-पितृ सत्तात्मक परिवार आदि) से निपटने के बारे में किसी कार्यक्रम के संदर्भ में मौन थे।
2. सभी समस्याओं को समाज के स्तर पर व्याप्त पूर्वाग्रहों (Prejudice) और महिलाओं में आत्मविश्वास की कमी के रूप में देखा जा रहा था। साथ ही भेदभाव-पूर्ण कानून, लैंगिक असमानता, बाजार की ताकतों आदि के असर को नकारा जा रहा था।

कालांतर में महिला सशक्तिकरण के प्रयासों में गति आई और 2001 को 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' घोषित किया गया। पहली बार राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति बनाई गई ताकि महिलाओं के उत्थान और समुचित विकास के लिए आधारभूत व्यवस्थाएं निर्धारित की जा सकें। इस नीति के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं:–

1. देश में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा में सहभागिता सुनिश्चित करना।
2. महिलाओं हेतु ऐसा वातावरण निश्चित करना कि वे स्वयं सामाजिक और आर्थिक नीतियां बना सकती हैं।
3. भेदभाव को दूर करने हेतु सामाजिक प्रक्रिया विकसित करना।
4. मानवाधिकार के उपयोग में उन्हें सक्षम बनाना।
5. समाज में समान भागीदारी हेतु उन्हें प्रोत्साहित करना।
6. बालिकाओं और महिलाओं के प्रति विविध अपराधों के रूप में व्याप्त असमानता को खत्म करना।

वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है, जिन्हें निम्नवत देखा जा सकता है:–

1. ***स्वाधार (Swadhar)*** – इस योजना के माध्यम से महिलाओं को नि:शुल्क आवास, भोजन, चिकित्सा, परामर्श तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। इसके अंतर्गत समाज अथवा परिवार से सहायता नहीं प्राप्त करने वाली महिलाओं तथा स्वतंत्र आय के साधनों से वंचित महिलाओं को शामिल किया जाता है।
2. ***स्वशक्ति योजना (Swashakti Scheme)*** – विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष के सहयोग से संचालित इस कार्यक्रम में महिलाओं को कड़े सामाजिक श्रम से मुक्ति तथा स्वास्थ्य, साक्षरता और आत्मविश्वास में वृद्धि तथा कौशल विकास एवं आमदनी बढ़ाने वाली गतिविधियों की ओर प्रेरित किया जाता है।
3. ***स्वयंसिद्धा योजना (Swayassiddha Scheme)*** – इस योजना में महिलाओं को 'स्वसहायता समूह' (Self Help Group) में संगठित करके सेवाओं के समन्वय (Co-Ordination) और छोटे उपक्रमों को बढ़ावा देने पर जोर दिया जाता है। यह योजना वर्तमान में बंद हो चुकी है
4. ***स्टेप (STEP-Support to Training & Employment for women)*** – 1986-87 में केन्द्र सरकार द्वारा प्रारम्भ इस योजना का प्रमुख लक्ष्य गरीब तथा परिसंपत्तिविहीन महिलाओं का कौशल विकास करना तथा उन्हें सतत् आधार पर रोजगार उपलब्ध कराना है। इसके लिए महिलाओं को सहकारी समूहों (Co-Operative Group) में संगठित करना, उनकी गतिशीलता को बढ़ाने, बाजार लिंकेज को मजबूती प्रदान करने तथा महिलाओं तक साख सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है। इस योजना के माध्यम से स्वास्थ्य जाँच, विधिक व स्वास्थ्य साक्षरता, प्रारम्भिक शिक्षा, लिंग संवेदीकरण (Gender Sensitization), चलंत शिशु गृह की सुविधा प्रदान करने का भी प्रयास किया जाता है। इस योजना के तहत 10 परंपरागत क्षेत्रों को परियोजना कोष उपलब्ध कराने हेतु चिह्नित किया गया है। इनमें कृषि, पशुपालन, डेयरी, मत्स्यन, हथकरघा, हस्तशिल्प, खादी एवं ग्रामोद्योग, रेशम उत्पादन, बंजर भूमि विकास तथा सामाजिक वानिकी शामिल हैं।
5. ***इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना*** – इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना स्कीम (IGMSY) में गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को लक्ष्य बनाया है।

इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना (IGMSY) को सशर्त मातृत्व लाभ योजना, समेकित बाल विकास सेवा (ICDS) के मंच के माध्यम से लागू किया गया है। इसके कार्यान्वयन (Implementation) का केन्द्र बिन्दु गाँव में आंगनवाड़ी केन्द्र (AWC) है।

इसके संचालन और निगरानी के लिए समितियों की स्थापना की गयी है। सभी स्तरों पर इस योजना के प्रभावी कार्यान्वयन की निगरानी, स्वास्थ्य समितियाँ, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, जल और स्वच्छता, ग्रामीण विकास योजना और वित्त के अलावा पंचायती राज संस्थाओं के प्रमुखों से मिलकर होती है।

योजना के मुख्य उद्देश्य
(Main Objectives of the Scheme)

- गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं और शिशुओं के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में सुधार।
- गर्भावस्था, सुरक्षित प्रसव और स्तनपान के दौरान उचित पद्धतियों, देखभाल और सेवा के उपयोग को बढ़ावा देना।
- महिलाओं (इष्टतम) के पहले छह महीनों के लिए जल्दी और अनन्य स्तनपान सहित IYCF प्रथाओं का पालन करने के लिए प्रोत्साहित।
- गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए बेहतर स्वास्थ्य और पोषण के लिए नकद प्रोत्साहन प्रदान करके बेहतर समर्थकारी (Enabling) माहौल बनाना। इस योजना का नाम बदलकर प्रधानमंत्री मातृत्व योजना कर दिया गया है।

6. ***राष्ट्रीय जननी शिशु सुरक्षा योजना (Rashtriya Janani Shishu Suraksha Yojana)*** – इस योजना के माध्यम से गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क संस्थागत प्रसव सुविधा के लाभ हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। इसके लिए उन्हें सरकारी अस्पतालों तक जाने के लिए परिवहन सुविधा भी उपलब्ध करायी जाती है।

7. ***सबला (Sabala)*** – 2010 में केन्द्र प्रायोजित (Sponsored) इस योजना का प्रारम्भ देश के 200 जिलों में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में किया गया है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य 16 वर्ष से अधिक उम्र की बालिकाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण (Vocational Training) प्रदान कर आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है।

सबला योजना के उद्देश्य (Objectives of Sabala Yojan)

- कौशल शिक्षा तथा लोक सुविधा तक पहुँच सुनिश्चित करना।
- राष्ट्रीय कौशल विकास कार्यक्रम के तहत 16 वर्ष से अधिक उम्र की बालिकाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देना।

8. ***धनलक्ष्मी योजना (Dhan Lakshmi Yojana)*** – इस योजना द्वारा सभी परिवारों को बिना जाति एवं आर्थिक आधार पर भेदभाव करते हुए सशर्त नगद प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है, ताकि वे बालिका शिशु को जन्म दें और बालिका भ्रूण हत्या (Female Feticide) पर रोक लगाई जा सके। यह योजना 7 राज्यों के 11 ब्लाकों में प्रायोगिक तौर पर संचालित की जा रही है।

9. ***जेंडर बजटिंग (Gender Budgeting)*** – जेंडर बजटिंग महिलाओं के विकास में बजट के निश्चित भाग की व्यवस्था करता है। इसके अंतर्गत विभिन्न विभागों से संबंधित कार्यक्रमों में महिला विकास को प्रोत्साहित करने हेतु अलग से स्पष्ट राशि का आवंटन किया जाता है।

10. ***मनरेगा (Manarega)*** – महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना के तहत कुल रोजगार का 33% महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है। यद्यपि अभी तक कुल सृजित रोजगार दिवस (Employment Created Days) में महिलाओं को लगभग 50% रोजगार आवंटित किया गया है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार मनरेगा ने 32% तक गरीबी को कम किया है और 14 लाख लोगों को गरीब होने से बचाया है। कई महिलाओं के लिए नकद आय अर्जित करने के लिए मनरेगा पहला अवसर था। इससे संसाधनों पर महिलाओं के नियंत्रण में पर्याप्त वृद्धि हुई है तथा उनके हाथ में पैसा आया और उनका बैंक खाता खुला। मनरेगा का लाभ लेने वाले घरों के बच्चों में शिक्षा का उच्च स्तर प्राप्त करने की संभावना अधिक रहती है।

11. ***अन्य योजनाएँ (Other Schemes)*** – उपरोक्त योजनाओं के अतिरिक्त महिला कल्याण के लिए कई अन्य योजनाओं जैसे– किशोरी शक्ति योजना, व्यावसायिक प्रशिक्षण, कन्या शिशु को बचाने हेतु योजना, विभिन्न राज्यों में बालिकाओं को निःशुल्क पाठ्य सामग्री तथा साइकिल का वितरण आदि संचालित की जा रही है। साथ ही राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, सर्व शिक्षा अभियान, प्रधानमंत्री ग्रामीण रोजगार सृजन योजना आदि के तहत् भी महिलाओं को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है।

महिला सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय मिशन
(National Mission for Women Empowerment)

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की ओर से 8 मार्च 2010 से राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन का शुभारंभ किया गया। इसके तहत गठित राष्ट्रीय मिशन प्राधिकरण के अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं। राज्य स्तर पर राज्य मिशन प्राधिकरण का गठन किया गया है। इसके अलावा महिलाओं को राजनीतिक एवं शैक्षिक रूप से भी सशक्त बनाने की दिशा में निरंतर प्रयास किया जा रहा है। निश्चित रूप से यह प्रयोग काफी सफल रहा है। हालांकि भारत ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करने वाले विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और संधिपत्रों को भी अनुमोदित (Approved) किया है। उनमें 1993 में महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन संबंधी संधिपत्र का अनुमोदन सबसे प्रमुख है। इससे पूर्व महिलाओं की राष्ट्रीय नीति बनाई गई जिसका मुख्य लक्ष्य महिलाओं की उन्नति, विकास और सशक्तिकरण सुनिश्चित करना है।

उसके उद्देश्यों में महिलाओं के विकास के लिए सकारात्मक आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के माध्यम से ऐसा अनुकूल माहौल तैयार करना है जिससे महिलायें अपनी क्षमता को साकार कर सकें तथा स्वास्थ्य देखभाल, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, रोजगार, समान पारिश्रमिक एवं सामाजिक सुरक्षा (Social Security) का लाभ उठा सकें। उनमें महिलाओं और बालिकाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव एवं हिंसा का उन्मूलन तथा सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव भी सुनिश्चित करना शामिल है। भारत दृष्टिकोण-2020 दस्तावेज ने श्रमबल में महिलाओं की चर्चा करते हुए इसका उल्लेख भी किया है कि कामयाब महिलाओं के लिए सुरक्षित बाल देखभाल सेवाएँ बहुत जरूरी हैं। योजना आयोग के ग्यारवीं पंचवर्षीय योजना दस्तावेज में महिला एवं बाल विकास के लिए कई योजनाएँ और कार्यक्रम शामिल किये गये हैं। इनमें कामकाजी महिलाओं के बच्चों के लिए असंगठित क्षेत्र में पालना की स्थापना करने तथा मौजूदा राजीव गांधी राष्ट्रीय पालना योजना को नया स्वरूप दिये जाने पर बल दिया गया है।

प्रमुख उद्देश्य (Major Objectives)

- महिलाओं के लिए स्वास्थ्य, पेयजल, स्वच्छता तथा सफाई सुविधा की सुनिश्चितता।
- प्राथमिक शिक्षा से 12वीं कक्षा तक सभी बालिकाओं की पहुँच सुनिश्चित करना।
- बालिकाओं / महिलाओं तक उच्चतर एवं व्यावसायिक शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- कौशल विकास, सूक्ष्म वित्त, व्यवसायिक प्रशिक्षण, उद्यमशीलता, स्वयं सहायता समूह विकास।
- लिंग संवेदीकरण एवं सूचना-प्रसार।
- महिलाओं के विरुद्ध अपराध को रोकने तथा महिलाओं के लिए सुरक्षित वातावरण हेतु कदम उठाना।

मिशन की विशेषता (Characteristics of Mission)

- संचालन कार्य- केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा किया जाएगा।
- आंगनबाड़ी को अधिक धन मुहैया करा कर समेकित बाल विकास योजना को और अधिक सुदृढ़ किया जायेगा।
- किशोर लड़कियों के कल्याण हेतु तथा महिलाओं के प्रसव लाभ हेतु नई स्कीम शुरू की गई है तथा महिलाओं को अल्पवित्त उपलब्ध कराने हेतु 'राष्ट्रीय महिला कोष' की पुनर्संरचना (Restructuring) की जाएगी।
- मिशन के तहत 25 हजार करोड़ से ज्यादा अतिरिक्त बड़ी तथा लघु आंगनबाड़ियों की स्थापना की जाएगी (बजट 2011-12 में आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं एवं आंगनबाड़ी सहायकों का मेहनताना (Remuneration) बढ़ाकर क्रमशः 1500 रु. से 3000 रु. तथा 750 रु. से 15,00 रु. प्रतिमाह कर दिया गया है।

राष्ट्रीय महिला कोष (Rashtriy Mahila Kosh)

राष्ट्रीय महिला कोष (RMK) के लिए राष्ट्रीय क्रेडिट फंड मार्च 1993 में स्थापित किया गया था। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:-

1. आय सृजन गतिविधियों (Income Generating Activities) के लिए या संपत्ति निर्माण के लिए गरीब महिलाओं को लघु ऋण प्रदान करना या बढ़ावा देना।
2. महिलाओं के लिए एक ऐसा औपचारिक ग्राहक अनुकूल प्रणाली जिसे ये कम-से-कम प्रक्रियाओं द्वारा बार-बार उपयोग करे तथा इनमें बचत और लेन-देन की प्रकृत्ति का विकास हो।
3. बचत और ऋण का प्रभावी उपयोग करने के लिए महिलाओं की सांगठनिक भागीदारी सुनिश्चित कराना।
4. महिलाओं के सशक्तिकरण, सामाजिक- आर्थिक परिवर्तन और विकास के एक साधन के रूप में ऋण के प्रावधान तथा सामूहिक उपयोग (Collective Use) की अवधारणा का विकास करना।
5. कोष के उद्देश्यों को बढ़ावा देने में भारत सरकार, राज्य सरकारों, संघ राज्य प्रशासनों, ऋण संस्थानों, औद्योगिक और वाणिज्यिक संगठनों, गैर सरकारी संगठनों आदि संगठनों से सहयोग प्राप्त करना।
6. गरीब महिलाओं के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्रों में वित्त की जानकारी अनुभव आदि का प्रसार करना।
7. कोष के उद्देश्यों को आगे बढ़ाते हुए अनुदान, दान, ऋण आदि प्राप्त करना।

राष्ट्रीय महिला कोष (RMK) के लिए मार्च 1993 में 'राष्ट्रीय क्रेडिट फण्ड की स्थापना की गयी है। 31 करोड़ की प्रारंभिक पूंजी से पंजीकृत यह कोष भारत के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास विभाग 'द्वारा स्थापित एक स्वतंत्र कोष है। यह कोष एक बैकिंग क्षेत्र की तरह नहीं है किन्तु गरीबों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए इसे कुछ बैंकिंग क्षेत्रों के कार्य करने की स्वतंत्रता होगी।

अन्य प्रयास (Other Efforts)

महिलाओं के कल्याण एवं सामाजिक उत्थान (Social Upliftment) के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तरों पर कई अन्य प्रयास भी किए गए हैं। 1991-2000 के मध्य बालिका शिशु के जीवन, सुरक्षा तथा विकास के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना तैयार की गयी। इसके अतिरिक्त विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों द्वारा भी महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास हेतु विभिन्न प्रयास किए गए हैं। शिक्षा, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कला- संस्कृति आदि क्षेत्रों में महिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु सरकार एवं अन्य गैर-सरकारी संगठनों ने वैश्विक संस्थाओं के साथ मिलकर महत्त्वपूर्ण प्रयास किये हैं। विश्व बैंक के सहयोग से साक्षर भारत का कार्यक्रम का संचालन इसका एक प्रमुख उदाहरण है। स्थानीय निकाय चुनावों में महिलाओं के 50% सीट आरक्षण के पश्चात अब संघीय एवं राज्य विधान मंडल चुनावों में महिलाओं को 33% आरक्षण (Reservation) प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया जा रहा है। राज्य सभा में इससे संबंधित विधेयक पारित किया जा चुका है तथा कुछ बिंदुओं पर विवाद के कारण इसे लोकसभा में पारित किया जाना बाकी है।

भारत में अतिसंवेदनशील वर्ग महिलाएँ : समसामयिक मुद्दे एवं आँकड़े (Sensitive Groups in India Women : Current Issues and Datas)

सबला योजना (Sabala Yojana)

16 अगस्त, 2010 को आर्थिक मामलों पर मंत्रिमंडलीय समिति ने 'राजीव गांधी योजना-किशोरी सशक्तिकरण सबला' को अपनी स्वीकृति प्रदान की। योजना का उद्देश्य किशोर बालिकाओं के पोषण एवं आर्थिक स्तरों (Nutrition and Economic Status) में सुधार लाना था।

समीक्षा (Review)

महिलाओं व बालकों की समस्या के समाधान की बातें समाज में अक्सर देखने के लिए मिलती हैं, लेकिन समाज के एक विशेष वंचित वर्ग (Deprived Class) की किशोरियों की समस्या-समाधान की बातें ही प्रायः की जाती हैं।

अगस्त 2010 से संचालित 'सबला योजना' निश्चित रूप से किशोरियों के लिए कुछ हद तक पोषण व आर्थिक सुदृढ़ता में मददगार साबित हुई है, किन्तु यह योजना भारत के केवल 200 जिलों में संचालित है जिसके कारण अभी भी यहां का एक बड़ा किशोरी वर्ग इस लाभ से वंचित है। अत: सरकार को इसके सफलता-असफलता के बिन्दुओं पर विचारोपरांत ऐसी योजनाओं को और व्यापक करने की आवश्यकता है। साथ ही ऐसी योजनाओं के संचालन से महिला सशक्तिकरण को बल मिलेगा तथा एक सशक्त राष्ट्र निर्माण का आधार तैयार होगा।

अर्श योजना (Arsh Yojana)

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने ग्रामीण क्षेत्रों में 10-19 वर्ष की किशोरी लड़कियों में मासिक-धर्म विषयक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अर्श योजना को मंजूरी दी है। इस योजना के तहत नवयुवतियों हेतु स्वास्थ्यकर नैपकिन की पहुंच को सुनिश्चित किया गया। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में किशोरियों को नैपकिन के प्रयोग एवं मासिक स्वास्थ्य विज्ञान के विषय में उपयुक्त जानकारी मुहैया कराना था।

1. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य अभियान के ब्रांड 'फ्रीडेज' के तहत किशोरियों को स्वास्थ्यकर नैपकिन का एक पैक दिया जाएगा। यह नैपकिन गांव की किशोर लड़कियों को आशा (Accredited Social Health Activist-ASHA) के द्वारा प्रति पैक 6 रु. के हिसाब से बेचा जाएगा।
2. प्रथम चरण में 20 राज्यों के 150 जिले इस योजना के तहत शामिल किए गए हैं। इससे लगभग 1.5 करोड़ लड़कियाँ लाभान्वित होंगी।
3. वास्तव में सरकार ने बेहतर माहवारी स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने तथा किशोरी लड़कियों को एक बेहतरीन स्वच्छता के स्तर पर लाने हेतु RCHP-II (Reprodcutive and Child Health Programme) के अंतर्गत 'किशोर प्रजनन यौन स्वास्थ्य (Adolescent Reproductive Sexual Health-ARSH) योजना की शुरुआत की है।

समीक्षा (Review)

आज ग्रामीण परिवेश में अनेक समस्याएँ विद्यमान है। गांवों के अनेक समूहों में किशोरी वर्ग के समक्ष भी समस्याएँ विद्यमान है। प्राय: किशोरियों को गाँवों में आर्थिक, शैक्षिक व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित 'अर्श योजना' निश्चित रूप से ग्रामीण परिवेश की परम्परा, अज्ञानता व अंधविश्वास में रह रही किशोरियों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

ऐसी योजनाओं के संचालन से किशोरी लड़कियों के बीच जागरूकता आएगी और वे भी स्वास्थ्य के प्रति सचेत होकर समय-समय पर महिला-धर्म विषयक बातों व स्वास्थ्य से जुड़ाव के महत्त्वों को समझेंगी और इस योजना से जुड़कर बेहतर माहवारी स्वास्थ्य को आदत में ला सकेंगी।

लेकिन अर्श योजना देश के चुनिंदा 150 जिलों में ही संचालित है जिसके कारण देश का एक बड़ा ग्रामीण किशोरी-समूह इससे वंचित है। अत: इस योजना का विस्तार अन्य क्षेत्रों में भी किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही सरकार को शहरी निर्धन किशोरियों के लिए भी इस तरह की स्वास्थ्यकर व जागरूकता (Awareness) संबंधी किशोरी स्वास्थ्य योजनाओं को संचालित करने की जरूरत है।

राष्ट्रीय जननी-शिशु सुरक्षा योजना (Rashtriya Janani Shishu Suraksha Yojana)

1 जून, 2011 को हरियाणा के मेवात जिले के मांडीखेड़ा गांव से गर्भवती महिलाओं के लिए राष्ट्रीय जननी-शिशु सुरक्षा योजना का शुभारम्भ किया गया।

योजना की विशेषता (Features of the Scheme)

1. गर्भवती महिलाओं को नि:शुल्क प्रसव के लिए सरकारी स्वास्थ्य संस्थाओं में जाने को प्रोत्साहित किया जाएगा।
2. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की गर्भवती महिलाओं एवं नवजात शिशुओं को (30 दिन तक) सभी चिकित्सीय सुविधाएं पूर्ण रूप से नि:शुल्क एवं नकदरहित प्रदान की जाएगी। साथ ही घर से चिकित्सा संस्थान तक तथा वापस घर जाने के लिए नि:शुल्क परिवहन सुविधा भी उपलब्ध कराई जाएगी।

समीक्षा (Review)

महिलाएँ समाज की दुर्बल समूह (Vulnerable Groups) होती हैं। 'राष्ट्रीय जननी-शिशु सुरक्षा योजना' के माध्यम से निश्चित ही गर्भवती महिलाओं को फायदा होगा तथा नि:शुल्क प्रसव के लिए सरकारी स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराकर इनके बीच स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता लायी जाएगी। ऐसी सुविधाओं के माध्यम से जहाँ एक ओर गर्भवती महिलाओं व उससे जन्में बच्चे का स्वास्थ्य उत्तम होगा वहीं दूसरी ओर चिकित्सीय देखरेख में प्रसव कराने की संख्या में भी वृद्धि होगी। चूंकि इस योजना के अंतर्गत 30 दिनों तक गर्भवती महिलाओं व नवजातों (Pregnant Women and Newborns) की चिकित्सीय देखरेख नि:शुल्क है। इसलिए प्रसव पूर्व व बाद चिकित्सा केन्द्र लाने व घर वापस ले जाने से इन्हें एक सहारा मिलेगा तथा ऐसा आपातकालीन समय आने पर भी ये स्वभाविक रूप से सुविधा प्राप्त कर प्रसव करा सकेंगे।

इस तरह निश्चित ही राष्ट्रीय जननी शिशु सुरक्षा योजना गर्भवती महिलाओं व नवजातों के लिए एक स्वास्थ्यकर व जागरूकता फैलाने वाली योजना है। लेकिन इसके क्रियान्वयन की उचित व्यवस्था करने

से ही यह योजना सफल होगी अर्थात् गर्भवती महिलाओं को प्रसव के समय चिकित्सा केन्द्र लाने हेतु निर्धारित संख्या में एम्बुलेंस/वाहन सभी चिकित्सालयों व क्षेत्रों में रखने होगें। साथ ही संबंधित दवाओं की उपलब्धता भी हर समय रखनी होगी तभी यह योजना सफल व सार्थक सिद्ध होगी।

इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना (IGMSY)

इस योजना का प्रारम्भ 2010 में भारत सरकार द्वारा किया गया। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित इस योजना के अंतर्गत प्रथम दो प्रसव तक गर्भवती तथा स्तनपान (Feeding Breast) कराने वाली 19 वर्ष या इससे अधिक उम्र की महिलाओं को शामिल किया है। यह योजना प्रसव एवं बच्चों की देखभाल के दौरान हुई मजदूरी की हानि की भरपाई करता है। साथ ही सुरक्षित प्रसव तथा नवजात व बच्चों के उत्तम पोषण एवं स्तनपान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन प्रदान करता है। इस योजना के तहत् महिलाओं को नकद राशि प्रदान की जाती है।

योजना के उद्देश्य (Objectives of the Scheme)

1. गर्भावस्था, प्रसव तथा स्तनपान के दौरान देखभाल तथा संस्थागत सेवाओं के उपयोग को प्रोत्साहन देना।
2. महिलाओं द्वारा स्तनपान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना।
3. महिलाओं को उपरोक्त कार्यों के लिए नगद प्रोत्साहन प्रदान कर माताओं और बच्चों के पोषण व स्वास्थ्य को सुरक्षित करना।

समीक्षा (Review)

वर्तमान समय में महिलाओं द्वारा नवजात शिशुओं को स्तनपान कराने की प्रवृत्ति में गिरावट आयी है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक पिछड़ेपन के कारण संस्थागत प्रसव (Institutional Delivery) की समस्या आम है। संस्थागत प्रसव संस्थाओं के दूर होने के कारण महिलाओं का वहाँ तक पहुँचना संभव नहीं होता है। निश्चितत: इस योजना द्वारा महिलाओं को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराया जाना इस समस्याओं के समाधान की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास है। इसके प्रभावस्वरूप बच्चों को उचित पोषण के साथ-साथ महिलाओं के स्वास्थ्य की सुरक्षा भी सुनिश्चित हो सकेगी।

भारतीय महिला बैंक (Bhartiya Mahila Bank)

बजट 2013-14 में वित्त मंत्री द्वारा भारतीय महिला बैंक की स्थापना की घोषणा की गयी थी। इस बैंक की विशेषता यह है कि इसमें पूर्णत: महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की जाएगी। 1000 करोड़ रुपये की प्रारम्भिक पूंजी (Initial Capital) से प्रारम्भ की जाने वाली इस बैंक की 6 शाखाएँ खोली जानी है। पंजाब नेशनल बैंक की प्रबंध निदेशक उषा अनंतसुब्रमण्यम को भारतीय महिला बैंक का प्रथम मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) नियुक्त किया गया है। 2013 से यह बैंक कार्यरत है। (भारत सरकार ने भारतीय महिला बैंक को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में मिलाने के प्रस्ताव को अनुमति दे दी है।)

समीक्षा (Review)

निश्चितत: भारतीय महिला बैंक महिलाओं के उन्नयन (Upgrade) की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इस प्रकार के बैंक से जहाँ महिलाओं के समावेशीकरण की प्रक्रिया तीव्र होगी। वहीं देश के आर्थिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया में भी उनकी भूमिका बढ़ेगी। महिला बैंक के माध्यम से महिलाओं को बैंकिंग सेवा के सरल व सहज अवसर उपलब्ध होंगे। स्वयं सहायता समूहों के गठन पर लक्षित यह बैंक भारतीय महिलाओं के समाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में प्रभावी भूमिका अदा करेगा। निष्कर्षत: भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार की बैंकिंग प्रणाली को विस्तारित किये जाने की आवश्यकता है ताकि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अधिकाधिक महिलाएँ सहभागी हो सके।

प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान (Pradhan Mantri Surakshit Matratva Abhiyan)

यह केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया है। यह हर महीने की 9 तारीख को सभी गर्भवती महिलाओं को सार्वभौमिक तौर पर सुनिश्चित, व्यापक एवं उच्च गुणवत्तापूर्ण प्रसव पूर्व देखभाल मुहैया कराएगा। इसमें प्रजनन-मातृत्व-नवजात शिशु और किशोर स्वास्थ्य रणनीति के एक भाग के रूप में प्रसव पूर्व देखभाल सहित निदान और परामर्श सेवाओं की गुणवत्ता और व्यापकता में सुधार की परिकल्पना की गयी है।

प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान की प्रमुख विशेषताएँ (Major Features of PMSMA)

निजी चिकित्सकों की भागीदारी: इस कार्यक्रम में निजी क्षेत्र के साथ अनुबंध हेतु एक व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाया गया है। जिसमें निजी चिकित्सकों को स्वैच्छिक रूप से अभियान के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की रणनीति विकसित करने हेतु प्रेरित करना और निजी क्षेत्र से सरकारी स्वास्थ्य सुविधा अभियान में भाग लेने के लिए अपील करना शामिल है।

उच्च जोखिम वाले गर्भधारण का पता लगाना और जांच करना भी इसमें सम्मिलित है। गर्भवती महिलाओं की स्थिति और जोखिम कारक का संकेत देने हेतु प्रत्येक विजिट के लिए MCP कार्ड (मदर चाइल्ड प्रोटेक्शन कार्ड) पर एक स्टीकर लगाया जाएगा। ग्रीन स्टीकर उन महिलाओं के लिए जिनके साथ कोई जोखिम कारक नहीं जुड़ा है। लाल स्टीकर उच्च जोखिम गर्भधारण वाली महिलाओं के लिए, निजी/स्वैच्छिक क्षेत्र को इससे जोड़ने एवं उन्हें सुविधा प्रदान करने हेतु प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान के लिए एक राष्ट्रीय पोर्टल और एक मोबाइल एप्लीकेशन विकसित किया गया है।

महिला ई-हाट (Mahila E-HAAT)

1. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने महिला ई-हाट का शुभारंभ किया। यह महिला सशक्तिकरण को मजबूती देने के लिए महिला उद्यमियों हेतु एक विपणन पोर्टल है।

महिला ई-हाट क्या है? (What is Mahila E-HAAT)

1. महिला ई-हाट एक ऑनलाइन मंच है, जहाँ महिला उद्यमी अपने उत्पादों को सीधे बेच सकती हैं।
2. महिलाओं उद्यमियों को अपने उत्पाद ऑनलाइन बेचने के लिए किसी भी प्रकार के शुल्क के भुगतान की जरूरत नहीं है।
3. इस पोर्टल को राष्ट्रीय महिला कोष के तहत 10 लाख रुपये का निवेश करके स्थापित किया गया है। राष्ट्रीय महिला कोष, महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण (Social-Economic Empowerment) के लिए महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्था है।
4. इसके तहत पंजीकृत होने के लिए केवल एक ही मानदंड है-विक्रेता (महिला या महिलाओं के स्वयं सहायता समूह के सदस्य) की आयु 18 वर्ष से अधिक होनी चाहिए। इस मानदंड का निर्धारण केवल बालश्रम की समस्या को समाप्त करने के लिए किया गया है।

इस पहल के लाभ (Benefits of this Initiative)

1. यह महिला उद्यमियों (Women Entrepreneurs) को बढ़ावा देगा, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की महिला उद्यमियों को।
2. इससे देश भर में 10,000 से अधिक स्वयं सहायता समूह और 1.25 लाख महिला लाभार्थियों को फायदा होगा।
3. ई-हाट का पूरा व्यापार एक मोबाइल के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है और विक्रेता या खरीदार से कोई कमीशन नहीं लिया जाता है।
4. कोई मध्यस्थ नहीं होने से अधिक लाभ-इस पहल के माध्यम से, लाभ का एक बड़ा हिस्सा सीधे महिला उद्यमियों के पास जाएगा, क्योंकि विचौलियों का कोई काम नहीं होगा।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

25 भारत में शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण (Education and Women Empowerment in India)

शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण (Education and Women Empowerment)

किसी भी देश या क्षेत्र के विकास का एक प्रमुख संकेतक शिक्षा होती है तथा महिला शिक्षा का स्तर विकास की स्थिति को स्पष्टता प्रदान करता है। यही कारण है कि भारत सरकार द्वारा शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण (Universalization) को प्राथमिकता प्रदान की जा रही है। आजादी के समय हमारी साक्षरता दर मात्र 12% थी जो 2011 के जनगणना आंकड़ों में लगभग 75% के स्तर पर पहुँच गयी है। वर्तमान समय में महिला साक्षरता दर 64.6% है जो ब्रिटिश शासन काल में मात्र 2-4% थी। पिछले दशक की तुलना में इसमें 10.9% की वृद्धि दर्ज की गयी है, जो यह इंगित करता है कि महिला शिक्षा के क्षेत्र में भारत लगातार सफलता की ओर अग्रसर है। परन्तु भारत में जहाँ पुरुष साक्षरता दर (80.9%) की तुलना में यह कम है वहीं विश्व औसत (79.7%) तथा प्रमुख प्रतिस्पर्द्धात्मक देशों की तुलना में भी यह आंकड़ा संतोषजनक नहीं है। अमेरिका, फ्रांस, इटली, जर्मनी, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जापान, रूस आदि देशों में जहाँ महिला साक्षरता दर 99% है, वहीं पड़ोसी देश श्रीलंका में भी यह आंकड़ा 90% है जो भारत की तुलना में काफी बेहतर है।

महिलाओं के शैक्षिक सशक्तिकरण (Educational Empowerment) के बिना उन्हें विकास प्रक्रिया का सक्रिय साझीदार नहीं बनाया जा सकता है। शिक्षा के प्रसार के अभाव में इनका समुचित सशक्तिकरण संभव नहीं हो पाया है। इसका तात्पार्य है कि हमारे विकास की वर्तमान गति अपेक्षित गति से कम है। भारत में महिला साक्षरता में क्षेत्रीय स्तर पर भी आश्चर्यजनक असामनता व्याप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों (57.9%) की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों (79.1%) में महिला साक्षरता (Female Literacy) कहीं अधिक है।

आरंभ में परम्परागत प्रथाओं एवं मूल्यों (Customs and Values) के कारण महिला को प्राय: शिक्षा से वंचित किया जाता रहा है। क्योंकि महिलाओं को अनुत्पादक कार्यों में ही लगाया जाता था तथा इन अनुत्पादक घरेलू कार्यों में शिक्षा के महत्त्व को नगण्य समझा जाता था।

स्वतंत्रता पूर्व महिला शिक्षा हेतु किये गये प्रयास (Efforts Made for Women's Education before Independence)

ब्रिटिश काल में महिला शिक्षा आंदोलन को प्रारम्भ करने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को जाता है, उन्होंने 19वीं शताब्दी की मध्य अवधि में देश में अनेक बालिका विद्यालयों की स्थापना का कार्य किया।

वर्ष 1854 में वुड के आदेश पत्र में सबसे पहले महिलाओं के शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया गया। हण्टर आयोग ने 1882 में महिलाओं की शिक्षा के विकास के लिए सभी उचित विधियों को अपनाने पर जोर दिया। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कर्जन के समय महिला शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन (Radical Change) आया। अंग्रेजी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा चिकित्सा शिक्षा, के द्वारा महिलाओं में परम्परागत रूढ़ि एवं प्रथाओं (Customs) से ऊपर उठकर सोचने के लिए विवश किया।

एनीबेसेंट ने 1904 में "सेंट्रल हिन्दू बालिका विद्यालय" की स्थापना की। इसके बाद दिल्ली में महिलाओं को चिकित्सा सुविधा के लिए 'लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज' की 1913 में स्थापना की। महिलाओं की समुचित शिक्षा व्यवस्था का सुझाव देने हेतु 'राष्ट्रीय महिला परिषद्' की 1925 में स्थापना की गयी।

स्वतंत्र भारत में महिला शिक्षा हेतु कुछ उपाय (Some Measures for Women's Education in Independent India)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा व्यवस्था को सर्वसुलभ (Universally Accessible) करने के उद्देश्य से भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों ने उपाय करने प्रारम्भ किये। ये उपाय निम्नवत हैं:-

1. 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इसमें महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षा संबंधी सुविधायें प्रदान किया जाना तथा उन्हें गृह प्रबंध की शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रेरित किये जाने पर जोर दिया ताकि महिलाओं को पारिवारिक स्तर पर ही सशक्त बनाया जा सके।
2. 1952-53 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियार की अध्यक्षता में गठित आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर बालिकाओं के लिए अलग विद्यालयों की स्थापना तथा बालिकाओं को गृहविज्ञान, कला, गृह, अर्थशास्त्र, मातृकला और शिशुपालन, गृह प्रबंध और गृह उपचार जैसे विषयों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया ताकि बालिकायें भविष्य में कुशल गृहणी बन सकें।
3. श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति' ने केन्द्र सरकार को महिलाओं की शिक्षा को कुछ समय के लिए एक विशिष्ट समस्या (Specific Problem) के रूप में स्वीकार किये जाने का सुझाव दिया और देश में महिलाओं की शिक्षा के विस्तार हेतु एक कार्य योजना तैयार करने का सुझाव दिया।

4. देश की द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में महिलाओं में शिक्षा के विस्तार हेतु गतिशील प्रबंधकीय ढांचे के निर्माण पर बल दिया गया। साथ ही, इसमें महिलाओं को व्यावसायिक प्राविधिक तथा तकनीकी शिक्षा पर बल दिया गया, ताकि महिलाओं को स्वावलम्बी (Self-Reliant) बनाया जा सके।
5. 1990 में गठित आचार्य राममूर्ति समिति ने माध्यमिक स्तर पर कम-से-कम 50% पदों पर महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति द्वारा उनको शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रेरित करने के लिए विशेष उपाय करने पर जोर दिया।

महिलाओं के शैक्षिक उत्थान के लिए कार्यक्रम (Programmes for Educational Upliftment of Women)

1. ***कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना–*** यह कार्यक्रम 1997 में प्रारम्भ हुआ। इसका उद्देश्य महिला साक्षरता दर में वृद्धि तथा विशेष विद्यालयों की स्थापना है।
2. ***कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना–*** इस योजना में प्राथमिक स्तर पर उन लड़कियों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जो स्कूल नहीं जाती हैं या फिर प्राथमिक स्कूल उत्तीर्ण नहीं कर पाई हैं।
3. ***बालिका प्रोत्साहन योजना–*** वर्ष 2006 में लागू इस योजना के अंतर्गत आठवीं कक्षा पास करने वाली बालिका को कक्षा 9 में नामांकित होने पर 3000 रुपये एकमुश्त प्रदान किया जाता है।
4. ***इंदिरा गांधी इकलौती बालिका छात्रवृत्ति योजना–*** 2004-05 में प्रारम्भ इसके द्वारा कक्षा 6-12वीं तक इकलौती कन्या को नि:शुल्क शिक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर पर इंदिरा गांधी छात्रवृत्ति दिया जाना, इस योजना का प्रमुख लक्ष्य है।
5. ***सर्व शिक्षा अभियान–*** इसके द्वारा वर्ष 2010 तक 6-14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को उपयोगी तथा स्तरीय शिक्षा उपलब्ध कराना, इस योजना का प्रमुख लक्ष्य है।
6. ***कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालय योजना–*** अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की गरीब लड़कियों के लिए आवासीय विद्यालय के रूप में शिक्षा प्रदान करना, इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।
7. ***महिला समाख्या कार्यक्रम–*** ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली विशेषत: सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की महिलाओं की शिक्षा और उनके सशक्तिकरण के लिए ठोस कार्यक्रम चलाना तथा महिलाओं की छवि और उनके आत्मविश्वास को मजबूत करना, इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रयासों से भारत में महिला शिक्षा से भारतीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति (Status) में सुधार हुआ है तथा उनकी गतिशीलता (Mobility) में वृद्धि हुई है। शिक्षा के कारण महिलाओं के सशक्तिकरण को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है:–

1. परिवार में महिला प्रास्थिति में बदलाव।
2. समाज में महिलाओं की गतिशीलता में वृद्धि।
3. राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी।
4. विज्ञान एवं तकनीकी व्यवस्थाओं में उनकी पहुँच।
5. आर्थिक संसाधनों तक महिला की पहुँच।

महिलाओं में शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप इनमें जागरूकता का प्रसार हुआ। महिलाएँ परंपरागत रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विरोध करने में सक्षम हुई हैं तथा पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था (Patriarchal Family System) कमजोर हुई है। एक ओर शिक्षा ने महिलाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रदान की है, वहीं रोजगार के अवसरों ने एकल परिवार की अवधारणा को जन्म देकर महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्रदान की है। परिणामत: परिवार में महिलाओं के महत्त्व में वृद्धि हुई तथा निर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता (Participation) बढ़ी है। मेधा पाटकर, अरूंधति राय, वंदना शिवा, महाश्वेता देवी इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

आज शिक्षा के माध्यम से जागरूकता प्राप्त कर अधिकाधिक महिलाएँ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिनिधित्व हेतु उन्मुख हुई हैं। अपने तार्किक एवं वैज्ञानिक विचार, अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति जागरूकता आदि के माध्यम से पंचायत से लेकर संसद तक राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं ने अपनी भागीदारी सुनिश्चित की है। सोनिया गाँधी, जयललिता, मायावती इत्यादि कई उदाहरण हमारे समक्ष हैं।

कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, टेसी थॉमस आदि महिलाओं ने यह सिद्ध किया है कि विज्ञान एवं तकनीकी जैसा क्षेत्र भी महिलाओं के अनुकूल है तथा उच्च एवं तकनीकी शिक्षा एवं दक्षता प्राप्त कर महिलाएँ भी यहाँ पहुँच सकतीं हैं।

सरकारी सेवा हो या निजी क्षेत्र हर जगह महिलाओं ने अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज कराई है। पिछले वर्षों में सिविल सेवा परीक्षा में उच्च स्थानों पर महिलाओं का चयन, विभिन्न संस्थानों में उच्च पदों पर महिलाओं की अवस्थिति इस बात का द्योतक है कि शिक्षा के अवसर का लाभ उठाकर महिलाओं ने आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त की है। इंदिरा नुई, चंदा कोचर, एस. दिव्यदर्शिनी, शेना अग्रवाल आदि इस तथ्य के पुख्ता प्रमाण हैं।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

समकालीन भारतीय समाज में महिला शिक्षा में वृद्धि हुई है और यह बढ़कर 65.46% तक की साक्षरता में परिवर्तित हो गई है। महिलाएँ न केवल प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में अग्रणी हो रही हैं बल्कि उनकी उच्च एवं तकनीकी शिक्षा में वृद्धि से भी इंकार नहीं किया जा सकता, जिसके कारण उनकी गतिशीलता सुनिश्चित हुई है तथा आर्थिक संसाधनों पर उनकी पहुँच हो गई है। ये सभी कारक मिलकर महिला को सशक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जिसका परिणाम यह है कि महिलाएँ स्वयं के बारे में निर्णय लेने में ही केवल परिपक्व नहीं हुई हैं, बल्कि समाज एवं राजनीति को भी दिशा देने लगी हैं। उपर्युक्त तथ्य दर्शाते हैं कि शिक्षा ने उनकी

सशक्तिकरण (Empowerment) की प्रक्रिया को तेज किया है। किन्तु भारतीय समाज की वास्तविक तस्वीर कुछ और भी है। आज भी भारतीय समाज महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण दोनों स्थिति में अन्य विकसित देशों से पीछे है। यद्यपि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि महिलाओं की साक्षरता में वृद्धि हुई है किन्तु आज भी 34.54% भारतीय महिला निरक्षर हैं।

महिलाओं की यह शिक्षा साक्षरता को अधिक दर्शाती है जबकि शिक्षा को कम। आज भी ग्रामीण परिवार में लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा दिलाकर उनकी पढ़ाई बंद करा दी जाती है।

आज भी महत्त्वपूर्ण निर्णय पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं। नातेदारी संबंधों में यद्यपि महिलाओं को प्रमुख स्थान मिलने लगा है विशेषकर उन्हें जो बाहर जाकर बौद्धिक कार्य (Intellectual Work) करती हैं, किन्तु उनकी स्थिति पुरुषों जितनी बराबर आज भी नहीं है।

राष्ट्रीय राजनीति में कुछ महिलाएं शीर्ष पर पहुंची हैं तथा वे राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित भी कर रही हैं, किन्तु आज भी आधी आबादी के अनुपात की दर से इनकी राजनीति में सहभागिता कम है। जो महिलाएं राजनीति में सहभागिता निभा भी रही हैं उसमें अधिकांश परिवार के किसी सदस्य या पुरुष सहयोगी के कंधों के सहारे राजनीति में प्रवेश पायी हैं तथा उन्हीं के प्रयासों से चुनाव को प्रभावित करती हैं।

महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण में कमियों के लिये मुख्यतः निम्न कारकों को उत्तरदायी माना जा सकता है:-

1. भारतीय समाज में आज भी लैंगिक असमानता (Gender Inequality) को मान्यता प्राप्त है तथा पुत्री को भार समझा जाता है।
2. पुत्री को पराया धन समझा जाता है, जिससे उसकी शिक्षा का उचित प्रबंध नहीं किया जाता।
3. आज भी लड़कियों का विवाह कम उम्र में कर दिया जाता है, जिससे उन्हें शिक्षा के लिए समय नहीं मिल पाता।
4. जन्म दर अधिक होने के कारण महिला बच्चों के पालन पोषण में ही व्यस्त रहती है।
5. राजनीतिक क्षेत्र में बाहुबल एवं धन की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए भारतीय महिलाएँ सक्षम नहीं हैं।
6. महिला संबंधी कार्यों में अभी भी पुरुषों का हस्तक्षेप है।
7. संसद एवं विधानसभा में महिला आरक्षण को लेकर अभी भी मतभेद हैं।
8. वर्तमान में अभी भी आय की अत्यधिक असमानता के कारण निम्न वर्ग पुत्रियों को शिक्षा नहीं दे पा रहा है तथा मध्यम वर्ग में भी बालिकाओं को शिक्षा सिर्फ इसलिए दिलाई जा रही है ताकि उनके विवाह में अधिक कठिनाई न आए।
9. सरकारी योजनायें तथा प्रगतिशील (Progressive) कदमों का लाभ अभी भी निम्न स्तर तक नहीं पहुँच पा रहा है। अतः यह आवश्यक है कि लोगों को महिला शिक्षा के प्रति जागरूक बनाया जा सके तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं से जनता को परिचित कराया जाए।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए महिला शिक्षा एवं उनके सशक्तिकरण के संबंध में निम्न सुझाव अपेक्षित हैं:-

1. महिला शिक्षा को साक्षरता के स्तर तक सीमित न करके वास्तविक शिक्षा के स्तर तक लाया जाए जो कि महिला को सक्षम एवं सशक्त बना सके।
2. अकादमिक शिक्षा के अतिरिक्त रोजगारोन्मुख एवं व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा के प्रति उनको प्रोत्साहित किया जाए तथा इसकी उचित व्यवस्था की जाए।
3. विवाह तथा प्रजनन संबंधी कार्यव्यवहारों के प्रति सचेत किया जाए, जिससे उच्च शिक्षा के लिए पर्याप्त समय मिल सके।
4. स्थानीय निकायों में महिलाओं की निर्णय प्रक्रिया में पुरुष संबंधियों के हस्तक्षेप को कमतर किया जाए, जिससे इनका स्वतंत्र निर्णय एवं भूमिका सुनिश्चित हो सके।
5. संसद एवं विधानसभा चुनावों में इनकी पर्याप्त सहयोगिता (Co-operation) सुनिश्चित कराने के लिए महिला आरक्षण की शीघ्र व्यवस्था की जाए क्योंकि इससे अनिवार्य रूप से संसद एवं विधानसभाओं में इनकी सहभागिता सुनिश्चित हो सकेगी। राजनीतिक दलों पर महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता (Political Participation) का निर्धारण थोपने पर, वे कम महत्त्वपूर्ण अथवा न जीते जा सकने के स्थानों पर ही महिला को टिकट देंगे।
6. राज्य सरकार तथा संघ सरकार को महिलाओं के लिए क्रियान्वित की जाने वाली योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए विशेष दल का निर्माण किया जाए, ताकि महिलाओं को उसका लाभ दिया जा सके।
7. देश के सभी ग्रामीण दूरस्थ पिछड़े और जनजातीय क्षेत्र में कम-से-कम एक प्राथमिक विद्यालय खोलना सुनिश्चित किया जाए, ताकि बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने हेतु गांव से बाहर न जाना पड़े।
8. सभी स्तर के शिक्षण संस्थानों सरकारी और अर्द्धसरकारी प्रतिष्ठानों, राजनैतिक एवं सामाजिक संगठनों, स्वयंसेवी और नागरिक संगठनों आदि में महिलाओं की 50% भागीदारी समुचित कानूनी प्रावधान करके सुनिश्चित की जाए।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखने पर पता चलता है कि महिला शिक्षा से उनके सशक्तिकरण की प्रक्रिया तेज हुई है तथा समाज के अधिकांश क्षेत्र में उन्होंने अपना प्रभाव दर्शाया है किन्तु यह प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। जहां तक शिक्षा के प्रभाव की बात है सामाजिक संरचना (Social Structure) में निहित कमियों के कारण यह अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पाई है किन्तु शिक्षा अन्य कारकों से मिलकर महिला को सशक्त करके समता मूलक (Egalitarian), लिंगभेद रहित भारतीय समाज की स्थापना कर पाएगी ऐसी अपेक्षा है।

भारत में शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण : समसामयिक मुद्दे एवं आँकड़े
(Education and Women Empowerment in India : Current Issues and Datas)

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय का प्रारम्भ भारत सरकार द्वारा अगस्त, 2004 में किया गया। इसके अंतर्गत मुख्यतः कठिन परिस्थिति वाले क्षेत्रों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यकों के लिए आवासीय विद्यालय की स्थापना की जाती है। 1 अप्रैल, 2007 से इसे सर्व शिक्षा अभियान में मिला दिया गया है। साथ ही इस योजना को वर्तमान में शिक्षा के अधिकार कानून के तहत उक्त बालिकाओं हेतु शिक्षा सुनिश्चित करने के एक उपकरण के रूप में संचालित किया जा रहा है। इस योजना के तहत निम्न प्रखण्डों को प्राथमिकता दी जाती है:–

- जहाँ अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का संकेंद्रण है और/या बालिकाओं की व्यापक संख्या स्कूल से बाहर है।
- जहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक जनसंख्या की एकाग्रता है और/या व्यापक संख्या में बालिकाएँ स्कूल से बाहर हैं।
- निम्न महिला साक्षरता दर वाले क्षेत्र।
- वह क्षेत्र जहाँ छोटी तथा बिखरी हुई बस्तियां विद्यालय से दूर हैं।

प्रारम्भिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम (NPEGEL)

यह कार्यक्रम विद्यालय जाने से वंचित बालिकाओं को लक्षित कर भारत सरकार द्वारा जुलाई, 2003 में प्रारम्भ किया गया है। यह सर्व शिक्षा अभियान का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इसके अंतर्गत बालिका शिक्षा के उन्नयन (Upgrade) हेतु अभियान के तहत बालिका शिक्षा के लिए निवेश किया जाता है। इस कार्यक्रम के तहत प्रत्येक प्रखंड में 'आदर्श विद्यालय' विकसित करने का लक्ष्य है। कार्यक्रम के अंतर्गत शिक्षकों का लिंग संवेदीकरण (Gender Sensitization), लिंग संवेदी शिक्षण सामग्री के विकास तथा आवश्यकता आधारित प्रोत्साहन जैसे– स्टेशनरी, वर्कबुक तथा यूनिफार्म आदि के विकास का प्रयास किया जाता है।

वीमेन ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया अभियान
(Women Transforming India Campaign)

नीति आयोग ने संयुक्त राष्ट्र संघ और MyGov के सहयोग से भारत में 8 मार्च, 2016 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर वीमेन ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया नामक अभियान का शुभारंभ किया।

इसे एक प्रतियोगिता की तरह बनाया गया है जिसमें कुछ नया व अलग काम करने वाली, खुद को या दूसरों को सशक्त बनाने वाली और रूढ़िवादी प्रथाओं को चुनौती देने वाली महिलाओं की प्रविष्टियाँ माँगी गयी हैं। यह विशेष रूप से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरण मोर्चों पर महिलाओं के नेतृत्त्व को प्रोत्साहित करेगा।

विजेता प्रविष्टियों को नीति आयोग और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रशस्ति प्रमाण पत्र प्रदान किया जाएगा। इसके अलावा विजेता को सरकार के नीति-निर्माताओं के साथ बातचीत का एक सीधा मौका भी मिलेगा। सतत् विकास (Sustainable Development) लक्ष्यों के तहत् भारत ने महिलाओं के लिए एक अकेले चल सकने योग्य लक्ष्य की जरूरत का समर्थन किया और कहा कि सतत् विकास लक्ष्यों में महिलाओं को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। सतत् विकास लक्ष्यों पर केन्द्र और राज्यों के सभी प्रयासों को समन्वित करना तथा निगरानी की भूमिका नीति आयोग को दी गयी है।

महिला समाख्या कार्यक्रम
(Women Samakhya Programme)

सामाजिक और आर्थिक तौर पर पिछड़े वर्गों के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक निश्चित कार्यक्रम के रूप में राष्ट्रीय नीति-1986 के लक्ष्यों के अनुसार वर्ष 1989 में महिला समाख्या कार्यक्रम शुरू किया गया। महिला समाख्या स्कीम ने समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा के केंद्रीकरण को मान्यता प्रदान की है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए महिला समाख्या के तहत नवाचारी दृष्टिकोण को अपनाया गया है जिसमें मात्र लक्ष्यों को प्राप्त करने के बजाय प्रक्रिया पर विशेष ध्यान दिया गया है। महिला समाख्या के तहत शिक्षा को न केवल साक्षरता कौशल प्राप्त करने के माध्यम के रूप में माना गया है अपितु इसे प्रश्न पूछने, मुद्दों और समस्याओं का विशेष रूप से विश्लेषण (Analysis) करने तथा समाधान करने की प्रक्रिया के रूप में माना गया है। इसके तहत महिलाओं के लिए ऐसा वातावरण तैयार करने का प्रयास किया जाता है जिसमें महिलाएं स्वयं अपनी ओर से अध्ययन कर सकें, अपनी प्राथमिकताएं निर्धारित कर सकें और अपनी पसंद के अनुसार ज्ञान तथा सूचना प्राप्त कर सकें। इसमें महिलाओं में अपनी अवधारणा में परिवर्तन लाने तथा महिलाओं की 'परम्परागत भूमिकाओं' (traditional Roles) के संबंध में समाज की अवधारणा में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है। यह अनिवार्य रूप से सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं को सक्षम बनाने से संबंधित है, ताकि वे अलगाव, आत्मविश्वास की कमी तथा कठोर सामाजिक प्रथाओं से संघर्ष कर सकें। इस प्रक्रिया से महिलाएं सशक्त होंगी।

इस स्कीम के उद्देश्य इस प्रकार हैं– (1) महिलाओं की आत्मछवि (Self-image) तथा आत्मविश्वास में वृद्धि करना, (2) ऐसा वातावरण तैयार करना जहाँ महिलाएँ ज्ञान तथा सूचना प्राप्त कर सकें जिससे वे समाज में एक सकारात्मक भूमिका निभा सकें, (3) प्रबंधन की विकेंद्रीकृत तथा सहभागी पद्धति तैयार करना, (4) महिला

संघों को गांवों में शैक्षिक कार्यकलापों की सुविधा तथा मॉनीटरिंग करने में समर्थ बनाना, (5) महिलाओं तथा किशोरियों की शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करना, (6) औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में महिलाओं तथा लड़कियों की अधिक सहभागिता प्राप्त करना।

महिला समाख्या स्कीम इन महिला संघों के माध्यम से बुनियादी स्तर (Basic Level) पर महिलाओं की अधिकारिता की नींव रखने में सफल हुई है। राज्यों में संघों ने दैनिक न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने, पेयजल, नागरिक सुविधाओं में सुधार लाने, स्वास्थ्य तथा पोषण, संसाधन उपलब्ध कराने तथा नियंत्रित करने, अपने बच्चों, विशेष रूप से बालिकाओं के लिए शिक्षा के अवसर सुनिश्चित करने से लेकर राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने, उनकी चिंताओं को दूर करने तथा महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, बाल-विवाह, दहेज आदि सामाजिक समस्याओं (Social Problemmes) जैसे विषयों का समाधान करने तथा समस्याओं को दूर करने में पहल की है। महिला समाख्या योजना के प्रभाव ने महिलाओं को शिक्षा हेतु गतिशील करके सर्व शिक्षा अभियान (एस.एस.ए.) के साथ भी निकट अंतरण करने में परिणत हुई है।

मानव विकास रिपोर्ट 2020 (Human Development Report 2020)

1. संयुक्त राष्ट्र विकस कार्यक्रम (UNDP) द्वारा 2020 में जारी की गयी मानव विकस रिपोर्ट के आधार पर भारत 189 देशों में 131वें स्थान पर है। यहां जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 69.7 वर्ष है (महिला जीवन प्रत्याशा 70.7 वर्ष दर्ज कि गयी) तथा स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष 12.2 वर्ष हैं तथा स्कूली शिक्षा का औसत 6.5 है। 1990 से 2019 के बीच तक भारत का मानव विकास सूचकांक वैल्यू 0.427 से बढ़कर 0.645 हो गया है, इसमें करीब 50 प्रतिशत का इजाफा हुआ है।
2. लैंगिक असमानता में भारत का स्थान 123वें स्थान पर (162 देशों में) तथा यह चीन, श्रीलंका, भूटान और म्यांमार से भी पीछे है। मातृ मृत्युदर 2016-2018 के बीच घटकर 113 रह गयी है (प्रति 1 लाख जीवित जन्मों पर) तथा शिशु मृत्यु दर 32 (प्रति 1000 जीवित जन्मों पर) है।

उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर भारत अभी भी मानव विकास में तथा लैंगिक असमानता में काफी पीछे है।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ : जागरूकता अभियान की पहल

1. बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान का उद्देश्य 10 करोड़ मोबाइल उपयोगकर्त्ताओं के मध्य जागरूकता का संचार करना है।
2. निजी कंपनी सेलटिक अपने विशिष्ट मोबाइल संदेश प्रौद्योगिकी का प्रयोग संदेश सम्प्रेषण (Communication) में करती है। कंपनी के द्वारा भेजे गए संदेशों की प्रकृति संवाद (Interactive) के रूप में होती है।
3. मोबाइल प्रयोक्ता इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी संस्था या व्यक्ति से संवाद स्थापित कर सकते हैं।
4. यह योजना से संबंधित समस्त सूचनाओं को सहजतापूर्वक सभी व्यक्तियों को उपलब्ध करा सकता है।
5. यह प्रौद्योगिकी उपयोगकर्त्ताओं तक, सूचना उनके स्थानीय परिदृश्य में, स्वभाषा में उपलब्ध कराएगी।

बेटी बचाओ बेटी बढ़ाओ

1. यह लोगों को बालिका शिक्षा के महत्त्व के संबंध में जागरूक करेगी तथा इसके माध्यम से लैंगिक समानता स्थापित करने में सहायता करेगी।
2. यह विसंगतिपूर्ण है कि भारत के कुछ राज्यों को छोड़कर प्रत्येक क्षेत्र में शिशु लिंगानुपात घटता गया है। 2011 की निरंतर जनगणना के अनुसार भारत में शिशु लिंगानुपात 919 प्रति हजार है।
3. यह कार्यक्रम स्वास्थ्य मंत्रालय और मानव संसाधन मंत्रालय के द्वारा संयुक्त रूप से क्रियान्वित किया जाएगा।
4. योजना गिरते हुए शिशु लिंगानुपात (Child Sex Ration) की समस्या के समाधान पर केन्द्रित है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत समस्या के विविध पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा। कार्यक्रम जहाँ एक ओर लैंगिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर भ्रूण के लिंग परीक्षण जैसी समस्या पर ध्यान देगा वहीं दूसरी ओर यह बालिकाओं के पूर्ण सशक्तिकरण को ध्यान में रखते हुए बालिका शिक्षा जैसे विषयों पर भी ध्यान देगा।

सुकन्या समृद्धि खाता

सुकन्या समृद्धि खाता 10 वर्ष की आयु से पूर्व किसी भी लड़की का खाता खुलेगा, जिसमें न्यूनतम 1000 रुपये जमा करने के बाद साल में अधिकतम 1.5 लाख जमा किया जा सकता है। जिस पर सरकार 9.1% के ब्याज दर से ब्याज देगी जो आयकर के दायरे से बाहर रहेगा।

26 भारत में आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण (Reservation in India and Women Empowerment)

आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण (Reservation and Women Empowerment)

आरक्षण का तात्पर्य संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति के तहत् कमजोर वर्ग की पहचान करके उन्हें विशेष संरक्षण प्रदान करना है, ताकि वे सरकार द्वारा प्रदान किए गए समान अवसर के अधिकार के लाभ को प्राप्त कर सकें। भारत में महिलाओं की समानता एवं स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने हेतु उनके लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है जिससे वे अवसर की समानता का लाभ प्राप्त करने के योग्य हो सकें और समाज की इस आधी जनसंख्या की योग्यताओं व कुशलताओं का लाभ समाज को प्राप्त हो सके।

भारत में महिलाओं के संदर्भ में आरक्षण की व्यवस्था निम्न क्षेत्रों में दिखाई देती है:–

1. शैक्षिक सशक्तिकरण (Educational Empowerment) के लिए महिलाओं हेतु अकादमिक शिक्षा के साथ तकनीकी शिक्षा में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया है। विश्वविद्यालय के साथ चिकित्सा व नर्सिंग शिक्षा में महिलाओं हेतु आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
2. महिलाओं के राजनैतिक सशक्तिकरण (Political Empowerment) हेतु उनके लिए राजनैतिक संस्थाओं में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया है। पंचायती राज जैसी क्षेत्रीय राजनैतिक संस्थाओं में महिलाओं हेतु 50% आरक्षण का प्रावधान कर दिया गया है और विधान सभा एवं लोक सभा में महिलाओं हेतु आरक्षण का प्रावधान वैधानिक प्रक्रिया के अंतर्गत है।
3. विभिन्न राज्यों ने राज्य की सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान किया है जिससे नागरिक प्रशासन में भी उनकी भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके।

आरक्षण ने महिलाओं को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में गतिशीलता के अवसर उपलब्ध कराकर महत्त्वपूर्ण सामाजिक भूमिकाओं के निर्वहन का अवसर प्रदान किया है। परंपरागत रूप से लिंग असमानता की शिकार एवं समाज में दोयम स्तर पर अवस्थित महिलाओं ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आरक्षण के माध्यम से शिक्षा संस्थानों में प्राप्त अवसरों ने उच्च शिक्षा प्राप्त कराकर महिलाओं को रोजगार के विभिन्न अवसर उपलब्ध कराए हैं। शिक्षा प्राप्ति ने महिलाओं का बौद्धिक एवं तार्किक विकास कर उन्हें अपने अधिकारों एवं सामाजिक दायित्वों (Social Obligation) के प्रति जागरूक किया है। परिणामत: विभिन्न आंदोलनों, महिला विरोधी सामाजिक मान्यताओं का विरोध, महिला संगठनों के माध्यम से एकजुटता आदि उपकरणों का सहारा लेकर महिलाएँ सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वास (Social Stereotypes and Superstition) के प्रति सचेत हुई हैं। इस प्रकार स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय (Social Justice) की माँग एवं इसकी प्राप्ति कर महिलाओं ने अपनी सामाजिक प्रस्थिति को मजबूत किया है।

आज जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाएँ, पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं। इंदिरा नुई, चंद्रा कोचर, वंदना शिवा, मेधा पाटकर, सोनिया गाँधी, सुषमा स्वराज, अरूणा राय, मीरा कुमार, ममता बनर्जी, मायावती, जयललिता, किरण बेदी, कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, टेसी थॉमस (मिसाइल वुमैन) आदि ने इस तथ्य को सिद्ध किया है कि भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने सशक्त उपस्थिति दर्ज करायी है। इस प्रकार आरक्षण ने लंबे समय से प्रतिस्पर्द्धा का अवसर उपलब्ध कराकर महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

भारतीय संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के माध्यम से स्थानीय निकाय चुनावों में महिलाओं के लिए 33% सीटें आरक्षित की गईं। इसके माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं तथा नगर निकाय चुनावों में महिलाओं को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का सुअवसर मिला। परिणामत: महिलाएँ राजनीतिक प्रक्रियाओं, अपने राजनीतिक अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक हुईं। वर्तमान में 110वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50% सीटों का आरक्षण कर उन्हें अधिक सशक्त बनाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया है।

आज भारतीय संसद एवं विधानमंडलों में भी महिला सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई है। साथ ही, देश एवं राज्य की विभिन्न राजनीतिक पदों पर कई महिलाओं का आसीन होना इस बात की पुष्टि करता है कि राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ है। सोनिया गाँधी, सुषमा स्वराज, ममता बनर्जी, मायावती, जयललिता आदि के उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। लोकसभा एवं राज्य विधान सभा में महिलाओं के लिए 33% सीटों के आरक्षण हेतु भी महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। इसके लिए 108वां संविधान संशोधन विधेयक राज्यसभा में पारित किया जा चुका है तथा लोकसभा में कुछ बिंदुओं पर विवाद के कारण इसे पारित किया जाना बाकी है। निश्चित रूप से इसके पारित हो जाने के बाद देश की राजनीतिक व्यवस्था (Political System) में महत्त्वपूर्ण पदों पर अधिकाधिक महिलाओं को प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त होगा।

आज शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाओं का उन्नयन हुआ है। विभिन्न शिक्षा पाठ्यक्रमों में महिलाओं की आरक्षित सीटों ने महिलाओं को अन्य तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा के अवसर प्रदान कर उन्हें योग्यता आधारित नौकरियाँ पाने में मदद की है। हाल के वर्षों में सिविल सेवा परीक्षा में सर्वोच्च स्थान एवं अन्य महत्त्वपूर्ण स्थान, विभिन्न मेडिकल एवं इंजीनियरिंग परीक्षाओं में लड़कों से आगे निकलती लड़कियों के उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ है। रोजगार में आरक्षण देने के प्रयास द्वारा भी महिलाओं के सशक्तिकरण में वृद्धि हुई है। मनरेगा के माध्यम से रोजगार में आरक्षण मिलने से कई महिलाओं को पहली बार आय अर्जन का मौका मिला है।

भारतीय पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था (Patriarchal Social System) में घरों की चारदीवारियों में कैद महिलाओं की परिस्थितियों में वर्तमान समय में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। निश्चित रूप से इन बदलावों के पीछे महिलाओं की विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में बढ़ती भूमिका एक प्रमुख कारण है तथा आरक्षण ने इसे बल प्रदान किया है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

निश्चित रूप से भारत में महिला आरक्षण से महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में तुलनात्मक (Comparative) रूप से सुधार हुआ, लेकिन आज भी महिलाओं की स्थिति चिंताजनक है। आज भी लिंग असमानता, भेदभाव, महिलाओं पर शोषण, हिंसा आदि की घटनाएँ सामने आ रही हैं। अतः आरक्षण के अतिरिक्त महिला सशक्तिकरण हेतु अन्य प्रयास किये जाने की भी आवश्यकता है।

विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में लड़कियों की कम संख्या, उच्च पदों पर महिलाओं की निम्न संख्या तथा अन्य क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा इनकी कम सहभागिता (Participation) इस ओर इशारा करती है कि अभी भी महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु काफी कुछ किए जाने की जरूरत है। केवल आरक्षण के द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति (Status) में सुधार किया जाना संभव नहीं है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि किसी भी समाज के विकास में महिलाओं की महती भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। आधुनिक मूल्यों का प्रसार वर्तमान परिवेश की मांग है तथा यह आवश्यक है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आधी दुनिया को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान किया जाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निम्न सुझाव अपेक्षित हैं:-

1. परिवार एवं समाज के स्तर पर पारंपरिक मूल्यों (Traditional ValueS) की अपेक्षा आधुनिक मूल्यों को स्वीकृति प्रदान की जाए।
2. महिलाओं के प्रति समाज में संवेदनशील भावना (Sensitive Feeling) का विकास किया जाए।
3. महिलाओं को उनके अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति अधिकाधिक जागरूक किया जाए।
4. महिलाओं की पारिवारिक एवं सामाजिक सुरक्षा से संबंधित कानूनों को कठोरता के साथ लागू किया जाए।
5. महिला साक्षरता को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया जाए। बालिकाओं को शैक्षिक सत्र में छात्रवृत्ति तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाएं।
6. महिलाओं को कौशल प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाए।
7. महिला स्वास्थ्य एवं पोषण से संबंधित योजनाओं को पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व के साथ लागू किया जाए।
8. लोकसभा एवं राज्य विधान सभाओं में महिला आरक्षण से संबंधित विधेयक को यथाशीघ्र पारित किया जाए।

भारत में आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण : समसामयिक मुद्दे एवं आँकड़े
(Reservation and Women Empowerment in India : Current Issues and Datas)

महिला आरक्षण विधेयक

21 जुलाई, 2011 को केंद्र सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं में सभी स्तरों पर महिलाओं के लिए 50% आरक्षण के लिए अनुच्छेद-243डी में संविधान संशोधन के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी। यह संविधान संशोधन विधेयक उन सभी राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों पर लागू हो गया जो भाग-9 के अंतर्गत आते हैं (नागालैंड, मेघालय, मिजोरम, असोम, त्रिपुरा के आदिवासी क्षेत्र एवं मणिपुर के पर्वतीय क्षेत्र संविधान के भाग-9 के अंतर्गत नहीं आते)।

चुनाव द्वारा भरी जाने वाली सभी सीटों, अध्यक्ष पदों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए अध्यक्ष पदों पर यह लागू होगा। इसके उद्देश्य पंचायतों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ाना है।

अन्य तथ्य

- स्थानीय निकायों में महिला आरक्षण का श्रेय 1957 में गठित बलवंत राय मेहता समिति को जाता है।
- राज्यों में सबसे पहले 1987 में कर्नाटक पंचायत अधिनियम के तहत महिलाओं को 25% आरक्षण दिया गया।
- 1993 में 73वें, 74वें संविधान संशोधन के तहत महिलाओं को 33% आरक्षण का प्रावधान।
- 2005 में बिहार ने सर्वप्रथम महिलाओं को 50% आरक्षण पंचायती चुनाव में दिया।
- वर्तमान में जिन राज्यों की पंचायती राज्य संस्थाओं में महिलाओं को 50% आरक्षण है वे हैं- बिहार, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र व राजस्थान।

समीक्षा (Review)

महिला आरक्षण विधेयक द्वारा पंचायत चुनावों में देश की लगभग आधी आबादी को बराबरी का हिस्सा देना महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक कारगर कदम है। इसके माध्यम से सदियों से वंचित व शोषण तथा भेदभाव का शिकार रही महिलाओं को सरंक्षणात्मक (Protective) अवसर प्रदान किया जाएगा। साथ ही, अब महिलाएँ पंचायत स्तर पर योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन (Implementation) में निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा बन सकेंगी तथा कालांतर में स्वंय को लोकतांत्रिक शक्ति की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया का हिस्सा बना सकेंगी।

संसद में आरक्षण से महिलाओं पर प्रभाव (Effect of Reservation on Women in Parliament)

महिलाएँ कुल जनसंख्या का लगभग 50% हैं, परंतु संसद में उनका प्रतिनिधित्व काफी कम है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था (Democratic System) के लिए यह विषमता उचित नहीं है। इसलिए समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक होगा कि महिलाओं को आरक्षण दिया जाए ताकि वे विधायिकाओं में अपना प्रतिनिधित्व कर सकें और अपनी समस्याओं का निदान स्वयं कर सकें। केंद्र व राज्य विधान मंडलों को 33% आरक्षण दिए जाने से संबंधित विधेयक वर्तमान में कुछ बिंदुओं पर विवाद के कारण पारित नहीं किया जा सका है। संसद में महिला आरक्षण से समाज में महिलाओं की स्थिति में निम्न प्रभाव संभावित हो सकते हैं:–

1. विधायिका में अगर महिलाओं का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो महिलाओं का सशक्तिकरण हो ही नहीं सकता। विधायिका संसदीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में कानून बनाने का शीर्ष निकाय है। यहां अगर महिलाओं की संख्या कम है तो उनका और समाज की 50% जनसंख्या का कल्याण नहीं हो सकता। आरक्षण के माध्यम से महिलायें स्वयं निर्णय लेकर अपने भाग्य को बेहतर बना सकेंगी।
2. महिला आरक्षण विधेयक के पारित हो जाने पर भारत जैसे विकासशील देश में नि:संदेह महिलाओं की खराब दशा में सुधार आयेगा।
3. इसके द्वारा संसद में लिंग समानता (Gender Equality) आयेगी। फलस्वरूप समग्र रूप से महिलाओं का सशक्तिकरण होगा।
4. राजनीति में बढ़ती भागीदारी से महिलाओं को अपने प्रति होने वाले भेदभाव तथा अत्याचार से निपटने में आसानी होगी।
5. महिला सशक्तिकरण के माध्यम से आने वाली पीढ़ी का भी सशक्तिकरण होगा। परिणामत: बालिका भ्रूण हत्या रोकी जा सकेगी तथा शिक्षा में लैंगिक असमानता को समाप्त करने में सहायता मिलेगी।
6. उच्च विधायी निकायों में आरक्षण देने का अर्थ है कि विभिन्न महिला कानूनों पर महिलाओं की राय एवं सहभागिता बढ़ेगी तथा महिला अपराधों के प्रति रोकथाम में सहायता मिलेगी।

देश में आधी आबादी महिलाओं की है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उन्हें भी देश के विकास में पुरुषों के समान भूमिका निभाने का अवसर मिलना चाहिए। जब तक महिलाएँ जागरूक नहीं होंगी तथा राष्ट्रीय विकास की धारा में अपनी सक्रिय भूमिका तथा भागीदारी नहीं निभायेंगी, तब तक राष्ट्र का सर्वांगीण विकास (All round Development) संभव नहीं है। महिलाओं में जागृति फैलने से पूरा परिवार, गाँव, शहर और अंतत: देश में जागृति फैलती है और सारा राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। चूंकि महिलाओं को हमेशा से दबा कर रखा गया था, अत: निरक्षरता, गरीबी तथा परंपरा के बंधनों को तोड़ना जरूरी है। आज भी ज्यादातर महिलाएँ संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद अशिक्षित तथा बिना जायदाद के रूढ़िवादी भारतीय समाज (Conservative Indian Society) में रहती हैं। रूढ़िवादी प्रथाएँ, पुराने रीति-रिवाज एवं समाज विरोधी कायदे-कानूनों को समाप्त करने के लिए राजनीतिक तौर पर जागृत महिलाएँ ही आगे आयेंगी। पेयजल, चिकित्सा, परिवार नियोजन, महिला शिक्षा, साक्षरता, दहेज प्रथा, ग्रामीण विकास एवं कुटीर उद्योग जैसी गतिविधियों में भी महिलाएं अधिक सहानुभूतिपूर्वक कार्य करेंगी।

अत: यह आवश्यक है विधानमंडलों में महिलाओं के आरक्षण से संबंधित 108वें संविधान संशोधन विधेयक पर उभरे विवादों को समाप्त कर उसे यथाशीघ्र पारित किया जाए।

बिहार सरकार ने जनवरी, 2016 में बिहार में सभी स्तरों की राज्य सरकार की नौकरियों में सीधी भर्ती में महिलाओं के लिए 35 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की है।

✪✪✪✪✪

27 भारत में पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण (Panchayati Raj and Women Empowerment in India)

पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण (Panchayati Raj and Women Empowerment)

परंपरागत भारतीय समाज में महिलाएँ परिवार एवं समाज से संबंधित किसी भी निर्णय प्रक्रिया में शामिल नहीं होती थी। ग्राम पंचायत तथा जाति पंचायत का मुखिया पुरुष ही चुना जाता था तथा महिलाओं को इन क्षेत्रों में कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे।

भारत का संविधान सभी भारतीय महिलाओं को समान अधिकार (अनुच्छेद 14 द्वारा), कोई भेदभाव नहीं करने, [अनुच्छेद 15(1)], अवसर की समानता (अनुच्छेद 16), समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39(घ)) की गारंटी देता है। महिलाओं की गरिमा (Dignity) के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने (अनुच्छेद 51(A)) और साथ ही काम की उचित एवं मानवीय परिस्थितियाँ सुरक्षित करने और प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने की अनुमति देता है (अनुच्छेद 42)।

भारतीय संविधान के द्वारा प्रदत्त उपरोक्त अधिकारों के संदर्भ में ग्रामीण महिला सबलीकरण (Women Empowerment) के प्रयास के तहत 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत 1992 में पंचायती राज व्यवस्था को कानूनी दर्जा दिया गया एवं इसी के अनुरूप अनुच्छेद 243(D) में ग्राम पंचायतों में तथा 243(T) नगर पंचायतों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान किया गया। संघ सरकार द्वारा इसे बढ़ाकर 50% कर दिया गया है।

ग्रामीण विकास बिना महिला विकास के संभव नहीं है तथा महिला सबलीकरण बिना उनको अधिकार दिये संभव नहीं है। अत: पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से तथा महिला का सबलीकरण पंचायती राज के द्वारा करने का प्रयास किया गया। पंचायती राज व्यवस्था में सहभागिता द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया को निम्न बिंदुओं के आधार पर पहचाना जा सकता है:–

1. पंचायती राज व्यवस्था के तहत राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित होने से महिलाओं की कार्यक्षमता का परिवार के सदस्यों को पता चला। फलत: पारिवारिक मामलों में भी उनकी राय ली जाने लगी। चूँकि महिला प्रधान या सरपंच को घर से बाहर निकल कर ही काम करना संभव था। अत: घर की चारदीवारी में कैद महिला को पहली बार बाहर अधिकारपूर्वक निकलने का मौका मिला तथा पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियाँ (Malpractices) दूर हुईं। महिला सरपंच के कानूनी एवं सरकारी अधिकार के कारण उसकी प्रस्थिति में सुधार हुआ। परिवार में वह पुरुष के बराबर की प्रस्थिति (Status) प्राप्त करने लगीं हैं।
2. पारिवारिक तथा ग्रामीण शक्ति संरचना (Rural Power Structure) में पहली बार महिला का स्थान हाशिए से केंद्र पर आ गया। पूर्व में ग्रामीण शक्ति संरचना में महिलाओं का कोई स्थान नहीं था तथा समस्त निर्णय जाति पंचायत अथवा ग्राम पंचायत के पुरुष सदस्य एवं मुखिया लिया करते थे।
3. महिला सरपंच चूँकि पुरुष सरपंच की तुलना में महिलाओं की समस्या को अधिक संवेदनशील होकर समझ सकती थी अत: ग्रामीण महिलाओं की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। उनको स्कूलों में जाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाने लगा तथा महिला शिक्षा में वृद्धि हुई। महिलाओं के कुपोषण, बीमारियों इत्यादि समस्या पर ध्यान देकर इसके निवारण का प्रयास किया गया।
4. महिलाओं द्वारा निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से उनमें जागरूकता आई तथा उनमें तार्किकता का विकास हुआ। परिणामत: अंधविश्वास तथा कुप्रथाओं का महिलाओं पर प्रभाव कम हुआ। इसके फलस्वरूप महिलाओं के स्वरूप में सुधार हुआ महिला एवं शिशु मृत्यु दर पर काफी हद तक नियंत्रण पा लिया गया।
5. महिलाएँ जब घर से बाहर निकलने लगी तो बाहर आकर परिवार के आर्थिक कार्यकलापों में भी भाग लेने लगी, जिससे उनको आर्थिक उत्पादन प्रणाली (Production System) के अंतर्गत स्थान मिलने लगा तथा उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई।
6. नातेदारी प्रणाली में महिलाओं को भी उचित स्थान दिया जाने लगा। परिवार में लोकतांत्रिक प्रक्रिया (Democratic Process) का आरंभ हुआ क्योंकि पारिवारिक निर्णयों में भी महिला को शामिल किया जाने लगा। अब पति कोई निर्णय लेने से पहले पत्नी से एक बार पूछना जरूरी समझने लगे।
7. कुछ महिलाओं को स्थानीय स्तर पर राजनीतिक सशक्तिकरण के फलस्वरूप उच्च स्तर पर भी राजनीतिक सहभागिता का अवसर प्राप्त हुआ तथा वे सांसद या विधायक चुनी गई। इस प्रकार भारतीय राजनीति के दरवाजे आम भारतीय महिलाओं के लिए खुलने लगे।
8. पंचायती राज संस्थाओं में महिला सशक्तिकरण (Women Empowerment) से महिला–पुरुष के शिक्षा के अनुपात में कमी आई है। ऐसी सशक्त महिलाएँ पुत्री शिक्षा पर ध्यान देती हैं।

9. पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था से महिलाएँ राजनीतिक रूप से भी सशक्त हुई हैं। यही वजह है कि गाँवों में विभिन्न संस्थाओं में न सिर्फ महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, बल्कि बालिका शिक्षा का भी ग्राफ तेजी से बढ़ रहा है। यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि विद्यालयों से बालिकाओं के ड्रॉफ्टऑउट में कमी आयी है। फिलहाल पंचायतों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या लगभग 28.18 लाख है जो कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों का 36.87% है। अब 110वें संविधान संशोधन को कैबिनेट ने मंजूरी दे दी है। इस संवैधानिक संशोधन के साथ ही निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या में 14 लाख की वृद्धि होने की संभावना है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

उपर्युक्त तथ्यों को देखते हुए पता चलता है कि पंचायती राज व्यवस्था ने महिला सशक्तिकरण (विशेषकर ग्रामीण) में विशेष योगदान दिया है, किंतु ये प्रयास अभी तक पूर्णतया सफल नहीं हो रहे हैं; इसके कुछ कारण निम्न हैं:-

1. ग्रामीण महिला का पहली बार राजनीतिक सशक्तिकरण आरंभ हुआ, किंतु वे पूर्णतया सक्षम नहीं हुई क्योंकि अभी भी आरक्षित सीट होने के कारण महिलाओं का सरपंच या प्रधान बनना निश्चित होता है, किंतु उस पद से संबंधित अधिकांश निर्णय सहयोगी पुरुष द्वारा ही लिए जाते हैं।
2. पंचायतों में महिला सहभागिता (Female Participation) से महिलाओं की पारिवारिक स्थिति में बदलाव आया है इससे इंकार नहीं किया जा सकता, किंतु परिवार में महिला को दोहरे काम करने पड़ रहे हैं। इसके अलावा आज भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था (Patriarchal System) बरकरार है तथा पारिवारिक सत्ता संरचना में महिला का स्थान द्वितीयक ही है।
3. पंचायतों के माध्यम से महिला साक्षरता एवं जागरूकता में वृद्धि हुई है, किंतु परंपराओं के प्रभाव में महिलाएँ परिवार एवं समाज में स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के मूल्यों को आत्मसात (Assimilation) नहीं कर पायी हैं।
4. आज भी परंपरागत ग्रामीण समाज में किसी लड़की के सरपंच या प्रधान बनने को अच्छा नहीं माना जाता है, प्राय: इन्हें हतोत्साहित (Discouraged) किया जाता है।
5. पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा महिलाओं की जागरूकता से इंकार नहीं किया जा सकता तथा महिलाओं की कार्यक्षमता पर भी उंगली नहीं उठाई जा सकती। किंतु महिला को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने में इसकी कोई विशेष भूमिका नहीं दिखाई देती। क्योंकि इसके लिए कोई वैतनिक व्यवस्था या कमीशन की व्यवस्था नहीं है। इसीलिए परिवार की आर्थिक आय को बढ़ाने में इनकी भूमिका को आज भी स्वीकार नहीं किया जाता।
6. राजनीतिक प्रणाली की आधारशिला पर महिलाओं का सशक्तिकरण पंचायती राजव्यवस्था के द्वारा किया गया दिखाई देता है। किंतु इन महिलाओं के राष्ट्रीय एवं केंद्रीय राजनीति में जाने के अवसर प्राय: उपलब्ध नहीं होते। अत: इससे सशक्तिकरण का कार्य आधा-अधूरा ही रह जाता है।

उपरोक्त मूल्यांकन में निहित कमियों के दूर करने के निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. महिलाओं को अधिक शिक्षित तथा साक्षर बनाया जाए, जिससे सरपंच चुने जाने पर उस पद से संबंधित भूमिकाओं का वे स्वयं निर्वहन कर सकें।
2. निर्वाचित प्रधान महिलाओं के लिए वेतन, पेंशन या कमीशन इत्यादि की व्यवस्था की जाए, जिससे उनकी क्रयशक्ति एवं आर्थिक क्षमता में भी वृद्धि हो सके और परिवार की उत्पादन प्रणाली (Production System) में उनके सक्रिय योगदान को स्वीकार किया जा सके और उनकी प्रस्थिति एवं मान-सम्मान में वृद्धि हो सके।
3. सरपंच चुनी जाने वाली महिला के कार्यभार को देखते हुए परिवार के अन्य सदस्य को घरेलू कार्यों में सहयोग करने की जिम्मेदारी उठानी चाहिए, जिससे महिला के दोहरे काम से उन्हें काफी हद तक छुटकारा मिल सके।
4. राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में भी महिला की भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि लोक सभा एवं विधान सभा में महिलाओं के लिए शीघ्र ही आरक्षण की व्यवस्था की जाए।
5. पुरातन मूल्यों में परिवर्तन की आवश्यकता है तथा सरपंच चुनी जाने वाली लड़की के प्रति प्रोत्साहन एवं सम्मान तथा उसकी योग्यता की कद्र होनी चाहिए, जिससे वह उत्साहित होकर राजनीतिक सशक्तिकरण (Political Empowerment) की प्रक्रिया को जारी रखते हुए अपने को केंद्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर सकें।
6. पंचायत चुनावों में महिला के जीतने पर उसके पति तथा अन्य सदस्यों को महिला के कार्यों में हस्तक्षेप से रोका जाए क्योंकि वर्तमान में प्रधानपति की अवधारण बहुत ज्यादा व्याप्त है।
7. महिला सरपंचों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए समय-समय पर जिला स्तर पर पंचायत के कार्यों के संदर्भ में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए तथा सरकारी तंत्र द्वारा समय-समय पर सीधे संवाद स्थापित किया जाना चाहिए। इससे उनकी परिवार पर निर्भरता कम होगी तथा आत्मविश्वास में वृद्धि होगी।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था ने महिलाओं के लिए सशक्तिकरण का द्वार खोल दिया है। यद्यपि भारतीय समाज में निहित संरचनात्मक कमियों (Structural Drawbacks) के कारण महिला सशक्तिकरण के सपने को यह पूर्ण रूप में साकार नहीं कर पाया है। अत: सशक्तिकरण की

प्रक्रिया में बाधक तत्त्वों का समाधान भी आवश्यक है। ये समाधान जितनी जल्दी क्रियान्वित किये जाएं महिला सशक्तिकरण का सपना उतनी जल्दी साकार हो सकेगा। ऐसी अपेक्षा की जाती है।

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी के लिए यू.एन. वीमेन कार्यक्रम (U.N. Women Programme for Women Participation of Women in Panchayat)

भारत के पांच राज्यों में करीब 5 लाख निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के साथ काम करते हुए यह कार्यक्रम स्त्री और पुरुष के बीच बराबरी को बढ़ावा देने में पंचायत की भूमिका पर खुलकर ध्यान दे रहा है। नॉर्वे की शाही सरकार से प्राप्त धन की मदद से यूएन वीमेन और भारत सरकार यह सुनिश्चित करेंगे कि आगे चलकर निर्वाचित महिला प्रतिनिधि (Elected Female Representative) इन निर्धारित जिलों में राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया पर बराबर प्रभाव डाल पाएँ। प्रशिक्षण कार्यक्रमों से आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, ओडिसा और राजस्थान में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को अपना कामकाज पूरे विश्वास के साथ करने और पंचायतों में अधिक खुलकर बोलने के लिए जानकारी और कौशल प्राप्त करने में मदद दे रहे हैं। उदाहरण के लिए, बिहार और ओडिसा में 2011 में पंचायत चुनावों से पहले चलाए गए अभियानों में महिला उम्मीदवारों को नामांकन-पत्र भरने और चुनाव प्रचारों का प्रबंध संभालने में मदद दी गयी। इससे मतदान के लिए आने वाले लोगों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। बिहार में मुजफ्फरपुर की समसपुर ग्राम पंचायत की निर्वाचित वार्ड सदस्य इंदिराणी ने कार्यक्रम के अंतर्गत महिला स्वयं सहायता समूहों (Self Help Group) और महिला प्रतिनिधि संगठन के साथ सक्रिय रूप से काम किया। इससे विशेषकर इन चुनावों के दौरान कार्रवाई करने की उनकी क्षमता और कौशल में बढ़ोत्तरी हुई। इस तरह के मंच निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों और महिला नागरिकों को अपनी महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर चर्चा करने के लिए एकजुट करते हैं और अपने नेतृत्त्व का प्रभावकारी (Effective) ढंग से उपयोग करने में उनकी मदद करते हैं।

अब तक राजस्थान, मध्यप्रदेश और ओडिसा में 635 ग्राम पंचायतों में इंदिराणी और सुनीता जैसी निर्वाचित महिला नेताओं को लेकर 315 जागरूक मंच स्थापित किए जा चुके हैं। लगभग 5,000 निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों और 17,000 से अधिक महिला नागरिकों ने सभाओं के दौरान सरकारी योजनाओं पर चर्चा की है और घर के भीतर हिंसा की समस्या से निपटने के तरीके खोजे हैं। राज्य सरकारों के पंचायती राज्य और ग्रामीण विकास विभागों के साथ मिलकर हर जिले में कम से कम 100 ग्राम सभाएँ की जाएगीं, जिनमें प्रशिक्षित प्रेषकों (Trained Senders) और सरकारी विभागों के साथ विकास और स्त्री-पुरुष समानता पर चर्चा होगी। यूएन वीमेन, यूएनडीपी और यूनिसेफ प्रशिक्षण मॉडयूल तैयार कर रहे हैं, ताकि भारत के 13 राज्यों में महिला नेता पहले से बेहतर प्रशिक्षित हो सकें। नीतिगत परिवर्तनों के हिमायत में इस्तेमाल के लिए शोध किया जा रहा है। भूटान और भारत में मौजूदा दृष्टिकोण, चुनौतियों और राजनीति में महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए अध्ययन किए जा रहे हैं। जमीनी स्तर पर महिलाएँ स्वयं बदलाव ला रही हैं।

✪✪✪✪✪

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

28 समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण (Common Civil code and Women Empowerment)

समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण (Common Civil Code and Women Empowerment)

भारत विविधताओं (Diversities) का देश है। यहाँ अनेक जातियाँ, धार्मिक संप्रदाय, संस्कृतियाँ एवं भाषा के लोग प्राचीन काल से ही एकता के सूत्र में बंधकर निवास करते आये हैं। नागरिकता की दृष्टि से भी यहाँ के सभी नागरिक चाहे वह किसी भी जाति, धर्म और लिंग के हों भारतीय समझे जाते हैं। यहाँ सभी के लिए एक समान दंड और अपराध के नियम को व्यवहार में लाया जाता है। विविधता में एकता की इस स्थिति के बावजूद अभी भी यहाँ विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग संपत्ति के स्वामित्व, उत्तराधिकार, बच्चों की संरक्षकता, बच्चों को गोद लेना, विवाह, तलाक आदि सामाजिक मामलों में अपने विशिष्ट निजी कानून और नियमों को ही मान्यता देते आ रहे हैं। चूंकि इन व्यक्तिगत कानूनों का आधार धर्म और परंपरा रहा है। अत: यह भी महिलाओं की निम्न प्रस्थिति के लिए कमोबेश जिम्मेदार हैं। वैविध्यपूर्ण दशा को संपूर्ण राष्ट्र में समान कानून बनाने हेतु और औरतों को सम्मानजनक प्रास्थिति दिलाने के लिए समान नागरिक संहिता की स्थापना की बात की जाती है।

समान नागरिक संहिता की आवश्यकता (Need of Common Civil Code)

निजी कानूनों और संविधान के द्वंद्व के समाधान के रूप में संविधान निर्माताओं ने नीति-निर्देशक तत्त्व के रूप में विद्यमान समान नागरिक संहिता को अनुच्छेद 44 के अधीन रखा है तथा अनु॰ 37 के माध्यम से राज्य पर संवैधानिक कर्त्तव्य आरोपित किया है कि राज्य इसके लिए उचित प्रयास करें, जिसकी पुष्टि करते हुए 1986 के शाहबानों मुकदमें में न्यायधीश वाई. वी. चन्द्रचूड़ और 1995 में सरला मुद्गल के मामले में न्यायधीश कुलदीप सिंह ने समान नागरिक संहिता पर बल दिया। वर्तमान समय में भी सुप्रीम कोर्ट द्वारा सरकार को नागरिक संहिता की दिशा में प्रयास करने हेतु महत्त्वपूर्ण निर्देश दिया गया है ताकि समाज के विभिन्न वर्गों, लिंग आदि के बीच स्वतंत्रता एवं समानता की भावना का समावेश कर उनका एकीकरण (Integration) किया जा सके।

विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक संगठनों द्वारा भी समान नागरिक संहिता की माँग की गई है। भारतीय समाज में निजी अथवा व्यक्तिगत कानूनों के उद्भव का प्रमुख कारण विभिन्न धर्मों की सामाजिक मान्यताएँ (Social Beliefs) एवं परंपराएँ रही हैं। 19वीं सदी में जहाँ एक ओर विभिन्न सामाजिक सुधार आंदोलनों के दौरान महिलाओं की निम्न प्रस्थिति के लिए जिम्मेदार कई सामाजिक कुरीतियाँ जैसे- बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, महिलाओं की अशिक्षा आदि के संबंध में महत्त्वपूर्ण प्रयास किये गए। वहीं दूसरी ओर पितृसत्तात्मक सामाजिक विचारधारा (Social Ideology) की जड़ें गहरी होने के कारण महिलाओं एवं पुरुषों के मध्य शक्ति संतुलन हेतु प्रयास नहीं किए गए। परिणामत: व्यक्तिगत कानूनों का प्रादुर्भाव हुआ। औपनिवेशिक शासनकाल में व्यापारिक, आर्थिकी, राजनीतिक, दीवानी एवं आपराधिक कानून तो बनाए गए, परंतु सामाजिक क्रियाकलापों के संचालन हेतु कोई सामान्य कानून नहीं बनाए गए तथा धार्मिक मान्यताओं पर आधारित निजी निर्णयों अथवा प्रथाओं के संबंध में विभिन्न धर्मों को स्वतंत्रता प्रदान की गयी। औपनिवेशिक काल में विभिन्न समुदायों के घनिष्ठ धार्मिक बधंनों को देखते हुए ऐसा किया गया ताकि प्रशासन के क्रियान्वयन में जनविद्रोह का सामना न करना पड़े।

निजी कानूनों का महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव (Negative effect of Personal Laws on Women)

1. महिलाओं की निम्न सामाजिक प्रस्थिति की पुष्टि।
2. महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार एवं हिंसा।
3. महिलाओं के समक्ष ऐसी परिस्थितियों से निकलने हेतु विकल्पहीनता की स्थिति।
4. संपत्ति अधिकारों एवं उत्तराधिकार से वंचितता।
5. महिलाओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन।
6. महिलाओं पर नकारात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव।
7. पुरुषों पर निर्भरता।
8. शिक्षा, राजनीतिक सहभागिता, कौशल विकास आदि से वंचितता।

आधुनिक मूल्यों (Modern Value) के प्रसार ने समग्र विश्व में स्वतंत्रता, समानता की स्थापना तथा शोषणरहित एवं भेदभाव रहित समाज के निर्माण की अवधारणा का विकास किया है। भूमंडलीकरण (Globalization) एवं संचार क्रांति ने इस विचारधारा को सबलता प्रदान की है। अत: दुनिया के प्रत्येक समाज का आधुनिक लक्ष्य है कि समाज के विभिन्न स्तरों पर पुरुषों एवं महिलाओं के बीच समानतापूर्ण वातावरण का निर्माण किया जाए।

भारतीय संविधान की उद्देशिका में वर्णित शब्द 'व्यक्ति की गरिमा' का तात्पर्य समाज के सभी व्यक्तियों, लिंगों, वर्गों आदि को गरिमापूर्ण जीवन अवसर सुनिश्चित कराने की व्याख्या करता है। साथ

ही, संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से अन्य असमानताओं के साथ-साथ लिंग असमानता (Gender Inquality) के उन्मूलन (अनु.- 14, 15, 16, 19) तथा इसके लिए राज्य को दिशा-निर्देश और महिलाओं के प्रति सम्मान की भावना का विकास [अनुच्छेद 51(क)] आदि का उल्लेख किया गया।

इस परिप्रेक्ष्य में भारत में समान नागरिक संहिता के माध्यम से समानतापूर्ण अधिकारों एवं अवसरों के वितरण की आवश्यकता ज्ञात होती है ताकि महिलाओं एवं पुरुषों दोनों को गरिमापूर्ण जीवन अवसर सुनिश्चित किया जा सके।

समान नागरिक संहिता न बन पाने के कारण (Causes for not Making a Common Civil Code)

संविधान निर्माताओं को यह विश्वास था कि प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय के अंतर्गत महिला-पुरुषों की बराबरी के लिए व अन्यायपूर्ण सुधारवादी कुरीतियों को समाप्त करने के लिए सुधारवादी आंदोलन प्रारंभ किया जाएगा तथा उसी आधार पर सभी धार्मिक संप्रदायों के लिए एक समान सिविल संहिता का निर्माण किया जाएगा। लेकिन उनकी आकांक्षाएँ आज तक पूरी नहीं हो सकी हैं। इसके लिए निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं:-

1. अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा निजी कानूनों को अपनी अस्मिता (Identity) से जोड़कर देखना तथा समान नागरिक संहिता का विरोध।
2. वर्तमान समय में महिलाओं के संरक्षण हेतु लागू विधानों से महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) में अपेक्षित सुधार नहीं होना तथा इसके प्रति महिलाओं में अविश्वास की भावना।
3. महिलाओं द्वारा समान नागरिक संहिता के प्रति उदासीनता।
4. अल्पसंख्यक वर्ग में शिक्षा का अभाव तथा रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति सकारात्मक दृष्टि।
5. राजनैतिक मतभेद।

समान नागरिक संहिता को सुनिश्चित करने के लिए सुझाव (Suggestions to Ensure Common Civil Code)

समान नागरिक संहिता की माँग एक दशक से ज्यादा पुरानी हो गयी है तथा हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने भी कई मौकों पर इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। किंतु, प्रारंभ से ही यह एक विवाद का विषय रहा है। अत: अभी तक इसका अधिनियम संभव नहीं हो पाया है। समान नागरिक संहिता के अधिनियम के संदर्भ में निम्नांकित सुझाव संबंधित विवाद के निराकरण में सहायक हो सकते हैं:-

1. समान नागरिक संहिता तथा महिला सशक्तिकरण (Women Empowerment) परस्पर रूप से जुड़े हैं। यदि मुस्लिम समुदाय के संदर्भ में देखा जाए तो दो बातें स्पष्ट हैं यदि इस समुदाय की महिलाओं को सशक्त कर दिया जाए (सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक रूप से) तो वे स्वत: ही समान सिविल संहिता के लिए आवाज बुलंद करने लगेंगी।
2. ऐसा माना जाता है कि वैकल्पिक कानून की उपलब्धता स्वयं ही व्यक्तिगत कानूनों में संशोधन की दिशा में कार्य करेगी। अत: भेदभाव मुक्त वैकल्पिक कानूनों का निर्माण किया जाना चाहिए।
3. विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों में यथासमय आवश्यक संशोधन किए जाने चाहिए।
4. निजी कानूनों में सुधार के प्रयासों के साथ-साथ कुछ ऐसे भी विशिष्ट क्षेत्र हैं जिनके विषय में व्यक्तिगत कानून खामोश हैं और ये क्षेत्र सभी समुदायों की महिलाओं के लिए समान कानूनी अधिकारों को आधार प्रदान करते हैं। इनमें से कुछ विषय हैं-पिता की संपत्ति में हिस्सा, मायके के मकान में रहने का अधिकार आदि। इन क्षेत्रों में जल्द ही लिंग समानता आधारित कानून बनाए जाने चाहिए।
5. राजनीति और सामाजिक जीवन में रूढ़िवादी, धार्मिक एवं सांप्रदायिक शक्तियों के प्रभाव पर अंकुश लगाने के लिए और धर्मनिरपेक्ष ताकतों (Secular Powers) को मजबूत करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए।
6. किसी विधिक कानून का अधिनियमन मात्र ही समस्या के निवारण की गारंटी नहीं होता, जब तक उसे लागू करने की दृढ़ इच्छाशक्ति (Will Power) और कुशल मशीनरी का अभाव हो। अत: समान नागरिक संहिता को लागू करने वाली मशीनरी का भी सुदृढ़ीकरण किया जाना चाहिए।
7. किसी कानून को अचानक एक बहुत बड़े वर्ग पर लादा नहीं जा सकता। हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए कि हम उसी समुदाय के नवयुवक एवं युवतियों को समान नागरिक संहिता के बारे में शिक्षित करें एवं खासकर महिलाओं के होने वाले लाभों को विभिन्न प्रचार माध्यमों तथा प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर पाठ्यक्रम में सम्मिलित करें, ताकि समान सिविल संहिता की मांग उसी समुदाय से उठे।
8. महिलाओं की शासन के सभी स्तरों में भागीदारी को बढ़ाया जाए तथा अल्पसंख्यक महिलाओं को विशेष रूप से लाभान्वित किया जाना चाहिए।

समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण : समसामयिक मुद्दे एवं आँकड़े तथा लिंग संबंधी मुद्दों पर स्वामीनाथन समिति की संस्तुतियाँ (Common Civil Code and Women Empowerment : Current Issues and datas and recommendation of Swaminathan committee on gender related issues)

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का प्रारूप बनाने के लिए डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा लिंग संबंधित मुद्दों पर की गयी प्रमुख संस्तुतियाँ निम्नलिखित हैं:-

1. परिवार को नियंत्रित करने के लिए पुरुष और महिला दोनों को समान रूप से उत्तरदायी मानता है। ऐसा देखा गया है कि परिवार नियंत्रण के लिए महिलाओं को ही बंध्याकरण करवाने पर जोर दिया जाता है।
2. कुल प्रजनन दर (Fertility Rate) को सन् 2010 तक 2.1 पर लाने की योजना।
3. लड़कियों की शिक्षा पर विशेष बल।
4. कामकाजी महिलाओं को बच्चों की देखभाल हेतु सुविधाएँ मुहैया कराना।
5. मातृ एवं शिशु कल्याण एवं परिवार नियोजन सेवाओं को स्वास्थ्य सेवाओं के अंतर्गत लाकर महिला रोग विज्ञान, यौन जनित रोगों के निदान, सुरक्षित गर्भपात, पुनरोत्पादित (Reproduction) स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम आदि को सम्मिलित करना। राज्य जनसंख्या एवं सामाजिक विकास समिति में महिला और युवा सदस्यों को शामिल करने पर जोर देना।

ट्रीड स्कीम (Tread Scheme)

सूक्ष्म, लघु एवं माध्यम उद्यम मंत्रालय ने महिला उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापार संबद्ध उद्यमिता सहायता एवं विकास योजना नामक शीर्षक से एक योजना का परिचालन किया है:–

1. योजना में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण (Economic Empowerment) के लिए व्यापार, उत्पादों, सेवाओं आदि से संबंधित गतिविधियों में उन्हें प्रशिक्षण, सूचना तथा परामर्श दिए जाने का प्रावधान है।
2. ऋण देने वाले संस्थानों / बैंक के आकलन के आधार पर इस योजना के तहत, भारत सरकार उक्त ऋण / क्रेडिट का 30% तक (अधिकतम 30 लाख रुपए) अनुदान (Subsidy) के रूप में उपलब्ध कराएगी।
3. ये ऋण देने वाले संस्थान / बैंक महिला समूहों को गैर-कृषि गतिविधियाँ अपनाने के लिए एनजीओ के माध्यम से ऋण सहायता उपलब्ध कराएंगे।
4. सामाजिक-आर्थिक कारकों में सुधार जैसे-उच्च शिक्षा, परिवार / कार्य स्थल में पर्याप्त समर्थन के कारण महिलाएं उद्यमियों और कॉर्पोरेट लीडर्स के रूप में तेजी से उभर रही हैं।
5. NASSCOM के अनुसार, स्टार्टअप में वर्ष 2014 (2.2 अरब डॉलर) की तुलना में 2015 (4.9 अरब डॉलर) में 125% की बढ़ोत्तरी हुई। 2014 के बाद से महिलाओं की भागीदारी में 50% की वृद्धि देखी गयी है।
6. समर्पित योजनाएं जैसे-TREAD व्यापार संबंधित प्रशिक्षण, सूचना और परामर्श प्रदान करेगा।

नई सदी में महिलाओं हेतु संचालित प्रमुख नई योजनाएँ (Major New Schemes for Women in the New Century)

क्र.स.	योजना / कार्यक्रम	वर्ष	प्रमुख उद्देश्य का नाम
1.	किशोरी शक्ति योजना	2000-2001	चिह्नित किशोरियों को पोषाहार देने के साथ-साथ स्वास्थ्य, शिक्षा तथा व्यावसायिक कुशलता हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना।

महिलाओं को कानूनी संरक्षण प्रदान करने के अभिनव प्रयास (Innovative effort to Provide legal Protection to Women)

1.	भारतीय तलाक (संशोधन) अधिनियम, 2001	भारतीय तलाक अधिनियम में मुकदमों के दौरान आर्थिक सहायता निर्वाह, नाबालिगों की शिक्षा से संबंधित व्यापक संशोधन किये गए।
2.	विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम , 2001	भारतीय तलाक अधिनियम की धारा 41 में, गुजारा भत्ता बच्चों के भरण-पोषण के संबंध में इस अधिनियम में संशोधन के जरिए आवश्यक संशोधन किए गए।
3.	अपराध दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2001	पत्नी के भरण-पोषण पाने के अधिकार के अंतर्गत पूर्व निर्धारित 5000 रुपये प्रतिमाह की सीमा को हटाने के लिए यह संशोधन किया गया।
4.	भारतीय उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2002	पारसियों की विधवाओं के प्रति भेदभाव की समाप्ति तथा ईसाईयों की महिलाओं को अन्य धर्मावलंबियों के समान तथा पुरुष के समान उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार दिया गया।
5.	हिन्दू विवाह अधिनियम एवं अधिनियम, 2003	वैवाहिक जीवन में उत्पन्न समस्याओं के कारण विशेष विवाह (संशोधन) विवाह विच्छेद, परित्याग, बच्चे की सुपुर्दगी जैसे विवादों में विवाहिता को अपने निवास क्षेत्र में मुकदमा 90 दिन तक दर्ज कराने का प्रावधान कर दिया गया।
6.	दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 2005	वर्ष 1994 से विचाराधीन इस विधेयक का उद्देश्य, सूर्योदय के पहले तथा सूर्यास्त के बाद किसी भी मामले में पुलिस द्वारा महिलाओं की गिरफ्तारी पर रोक लगाने की व्यवस्था है।
7.	हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005	हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में पैतृक संपत्ति में पुत्रियों को बराबर का हिस्सा सभी राज्यों में दिलाने हेतु संशोधन विधेयक अगस्त, 2005 में पारित हुआ।

8.	घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005	महिलाओं पर हो रहे हिंसात्मक आचरण पर कठोरता से रोक लगाने तथा पीड़ित महिलाओं को संरक्षण दिलाने हेतु अधिनियम सितम्बर, 2005 को पास हुआ।
9.	बालिका अनिवार्य शिक्षा एवं कल्याण विधेयक, 2001	बालिकाओं के लिए विशेषरूप से शिक्षा को अनिवार्य बनाते हुए उनके कल्याण एवं विकास हेतु आवश्यक व्यवस्थाएँ निर्धारित किए जाने के लिए विचाराधीन विधेयक।
10.	कारखाना अधिनियम, 1948 (संशोधन, 2005)	मार्च, 2005 में केंद्रीय मंत्रिपरिषद् द्वारा किए गए निर्णय के अनुसार अब महिलाओं द्वारा कारखानों/ व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में रात्रि में ड्यूटी के प्रतिबंध को हटाने के लिए कारखाना अधिनियम, 1948 में संशोधन किया गया है।
11.	विवाह पंजीयन अनिवार्य विधेयक, 2005	प्रत्येक विवाह का पंजीकरण अनिवार्य बनाकर महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा विधेयक तैयार किया गया है।
12.	अनैतिक व्यापार संशोधन विधेयक, 2006	अनैतिक व्यापार से महिलाओं को शोषण से बचाने हेतु कानून को कड़ा बनाने हेतु संशोधन है।
13.	कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण विधेयक, 2007	कार्यशील महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने हेतु कानून पास कराए जाने संबंधी बिल संसद में विचाराधीन है।
14.	मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) विधेयक, 2019	किसी मुस्लिम पति द्वारा उसकी पत्नी के लिए, शब्दों द्वारा, चाहे वे बोले गए हों या लिखित हों या इलेक्ट्रॉनिक रूप में हों या किसी अन्य रीति में, चाहे कोई भी हो, एक बार में बोले गए तीन तलाक की कोई उद्घोषणा शून्य और अवैध होगी।

✪✪✪✪✪

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR